श्री सहजानन्द शास्त्रमाला

अध्यात्मसहस्री प्रवचन

भाग ४, ५, ६

प्रवक्ता :—
अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहर जी वर्णी
"श्रीमत्सहजानन्द महाराज"

प्रकाशक :—
खेमचन्द जैन, सर्राफ
मंत्री, श्री सहजानन्द शास्त्रमाला,
१८५ ए, रणजीतपुरी, सदर मेरठ
(उत्तर प्रदेश)

[प्रथम संस्करण १०००] सन् १९७० [मूल्य ६)]

श्री सहजानन्द शास्त्रमालाके संरक्षक

(१) श्रीमान् ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, संरक्षक, अध्यक्ष एवं प्रधान ट्रस्टी, सदर मेरठ।

(२) श्रीमती सौ० फूलमाला देवी, धर्मपत्नी श्री ला० महावीरप्रसाद जी जैन, बैंकर्स, सदर मेरठ।

(३) वर्णीसंघ ज्ञानप्रभावना समिति, कार्यालय, कानपुर।

श्री सहजानन्द शास्त्रमाला के प्रवर्तक महानुभावों की नामावली:—

१	श्रीमान्	लाला लालचन्द विजयकुमार जी जैन सर्राफ,	सहारनपुर
२	,,	सेठ भंवरीलाल जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
३	,,	कृष्णचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
४	,,	सेठ जगन्नाथ जी जैन पाण्ड्या,	झूमरीतिलैया
५	,,	श्रीमती सोवती देवी जी जैन,	गिरिडीह
६	,,	मित्रसैन नाहरसिंह जी जैन,	मुजफ्फरनगर
७	,,	प्रेमचन्द ओमप्रकाश जी जैन, प्रेमपुरी,	मेरठ
८	,,	सलेखचन्द लालचन्द जी जैन,	मुजफ्फरनगर
९	,,	दीपचन्द जी जैन रईस,	देहरादून
१०	,,	बारूमल प्रेमचन्द जी जैन,	मसूरी
११	,,	बाबूराम मुरारीलाल जी जैन,	जगाधरी
१२	,,	केवलराम उग्रसैन जी जैन,	ज्वालापुर
१३	,,	सेठ गैंदामल दगडू शाह जी जैन,	सनावद
१४	,,	मुकुन्दलाल गुलशनराय जी, नई मंडी,	मुजफ्फरनगर
१५	,,	श्रीमती धर्मपत्नी बा० कैलाशचन्द जी जैन,	देहरादून
१६	,,	जयकुमार वीरसैन जी जैन, सदर	मेरठ
१७	,,	मंत्री जैन समाज,	खण्डवा
१८	,,	बाबूराम अकलंकप्रसाद जी जैन,	तिस्सा
१९	,,	विशालचन्द जी जैन, रईस	सहारनपुर
२०	,,	बा० हरीचन्द जी ज्योतिप्रसाद जी जैन, ओवरसियर,	इटावा
२१	,,	सौ० प्रेमदेवी शाह सुपुत्री बा० फतेलाल जी जैन, संघी,	जयपुर
२२	,,	मंत्राणी, दिगम्बर जैन महिला समाज,	गया
२३	,,	सेठ सागरमल जी पाण्ड्या,	गिरिडीह
२४	,,	बा० गिरनारीलाल चिरंजीलाल जी, जैन	गिरिडीह

२५	श्रीमान्	बा० राधेलाल कालूराम जी मोदी,	गिरिडीह
२६	,,	सेठ फूलचन्द बैजनाथ जी जैन, नई मण्डी,	मुजफ्फरनगर
२७	,,	सुखबीरसिंह हेमचन्द जी सर्राफ,	बड़ौत
२८	,,	गोकुलचंद हरकचंद जी गोधा,	लालगोला
२९	,,	दीपचंद जी जैन ए० इंजीनियर,	कानपुर
३०	,,	मंत्री, दि० जैनसमाज, नाई की मंडी,	आगरा
३१	,,	संचालिका, दि० जैन महिलामंडल, नमककी मंडी,	आगरा
३२	,,	नेमिचन्द जी जैन, रुड़की प्रेस,	रुड़की
३३	,,	मब्बनलाल शिवप्रसाद जी जैन, चिलकाना वाले,	सहारनपुर
३४	,,	रोशनलाल के० सी० जैन,	सहारनपुर
३५	,,	मोलहड़मल श्रीपाल जी, जैन, जैन वेस्ट	सहारनपुर
३६	,,	बनवारीलाल निरंजनलाल जी जैन,	शिमला
३७	,,	सेठ शीतलप्रसाद जी जैन,	सदर मेरठ
३८	,,	दिगम्बर जैनसमाज	गोटे गाँव
३९	,,	माता जी धनवंतीदेवी जैन राजागंज	राजागंज इटावा
४०	,, ❀	गजानन्द गुलाबचन्द जी जैन, बजाज	गया
४१	,, ❀	बा० जीतमल इन्द्रकुमार जी जैन छाबड़ा,	झूमरीतिलैया
४२	,, ❀	इन्द्रजीत जी जैन, वकील, स्वरूपनगर,	कानपुर
४३	,, ❀	सेठ मोहनलाल ताराचन्द जी जैन बड़जात्या,	जयपुर
४४	,, ❀	बा० दयाराम जी जैन आर. एस. डी. ओ.	सदर मेरठ
४५	,, ❀	ला० मुन्नालाल यादवराय जी जैन,	सदर मेरठ
४६	,, ×	जिनेश्वरप्रसाद अभिनन्दनकुमार जी जैन,	सहारनपुर
४७	,, ×	जिनेश्वरलाल श्रीपाल जी जैन,	शिमला

नोट:—जिन नामों के पहले ❀ ऐसा चिन्ह लगा है उन महानुभावोंकी स्वीकृत सदस्यताके कुछ रुपये आ गये हैं, शेष आने हैं तथा जिस नामके पहले × ऐसा चिन्ह लगा है उनकी स्वीकृत सदस्यताका रुपया अभी तक कुछ नहीं आया, सभी बाकी है।

आत्म-कीर्तन

शान्तमूर्ति न्यायतीर्थ पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी "सहजानन्द" महाराज
द्वारा रचित

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हू वह हैं भगवान ।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग वितान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुख दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ईश्वर ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुँचू' निजधाम, आकुलताका फिर क्या काम ।। ४ ।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूँ अभिराम ।। ५ ।।

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियो में भारतमें अनेकों स्थानोंपर पाठ किया जाता है आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरमें ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समयमें छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे घन्टा परिवारमें एकत्र एकत्रित बालक बालिका महिला पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी विपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचि के अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण स्तवका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

अध्यात्मसहस्री प्रवचन चतुर्थ भाग

(दशम परिच्छेद)

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहर जी वर्णी सहजानन्द महाराज]

आगमिक दृष्टि—आत्मतत्त्वके वर्णनके प्रसंगमे प्रसगवश कही-कही कुछ नयो द्वारा आत्मतत्त्वका विवेचन किया गया था। अब यहाँ कुछ क्रम रखकर बहुत से नयो द्वारा आत्मतत्त्वके परिज्ञानकी बात चलेगी। किस नयसे आत्मा कैसा है, इसको विश्लेषण सहित जानने से पहिले कुछ प्रमुख नयोके नाम समझ लीजिए। ऐसे नय कितने हो सकते है जितने कि भाव हो, अभिप्राय हो। जितनी दृष्टियाँ होगी उतने ही नय बन जाया करते है। ऐसे नय जिनका कि वर्णन इस प्रकरणमे चलेगा इस प्रकार बताये जा सकते है कि नैगम, सग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र, शब्द, समभिरूढ, एवंभूत—ये ७ नय तो आगममे क्रमश उल्लिखित है, और द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक—इन दो भागोमे विभक्त है।

आध्यात्मिक दृष्टि—इनके अतिरिक्त आध्यात्मिक प्रकारसे कुछ नय व्यवहारमे और हमारे कल्याणकी साधनामे आ सकते है। निरपेक्ष शुद्ध, परमशुद्ध निश्चय, शुद्ध निश्चय, अशुद्धनिश्चय, ये चार प्रकारके नय निश्चयनयसे सम्बधित है। जब कि एक पदार्थको ही देखा जा रहा हो, एकमे एक को ही निरखा जा रहा हो, ऐसे एक की सीमामे रहकर जितने प्रकारसे परिज्ञान हो सकता है वे सक्षेपमे चार प्रकार बन जाते हैं। इनके अतिरिक्त कुछ व्यवहार सम्बधित नय है। निमित्तसम्बधक व्यवहार, आश्रयसम्बधक व्यवहार, उभय-सम्बधक व्यवहार, उपचरित असद्भूत व्यवहार, अनुपचरितासद्भूत व्यवहार, अनुपचरित सद्भूतव्यवहार—ये व्यवहारके प्रकार है।

सैद्धान्तिक दृष्टि—अब इन आध्यात्मिक प्रकारोके अतिरिक्त सैद्धान्तिक प्रकारसे भी कुछ नय बनते है। जैसे—परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय, भेदकल्पना निरपेक्ष द्रव्यार्थिकनय स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय, परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय, अन्वयद्रव्यार्थिकनय, उत्पाद व्ययगौणसत्ताग्राहक शुद्धद्रव्यार्थिकनय, कर्मोपाधिनिरपेक्षअशुद्धद्रव्यार्थिकनय, कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय, भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय, अशुद्धद्रव्यार्थिकनय, उत्पादव्यय-सापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनय—ये १० प्रकारके नय द्रव्यार्थिकनयमे अन्तर्गत प्रकारके हैं। इनके

आशयमे आत्मा किस प्रकार नजर आता है, यह बात भी इस विवेचनामे दिखायी जायेगी। इनके अतिरिक्त इसी सैद्धान्तिक प्रक्रियामे पर्यायार्थिक दृष्टिमे अन्य प्रकारसे भी नय बनते है। जैसे अनादि नित्यपर्यायार्थिकनय, सादिनित्यपर्यायार्थिकनय, सत्तागौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनय, कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनय, सत्तासापेक्षअनित्य अशुद्धपर्यायार्थिकनय, कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्य अशुद्धपर्यायार्थिकनय, ये पर्यायार्थिकनयमे अन्तर्भूत होने वाले पर्यायार्थिकनयके प्रकार हैं।

स्फुट दृष्टियां— इनके अतिरिक्त अन्य कुछ स्फुट नयोसे विचार चल सकता है। शुद्धसद्भूतव्यवहारनय, अशुद्धसद्भूतव्यवहारनय, द्रव्यनय, विकल्पनय, अवक्तव्यनय, पर्यायनय, अभेदनय, नामनय, स्थापनानय, द्रव्यनय, भावनय, सामान्यनय, विशेषनय, सर्वगतनय, असर्वगतनय, शून्यनय, अशून्यनय, ज्ञानज्ञेयाद्वैतनय, ज्ञानज्ञेयद्वैतनय, नियतिनय, अनियतिनय, स्वभावनय, अस्वभावनय, कालनय, अकालनय, पुरषकारनय, दैवनय, पारतन्त्र्यनय, स्वातन्त्र्य नय, कर्तृनय, अकर्तृनय, भोक्तृनय, अभोक्तृनय, क्रियानय, ज्ञाननय, व्यवहारनय, निश्चयनय, अशुद्धनय, शुद्धनय, ये कुछ स्फुटनयके प्रकार है। उक्त समस्त पद्धतियोके समस्त नयोमे क्रमश अव यह दिखा रहे है कि इस नयसे आत्मा किस प्रकार दिखता है?

नैगमनयमें आत्मदर्शनका प्रकार— सर्वप्रथम नैगमनयसे आत्मतत्त्वके परिज्ञानकी बात कही जा रही है। नैगमनयसे यह आत्मा अनन्तगुण और वर्तमान भूत भविष्यकी अनन्तपर्यायोका पुञ्ज है, इस प्रकार दृष्टिमे आता है। नैगमनय सब नयोमे विशाल विषय वाला नय है। यह नय अनादि अनन्त समस्त गुणपर्यायोके पुञ्जरूपमे आत्माको दिखाता है। तो नैगमनयकी दृष्टिमे आत्मा अनन्तगुणोका पुञ्ज है और भूतमे जितनी पर्यायें हो चुकी, भविष्यमे जितनी पर्यायें होगी, वे है अनन्त और वर्तमानका एक परिणमन, इस तरह अनन्तानन्त पर्यायोका पुञ्ज यह आत्मा है, यह विदित होता है। नैगमनयकी व्युत्पत्ति 'है न एक गम जो' एकको प्राप्त न हो, जो अनेकको, विशालको दृष्टिमे ले उसे नैगमनय कहते है। अथवा 'निगम सकल्प तत्र भव नैगम' अर्थात् जो सकल्पमे होवे उसका नाम नैगमनय है। सकल्प करके जो तत्त्व परिज्ञात होता है वह नैगमनयका विषय है। दोनो प्रकारके अर्थोंसे जब आत्माको निरखा जा रहा है तो यह आत्मा अनन्तगुण और अनन्त पर्यायोका पुञ्ज है, इस प्रकार दिखता है। द्रव्य कितना है, यह बात कभी एक समयमे नही बतायी जा सकती, द्रव्यकी विशालता किसी एक पर्यायको लेकर नही कही जा सकती। नैगमनयमे सत् असत् दोनोका सग्रह है। असत्के मायने सर्वथा असत् नही, किन्तु जो पर्याये अभी नही है अथवा

हो चुकी है वे वर्तमान दृष्टिसे असत् है और जो वर्तमानमे है वे वर्तमान दृष्टिसे सत् है। सब का पुञ्ज यह आत्मा है। आविर्भूत तिरोभूत समस्त गुणपर्यायोका पिण्ड आत्मा है। यह नैगमनयने समझाया।

संग्रहनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—सग्रहनयसे आत्मा कैसा है? अनन्तशक्त्यात्मक एक अभेदपिण्डरूप यह आत्मा है। एक पदार्थको निरखते है और एक ही पदार्थमे सग्रह भी देखते है तो एक पदार्थ भेददृष्टिसे निरखने पर अनन्तशक्तिरूप नजर आता है। पदार्थ अनन्त शक्तिमय है। उन अनन्त शक्तियोका पिण्ड यह आत्मा है सग्रहनयसे यह भी निरखा जा सकता है कि लोकमे जितने भी आत्मा है शुद्ध हो, अशुद्ध हो, मुक्त हो, ससारी हो, सम्य-ग्दृष्टि हो, मिथ्यादृष्टि हो, केवल आत्मतत्वको जब हम निरखते है तो उस स्वरूपसे समस्त जीव एक समान है। तो संग्रहनयसे आत्मतत्वका जो स्वरूप कहा जायेगा उस स्वरूपमे समस्त आत्माओका सग्रह है। कोई आत्मा छूटता नही है। सभी आत्मा एक चैतन्यस्वरूप है। तब "चैतन्यमात्र आत्मतत्व" इस कथनमे सबका सग्रह है अथवा समस्त जीवोमे पाया जाने वाला जो एक स्वरूप है उस स्वरूपपर दृष्टि सग्रहनय दिलाता है। आत्माको जब हम सग्रहनयसे देखते है तो हम सबमे एक प्रकार पाया जाता है और इस ही नयका एकान्त लेकर कुछ दार्शनिको ने यहा तक कह डाला कि ब्रह्म एक है और यह जगत् चराचर पदार्थ सब उसकी माया है, अथवा ये प्रकृतिके विकार है, वह तो मात्र चिन्मात्र है, चैतन्यस्वरूप है। जानना देखना भी उस ब्रह्मका स्वरूप नही। यह भी माया है, घटता बढता है, विषम है। ये उत्पन्न होते है, प्रकृतिके विकार है। यह एकान्तमे ऐसा सर्वाद्वैतका कथन हो जाता है, किन्तु नापका जितना स्वरूप है, जितनी उसकी हद है उसको दृष्टिमे रखकर निरखनेपर कभी विवाद नही रहता। नयका प्रयोग होता है वहाँ जहाँ प्रमाणसे वस्तुको सम्पूर्णतया ज्ञात कर लिया गया हो और फिर प्रकरणवश किसी एक धर्मको निरखा जा रहा हो, तब नयोका प्रयोग सगत होता है। तो इस नयकी प्रक्रियासे सग्रहनयसे आत्मतत्वको जानने पर इस तरहसे ही विदित होता कि चैतन्यस्वरूप आत्मा है, जो सर्वजीवोमे एक समान स्वरूप है अथवा अनन्तशक्तियोका पिण्ड यह आत्मा है।

व्यवहारनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—व्यवहारनयसे यह आत्मा ज्ञानवान है, चारित्र-वान हैं, श्रद्धावान है, आदिक अनेक प्रकारोमे नजर आता है। व्यवहारनय कहते उसे है कि संग्रहनयसे ग्रहण किए हुए पदार्थका विधिपूर्वक भेद करना। सग्रहनय ने एक आत्मा को ही जाना था, एक अनन्तशक्त्यात्मक अभेद पिण्ड। अब एक ही आत्माको व्यवहारनय

से जब जानने चलेंगे तो अनन्त शक्तियो वाला वह पृथक् पृथक् रूपसे भेदमे नजर आयेगा। जैसे आत्मा ज्ञानवान है। ज्ञान कोई आत्मासे अलग गुण नही है अथवा ज्ञानमय ही तो आत्मा है लेकिन ज्ञानका और आत्मासे भेददृष्टि करके आत्माको ज्ञानवान कहना यह व्यवहारनयका विषय है। इस नयको एक वस्तुमे भी घटित कर लीजिए और अनेक वतुओमे भी घटित कर लीजिए। जब अनेक वस्तुओकी अपेक्षासे व्यवहारनयका प्रयोग होता है तब इस तरह प्रयोग होगा कि जीव यह तो सग्रहनयसे ग्रहण किया गया। जिसमे सभी जीव आ गए। अब उस जीवका विधिपूर्वक भेद करने चलते है तो जीव दो प्रकारके हैं—मुक्त और ससारो। तो मुक्त और ससारी ये प्रकार बताना, भेद बताना व्यवहारनय है। अब एक ही पदार्थमे व्यवहारनयको घटित करे तो आत्मा तो वह एक है, अनन्त शक्तियोका पिण्ड है। अब इस ही आत्मामे शक्तियोको अलग अलग निरख-निरखकर उन-उन शक्तियोंसे सम्पन्न बताना व्यवहारनय है। आत्मा ज्ञानवान है। इस दृष्टिमे आत्माको ज्ञानगुणकी मुख्यतासे निरखा गया। आत्मा दर्शनवान है। आत्मामे जो दर्शनगुण पाया जाता है उस दर्शनगुणकी मुख्यतासे आत्माको निरखा गया। आत्मा चारित्रवान है आदिक रूपसे जितने गुण है उन उन गुणोकी मुख्यतासे जीवको निरखना व्यवहारनयका विषय है। इस व्यवहारनयके एकान्त हठमे कुछ ऐसे भी सिद्धान्त बन जाते है जैसे कि कहना कि आत्मा अथवा ब्रह्म केवल आनन्दमय है। यहा ज्ञानका निषेध किया गया। ज्ञान आत्माका स्वरूप नही, किन्तु आनन्द ही स्वरूप है। जब कोई दर्शन सिद्धान्त यो कहते है कि आत्मा ज्ञानमात्र है, उसमे आनन्द आदिक गुण भी नही हैं, वह काल्पनिक है आदिक रूपसे व्यवहारनयका एकान्त करके एक एक स्वरूप बन जाता है। पर जो नयोके स्वरूपका पारखी हो वह समझता है कि व्यवहारनयसे आत्मा आनन्दमय है। इसका निष्कर्षरूप अर्थ यह है कि सिर्फ आनन्दमय है, इतना ही स्वरूप न समझना, किन्तु सग्रहनयसे अनन्तशक्त्यात्मक जाने गए आत्मामे भेद करके कहा जा रहा है। तब ऐसी दृष्टि बननेपर कोई विवाद नही रहता।

ऋजुसूत्रनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—नैगम सग्रह, व्यवहार, ये तीन नय तो शाश्वत तत्वके बताने वाले है। अब जो पर्यायें है, क्षणिक तत्व हैं, उनके बताने वाले चार नय यहाँ कहे गए है। उनमे प्रथम ऋजुसूत्रनय है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है। जो वर्तमानमे अवस्था है उस अवस्थाका ही ज्ञान करा देना ऋजुसूत्रनयका नाम है। फिर ऋजुसूत्रनय से जो अवस्था जानी उसमे और भेद करके कि इसको इस शब्दसे ही कहा जायेगा, अन्य शब्दसे नही, यो शब्दनय होता। और शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, उनमे

से यह शब्द इस ही अर्थको ग्रहण करेगा यह समभिरूढनय है। और उस शब्दसे उस अर्थ की उस क्रियामे व्याप्ति होनेकी दिशामे ग्रहण करना एवभूतनयका काम है। तो ऋजुसूत्र-नय, जिसका कि वर्णन नवम परिच्छेदमे बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है, उस नयकी दृष्टि मे आत्मा वर्तमान परिणमनमात्र है। द्रव्य कितने है ? जितने वर्तमान परिणमन। देखिये एक दृष्टिसे निरखा जाय तो तत्व केवल दो प्रकारोमे मिलेगा—पदार्थ और परिणमन। गुण तो पदार्थको ही भेददृष्टिसे देखी जानेकी बात है, पर इन दो बातोको किसी भी तरह हटाया नही जा सकता। चीज है और उसकी अवस्था है। कही भी निरख लो, कुछ भी देख लो, दो तत्व मानने ही होगे। कोई चीज है जो हमेशा रहती है और उसकी कोई अवस्था है। यदि अवस्था न माने तो चीज कुछ नही रहती। चीज न माने तो अवस्था कहाँ टिकेगी ? इस कारण दो बाते मानना अति आवश्यक हो जाती है। तो उसमे चीजके वारेमे तो तीन थे, नैगम संग्रह व्यवहार और अवस्थाको जाननेके लिए यहाँ ऋजुसूत्रनय बताया जा रहा नय बताये गए है। देखनेमे भी यह आता है कि जब हम जो पदार्थ देखते है वह पदार्थ उस वर्तमान अवस्थामात्र है। कुछ भी यहाँ आँखों दिख रहा है वह सबमे आकार और अवस्था-मात्र नजर आ रहा है। तो ऋजुसूत्र .यकी दृष्टिमे आत्मा वर्तमान पर्यायमात्र है। जब कोई आत्मा क्रोधी हो रहा है, क्रोधकषायमे चल रहा है उस समय आत्मा क्रोधमात्र समझमे आयगा। ऋजुसूत्रनयके आशयमे, क्योकि यह नय केवल एक परिणमनको निरखता है। जब आत्मा मानकषायमे चल रहा तो आत्मा मानकषायमात्र है। जब आत्मा कषायसे अलग होकर केवल एक अविकार स्थितिमे चल रहा है तो आत्मा अविकारमात्र है। आत्मा ज्ञान-मात्र है, स्वरूपमात्र है। जब जो पर्याय गुजरती है उस समय पर्यायमात्र आत्माको देखनेका काम ऋजुसूत्रनयका है।

शब्दनयमें आत्मदर्शनका प्रकार— ऋजुसूत्रनयमे ही और भेद करके शब्दनयका अवतार होता है। शब्दनय भिन्न-भिन्न शब्दों से भिन्न-भिन्न रूपमें ग्रहण करता है। जैसे स्त्री के वाचक ३ शब्द हैं—दार, भार्या और कलत्र अथवा अनेक शब्द है। स्त्री भी स्त्री-वाचक शब्द है। अव इन शब्दोके अर्थसे अगर देखा जाय तो जो स्त्री है वह कलत्र नही, जो कलत्र है वह भार्या आदिक नही, क्योकि इनका अर्थ जुदा-जुदा है। स्त्रीका नाम दार है। लोग जव स्त्रीपर क्रुद्ध होते है, गाली गलौज देते हैं तो उसे दारी कह देते है। तो दारी एक गालीका शब्द है। दारका अर्थ है—दारयति भेदयति भ्रातृन् इति दार। जो भाई भाई को अलग करा दे। चूँकि स्त्रीमे एक प्रकृत्या ऐसा गुण है कि वह अपने पति, देवर, जेठ

से जब जानने चलेंगे तो अनन्त शक्तियो वाला वह पृथक् पृथक् रूपसे भेदमे नजर आयेगा। जैसे आत्मा ज्ञानवान है। ज्ञान कोई आत्मासे अलग गुण नही है अथवा ज्ञानमय ही तो आत्मा है लेकिन ज्ञानका और आत्मासे भेददृष्टि करके आत्माको ज्ञानवान कहना यह व्यवहारनयका विषय है। इस नयको एक वस्तुमे भी घटित कर लीजिए और अनेक वतुओंमे भी घटित कर लीजिए। जब अनेक वस्तुओंकी अपेक्षासे व्यवहारनयका प्रयोग होता है तब इस तरह प्रयोग होगा कि जीव यह तो संग्रहनयसे ग्रहण किया गया। जिसमे सभी जीव आ गए। अब उस जीवका विधिपूर्वक भेद करने चलते है तो जीव दो प्रकारके हैं—मुक्त और ससारी। तो मुक्त और ससारी ये प्रकार बताना, भेद बताना व्यवहारनय है। अब एक ही पदार्थमे व्यवहारनयको घटित करे तो आत्मा तो वह एक है, अनन्त शक्तियोका पिण्ड है। अब इस ही आत्मामे शक्तियोको अलग अलग निरख-निरखकर उन-उन शक्तियोंसे सम्पन्न बताना व्यवहारनय है। आत्मा ज्ञानवान है। इस दृष्टिमे आत्माको ज्ञानगुणकी मुख्यतासे निरखा गया। आत्मा दर्शनवान है। आत्मामे जो दर्शनगुण पाया जाता है उस दर्शनगुणकी मुख्यतासे आत्माको निरखा गया। आत्मा चारित्रवान है आदिक रूपसे जितने गुण हैं उन उन गुणोकी मुख्यतासे जीवको निरखना व्यवहारनयका विषय है। इस व्यवहारनयके एकान्त हठमे कुछ ऐसे भी सिद्धान्त बन जाते है जैसे कि कहना कि आत्मा अथवा ब्रह्म केवल आनन्दमय है। यहा ज्ञानका निषेध किया गया। ज्ञान आत्माका स्वरूप नही, किन्तु आनन्द ही स्वरूप है। जब कोई दर्शन सिद्धान्त यो कहते हैं कि आत्मा ज्ञानमात्र है, उसमे आनन्द आदिक गुण भी नही हैं, वह काल्पनिक है आदिक रूपसे व्यवहारनयका एकान्त करके एक एक स्वरूप बन जाता है। पर जो नयोके स्वरूपका पारखी हो वह समझता है कि व्यवहारनयसे आत्मा आनन्दमय है। इसका निष्कर्षरूप अर्थ यह है कि सिर्फ आनन्दमय है, इतना ही स्वरूप न समझना, किन्तु सग्रहनयसे अनन्तशक्त्यात्मक जाने गए आत्मामे भेद करके कहा जा रहा है। तक्ष ऐसी दृष्टि बननेपर कोई विवाद नही रहता।

ऋजुसूत्रनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—नैगम सग्रह, व्यवहार, ये तीन नय तो शाश्वत तत्वके बताने वाले है। अब जो पर्यायें हैं, क्षणिक तत्व है, उनके बताने वाले चार नय यहाँ कहे गए हैं। उनमे प्रथम ऋजुसूत्रनय है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान पर्यायको विषय करता है। जो वर्तमानमे अवस्था है उस अवस्थाका ही ज्ञान करा देना ऋजुसूत्रनयका नाम है। फिर ऋजुसूत्रनय से जो अवस्था जानी उसमे और भेद करके कि इसको इस शब्दसे ही कहा जायेगा, अन्य शब्दसे नही, यो शब्दनय होता। और शब्दके अनेक अर्थ होते हैं, उनमे

से यह शब्द इस ही अर्थको ग्रहण करेगा यह समभिरूढनय है। और उस शब्दसे उस अर्थ की उस क्रियामे व्याप्ति होनेकी दिशामे ग्रहण करना एवभूतनयका काम है। तो ऋजुसूत्र-नय, जिसका कि वर्णन नवम परिच्छेदमे बहुत विस्तारपूर्वक किया गया है, उस नयकी दृष्टि मे आत्मा वर्तमान परिणमनमात्र है। द्रव्य कितने है ? जितने वर्तमान परिणमन। देखिये एक दृष्टिसे निरखा जाय तो तत्व केवल दो प्रकारोमे मिलेगा—पदार्थ और परिणमन। गुण तो पदार्थको ही भेददृष्टिसे देखी जानेकी बात है, पर इन दो बातोको किसी भी तरह हटाया नही जा सकता। चीज है और उसकी अवस्था है। कही भी निरख लो, कुछ भी देख लो, दो तत्व मानने ही होंगे। कोई चीज है जो हमेशा रहती है और उसकी कोई अवस्था है। यदि अवस्था न माने तो चीज कुछ नही रहती। चीज न माने तो अवस्था कहाँ टिकेगी ? इस कारण दो बाते मानना अति आवश्यक हो जाती है। तो उसमे चीजके बारेमे तो तीन थे, नैगम संग्रह व्यवहार और अवस्थाको जाननेके लिए यहाँ ऋजुसूत्रनय बताया जा रहा नय बताये गए है। देखनेमे भी यह आता है कि जब हम जो पदार्थ देखते है वह पदार्थ उस वर्तमान अवस्थामात्र है। कुछ भी यहाँ आँखो दिख रहा है वह सबमे आकार और अवस्था-मात्र नजर आ रहा है। तो ऋजुसूत्र ,यकी दृष्टिमे आत्मा वर्तमान पर्यायमात्र है। जब कोई आत्मा क्रोधी हो रहा है, क्रोधकषायमे चल रहा है उस समय आत्मा क्रोधमात्र समझमे आयगा। ऋजुसूत्रनयके आशयमे, क्योकि यह नय केवल एक परिणमनको निरखता है। जब आत्मा मानकषायमे चल रहा तो आत्मा मानकषायमात्र है। जब आत्मा कपायसे अलग होकर केवल एक अविकार स्थितिमे चल रहा है तो आत्मा अविकारमात्र है। आत्मा ज्ञान-मात्र है, स्वरूपमात्र है। जब जो पर्याय गुजरती है उस समय पर्यायमात्र आत्माको देखनेका काम ऋजुसूत्रनयका है।

शब्दनयमें आत्मदर्शनका प्रकार— ऋजुसूत्रनयमे ही और भेद करके शब्दनयका अवतार होता है। शब्दनय भिन्न-भिन्न शब्दो से भिन्न-भिन्न रूपमे ग्रहण करता है। जैसे स्त्री के वाचक ३ शब्द है——दार, भार्या और कलत्र अथवा अनेक शब्द है। स्त्री भी स्त्री—वाचक शब्द है। अब इन शब्दोके अर्थसे अगर देखा जाय तो जो स्त्री है वह कलत्र नही, जो कलत्र है वह भार्या आदिक नही, क्योकि इनका अर्थ जुदा-जुदा है। स्त्रीका नाम दार है। लोग जब स्त्रीपर क्रुद्ध होते है, गाली गलौज देते है तो उसे दारी कह देते है। तो दारी एक गालीका शब्द है। दारका अर्थ है—दारयति भेदयति भ्रातृन् इति दार। जो भाई भाई को अलग करा दे। चूँकि स्त्रीमे एक प्रकृत्या ऐसा गुण है कि वह अपने पति, देवर, जेठ

आदि, इनको एक साथ सम्मिलित होकर नही रहने देना चाहती। तो इनको अलग-अलग करा देने की प्रकृति स्त्रीमे होती है तो उस प्रकृतिकी दृष्टिसे स्त्रीका नाम दार है। भार्या कहते हैं उसे जो गृहस्थीका भार बडी कुशलतासे निभाये। भार्या शब्दसे एक गृहस्थीको निभानेकी कुशलताकी मुख्यतासे स्त्रीका ज्ञान किया गया है। कलत्र कहते है उसे जो कलकी रक्षा करे। कल मायने शरीर। जो शरीरकी रक्षा करे उसे कलत्र कहते हैं। स्त्री अपने पतिपुत्रादिक की यथायोग्य शुश्रूषा करके रक्षा करती है अत उसका नाम कलत्र है। स्त्री नाम उसका है--स्त्यायति गर्भ यस्या जिसमे गर्भ रहे। तो इन शब्दोके अर्थभेदसे भिन्न भिन्न प्रकारमे स्त्रीका बोध हुआ। इस प्रसङ्गमे ऋजुसूत्रनयमे तो यह था कि चाहे किसी भी शब्दसे बोला जाय, एक स्त्रीवाची शब्द होना चाहिए। तो ऋजुसूत्रनयमे ग्रहण किए गए किसी वर्तमानभावमे शब्दकी दृष्टिसे और भेद कर देना, यह शब्दनयका काम है। तो शब्दनयसे पुरुष कैसा है--जो पुरुषार्थ कर रहा हो, आत्मपौरुष करता हो उसे पुरुष कहते है। ऐसी स्थितिमे आत्माको देख रहा है शब्दनय। इस नयमे जिस शब्दसे आत्माको देखना है उस अर्थमे आत्माका ग्रहण होता है। ब्रह्म--स्वगुणैर्वृंहति इति ब्रह्म, जो अपने गुणो से वृद्धिशील हो वह ब्रह्म है। आत्माका अर्थ है जो निरन्तर जानता रहे सो आत्मा। आत्मा शब्दसे जब आत्माको देखा तो यह निरन्तर जाननशील है, इस रूपमे आत्मा नजर आयेगा। यो भिन्न भिन्न-नयोके आशयमे आत्मा भिन्न भिन्न प्रकारसे दृष्टिगत होता है।

समभिरूढनय व एवंभूतनयसे आत्मदर्शनके प्रकार--आत्माका स्वरूप तथा आत्माकी परिस्थितिया भिन्न-भिन्न नयोकी दृष्टिमे बतायी जा रही हैं। समभिरूढनयसे यह आत्मा ज्ञानद्वारा व्यापक प्रतिभासस्वरूप है। समभिरूढनय किसी एक अर्थमे प्रसिद्ध करने को कहते है। आत्माकी प्रसिद्धि किस अर्थमे है ? आत्मा शब्द कहकर एकदम किस प्रकारको वस्तुका बोध कराया जाता है ? वह वस्तु है प्रतिभासस्वरूप। समस्त पदार्थोमे जो प्रतिभासस्वरूप हो वह आत्मा। पदार्थ ६ जातिके होते हैं। जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल इनमे केवल जीव पदार्थ ही प्रतिभासस्वरूप है और वह प्रतिभास असीमित है। ज्ञान द्वारा व्यापक है। जो जो कुछ भी सत् है वह सब ज्ञानमे ज्ञेय होता है। छद्मस्थ अवस्थामे ज्ञानावरणके उदयके निमित्तसे भले ही ज्ञानप्रकाश परिपूर्ण नही होता किन्तु ज्ञानमे कला और सामर्थ्य ऐसी ही है कि जितना जो कुछ भी सत् है। त्रिकाल, त्रिलोकवर्ती समस्त पदार्थ ज्ञानमे प्रतिनियत होते है तो आत्माका यह प्रतिभासस्वरूप ज्ञान द्वारा व्यापक है, ऐसे आत्मा को समभिरूढनय निरखता है। एवंभूतनयसे आत्मा सतत् सर्वका जाननहार है। एवंभूतनय

कहते है उसे कि जिस शब्दका जो अर्थ है उस अर्थमे व्याप्त पदार्थको ही जाने। आत्मा शब्दका अर्थ है अतति सतत गच्छति जानाति इति आत्मा। जो निरन्तर जानता रहे उसे आत्मा कहते है। तो आत्मा सबका निरन्तर जाननहार है। ऐसा ज्ञान होने के कारण अर्थात् जब कि आत्मा निरन्तर जाननहार बन रहा है उस समय सर्वका जाननहार यह आत्मा एवभूतनयसे विदित होता है। यो नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्रनय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय जो कि आगम प्रसिद्ध ७ नय है उन नयोकी दृष्टिमे आत्मा किस-किस प्रकारसे ज्ञात होता है ? यह वर्णन किया गया।

निरपेक्ष शुद्ध नयमें आत्मदर्शनका प्रकार—अब अध्यात्मविधिमे विशेषतया प्रयोगमे आने वाले नयोकी दृष्टिसे वर्णन करते है। अध्यात्मविधिमे नयोके दो प्रकार उपयुक्त होते है—निश्चयनय और व्यवहारनय। निश्चयनय तो एक वस्तुको एकमे ही निरखता है, व्यवहार-नय दो पदार्थोंको अथवा दूसरे पदार्थोंके निमित्तसे अन्य पदार्थोंमे होने वाले प्रभावको निर-खता है। निश्चयव्यवहार इन नयोमे से पहिले निश्चयनयकी बात कह रहे है। निश्चयनय मुख्यतया तीन प्रकारोमे बँटा हुआ है—परमशुद्धनिश्चयनय, शुद्धनिश्चयनय और अशुद्ध-निश्चयनय। जब स्वभावकी दृष्टि करके निश्चयनयसे देखा जाता है तो वह परमशुद्ध निश्चय नयकी दृष्टि कहलाती है। जब शुद्ध पर्यायको एकके ही निरखनेका यत्न होता है तो उसे शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि कहते है। जब अशुद्धपर्यायको उस ही एकमे निरखनेकी दृष्टि होती है तो उसे अशुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि कहते है। किन्तु जब किसीका भी आश्रय न रखकर निरखा जाता है तो उसे निरपेक्षनय कहते है। तो निरपेक्षनयसे शुद्ध आत्मा निस्तरग अभेद अनुभवनमात्र है। परमशुद्ध निश्चयनयमे स्वभावका आलम्बन लेकर देखनेकी बात थी। निरपेक्ष शुद्ध नयमे यह बताया जा रहा कि परमशुद्ध निश्चयनयसे देखनेपर आत्मामे जो प्रभाव होता है, जो अनुभवन होता है केवल उस अनुभवनमात्र आत्मतत्वको दिखाया जाय, उसमे स्वभाव गुण पर्याय किसीका आलम्बन न हो, ऐसी स्थितिमे जो आत्मदर्शन होता है उसे कहते है, निरपेक्ष शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टिमे आत्मदर्शन। तो निरपेक्ष शुद्ध नयसे यह आत्मा निस्तरग है। तरगकी प्रतिष्ठा निरपेक्षतामे नही है और अभेद है। किसी भी प्रकारका भेद, स्वभाव स्वभाववान तकका भी भेद निरपेक्ष शुद्धनयमे नही होता। तब यह जैसा है, जिस अनुभवनस्वरूप है तन्मात्र आत्मा है। यह निरपेक्ष शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे आत्मदर्शन है।

परमशुद्ध निश्चयनयमें आत्मदर्शनका प्रकार— परमशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा चैतन्यस्वरूप

है। परमपारिणामिक भावरूप है। आत्मामें जो स्वरूप है, स्वभाव है उस स्वभावका आलम्बन लेकर स्वभाववानमें अभेद करके जो निरखा गया है वह परमशुद्ध निश्चयनयका विषय है। परमशुद्ध निश्चनय की दृष्टि मे कोई पर्याय शुद्ध नही होती, क्योकि पर्यायें स्वभाव की अपेक्षा सब अशुद्ध हे। अशुद्धका अर्थ मलिन नही, किन्तु चाहे मलिन हो, चाहे अविकारी हो, जो शाश्वत न रहे, जिसमे हानिवृद्धि हो, परिणमन हो, उत्पादव्यय हो उसे केवल शाश्वत न होनेसे अशुद्ध कह सकते है। तो परमशुद्ध निश्चयनयमे पर्याय सम्बंधकी भी अशुद्धता नही है। केवल एक स्वभावका दर्शन है। इस दृष्टिमे आत्मा चैतन्यमात्र विदित होता है। चिन्मात्र अनादि अनत स्वसहाय, अभेद निस्तरग' केवल चैतन्यस्वरूप, इसको परमपारिणामिक भाव भी कहते है। पारिणामिक भावकी व्युत्पत्ति है—परिणाम प्रयोजन यस्यसा पारिणामिक, अर्थात् परिणाम ही जिसका प्रयोजन है अर्थात् परिणाम जिसका होता रहता है वह पारिणामिक है। "परिणाम यस्य—यह कहने पर उसे ग्रहण किया गया शाश्वत है। किसी शाश्वत तत्वमे ही तो परिणमनकी बात कही जा सकती है अन्यथा परिणमन न कहा जायगा। असत्का उत्पाद कहा जायगा। तो जिस स्वभावका परिणमन होता है अपनी जातिमे वह स्वभाव परम है, उत्कृष्ट है, आत्माका प्राणभूत है। जैसे अग्निका प्राण गर्मी है, गर्मी न रहे तो वहाँ अग्नि क्या रही ? गर्मीके व्यय होने से अग्निका भी व्यय है। यह दृष्टान्त स्थूल है, इस कारण यहाँ तो यह सम्भव है कि जल डाल दिया जाय तो अग्नि बुझ जायगी, गर्मी भी समाप्त हो जायगी और अग्नि भी समाप्त हो जायगी, लेकिन चेतनका चैतन्यस्वरूप है और वह चेतनका प्राण है। इस चैतन्यस्वरूप का कभी भी व्यय नही होता, क्योकि चेतन द्रव्य हे। अग्नि खुद पर्याय थी इस कारण वह स्थूल दृष्टान्त था। द्रव्यमे जो स्वभाव है उस स्वभावका कभी भी अभाव नही होता। तो परम शुद्ध निश्चयनयमे आत्मा चैतन्यस्वरूपका कभी भी अभाव नही होता। तो परमशुद्धनिश्चयनयमे आत्मा चैतन्यस्वरूप और परमपारिणामिक भावरूप विदित होता है। इसमे न पर्याय दृष्टिगत है, न किसी प्रकारका भेद दृष्टिगत है, किन्तु एक चिन्मात्रका ही परिचय है।

शुद्धनिश्चयनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—शुद्धनिश्चयनयसे आत्मा अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति और अनन्त आनन्दमय है। आत्माका जो शुद्ध विकास है, घातिया कर्मोंके क्षय होने से आत्माके गुणोका जो परिपूर्ण विशुद्ध विकास है वह है शुद्धपरिणमन। उस शुद्धपरिणमनको आत्मामे निरखना, जिसमे कि यह विधि अन्तर्गत है कि वह शुद्धपरि-

णमन आत्मामे हुआ है, आत्माके द्वारा हुआ है, आत्मासे हुआ है, आत्माके लिए हुआ है। जहाँ अभिन्न षट्कारताकी विधि निहित है इस पद्धतिसे जहाँ शुद्ध पर्यायको आत्मामे तकना, यह शुद्धनिश्चयनयसे आत्माका दर्शन है। इस नयका विषयभूत प्रभुस्वरूप है, भगवान वीतराग है और उनका स्वभाव शुद्ध विकसित है। भगवान परमात्माका अर्थ ही यह है कि उपाधिका सद्भाव व प्रभाव न रहे और अपना जो निज सत्त्वका स्वभाव है वह विशुद्ध पूर्ण विकसित हो, उसीके मायने है भगवान। तो भगवान आत्मा वीतराग है और पूर्ण प्रतिभासस्वरूप है। तो प्रभुभक्तिकी उत्कृष्टता शुद्धनिश्चयनयके विषयमे बनती है। शुद्धनिश्चयनय शुद्धपर्याय से परिणत आत्माको निरखता है और इस विधिसे निरखता है कि अपने चतुष्टयकी परिणति से ही यह आत्मा शुद्धपर्यायरूप बना है। एकसे एकमे निरखनेकी बात निश्चयनयका स्वरूप कहलाता है। जब प्रभुके देहकी दृष्टि छोडकर, प्रभुके अतिशयोकी दृष्टि छोडकर अत अतिशयको निरखते है केवलज्ञानमय, जिस ज्ञानमे त्रिलोक त्रिकालवर्ती समस्त सत् ज्ञेय है, केवल दर्शनमय–जिस दर्शनमे अनन्त ज्ञान परिणत आत्मा दृष्टिगत है, ऐसी अनन्त शक्तियाँ जहाँ है और विशुद्ध शाश्वत निरुपाधि अनन्त आनन्द जहाँ प्रकट है और यह सब विकास उस आत्मामे आत्मासे ही चल रहा है, अपने आधार पर चल रहा है, किसी परवस्तुकी अपेक्षा से नही है ऐसा एक आत्मामे यो शुद्धपर्यायको निरखने पर शुद्धनिश्चयनयसे आत्मदर्शन होता है।

अशुद्धनिश्चयनयमें आत्मदर्शनका प्रकार—अशुद्धनिश्चयनयसे आत्मा रागादिमान है। इस ससार अवस्थामे यह जीव रागादियुक्त है, सो इस रागादिके प्रसगमे जब केवल निश्चयनयकी पद्धतिसे देखा जा रहा हो कि यह आत्मा रागी है, इसमे रागपरिणमन हुआ है, अपने ही चतुष्टयकी परिणतिसे रागपरिणमन हुआ है, इस रागका प्रयोजन, इस रागका आधार, इस रागका साधन, इस रागका आविर्भाव यह आत्मा स्वय हो रहा है, ऐसा केवल एक आत्मामे ही रागपर्यायको निरखना और निश्चयनयकी विधिसे निरखना, यह है अशुद्ध निश्चयनयसे आत्माकी परख। आत्मा रागादिमान है, इस दृष्टिमे यह बात नही आ रही है कि कर्मोंके उदयसे आत्मा रागादिमान बन रहा है। यहाँ निश्चयनयकी दृष्टि होनेसे दो पदार्थो पर दृष्टि नही है। इतना तक भी दृष्टिगत नही है कि कर्मोदय तो मात्र निमित्त है और आत्मामे ये रागादिक प्रभाव स्वय हुए है क्योकि इस कथनमे द्वैत पदाथ तो आ ही गए। आत्मामे यह प्रभाव स्वय हुआ है और अपनी परिणतिसे यह आत्मा रागादिमान हैं, मात्र इतना निरखना अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे हो जाता है। तो अशुद्ध निश्चयनयकी

दृष्टिमे यह आत्मा रागादिमान है। यो अध्यात्मविधिमे उपयोगी निश्चयनयके प्रकारोंसे आत्मा के स्वरूपकी परख की गई है। आत्मा किस दृष्टिमे किस प्रकारसे नजर आता है? इसका ठीक निर्णय न करने वाला पुरुष दूसरे के प्रत्येक कथनमे विवाद उठाने लगता है, किन्तु नयोकी परख करने वाला पुरुष किसी भी मंतव्यमे समन्वय कर सकता है। कोई भी पुरुष कुछ भी सोचता है ज्ञानरूप तो वह है और वह यदि एक कल्याण बुद्धिसे, हितबुद्धिसे वनावट करके, कषाय करके नही किन्तु एक धर्म संकल्पसे सोच रहा है तो कुछ तत्त्वोका ठीक परिज्ञान न होने से भले ही कुछ रूप सोच ले, लेकिन जिस रूप भी सोचेगा वह किसी न किसी नयका विषय अवश्य है। उस नयकी दृष्टि करके उसकी वातको सत्य वताया जा सकता है। तो यो अशुद्धनिश्चय नयकी दृष्टिमे आत्मा रागादिमान है। इस प्रकारसे आत्माका दर्शन किया गया है।

निमित्तसम्बंधक व्यवहारमें आत्मपरिचयका प्रकार--जव आत्माके परिणमनमे निमित्त क्या होता है? उस निमित्तके सम्वधमे दृष्टि की जाती है तो ऐसे आशयमे कि जव परिणमनको जिस निमित्तसे हुआ है उसस सम्वध रखते हुए देख रहे हैं तो उस दृष्टिमे यह आत्मा यो नजर आता है कि देखो यह जीव कर्मोदयके निमित्तसे कषायादिकरूप परिणमने वाला है। यद्यपि यह वात तथ्यकी है। इसको इन्कार नही किया जा सकता। आत्मा रागादिकरूप परिणमता है, इतनी वात यदि न मानी जाय तो आत्माका पुरुषार्थ है ही क्या यहाँ? फिर मोक्षका यत्न किस लिए करना? जव समझा कि आत्मा तो रागादिकरूप परि-णम रहा है, जिसके कारण हम दुखी हैं व ससारमें रुलते फिरते हैं, तव हमे इस पर्यायको मिटानेको आवश्यकता मालूम हुई। तो रागादिकरूप आत्मा परिणम रहा है, इसको कोई निषेध नही कर सकता साथ ही इसका भी कोई निषेध नही कर सकता कि कर्मोदयके निमित्त से रागादिकरूप परिणम रहा। यहाँ निषेध करने लायक वात इतनी ही है कि कर्मोदयकी परिणतिसे आत्मा रागादिकरूप नही परिणमता। परिणतियाँ दोनोकी अपने आपमे अलग अलग हैं। कर्मोदयकी परिणति कर्ममे है और रागादिकरूप परिणमने की परिणति जीवमे है, पर कर्मोदयका निमित्त पाये बिना रागादिकरूप परिणम नही सकता आत्मा। यदि कर्मो-दयके निमित्त बिना रागादिकरूप परिणमने लगे तब रागादिक होना जीवका स्वभाव बन जायगा, क्योकि जो परकी अपेक्षा बिना, परके सम्वध बिना, परका आलम्बन हुए बिना जो कुछ बनता हो वह तो स्वभावकी बात कहलायेगी। तब ऐसा निरखना कि कर्मोदयके निमित्तसे अथवा कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मा रागादिकरूप परिणम रहा है, इसदृष्टि

को कहते है निमित्तसम्बंधक व्यवहार। पर्यायका कथन चल रहा है, पर्यायकी मुख्यतासे निरखा जा रहा है इस कारण व्यवहारनय है और इस पर्यायको निमित्तका सम्बध बताकर देखा जा रहा है, इस कारण निमित्त सम्बधक व्यवहार है।

सुनने और यथावत् समझनेमें सावधानी की आवश्यकता—इस प्रसगमे जितने भी नय बताये जायेंगे, वहाँ किस नयकी दृष्टिमे ही सत्य है, सब नयोंकी दृष्टिमे नही, इस बात को भी प्रतीतिमे रखते जाना चाहिये। जैसे लोकमे यह कहते कि हरा चश्मा लगावोगे तो कैसा दिखेगा? हरा। नीला, पीला, लाल आदिक चश्मा लगाओगे तो कैसा दिखेगा? नीला, पीला आदि। तो जैसे उन भिन्न-भिन्न चश्मोमे भिन्न भिन्न दर्शन होता है इसी प्रकर इन भिन्न-भिन्न नयोमे भिन्न भिन्न प्रकारसे दर्शन होता है। और चश्मा कैसा ही लगाया जाय, और बात, कैसा ही दिखे, मगर दिखी तो वही एक चीज ना! तो इस प्रकार इन नयोसे चाहे किस ही प्रकार देखा जाय पर दिखा वह अर्थ ही, पदार्थ ही, अर्थात् ज्ञेय होता है तो पदार्थ होता है। यह कथन कोई कठिन नही है, लेकिन कोई पहिले से ही यह सोचकर बैठ जाय कि यह कठिन प्रकरण है, यह तो समझमे आयगा नही, तो उसका उपयोग इस ओर जमेगा ही नही। जब अपनी ही बात कही जा रही हो अपने आपके भीतर क्या बात गुजर रही है, उसका ही वर्णन हो और अपनी ही मातृभाषामे वर्णन हो, सुगम सरल शब्दोमे ही कहा जा रहा हो तो समझमे न आये, यह नही हो सकता, किन्तु रुचि चाहिए। रुचि बिना तो आँखोके सामनेसे भी कोई चीज निकल जाय तो वह भी भली प्रकार नही दिख सकती। चित्त हो और जगह, अथवा अन्य इन्द्रियके विषयमे लग रहा हो मन, ऐसी स्थितिमे सामने से कोई कुत्ता भी निकल जाय तो उसे यह विदित नही हो पाता कि क्या निकल गया, कैसा निकल गया। तो जो एक साधारणसी बात हमारे रोज घटनेकी बात है उनमे ही जब रुचि न होनेसे, उपयोग न लगनेसे फर्क हो जाता है तो फिर जो बात अब तक न सुनी हो या कम सुनी हो उस तत्त्वकी जानकारीके लिए उपयोग अगर न लगाया जाय तो समझमे कैसे आयगा?

व्यर्थ और बरबादीके लिये लगे हुए मोहादि विभावसे छुटकारा पानेमें ही कल्याण—बात यहाँ कही जा रही है कि हम आप जीवोमे जो रागादिक बन रहे है उनसे ही तो दुःख है अन्यथा जीवको क्लेश क्या है? सब चीजे छूट जानेकी हैं। पहिले भवकी भी सारी चीजे छूट गयी, इस भवकी भी सब चीजे छूट जायेगी, जरा भी सम्बध न रहेगा। अब जिन बातोसे हमारा जरा भी सम्बंध नही रहनेका, उनके प्रति हम अभी यह सोच ले कि उनके

प्रति स्नेह रखनेमे, लगान रखने मे अब भी फायदा क्या है ? आखिर वह दिन देखना ही तो पडेगा, वह समय भी तो आयगा कि हम उन सबसे अलग होगे। तो विवेक इसमे है कि हम इसी समयसे उन समागमोमे अपना लगावमे न रखे और सच्चा विवेक बनायें। इम मोह रागको छोडे तो इस समयमे भी हम शान्त हो जायेंगे और भविष्यमे भी हम शान्त रह सकेंगे। तो जब चीज तो कुछ हमारे पास रहेगी नही, तो कर क्या रहे हैं हम ? चीज को अपनी नही बना रहे, कोई वस्तु अपनी बन नही सकती। व्यर्थका रागमोह कर रहे हैं। यह रागद्वेषमोह व्यर्थकी चीज है और आत्माको दुख देने वाली है। तब क्यो न ऐसा यत्न किया जाय कि इस रागमोहको दूर कर दिया जाय। रागमोह दूर कब हो ? जब पहिले यह समझ ले कि मुझे कष्ट देने वाले ये रागद्वेष मोहादि हैं। दुनियामे और कोई मेरा वैरी नही। हम स्वार्थवश किसी भी मनुष्यको अपना वैरी विरोधी समझ लेते हैं। अरे वह तो एक जीव है, चैतन्य असाधारण गुणमय है, वह है और परिणमता है, यही उसकी कहानी है। उसमे यह स्वभाव नही पडा है कि वह मेरा विरोधी हो। हमने उसे विरोधी समझा है। उसने तो अपनी कल्पनाके अनुसार अपने भावकी चेष्टा इस प्रकारसे की कि हम उसे वैरी समझने लगे। तब ऐसी स्थितिमे दुखी कौन हो रहा ? हम ही, जो कि वैरी समझ रहे। कषाये चैन कहाँ लेने देगी ? जब हम किन्ही वस्तुओको उपयोगमे इस तरह ले कि यह मेरा वैरी है, विरोधी है तो उस द्वेषभावमे हम ही तो दुखी होगे। तो जितने भी कष्ट है वे सब रागद्वेष मोह भावके है। इन्हे दूर करने के प्रयत्नमे आप तब ही चल पायेंगे जब कि यह समझ लेंगे कि ये रागद्वेप कषायभाव मेरे स्वरूप नही है। मेरे स्वभाव नही है, मेरे खास तत्त्व नही है। तो है क्या ? है कहाँ ? मुझमे है और जिस समय हो रहे है, चूँकि मेरे परिणमन हैं, मुझमे ही तन्मय है, उनका प्रभाव यह होता है कि हम बरबाद होते जा रहे हैं। ये रागादिक भाव मेरे स्वरूप नही है, पर आये है, ये मिट सकते है, क्योकि ये आये हैं कर्मोदयका निमित्त पाकर। देखिये शिक्षा जितनी हमे निश्चयनयके विवरणमे मिलती है वैसी ही शिक्षा हमे व्यवहारनयके भी विवरणमे मिल जाती है। यह तो व्यवहारनयकी ही बात कही जा रही है। देखो—यहाँ कितनी शिक्षा मिली है ? रागादिक कपाय मेरे स्वरूपमे हो रहे हैं और कर्मोदयका निमित्त पाकर हो रहे है। इसलिए इनका जोर मुझमे नही है। जरासे विज्ञानकी फूकसे इन्हे उडा दिया जा सकता है। तो निमित्त सम्बन्धक व्यवहारमे जो भी तत्त्व दीखा उसमे हमको यह शिक्षा मिल जाती है।

आश्रयसम्बन्धक व्यवहारमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब निरखिये ऐसी दृष्टिकी

बात जब कि हम अपना परिणमन किसी बाह्य वस्तुका आश्रय बनाकर कर रहे हैं। उस दृष्टिमे यह आत्मा किस प्रकार नजर आता है ? यो विदित होता है कि स्त्री पुत्रादिकके आश्रयसे यह आत्मा मोहादिकरूप परिणाम रहा है। मोह रागद्वेष ये ही अपने बैरी है। दूसरा कोई अपनी बरबादी कर सकने वाला नही है। बाकी तो सब पदार्थ जो आज समागममे हैं, कुछ समय तक है, जब है तब भी वे मुझसे अलग है, मेरी ओर तकते भी नही। यह पुरुष मकान आदिक की ओर बडे लगावसे देखा करता है। एक भी ईंट फूट गयी तो उसका भीतरी दिल भी टूट गया ऐसे लगावसे तक रहा है, पर यह मकान तो आपको जरा भी नही तक रहा है। आपसे तो कुछ मतलब ही नही रख रहा। वह तो अपने आपके अणुवोमे अपने आपका परिणमन कर रहा है। कुछ सम्बन्ध तो नही, पर यह जीव खुद ही एकाकी हठसे इन बाह्य पदार्थोको उपयोगमे लेकर, उनका आश्रय बनाकर मोह रागद्वेष आदिक नानारूपोमे परिणाम रहा है। तो इस स्थितिमे इस आत्माको देखा जा रहा है तो यो नजर आता कि स्त्री पुत्रादिकके आश्रयसे इस जीवमे मोह रागद्वेषादिक बर्त रहे हैं।

आश्रय और निमित्तके परिचयका विवेक—इस प्रसंगमे उन दो बातोका फिरसे स्मरण कर लीजिए, जिनका पहिले भी जिक्र किया गया था कि हममे जो रागादिक भाव उत्पन्न होते है, सुख दुःख आदिक अवस्थाये बनती है इन अवस्थाओके बननेमे कर्म तो निमित्त होते है और बाकी चीजे आश्रयभूत होती है। निमित्तका तो नैमित्तिकके साथ अन्वय-व्यतिरेक सम्बन्ध होता है। पर आश्रयभूत पदार्थका कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही होता। इस तथ्यको न जानने के कारण ही अनेक लोग इस विवादको ही नही सुलझा पाते और सोचते समझाते है—देखो—निमित्त कुछ भी नही करता, निमित्तकी कुछ बात ही नही, वह तो उपचरित है। देखो—यह जीव समवशरणमे अनेक बार गया, मगर सम्यक्त्व नही हुआ तो निमित्तने क्या किया ? इसी प्रकार देखो—मुनियोके सामने अनेक महिलाये दर्शन करती है, आहार देती हैं लेकिन उन मुनियोके चित्तमे कभी विकार नही आता, तो वहाँ निमित्तने क्या किया ? ऐसा सोचते है, पर यह नही सोचते कि ये सब निमित्त नही है, ये आश्रयभूत पदार्थ है। उन मुनिजनोके उस प्रकारके अनन्तानुबधी आदि कषाय निमित्त रहे ही नही, इसलिए मोहादिक नही उत्पन्न होते। उस जीवके जो समवशरणमे गया है उसके सम्यग्दर्शनके घातक ७ प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम नही बन रहा। इसलिए निमित्त नही हुए। ये आश्रयभूत पदार्थ है निमित्त नही। निमित्तका नैमित्तिक के साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध होता है। यहाँ भी यह नही समझना है कि निमित्तसे कार्य

होता है । निमित्त तो एक सन्निधानमात्र है । सामने रह रहा है, वस्तु है । जिस प्रकारसे उसमे निमित्तरूपता है सो ही है । उसका अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे बाहर गमन नही है और न उपादानमे निमित्तका प्रवेश है, किन्तु बात यों ही लखी जा रही है, इसे कौन मना कर सकेगा ? अग्निका सन्निधान पाकर अनेक पकवान बनाये जाते है, पक जाते है । है । वहाँ भी अग्नि अपनी जगह छोडकर पकवानमे नही घुसी, पकवानने भी अग्निमें से कोई चीज खीचकर अपने मे नही लगाया । यदि अग्नि पकवानमे घुसी हो तो अग्नि ठडी या कम हो जानी चाहिए । या पकवान अग्निमे से कुछ खीच कर लाया हो तो भी अग्निको यही हालत होनी चाहिए । पर स्पष्ट नजर आता है कि अग्निका पानीमे प्रवेश नही, पानी अग्निको कुछ खीचकर लाता नही, फिर भी अग्निका सन्निधान पाकर पानी गर्म हो जाता है । दोनो बातें स्पष्ट है । परिणमनकी स्वतंत्रता और निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध, ये दोनो बातें स्पष्ट हैं । तो आश्रयभूत व्यवहारकी बात चल रही है । इस व्यवहारमे यह निरखा गया कि स्त्री पुत्रादिकके आश्रयसे जीवके मोहादिक होते हैं । आश्रय होता है उपयोगके माध्यमसे । उपयोगने स्त्री पुत्रादिकको विषय किया है और उस कारणमे इसके निमित्तभूत कर्मका उदय है, इस कारण रागादिक उत्पन्न होते है ।

आश्रयसम्बन्धकव्यवहारनयमें हुए अवगमसे उपलब्धव्य शिक्षा—इस आश्रयसम्बन्धक व्यवहारनयमे यो विदित हो रहा है कि यह जीव स्त्री पुत्रादिकका आश्रय पाकर मोहादिक रूप परिणम रहा है । शिक्षा हमे यह लेनी है कि आश्रय पाये बिना मोहादिक रूप नही बनता, भले ही कर्मोदय निमित्त है और स्त्री पुत्रादिक परपदार्थ निमित्त नही हैं, मगर जिस किसीका भी राग बन रहा है उस रागका रूप क्या है सो तो बताओ । वह किसी परपदार्थ-विषयक ही होगा । रागमे परपदार्थ न हो, और राग बन जाता हो ऐसा रागका निर्माण तो नही होता । तो राग ही क्या? किसी भी परतत्त्वमे रुचि होना, राग होना, लगाव होना वही तो राग कहलाता है । तो जब परतत्त्वके आश्रयसे रागका निर्माण हो, पाया तो आश्रय को छोड देना बहुत कुछ हमारे हाथकी बात है । चरणानुयोगका निर्माण इसी आधारपर हुआ है । घर छोडना, स्त्री पुत्रादिक छोडना, परिग्रहका परिमाण करना, ये सब बातें इसलिए हैं कि ये रागादिकके आश्रयभूत हैं । ये हमारे सामने न रहेगे तो कुछ तो अन्तर आ जायेगा । यद्यपि सस्कार जिसका विशेष है इन परपदार्थोंके रागकी ओर वे पदार्थ छोड भी दिए गए, लेकिन यह कहलाय करके उनको चित्तमे बसाकर राग कर सकता है । फिर भी यदि उस आश्रयको त्याग दिया और उस त्याग पर दृढ रहे कि उस आश्रयका अब समागम नही

बनाना है तो यह आदत भी थोडे समयमे मिट जायेगी। तो आश्रयसम्बन्धक व्यवहारमे हमको यह शिक्षा मिलती है कि हम रागादिकके आश्रयभूत पदार्थोंका यथाशक्ति परित्याग करते रहे।

उभयसम्बन्धक व्यवहारमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब तक निमित्त और आश्रय इन्हीके सम्बन्धसे होने वाले व्यवहारकी बात कही, अब देहके सम्बन्धसे होने वाले आश्रयकी बात कह रहे है। यह देह भी या तो निमित्तभूत होगा या आश्रयभूत होगा। जब देहके सम्बन्धसे हमे राग मोह उत्पन्न हो रहा है, देहके निमित्तसे कह लीजिए, चाहे देहके आश्रय से कह लीजिए, कुछ तो होगा। इस सम्बन्धमें थोडा यह विचार करे कि यदि इस देहको हम अपने रागमे निमित्त कहते है तो यहाँ भी कुछ तथ्य लेना है, क्या कि इस देहका आत्माके साथ एकक्षेत्रावगाह सम्बन्ध है और निकट सम्बन्ध है। जैसे कोई चीज टूट जाय तो उसके टूटनेको देखकर भी दु.ख होता है और यदि देहमे कोई अगुली वगैरह टूट जाय या कही कोई चोट लग जाय तो उससे भी दु ख होता है, तो परपदार्थकी चोटमे भी दु ख आता है इस मोही को और देहकी चोटमे भी दु ख आता है, लेकिन परपदार्थकी चोट तो आँखो देखी जाती है, सो जब परपदार्थ सामने आया तब दु ख है, लेकिन देहकी चोट लग जाय तो इसको कुछ जल्दी भान होता है और ऐसी स्थिति प्राय होती है कि भान हुए बिना रह नही पाता तो दु खी होने लगता है। तो इतना कुछ निकट सम्बन्ध देखकर अगर अपने दु खादिकमे देहको निमित्त कह दिया जाय तो यह भी तथ्यकी बात है, लेकिन इस देहका भी आत्माके सुख दु ख आदिकके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही है। मुनिजनोको इतने उपसर्ग होते है और वे वेदना नही मानते। इस कारणसे यह विदित होता है कि देहको निमित्त न कहा जाय किन्तु आश्रयभूत कहा जाय। जब उपयोगमे देहके रोग, देहकी चोट जानी जाती है और कर्मोदयका निमित्त है तो यहाँ भी दु ख उत्पन्न होता है। कुछ ऐसी दोनो तरहकी बात विदित होनेसे इस देहको उभय शब्दसे कह लीजिए कि यह उभय है, कुछ निमित्त रूपसा भी नजर आता है, कुछ आश्रयभूतसा भी विदित होता है, कुछ आश्रय भूत सा भी विदित होता है। तो ऐसे इस देहके निमित्तसे व्यवहार बनाया जाय तो उस दृष्टिमे आत्मा कैसा नजर आता है? यह आत्मा शरीरके कारण परतत्र और दु खी है।

संसारमें जीवकी परतन्त्रता व दुःखभाजनताकी नजर—यह जीव परतत्र तो ऐसा है कि जब शरीरके कारण यह दु खी हो होकर ऊब जाता है, झल्लाता है तो और बातोमें तो इसकी हठ चल सकती है कि इस चीजको फेंक दे, अलग कर दे, इसकी ओरसे मुख फेर ले

इससे सम्वन्ध ही न रखे, किन्तु देहके लिए क्या करे ? इस देहके कारण हम दुखी होते जा रहे है और उस दुखमे हम झल्ला भी जाये तो इसे कहाँ फेक दे ? हम इस देहसे कैसे अलग हो पाये ? इस देहके कारण ही तो भूख, प्यास, ठडी, गर्मी, सम्मान, अपमान आदिकके सभी दुख हो रहे है। लोग चाहते हैं कि इस दुनियामे मेरा नाम हो। मैं, मेरा शव्दसे इसने क्या सोच रखा ? क्या चैतन्यमात्र भावात्मक पदार्थ ? उसकी तो किसी को खवर ही नही और उसका पता हो तो फिर यहाँ मैं मैं, मेरा मेरा कौन करे ? यह तो यो सोचता है कि ऐसी फोटो वाला मैं, इस मेरेकी इज्जत हो। और इसी मिथ्या आशयमे उस इज्जतके बढानेके उपाय भी किया करते है। इस मुझका लोग फोटो खीचे, इसका नाम जपे। वे अक्षर ही तो हैं। किसी ढगसे जोड दिए गए। तो इस जीवको नामसे और इस देहके आकारसे, फोटोसे इतना लगाव हो गया कि उसे मान लिया कि यही मैं हू और सोचते है कि इस मेरेकी इज्जत हो। तो आप देख लीजिए कि सम्मानका और अपमानका, कल्पनाका, विचारका, चिन्ताका, शोकका आदि जितने भी दुख है वे सब इस देहके सम्बन्ध से है। तो जिस देहके सम्वन्धसे हम पर दुखका पहाडसा पडा है उस देहको हम झल्लाकर भी कहाँ फेक दे ? इतना निकट सम्वन्ध वन रहा है, ऐसे निकट सम्वन्धी इस उभय आश्रय निमित्तरूप इस देहके कारण यह आत्मा परतन्त्र है और दुखी है।

उभयसम्वन्धकव्यवहारनयमें प्राप्त अवगमसे ग्राह्य शिक्षा—उक्त दृष्टिमे जो हमने समझा उससे शिक्षा क्या मिलती है ? यह शिक्षा मिलती है कि इस देहको हम कही फेक तो सकते नही। धन वैभव आदिक बाह्य पदार्थोकी भाँति इसके क्षेत्र का त्याग तो कर सकने नही। यह तो रहेगा चिपकेगा और मरण भी हो जायेगा या कोई आत्महत्या भी कर ले तो भी देहसे छुटकारा न मिलेगा। यह देह छूटेगा नया देह मिलेगा। तो देहसे छुटकारा होने का उपाय झल्लाना नही है, किन्तु ज्ञान है, भेदविज्ञान है, विवेक है। यो समझिये कि भारोसे हटकर अपने आपमे आकर इस शरीरसे निपट लेनेकी वात है। तो कमसे कम इतना तो ध्यानमे आना ही चाहिए कि यह देह मैं नही हू। निकट सम्बन्ध है तो भी देह जड है, मैं चेतन हू। देहका भिन्न सत्त्व है। यह पुद्गलमे है। मैं चेतन हू। अपने आपके चैतन्यस्वरूपमे हू। इस भेदविज्ञानको बढाये। इस भेदप्रतिभासको सुदृढ करें तो यह उपाय बन सकेगा जिससे कि हम समस्त दुखोके कारणभूत इस शरीरसे भी मुक्त हो सकेंगे। यह उभयसम्वन्धक व्यवहारकी वात कही गई है।

उपचरित असद्भूतव्यवहारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब उपचरित असद्भूत

व्यवहारनयसे आत्माका परिचय किया जा रहा है। उपचरित असत्भूत व्यवहारनयसे आत्मा के विषयमे कह सकते है कि यह जीव राग, विरोध और मोहसे परेशान है। यहाँ व्यवहार नयसे मतलब है किसी दूसरी चीजको जोडकरके कथन करना और असद्भूतसे मतलब है कि जो आत्माके गुणमे सद्भूत नही है और उपचरितका अर्थ है किसी परपदार्थका नाम लेकर उसका कथन करना। तो यहाँ असद्भूत है रागद्वेषमोह भाव, क्योकि ये आत्मामे गुण के स्वय विलास नही है, ये विकारभाव है और जो विकार है वह असद्भूत तत्त्व कहा जाता है। उसका यहाँ कथन किया गया है और स्पष्ट है, ग्रहणमे आता है, ऐसे भावोका नाम लेकर उपचार किया गया तो इस दृष्टिमे आत्मा परिचित होता है कि यह रागविरोध और मोहसे परेशान है।

जीवका स्वरूप और विकारका रूप——जीवका जो स्वरूप है वह है चैतन्य। और चैतन्यका जो परिणमन है वह होगा जाननदेखन रूप। अब इसके अतिरिक्त जो रागद्वेष-विकल्पके परिणमन होते है वे जीवमे गुणमे नही पाये जा रहे, किन्तु जीवको इस स्वच्छता के कारण ये रागद्वेषादिक परिणमन हो रहे है। जैसे दर्पणमे दर्पणकी सत्ताके कारण दर्पण मे स्वच्छता है। अब उस स्वच्छताके प्रतापसे उस दर्पणमे बाहरी चीजका प्रतिबिम्ब पडता है तो वह प्रतिबिम्ब दर्पणमे सद्भूत नही है, असद्भूत है, क्योकि दर्पणमे तो स्वच्छताका गुण है। उसके प्रतापसे ही किसी वजहसे यह प्रतिबिम्ब आ गया है तो प्रतिबिम्ब जैसे दर्पण मे असद्भूत है, वह परद्रव्यसे आया है ऐसे ही जीवमे रागद्वेषमोहके परिणाम असद्भूत है, क्योकि जीवका स्वरूप है चैतन्य और इस चैतन्यका विलास है जानना देखना, पर जहाँ चैतन्य है वहाँ चैतन्यके बलपर रागविरोध हो सका है। जिपदार्थोमे चैतन्य नही है वहाँ तो रागद्वेषमोह नही हो पाते। जैसे पुद्गल, धर्म आदिक द्रव्य। यदि यहाँ विवेक करके देखा जाय तो विकारभाव असद्भूत है, उनका उपचार करके कथन किया है। तो यहाँ आत्मा मोह से परेशान है, ऐसा परिचय प्राप्त हो रहा है।

उपचरित असद्भूतव्यवहारनयके अवगमसे प्राप्त शिक्षा और प्रेरणा——इस दृष्टिसे हमको यह शिक्षा मिलती है कि रागविरोध असद्भूत है। उसके रूप नही है। हे आत्मन! तू यदि अपनी सच्चाई चाहता है, अपनी पवित्रता चाहता है, जो कैवल्य तेरेमे है वही मात्र हो, ऐसी यदि तेरी रुचि है तो तू रागद्वेषमोह भावका लगाव छोड दे, क्योकि ये असद्भूत है और इन असद्भूतोसे केवल तेरी बरबादी ही है, लाभ कुछ नही मिलता। तू तो अनादि अनन्त है, तीनो काल रहने वाला है। रागविरोध ये तो किसी मिनटके काम है। भले ही

अज्ञानसे ये राग वरोध चलते रहते है, मगर कोई भी परिणमन कुछ सेकेण्डका काम है। दूसरा आता रहता है। कुछ सेकेण्डकी असावधानीमे तेरेमे विकार-परम्परा वढती है और ससारमे रुलना वढता है। तू तो उन विकारोसे रहित केवल चैतन्यमात्र है, अपने स्वरूपको तो देख। क्यो उपचरित असद्भूतमे अपना लगाव रख रहा है ? इस नयमे अपना तथ्य विदित हुआ। उससे यह शिक्षा मिलती है और आत्माके कैवल्यस्वरूपमे पहुचने की प्रेरणा मिलती है।

अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार और शिक्षा---अव अनुपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे आत्मपरिचय किया जा रहा है। असद्भूतव्यवहारनयकी वात जो पहिले थी वही यहाँ है। जो रागादिक विकार हैं वे असद्भूत हैं, किन्तु जो ऐसे रागादिक विकार हैं कि जिनका वेदन नही होता है, अथवा जिनका क्षोभ प्रकट नही होता ऐसे विकार अनुपचरित असद्भूत कहलाते हैं। जैसे श्रेणियोमे रहने वाले, शुद्धसमाधिमे रहने वाले जीवोके रागादिक विकारोका क्षोभ नही है। मत हो क्षोभ, और क्षोभ न होनेके कारण उनका उपचार भी नही किया जा पाता, फिर भी जहाँ तक विभाव हैं, वैर भाव तो विकार है, असद्भूत है। ऐसे अनुपचरित असद्भूत विकारका जो व्यवहार है वह कहलाता है अनुपचरित असद्भूतव्यवहार। इस दृष्टिमे हमको यह शिक्षा मिलती है कि भले ही कोई भी विकार अनुपचरित हो, जिसका कि क्षोभ परिणमन भी व्यक्त नही हो पाता, किन्तु विकार होनेके कारण अन्त तो उन अंशोमे वरवादी ही है। जैसे लोकमे कहते है कि शत्रुका कुछ भी रह जाना भलेके लिए नही हैं, ऐसे ही यहाँ सोचिए अपने अन्दरमे कि मेरा वैरी रागद्वेपभाव है। इस रागद्वेषभावका अश भी रह जाना इस आत्माके लिए भला नही है। और अश रह जाना तो भलेके लिए क्या होगा, जहाँ रागका दव जाना भी, जिस उपशमसे यह जीव अन्तर्मुहूर्तमे उपशान्तमोह गुणस्थान वाला वन जाता है, जहाँ वीतराग छद्मस्थ है, इतनी तक महिमा प्रकट हो जाती है। ऐसा दवा हुआ भी राग जीवके लिए घातक हो जाता है। तो हम इस रागविरोधभावको भी अपने लिए हानिकारक जानकर यह निर्णय रखें कि इससे भी मुक्त होनेमे अपनी भलाई है।

उपचरित सद्भूतव्यवहारनयमें। आत्मपरिचयका प्रकार---अव उपचरित सद्भूतव्यवहारनयसे आत्माका परिचय करते है सद्भूत कहते हैं उसे कि जो आत्मामे शक्ति है, गुण है, उसका विकास होना, उस गुणके अनुरूप पर्याय प्रकट होना सो सद्भूत है। आत्मामे ज्ञानगुण है और ज्ञानगुणकी पर्यायें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और

केवलज्ञान ये ५ प्रसिद्ध है। इन पर्यायोमे मतिज्ञानी होना, श्रुतज्ञानी होना आदिक पर्याये उपचरित है। इनका ग्रहण होता, इनका प्रतिपादन होता, समझाना होता, इस कारण इनका उपचार हो जाता है। तो इस उपचारसे इसे उपचरित सद्भूत कहते हैं। इस नयमे आत्मा कैसा है ? तो यह कहा जायगा कि आत्मा मतिज्ञानी है, श्रुतज्ञानी है, स्वपरका ज्ञाता है, ये सब कथन उपचरित सद्भूत व्यवहारमे है, क्योकि कथन करनेके लिए कोई अवसर तो मिला। यह जीव इस पदार्थका जानने वाला है तो पदार्थका नाम लेकर जाननेकी बात को बतानेका सहारा तो मिला, इस कारण यह उपचरित है। मतिज्ञान क्या ? जो इन्द्रिय और मनके निमित्तसे उत्पन्न होता है वह मतिज्ञान है। इस मतिज्ञानके कथन करनेमे साधनकी मुख्यताका अवसर तो मिला, इस कारण यह उपचरित सद्भूतव्यवहार है। उपचरित सद्भूत व्यवहारकी दृष्टिसे आत्माको मतिज्ञानी, श्रुतज्ञानी, स्वपरका ज्ञाता आदिक कहा जाता है।

उपचरित सद्भूतव्यवहारनयसे प्राप्त निष्कर्ष—इस नयमे हम यह निष्कर्ष पाते हैं कि आत्माका अनुपचरित रूपसे तो एक जाननस्वभाव है। इसी आत्मस्वभावका ये उपचरित मतिज्ञानादिक अभिनन्दन करते है। सहजस्वतत्त्वकी ओरसे देखा जाय तो जाननमात्र का क्या स्वरूप है ? स्वरूप होते हुए भी हम बता नही सकते। स्वय किसी पदार्थका नाम लेकर या किसी अन्य साधन आदिक की बात कहकर हम उसे बता सकेंगे। केवल ज्ञानमे क्या ज्ञात होता है, इसको भी केवल जाननपरिणतिकी ओरसे कुछ नही बताया जा सकता। समझाते है तब यह कहकर कि तीन लोक तीनकालवर्ती समस्त पदार्थोंका जो जाननहार है सो केवलज्ञान है। जैसे शुद्ध परिणमनको भी हम किसी परका सहारा लेकर ही समझा पाते हैं। वही उपचरित अश है लेकिन केवलज्ञान भी सद्भूत है, अन्य ज्ञानविलास भी सद्भूत है। उनके कथन करनेको उपचरित सद्भूतव्यवहारनय कहते है। आत्मा स्वय सहज अपने आपमे कैसा है, किस रूप वर्त रहा है ? यह बात तो एक निर्विकल्प है और समझने समझानेके क्षेत्रसे बाहरकी बात है। जितना समझने समझानेका अवसर है वह सब उपचरित है।

अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब अनुपचरित सद्भूतव्यवहारसे आत्माका परिचय बताते है। यो कहना कि आत्मा ज्ञानगुण वाला है, बस ज्ञानशक्तिमय है। सहज ज्ञानानन्दस्वरूप है। यह सब किसी परका सहारा लिए बिना कहा गया है, इस कारण अनुपचरित है और आत्मामे जो सहजतत्त्व मौजूद है उनका कथन है, इस कारण सद्भूत व्यवहार है। आत्मा सहजज्ञान, सहजआनन्द, सहजदर्शन आदिक अनन्त गुण

वाला है । तो सहजशक्तिमय है इस प्रकारका व्यवहार कहना, कथन करना यह अनुपचरित सद्भूतव्यवहार है । जीवका सही परिचय अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनयसे मिलता है । इसका यद्यपि विशेष विश्लेषण नही किया जा सकता, लेकिन जो अनुभवी पुरुष हैं, जिन्होंने कर्मोके क्षय, क्षयोपशम आदिकके कारण अपने आपमे अपने स्वरूपका परिचय पाया है अथवा ऐसे पुरुष ज्ञानावरणके विशेप क्षयोपशमसे इस स्वरूपके परिचय पानेके निकट है वे कोई शब्दोमे भी समझ जाते हैं । आत्मा सहज ज्ञानमय है, इसका परिचय करने वाले सुगमतया समझ लेते है । जैसे जिसने मिश्री खायी हो, उसको कोई कहे कि मिश्री मीठी है तो इस तथ्यको वह पूरे रूपसे समझ लेता है । उसमे वह शंका नही करता और न यह विचार करता कि कैसी मीठी ? जैसे जिस वस्तुका जिसने कभी स्वाद न लिया, उसे मीठा शब्दसे कहा जाय तो उसके चित्तमे पूरी बात नही बैठती । कैसा मीठा ? लेकिन जिसने स्वादका अनुभव कर लिया उसको उसके सिद्धान्तका पूर्णपरिचय हो जाता है । यो उपचरित सद्भूतसे आत्माका सही परिचय कराया जाता है । आत्मा सहज ज्ञानमय है । जो अनादि से है, अनन्तकाल तक है । जिसमे किसी परका आश्रय नही, परका सहाय नही, अपने सत्त्व के कारण है, ऐसे स्वरूपकी रुचिमे आत्माकी बात समझना है, समझाना है, यह कहलाता है अनुपचरित सद्भूतव्यवहारनय ।

द्रव्यार्थिकनय व पर्यायार्थिकनयकी विधिसे आत्मपरिचय करानेका उद्यम—यहाँ तक अध्यात्मपद्धतिसे निश्चय और व्यवहारनयसे आत्माका कैसे परिचय मिलता है ? इसका वर्णन किया । अब सैद्धान्तिकदृष्टिसे द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयकी प्रधानतासे वर्णन करेंगे जिसमे द्रव्यार्थिकनय १० प्रकारके है । द्रव्यार्थिकनय कहते उसे हैं जिस दृष्टिका प्रयोजन केवल द्रव्य हो । द्रव्य एक सामान्य होता, अभेद होता । द्रव्यार्थिकनयको शीघ्र समझनेके लिए दो तत्त्वोको ध्यानमे रखते रहो—सामान्य और अभेद । जो सामान्यकी ओर मुडा हुआ कथन है वह द्रव्यार्थिकनयका कथन है या अभेदकी ओर हो रहा हुआ जो कथन है वह द्रव्यार्थिकनयका कथन है । यो तो करणानुयोगके शास्त्रोमे सक्षेपका और विस्तारका नाम भी द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक रखा है । कोई बात साधारण शब्दोमे समझायी जा रही है तो उसे कहेगे कि यह द्रव्यार्थिकनयसे कथन किया और उसी चीजको जब विश्लेषण सहित जुदे-जुदे लक्षण सहित बताया जाता है तो उसे कहते हैं–यह पर्यायार्थिकनयसे कथन है । जैसे जहाँ यह कहा कि ज्ञान ५ प्रकारका है यह एक सूत्र बनाया, इसके बाद दूसरा सूत्र बनाया तो उसमे नाम बताने लगे–मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और

केवलज्ञान। अथवा ज्ञानावरणका पहिला सूत्र बनाया कि ज्ञानावरण ५ प्रकारके है। पहिला सूत्र बन गया। इसके बाद सूत्र बनाया ज्ञानावरणके नाम लेकर—मतिज्ञानावरणीय, श्रुतज्ञानावरणीय, अवधिज्ञानावरणीय, मन पर्ययज्ञानावरणीय और केवलज्ञानारणीय। तो वहाँ टीकामे एक शका उठायी गई कि पहिले सूत्रमे ही कह दिया कि ज्ञान या ज्ञानावरण ५ प्रकारका है, उससे ही सब विदित हो गए, फिर यह दूसरा सूत्र क्यो कहा जा रहा ? तो उत्तर दिया कि पहिला सूत्र द्रव्यार्थिकनयसे कहा, दूसरा सूत्र पर्यायार्थिकनयसे कहा—अब यहाँ द्रव्य और पर्यायकी क्या बात है ? वहाँ दृष्टि रखी है जो सक्षेप कथन है। वह द्रव्यार्थिक जैसा है जो विस्तारका कथन है वह पर्यायार्थिक जैसा है। दूसरी बात संक्षेपका जो कथन है वह अभेदसे सम्बधित है। विस्तारका जो कथन है वह भेदसे सम्बंधित है। तो लो अब अभेद और भेदसे सम्बन्ध होनेके कारण द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकका विवेक स्पष्ट हो गया। जो सक्षेपका कथन है वह सामान्य कथन है, जो विस्तारका कथन है वह विशेष कथन है। तो लो—यो सामान्य और विशेषकी दृष्टिसे द्रव्य और पर्याय आ गया। सीधा द्रव्य और पर्याय तो नही आया, पर द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयकी जो पद्धतिया है, जो उनका माध्यम है वह पद्धति और माध्यम उस प्रसगमे आ गया। तो द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिकनयकी बात समझने के लिए सामान्य अभेदको द्रव्यार्थिकनयके साथ जोडना और विशेष एवं भेदको पर्यायार्थिकनयके साथ जोडना।

परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचय—द्रव्यार्थिकनयके १० भेदोमे प्रथम भेद है परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय। इस नयकी दृष्टि आत्माका किस प्रकारका परिचय मिलता है, उसे इन शब्दोमे कहा जायेगा कि आत्मा चैतन्यस्वभाव है। इस द्रव्यार्थिकनयका नाम है परमभाव ग्राहक द्रव्यार्थिकनय जिस दृष्टिमें अभेद और सामान्य विषय हो। जो अभेद और सामान्य होता है वह सीमारहित होता है। उसमे कालकी, क्षेत्रकी, किसी भी अपेक्षाकी सीमा नही है। तो आत्मामे जो चैतन्यस्वभाव है। परमभाव है उसमे भी कोई सीमा नही है। जैसे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव—ये चार बाते होती द्रव्यके मायने व्यक्ति, जैसे कि एक जीव यह है, एक जीव यह है, इस तरहसे भिन्न-भिन्न जीवोको देखना, यह है एक द्रव्यदृष्टि। क्षेत्रदृष्टि—जो जीव जितने क्षेत्रको रोके हुए है, जिस जीवका जितने क्षेत्रमे अवगाह है, फैलाव है, उस क्षेत्रकी मुख्यतासे निरखना, यह है क्षेत्रसे निरखना। कालदृष्टि—यह जीव इस समय किस रूप परिणाम रहा है, इसमे क्या पर्याय बीत रही है, उस पर्यायको बताना, उस परिणमन को बताना कालदृष्टि है। भावदृष्टि—आत्मामें क्या भाव है, उनके

अविभाग, प्रतिच्छेद, गुणाश ये सब भावदृष्टिमे आते है। तो आत्मामे जो चैतन्यस्वभाव है, जिसका अनुभव करने से आत्मानुभव होता है वह चैतन्यस्वभाव व्यक्तिरूप देखनेमे विदित न होगा। जब जीव जीवको हम व्यक्तिश अलग देखेगे तो हमे क्या दिखेगा ? चैतन्यस्वभाव दृष्टिमे नही आता। जब हम चैतन्यस्वभावको देखते है तो हमारी दृष्टिमे व्यक्ति न रहेगा, चैतन्यप्रकाश रहेगा, सो वह चैतन्यप्रकाश भी बाहर न रहेगा कि जिसका लक्ष्य करके हम ज्ञान कर रहे हो, किन्तु वह अपने आपके चैतन्यस्वभावके अनुभवरूप बन जायेगा। अब परख लो कि चैतन्यस्वभावमे व्यक्तिकी सीमा न रही। इसीको एकान्तसे लेकर कुछ लोगोने एक ब्रह्म चिन्मात्र सर्वव्यापक मान लिया है। अगर चैतन्यस्वभाव पर ही दृष्टि रखे तो यह बात उनकी बहुत प्राय तथ्यरूप है। चैतन्यस्वभाव वह एक है लेकिन इससे भी बढकर बात यह है कि चैतन्यस्वभाव एक भी नही है, अनेक भी नही है। चैतन्यस्वभाव तो अनेक है ही नही, यह तो दोनो दार्शनिकोने मान लिया, पर जैनसिद्धान्त यह कहता है कि यदि चैतन्यस्वभावको तथा चैतन्यस्वरूपको देख रहे है तो उसे एक कहकर सीमामे बाँधना भी उचित नही है। वह तो एक अनेक सर्वप्रकारके सकल्प विकल्प जालोंसे परे है। तो इतनी भी जहाँ सीमा नही है कि उसे एक भी कह सकेंगे क्या ? एक भी कहे तो व्यक्तिका रूप आ जायेगा। एक, अकेला एक अवयव कोई व्यक्ति तो होगा, यह तो व्यक्ति नही है, यह तो चैतन्यस्वभाव है सो यह चिन्मात्र स्वभाव एक अनेकके विकल्पसे परे है। अब आप सोचिये कि जो द्रव्यकी सीमामे नही, क्षेत्रकी सीमामे नही वह कैसा अनुपम तत्त्व होगा ? जैसे हम किसी जीवको चार पाँच फिटके विस्तारमे देखते है। इसी तरहके विस्तारमे हम क्या चैतन्य स्वभावको देखें तो क्या परख सकेंगे ? वह क्षेत्रकी सीमासे परे है। क्षेत्ररूपसे चैतन्यस्वभाव को निरखा नही जा सकता। इसी प्रकार जैसे हम किसीको क्रोधी, मानी आदिक रूपमे देखते है उस तरहसे हम किसी परिणतिमे चैतन्यस्वभावको देख सकेंगे क्या ? अब जब हम प्रभु के केवलज्ञानको भी देखते है तो वहाँ भी चैतन्यस्वभाव उपयोगमे नही रहता। एक परिणमन है। तो जो कालकी सीमासे भी परे है। भाव और अशोंके बन्धनसे भी निराला है, ऐसे चैतन्यस्वभावको हम परमभाव कैसे न कहेंगे, उसे परमभाव ही कहेगे। ऐसे परमभाव चैतन्यस्वभावका ग्रहण करने वाला नय परमभावग्राहक कहलाता है और यह चूँकि द्रव्यरूप है, सामान्य है, अभेद है इस कारण यह नय द्रव्यार्थिकनय कहलाता है। तो यो परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयमे आत्मा चैतन्यस्वभावमात्र परिचित होता है।

भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—जब आत्माको द्रव्यदृष्टिसे

देखा जा रहा हो और ऐसी प्रखर द्रव्यदृष्टिसे कि जहाँ भेदकल्पना भी नही उठती हो ऐसे आशयमे आत्माका परिचय किस प्रकारसे होता है ? अब उसका वर्णन चलेगा । इस आशय का नाम है भेदकल्पनानिरपेक्षद्रव्यार्थिकनय । जिस नयमे भेदकी कोई कल्पना नही उठ रही है, यह गुण है, यह पर्याय है, इस प्रकारका कोई भेद न उठता हो, ऐसा केवल एक द्रव्यको ही देखनेका जहाँ प्रयोजन है उस आशयको कहते है भेदकल्पनानिरपेक्षद्रव्यार्थिकनय । इस नयमे आत्मा गुणपर्यायोसे अभिन्न दिखता है । देखो–किसी सीमामे कितने ही भेद हो जाते हैं । समुद्रके किनारे खडे होकर कोई व्यक्ति सारे समुद्रको कुछ भेद बनाये बिना किसी एक ढगमे देख रहा है, वहाँ लहरे उठ रही है, नही उठ रही है, कम उठती है, कितना महान है आदि कुछ भी कल्पनाये न करके एक समुद्रको तक रहा है, इस तरहसे निरख रहा है । कोई व्यक्ति उस समुद्रके एक कोनेको, अशको, लहरोको, सफाई मलिनता सब तरहसे थोडा थोडा विचार करते हुए निरख रहा है, तो किसी वस्तुको निरखनेकी यहाँ दो विधियाँ होती है–अभेदरूपमे निरखना और भेदरूपमे निरखना । तो जब भेदकल्पनारहित केवल द्रव्यदृष्टि से देखा जा रहा है वहाँ आत्मा गुणपर्यायोस अभिन्न दिखता है । जो नय भेदकल्पनाये उठाया करते है उन नयोसे भी शिक्षा मिलती है, किन्तु भेदकल्पना वाले नय स्वानुभवमे पहुचाने के लिए परम्परा साधन है और भेदकल्पनानिरपेक्ष अभेदको तकने वाला नय आत्मानुभवमे पहुंचाने के लिए निकटतम साधन है ।

हितार्थीको प्रत्येक नयोंसे शिक्षालभ— भैया ! विश्लेषण करके देख लो, कोई भी नय फाल्तू नही है । सभी नयोसे शिक्षा ली जाती है । देखिये सब कुछ कहकर थक कर अन्तमे एक नय कहा करते है–उपचरितोपचरितनय । जिसको वस्तुत नयकोटिमे नही रख सकते । कोई पूछे कि यह घर मकान मेरा है, यह किस नयसे कहा ? तो कहा जायेगा कि उपचरितोपचरित असद्भूतव्यवहारनयसे । इसका मतलब क्या कि पहिले तो असद्भूत घर, मकान इसका है नही और फिर घर वैभव मकान इसका है, यह बात एक झूठे आशयको रखने वाले नयसे कही गई । फायदा वहाँ भी आशयके अवगमसे मिला । तो जितने नय है उन सब नयोसे अगर हम हितार्थी है तो शिक्षा पा सकते है और अगर हम हितार्थी नही है तो हम द्रव्यार्थिकनयकी चर्चा करके भी लाभ नही उठा सकते । तो यहाँ उस द्रव्यार्थिकनय की दृष्टिमे तका जा रहा है जहाँ भेदकल्पना नही है खैर देखते जावो, तृप्त रहो, आनन्द मानो, वहाँ भेदकल्पना नही उठती । इस नयमे गुणपर्यायोसे अभिन्न आत्मा निरखनेमे आता है । जहाँ देखा क्या ? एक चैतन्यमात्र आत्मा नजरमे आता है ।

भेदकल्पनानिरपेक्षनयमें अवगृहीत तत्त्वका चर्चन—भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिक नयके कथनसे पहिले परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयकी वात कही थी। विषय दोनोका एक है। परम भावग्राहक द्रव्यार्थिकनयमे भी चैतन्यस्वभाव आत्मा नजर आया और भेदकल्पना निरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयमे भी वही चिन्मात्र आत्मा नजरमे आया, लेकिन विधिमे अन्तर आ गया। वहाँ परमभावसे ग्रहण करने की पद्धतिसे नय था और यहाँ भेदकल्पना कुछ भी न उठे फिर ग्रहणमे आया ? क्या ग्रहणमे आया इसकी मुख्यता नही है, पर भेदकल्पना निरपेक्ष होकर द्रव्य ज्ञानमे आया, सो यह है भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनय। जैसे यो भी लौकिक बातोमे कहा करते हैं कि किसी सुख देने वाली वस्तुके उपयोगके समय, स्वादिष्ट भोजन करनेके समय वातें वहुत उठती है। क्या भोजन है ? कितना घी पडा है, कितनी शक्कर है, खूब सिका है, ताजा है आदिक वहुतसे विकल्प उठते है और उनकी जानकारी बनती है, मगर एक स्थिति ऐसी आती है कि उस भोजनको कर रहे है और उस भोजन करने की पहिली स्थितियोकी बातोका जब कुछ भी विचार नही चलता और केवल उस रसके स्वादमे ही मग्नता है तो उस रसस्वादमे ही मग्न हो रहे हुए पुरुषमे उस समय उसके भेदकल्पना नही रहती कि कितना घी पडा, कैसा सिका आदि। यह तो उसके आशयमें नही है। यदि यह भी आशयमे रहे तो स्वादका पूरा आनन्द न आयेगा, उसे स्वादलीन न कहा जायेगा। यो ही सर्व बातोसे भी परे होकर केवल अन्तस्तत्त्वमे मग्न होना, जिसे कहते हैं कि सब कुछ फेकफाक कर टन्नाकर रह जाना, जिसमे कोई तरंगकी बात भी न उठे ऐसी स्थिति होती है भेदकल्पना निरपेक्ष और आत्माके सम्बन्धमे जव यह स्थिति बनती है तब वहाँ गुणपर्यायोसे अभिन्न जैसा जो कुछ है वही दिखता है।

णवि होदि अप्पमत्तो ण पमत्तो जाणओ हु जो भावो।
एव भणति सुद्ध णाओ जो सो उ सो चेव ॥

भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयके विषयकी एक झलक— भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनय व परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनयके रहस्यको समयसारकी एक गाथामे बताया गया है। जब पूछा गया कि वह एकत्वविभक्त आत्मा क्या है ? एकत्वविभक्तका अर्थ है अपने आपके स्वरूपमे रहने वाला और समस्त परस्वरूपसे जुदा, वह आत्मतत्त्व सहज कैसा है ? तो कहना पडा कि वह न कषायसहित है, न कषायरहित है, न प्रमत्त है, न अप्रमत्त है, किन्तु वह ज्ञायकभाव मात्र है। देखिये—पहिली पक्तिसे तो परमभावग्राहक द्रव्यार्थिकनय की झलक आयी, लेकिन जब दूसरी पक्तिमे कहते है एव भणति शुद्ध, वह कैसा शुद्ध है,

उसको ऋषिजन कैसा शुद्ध कहते है ? तब यह बताने के लिए कोई शब्द नही रहा, क्योकि अब भेदकल्पनानिरपेक्ष विधिमे आ गये तो कहना यह पडा कि वह तो जो जाना गया सो ही है। जो ज्ञात हुआ वह वही है। यहाँ कहने को कोई शब्द नही रहे। तो इस गाथा मे पहिले तो परमभाव ग्राहककी बात कही, फिर भेदकल्पना निरपेक्षकी बात कही। यह आशय और यह झलक उन भव्य पुरुषोके चित्तमे बैठती है जिन्होंने इसका अनुभव किया है, परिचय प्राप्त किया है। वे शीघ्र ही इस ओर आ जाते है कि भेदकल्पनानिरपेक्ष द्रव्यार्थिकनयसे यह समझा गया।

स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब कुछ भेदकी ओर आते है तो उन भेदोमे जो सबसे पहिले भेदमे आना होता है उस समयकी ज्ञानीकी प्रथम स्थितिको बताते है। उसे कहेगे स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनय। अभी तक यह जीव, यह भव्य ज्ञानी पुरुष भेदकल्पनानिरपेक्ष स्थितिमे था, अब जब यह भेदमे आता है तो प्रथम ही प्रथम भेद हुआ करते है तो वे दो होगे अनेक नही। किसी भी अखण्ड चीजके भेदमे जब आप आयेगे तो दो ही भाग देखेगे। एक चीजके टुकडे किये तो दो हो जायेगे। एक अखण्ड आत्मतत्त्वका भेद करेंगे तो वहाँ दो धाराये बन जायेगी। वे दो धाराये सर्वप्रथम क्या बनती है ? स्व और पर। जिनमे यह विदित होगा कि स्वके रूपसे तो आत्मा है और परके रूपसे आत्मा नही है। ये दोनो बाते है आत्माकी ही बात। अपने चतुष्टयसे आत्मा है और परचतुष्टयसे आत्मा नही है। परिचय आत्माका मिला, बात एक ही आत्माकी कही गई। अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही है। इन दो धाराओमे विध्यात्मक धारा अतिनिकटकी धारा है जिसमे कुछ ग्रहणकी गई विधिकी बात कही गई तो भेद उठनेकी प्रारम्भिक स्थितिमे ज्ञानीके स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयका आशय बनता है। इस आशयमे आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है।

भेदके उत्थापनके दो प्रयोजन—देखिये एक तो निर्णयके लिए भेद उठता है। वह तो प्रशसनीय है और एक अज्ञानमे चलने के लिए भेद उठता है वह हेय है। अज्ञानी जीवो की क्या स्थिति होती है ? इसको भी समयसार कलशकी अतिम कलशोमे बताया है कि आत्मतत्त्व तो यद्यपि अद्वैत है, फिर भी पहिले जो द्वैतकी बुद्धि होती है वह स्व-परके भेद की। जैसे ब्रह्माद्वैतवादियो ने कहा है—एकोह बहु स्याम्। मैं एक हू, बहुत हो जाऊ, तो यह क्या बात कही ? द्वैतकी बात कही। तो इस प्रकार इस आत्मामे सर्वप्रथम द्वैतभाव जगता है। बस यह द्वैतभाव जगना अज्ञानीजनोके लिए विडम्बनाका कारण बन जाता है। पर्यायो

को आत्मा मानना, फिर दो का अद्वैत किया, फिर तो रागद्वेषका परिग्रह लगा, उससे सारी विडम्बनायें हुई। लो फिर तो अविवेक बढता ही जाता है और उसके फलमे संसारमे रुलना होता है, किन्तु निर्णयकी दृष्टिसे भेदका करना एक सावधानीका प्रयास है।

वस्तुपरिचयका प्रकार स्वचतुष्टयावगम—यहाँ देखा जा रहा है स्वद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे। इस नयमे आत्माका परिचय किस प्रकार होता है? यह आत्मा अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है। उसमे भेद किए गए चार। पदार्थोंके जाननेका उपाय यह चतुष्टय ही है। हम एक पेटीको जान रहे है तो पेटी एक व्यक्ति है जो कि सत् है, यह जाना जा रहा। इसकी लम्बाई, चौडाई फैलाव इसमे है, ये जाने जा रहे हैं, इसका रूप, परिणति, मलिनता, स्वच्छता, कमजोरी, सकल ये भी जाने जा रहे है और उसका भाव, उसकी शक्ति ये भी जाने जा रहे है। तो पदार्थका परिचय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है। तो आत्मा का भी परिचय यहाँ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे किया जाता है। 'यह मैं' जिसके लिए कहा गया वह तो है स्वद्रव्य और यह मैं जितने फैलावमे हू जितने विस्तारमें अवगाह है, अनुभवन चलता है वह प्रदेश विस्तार क्षेत्र है. और इसकी जो परिणति है वह है काल और इसमे जो शक्तियाँ, भाव है, वे भाव कहलाते है। आत्माका परिचय भी द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है। और यह भी समझियेगा कि जितने दार्शनिकोने वस्तुस्वरूपके प्रदर्शनमे गल्ती की, जिन-जिन दर्शनोमे त्रुटियाँ हुईं वे सब त्रुटियाँ केवल द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमे से किसीका ग्रहण करना, किसीकी उपेक्षा करना, किसीका किसीमे समन्वय करना आदिक इन त्रुटियोसे ही हुआ। प्रत्येक स्खलनमे आपको माध्यम यही मिलेगा कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव की अपेक्षा बनानेमे गल्ती की है। पदार्थका परिचय द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे होता है। सो यहाँ भी आत्माको अपने द्रव्य, क्षेत्र काल, भावसे निरखा जाता है।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार——स्वरूप परखनेकी दूसरी धारा है परद्रव्यकी ओरसे देखना, इसे कहेगे परद्रव्यग्राहक द्रव्यार्थिकनय। आत्माको छोडकर अन्य समस्त पर हैं। कितने हैं वे सब द्रव्य? अनन्तानन्त जीव एक मुझ जीवको छोडकर अनन्तानन्त समस्त जीव परद्रव्य हैं। समस्त पुद्गलद्रव्य, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। ये सभीके सभी परद्रव्य हैं, उनका चतुष्टय उनमे है, उनका स्व वे स्वय हैं, उनके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे मैं नही हू। इस आशयमे निजसत्ताकी स्वतन्त्रता जाहिर हुई। मैं सत् हू और यह मैं सत् अपने सहायपर हू, किसी दूसरेके सहायपर नही हू। जब मैं सत् हू तो उत्पाद व्यय भी मुझमे मेरे सहायपर चल रहे हैं। किसी दूसरे पदार्थके

सहायपर मेरेमें उत्पाद व्यय नही चलता। संसारमे है अज्ञानियोंका झमेला। यहाँ अज्ञानी जीवोने समझ रखा है कि मेरा जो यह बिगाड हुआ, मेरी जो हानि पहुंची, सो इस आत्मा की करतूतसे पहुंची। उसने सिद्धान्तको तज दिया। मेरा उत्पाद व्यय, मेरी समस्त परिणतियाँ मेरे सहायपर ही है, किसी परके सहायपर नही है। भले ही देखनेमे यह लग रहा हो कि मृदंग बजाने वाला पुरुष कितनी तेजीसे अगुलियाँ चलाता है और उसके अनुरूप ही इस मृदंगसे आवाज निकलती है। इतना बदल बदलकर अगुलियाँ चलाता है कि जिसका बयान करना अशक्य है और ठीक उसी रूप आवाज निकलती है, इतनेपर भी मृदगकी आवाज की परिणति उस अगुलीकी सहायसे नही हुई। भले ही वह निमित्त है और ऐसा हुए बिना आवाज नही हो सकती ऐसा अन्वयव्यतिरेक सम्बध भी है, फिर भी वह जो परिणति हुई है आवाज की, उस परिणतिमे अंगुलियोने क्या किया ? उस निमित्त सन्निधानमे उस मृदग के आश्रयमे भाषावर्गणाओकी व्यक्ति हुई है, तो परिणति किसी किसी परके सहायसे नही हुई। निमित्त अवश्य है। तो जहाँ इतनी स्वतत्रता है वहाँ उस स्वतत्रताका भान जब नही है तो जीवको आकुलताये हो जाती है। जब परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे निर्णय कर लिया गया कि मै परपदार्थके द्रव्यसे, क्षेत्रसे, कालसे, भावसे नही हू तो उसको फिर क्षोभ आने का अवसर नही रहता। आया भी क्षोभ तो आया और गया। उसे संस्कारमे बनाकर नही रख सकता।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयमें अपने मननकी रीति——मै परद्रव्यसे नही हू अर्थात् स्त्री पुत्रादिक जिन्हे मान रखा है वे परद्रव्य है और वे मै नही हू। यह शरीर भी मै नही हू। जिस शरीरमे आज हम बँधे पडे है वह शरीर भी मै नही हू। यह बात हमे "परद्रव्य से मैं नही हू" इस कथनसे सीखनेको मिलती है। मै परक्षेत्रसे नही हू। लोग जिससे प्रीति करते है वे अपने और परके क्षेत्रको भूल जाते है और पार्थक्य उनकी दृष्टिमे नही रहता। यद्यपि एकका दूसरे क्षेत्रमे मिलन नही होता। आज तक इतने देह पाये और एकक्षेत्रावगाही रहे, देहमे अणु अणुमे, आत्माके प्रति प्रदेशमे कोई न कोई अणु ये मौजूद रहे, एक क्षेत्रावगाह रहे, इतना घुलमिलकर रहने वाला देह तक मेरा न बन सका। देह पाये और छोडे। आज जो देह पाया वह भी छूट जायगा। तो एकका दूसरे क्षेत्रमे अवगाह नही, लेकिन मोहीजन अपने रागमोहके आवेशमे आकर इस तथ्यको भूल जाते है। परद्रव्य, क्षेत्रसे मै नही हूँ, इससे हमे बडी भिन्नताकी शिक्षा मिलती है। मेरा कही कुछ नही है। कल्पनासे मान लिया, मेरा यह घर है, वैभव है, मेरे ये लोग है, पर है कहाँ ? तू अपने क्षेत्रमे है, वे

सब अपने प्रदेशमे हैं। परकालसे मैं नही हू अर्थात् परपदार्थोंकी जो परिणतिया है उन परिणतियोसे मैं नही हू, परपरिणतियोसे मेरी परिणति नही। कोई बलवान पुरुष किसीका हाथ मरोड दे, हाथ मरुड गया और व्यवहारमे यही कहा जायेगा कि इस बलवान पुरुषने हाथ पकड़ कर मरोड दिया, लेकिन जब स्वतन्त्रताकी ओरसे देखते है तो बलवान पुरुषने जो कुछ किया, उसने अपने अगमे किया। अपने हाथकी अगुलियोसे बाहर उसकी कोई क्रिया नही चल सकी, किन्तु निमित्त सन्निधान इस ढगका था वह कि ऐसी क्रिया परिणत हाथका निमित्त पाकर सउ बीच पडे हुए दूसरे पुरुषका हाथ भी क्रियाशील हो गया, मरुड गया। तो जब स्वातन्त्र्यकी ओरसे देखते है तो यह विदित होता है कि प्रत्येक पदार्थ प्रत्येक परिस्थितियोमे अपनी परिणतिसे ही परिणमत्ता है, दूसरेकी परिणतिसे नही परिणमता। तो जब इस ढगसे देखा अपने आत्माको कि मैं परकालसे नही हू, तो इसमे बहुत बडा निर्णय कर लिया गया। अब इसको किसी परपदार्थके बिगाड सुधारकी किसी परिणति को देखकर क्षोभ नही आना चाहिए। मैं अपनी ही परिणतिसे परिणमता हू। दूसरेका मुझमे कुछ नही है। मैं दु खरूप परिणम रहा हू तो कोई मेरेमे ही गल्ती है जिससे कि मैं दु खी हो रहा हू। दूसरेकी गल्ती से मैं दु खी नही होता। मैं परभावसे नही हू, दूसरेकी शक्तिसे, दूसरेके भावसे मेरी सत्ता नही है। मैं अपने स्वभावसे हू, अपनी शक्तिसे, अपने ही गुणोसे हू, दूसरे से नही हू। जब यह दृष्टिमे आता है तो वहाँ भेदविज्ञानका स्पष्टरूप सामने आता है। तो परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयने भेदविज्ञानकी पुष्टि की। मैं परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नही हू।

परद्रव्यादिग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे प्राप्त शिक्षा और प्रेरणा—भेदकल्पनानिरपेक्ष शुद्ध द्रव्यार्थिकनयमे आये हुए पुरुषके जब भेद उत्पन्न होता है तो सर्वप्रथम स्वपरकाभेद हुआ और उस भेदके अवगमसे यह बात उसने शिक्षामे लिया मै अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे हू, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे मैं नही हू। देखिये इस जीवनमे वास्तविक काममे आने वाली चीज अपने आपके स्वरूपका परिचय है। बाकी तो सब अधकार है। जिस घरमे जो पैदा हो गया वह उसे ही अपना सर्वस्व समझता है, मगर इस भवसे पहिले यह सब इस का कुछ था क्या ? इस भवके बाद कुछ रहेगा क्या ? और यह भव भी कितने समयका है और इस भवमे भी हमे किसे क्या दिखाना है ? ये दिखने वाले लोग कोई सत्यकी मूर्ति हैं क्या ? मेरी ही तरह मायाकी मूर्ति है। यहाँ तथ्य कुछ नही है तो हो क्या रहा है ? असार मे असार बातकी लपेट लगाकर यह मैं स्वय असार बन रहा हू। तो यह सब अनित्यका झमेला है, यह भव भी अनित्य है, यह समागम भी अनित्य है। इसमे जो उपयोग बसाया

जा रहा है वह भी अनित्य है और इस अनित्यके फसावमे जो कुछ चाहा जा रहा है वह भी अनित्य है। तो यह सब मेल अनित्य अनित्यका हो रहा है। इसमे तथ्य और हितकी बात कुछ नही है। मैं समस्त परसे निराला हू और अपने आपमे हू—इस प्रकारकी दृष्टिसे हम कल्याणका उपाय पा सकते है।

अन्वयद्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—जब अन्वयकी मुख्यता करके द्रव्य दृष्टिसे देखा जा रहा हो, यह द्रव्य समस्त पर्यायोमे रहता है, समस्तपर्यायोमे अनुगत है, इस प्रकारके अन्वयकी मुख्यतासे जब द्रव्यनयसे परख की जा रही हो तब वहाँ आत्मा इस प्रकार विदित होता है कि यह अपनी गुणपर्यायोमे अन्वयरूपसे रहने वाला एक अद्वैत है। द्रव्य वही है, उसकी अनन्तपर्यायें तीत और भविष्यत् तथा वर्तमान। एक यो समस्तपर्यायोमे वही का वही द्रव्य है, दूसरा नही है। वह एक है, दूसरा नही है इस कारण अद्वैत है और समस्त पर्यायोमे अनुगत है, इस कारण अन्वयरूप है। इस दृष्टिमे आत्मतत्त्वकी विशालता जानी जा रही है अन्वय और स्वभावकी परख हो रही है। जब स्वभावरूपसे देखा जायेगा तभी अन्वय विदित होगा। सब अवस्थाओ मे वही जीव है जो चैतन्यस्वभाव वाला है, वही का वही है। यो इस अन्वय द्रव्यार्थिकनयमे सुगमतया स्वभावपर दृष्टि पहुचती है और स्वभाव की मुख्यतासे निरखने पर इस जीवका मोह राग द्वेष कष्ट दूर होता है और मोह राग द्वेषसे छुटकारा पा लेना ही इस जीवका कल्याण है।

उत्पादव्यय गौणसत्ताग्राहक द्रव्यार्थिकनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब. ऐसे द्रव्यार्थिकनयसे परख कीजिये कि जहाँ उत्पाद और व्ययकी अपेक्षा न रहे। वस्तुमे उत्पाद-व्यय ध्रौव्य ये तीनो समग्ररूपसे अश है, अर्थात् वस्तुमे जो उत्पादव्ययध्रौव्य धर्म है वह इस प्रकार नही है कि वस्तुके किसी हिस्सेमे उत्पाद हो, किसीमे व्यय और किसीमे ध्रौव्य हो, किन्तु वह पूराका ही पूरा पदार्थ उत्पादरूप है, व्ययरूप है और ध्रौव्यरूप है। उनमे से उत्पादव्ययको जब गौण कर दिया जाता है और ध्रौव्यकी मुख्यता रखकर सत्ताको ग्रहण किया जाता है अथवा उत्पादव्ययध्रौव्य–इन तीनोको ही गौण करके केवल सत्त्व को ही निरखा जा रहा है। यद्यपि सत्त्व उत्पाद व्यय-ध्रौव्यसे अलग नही है। कोई भी सत्त्व उत्पाद व्यय ध्रौव्यसे रहित नही होता, फिर भी दृष्टिमे ऐसी कला है कि जिस तत्त्वकी ओर यह दृष्टि मुडती है उस दृष्टिमे वही तत्त्व दिखता। भेदपरक और अभेदपरक दृष्टि बननेकी दृष्टिमे कला है। किसी भी पदार्थको हम भेदविश्लेषण करते हुए भी निरख सकते है और भेदविश्लेषण किए बिना भी निरख सकते है। जब केवल शुद्धद्रव्यको देखा, केवल सन्मात्रको

देखा, जहाँ उत्पाद व्ययमे गौणता हुई वहाँ यह आत्मा किस प्रकार विदित होता है ? सो देखिये। यह है उत्पादव्यय गौणसत्ताग्राहक द्रव्यार्थिकनय। इस नयमे आत्मा शाश्वत नित्य है, यो विदित होता है। आत्मा सदा काल रहता है और नित्य है। शाश्वत और नित्य—इन दो शब्दोमे मोटे रूपसे कोई अन्तर नही, लेकिन सूक्ष्मतासे देखा जाय तो यह अन्तर है कि नित्य शब्दमे परिणमनकी धुन छायी हुई है। नित्यका अर्थ है जो नित नित क्षणमे बना रहे, परिणमता रहे, उसका नाम नित्य है। जिसके परिणमनका कभी व्यय न हो उसे भी नित्य कहते है। बना रहे, चलता रहे, परिणमता रहे, इस धाराका कभी विच्छेद नही होता, इस आशयमे भी नित्य शब्दका प्रयोग होता है, पर शाश्वत् शब्द कहकर नित्यताका, परिणमनका, विकासका, विलासका कोई अभिप्राय नही रहता। तो यह आत्मा शाश्वत नित्य है। यहाँ जिस उत्पाद व्ययको गौण किया गया है इस नयमे उसकी भी धुन गौणरूप से रही। गौणका अर्थ अभाव नही होता। अगर अभाव कर दिया गया होता तो उसकी धुन लानेकी जरूरत न थी, किन्तु इस आशयमे उत्पाद व्ययको तो गौण किया है और सत्ताको मुख्य किया है। उसे ग्रहण करने वाले द्रव्यार्थिकनयमे यह आत्मा शाश्वत नित्य विदित होता है।

उत्पादव्ययगौणसत्ताग्राहक द्रव्यार्थिकनयके अवगमसे प्राप्त शिक्षा व प्रेरणा—मैं आत्मा शाश्वत नित्य हू, तब फिर मिले हुए समागमो लगाव रखने मे हित नही है। जैसे कोई मुसाफिर किसी रास्तेसे चला जा रहा है तो रास्तेमे अनेक वृक्ष मिलते हैं, उनकी छाया भी पडती जाती है, तो अनेक वृक्ष मिले, उन वृक्षोसे वह मुसाफिर लगाव नही रखता है, अगर लगाव रखे कि यह वृक्ष बडा सुन्दर है, इसको छोडकर तो मैं जाऊँगा ही नही, रह जाऊँ, तो फिर वह अपने निर्दिष्टस्थान पर नही पहुच सकता। तो जैसे रास्ते मे अनेक वृक्ष मिलते है तो उनका मिलना अध्रुव है, सदा नही है, आया और चला गया, इसी प्रकार इस जीवकी यात्रामे जितने भी जहाँ जो समागम मिलते है वे सब अध्रुव है, उनको पकड-कर जो रह गया, वह कल्याण नही पा सकता और उनका जो ज्ञाता रह करके बढता जाता है, ज्ञाता द्रष्टा रहता है कि यह भी देख लिया, यह भी देख लिया, वह अपने कल्याणका पात्र है। तो आत्माको शाश्वत नित्य तकनेसे मोह रागद्वेषवे छुटकारा पा लेनेका अवसर प्राप्त होता है।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब ऐसे द्रव्या-र्थिकनयसे आत्माको तकना है कि जहाँ देखा तो जायगा यही ससारी जीव, हम सब अपने

आपकी बात निरखेंगे, लेकिन कर्मउपाधिकी अपेक्षा न रखकर निरखेंगे। देखेंगे अपने आपको, मगर उपाधिके बिना स्वयं अपने आपमे जो अन्तस्तत्त्व है, जैसी शक्ति है, जैसी योग्यता है, जो हम बन सकते है देखेंगे उस रूपमे, तो ऐसे आशयमे हम आपका संसारी आत्मा किस प्रकार से नजर आता है, यह बात बताते है। संसारी आत्माको देखा जा रहा हे और देखा जा रहा है कर्मउपाधिके बिना। सो देखा तो अशुद्ध द्रव्यको, मगर कर्मउपाधिके बिना देखा, ऐसे आशयको कहते है कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय। इस नयमे निरपेक्षपर्यायकी मुख्यतासे देखा जा रहा है याने वर्तमानपर्यायको ग्रहण न करके हम भविष्यमे कर्मउपाधि के बिना जिस पर्यायमे रह सकते है उस पर्यायको दृष्टिमे रखकर देखा जा रहा है। यहाँ यह ध्यान रखना—पर्यायरूपमे पदार्थको देखनेका नाम है अशुद्ध द्रव्यका देखना। चाहे शुद्ध पर्यायमे देखा जाय उसका भी नाम अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। जहाँ पर्यायको जोडा वहाँ द्रव्य मे अशुद्धता आयी। अशुद्धताका अर्थ यहाँ मलिनता न करना, किन्तु दुसरेको जोड देना, इसका नाम भी अशुद्ध है। तो इस नयमे यो नजर आता है कि ससारी आत्मा सिद्ध समान शुद्ध आत्मा है। ससारी आत्मा, हम आपकी बात चल रही है और देखा जा रहा है भविष्यमे हो सकने वाली उस पर्यायको, जो कर्मोपाधिके बिना हो सकता है, तब यह दृष्टिगत हुआ कि यह सिद्ध समान शुद्ध आत्मा है। इस नयमे हमको यह शिक्षा मिलती है कि मैं ऐसा हो सकने योग्य हू। क्यो अपनी असावधानी करके अपनी बरबादी की जा रही है, एक उपयोग द्वारा अपनेको सभाल लेने भरकी बात है, अन्य किसी तत्त्वसे तो इसका प्रयोजन है नही। तो उस अवस्थामे एक ऐसी प्रेरणा जगती है कि मै क्यो बकरियोमे पडे हुए शेरकी तरह अपनेको कायर समझूँ? मुझमे तो ऐसी योग्यता है, यह प्रेरणा इस कर्मोपाधिनिरपेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे मिलती है।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब इस ही अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयको जब कर्मोपाधिकी अपेक्षासे तका जाय तो उस समय आत्माका परिचय किस प्रकार मिलता है, यह बात बताते है। यह आत्मा कर्मके निमित्तसे उत्पन्न होने वाले रागादिक भावो रूप है। यो चर्चा भी होती है, कहा भी है, सिद्धान्त भी है, ऐसा कह करके यह खोजना चाहिए कि यह किस नयसे कहा गया है? विवाद जब कभी हो जाता है तो वक्ता कह रहा है किसी नयसे और श्रोता किसी नयसे अर्थ लगा रहा है तो वहाँ विवाद हो जाता है। कभी कभी तो छलका प्रयोग होता है। छलप्रयोग उसे कहते है कि उलाहना देने वाला पुरुष भी समझता रहता है कि यह भाई इस दृष्टिसे यह कह रहे है, किन्तु

उसका विरोध बताकर उसको लज्जित करना मात्र प्रयोजन रह जाता है, इसे कहते है छलप्रयोग। जैसे कोई एक साधारण गरीब पुरुष किसी भी प्रकार थोडा बहुत कमाकर एक नया कम्बल खरीद लाया। उसे ओढकर वह कई आदमियोके बीच बैठ गया। उनमेसे कोई व्यक्ति बोल उठा कि यह देखो नवकम्बल वाला आया। उसका आशय था नये कम्बल वाले से, पर उसके विरोधमे कोई दूसरा व्यक्ति जानबूझकर भी गप्पमे बोल उठा कि कहाँ नौ कम्बल वाला आया ? उसके पास तो एक ही कम्बल है। तो यह है छलप्रयोग। तो आजकल आध्यात्मिक चर्चाओके प्रसगमे लोग छलप्रयोग भी कर सकते हैं और जानकारीसे भी विरुद्ध बोल सकते है। विवेक इसमे है कि जो कोई भी कुछ कहे उसके कथनमे नयको पकडना चाहिए कि यह किस दृष्टिसे कहा जा रहा है ? जब अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयको कर्मोपाधिसापेक्ष बताया जाता है उस समयमे आत्माका परिचय यो होता है कि यह आत्मा कर्मके निमित्तसे होने वाले रागादिकभावरूप है।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके अवगमसे प्राप्त शिक्षा व प्रेरणा— यह आत्मा कर्मविपाकनिमित्तसे उत्पन्न होने वाले रागादिकभावोरूप है। इसमे कितने ही सिद्धान्त आये हैं तथा हितकारी शिक्षा प्राप्त होती है। आत्मा रागादिकभावोरूप परिणम रहा है। यहाँ डबल अशुद्धताकी बात कही जा रही है। पर्यायको द्रव्यमे जोडना पहिली अशुद्धता तो यही है। द्रव्यको द्रव्यरूपमे उपस्थित करनेका नाम शुद्धता है और उसे पर्यायके साथ जोडकर बतानेका नाम अशुद्धता है, फिर मलिन पर्यायको ही जोडा जा रहा है, इसलिए यह प्रकट अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है। और इसमे कर्मोपाधिकी अपेक्षाकी बात बतायी जा रही है। इस नयमे हमको यह बात शिक्षामे मिलती है कि हम रागादिकभावोरूप परिणमन तो रहे है, लेकिन यह परिणमन कर्मोदयका निमि[illegible]कर हो रहा है। आत्माके स्वरूपमे, स्वभावमे, शीलमे विभावरूप परिणमनकी बात न[illegible] है। जब अपने आपकी भीतरी असलियत का पता पडता है तब एक ऐसी ठस[illegible] कि जिसके बलपर अशुद्धताके वातावरणको यह खत्म क[illegible] है। जै[illegible] पड जाय कि मेरे मकानमे इस कमरेमे धनका ह[illegible] है, [illegible] उसका उपयोग भी नही हो पा रहा है, [illegible] यह [illegible] ती है और उसके व्यवहारमे प्रसन्नता [illegible] है कि भले ही मैं रागद्वेष वाला [illegible] निमित्त पाकर हो रहा है, [illegible] यथा-

शीघ्र कर्मोंका क्षय भी कर लेगा।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार— अब एक ऐसे अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी चर्चा कर रहे है, जिसके सम्बन्धमे समयसारमे बताया है कि इस जीवको हम इतना भी अशुद्ध न तके कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसे इस अखण्ड आत्मासे ज्ञानादिकका भेद भी न करे। अगर तकते है तो वह भी एक अशुद्धता कहलायेगी। याने बधके कारणसे जीवमे जो अशुद्धता कही गई है, वह तो कही ही गई है, उसकी बात तो दूर रही, वह तो स्पष्ट अशुद्धता है, लेकिन आत्माके सम्बन्धमे इतना भी निरखना कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसा निरखने वाले ने भी जीवको अशुद्ध वर्णित कर डाला। यहाँ शुद्धका अर्थ है, केवल शुद्धताके मायने कैवल्य। अभेदरूपमे निरखनेका नाम शुद्ध है। तो जब इस ही आत्मद्रव्यको उसके ही अनुरूप भेदकल्पनाये करके निरखा जाता है तो वहाँ विदित होता है कि यह आत्मा ज्ञान, शक्ति, दर्शन, आनन्द, चारित्र आदिक अनेक गुण-वाला है। जैसे किसी बडी सगीत सभामे बडे अच्छे ढगसे सगीत चल रहा हो और उस ही बीचमे कोई उस लयसे बाहर (प्रतिकूल) एक भी ताली बजा दे तो उस सगीतज्ञको बडी ठेस पहुंचती है, इसी प्रकार समझिये कि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यको देखनेके प्रसगसे, उसकी वह शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि, उसका नय यह सब कुछ चल रहा था, ठीक चल रहा था, उस ही बीचमे यदि कोई इतनी भी अशुद्धताकी बात कहे कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, तो वह उस कैवल्यदृष्टिसे ओझल हो गया, जहाँ केवल एक अभेदको ही लखा जा रहा था। तो अब यह अशुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि हो गयी और इसमे भेदकल्पनाकी अपेक्षा रखी गई। तो भेद-कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा कैसा है ? ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक अनन्त गुण वाला है।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे प्राप्त कर्तव्यशिक्षा—भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयने हमारी एक यह आँख खोली कि अरे भाई ! तुम अपने आपमे सहज स्वय स्वरूपको निरखना चाहते हो तो उसमे भेदकल्पना भी मत करो। भेदकल्पना तो एक उपाय है, पहिली सीढियाँ है, स्वरूप नही है। आत्मस्वरूप कैसा है ? उसमे यह भेद नही पडा है कि इसमे ज्ञान भी है, आनन्द भी है। उनका अशरूप आत्मा नही है। वह तो एक अखण्ड अभेद निर्विकल्प है। उसके समझानेके लिए यह सब भेद डाला गया है। तो इस नयसे हमको यह प्रेरणा मिलती है कि हम अतस्तत्त्वको भेदकल्पनानिरपेक्ष पद्धतिसे देखेंगे तो हम आत्मानुभूतिके अत्यन्त निकट पहुंचे हुए है और भेदकल्पनासे अगर देखते है तो अभी

उसका विरोध बताकर उसको लज्जित करना मात्र प्रयोजन रह जाता है, इसे कहते है छलप्रयोग । जैसे कोई एक साधारण गरीब पुरुष किसी भी प्रकार थोडा बहुत कमाकर एक नया कम्वल खरीद लाया । उसे ओढकर वह कई आदमियोके वीच बैठ गया । उनमेसे कोई व्यक्ति बोल उठा कि यह देखो नवकम्बल वाला आया । उसका आशय था नये कम्बल वाले से, पर उसके विरोधमे कोई दूसरा व्यक्ति जानबूझकर भी गप्पमे बोल उठा कि कहाँ नौ कम्वल वाला आया ? उसके पास तो एक ही कम्बल हे । तो यह है छलप्रयोग । तो आज-कल आध्यात्मिक चर्चाओके प्रसगमे लोग छलप्रयोग भी कर सकते है और जानकारीसे भी विरुद्ध बोल सकते है । विवेक इसमे है कि जो कोई भी कुछ कहे उसके कथनमे नयको पकडना चाहिए कि यह किस दृष्टिसे कहा जा रहा है ? जब अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयको कर्मोपाधि-सापेक्ष बताया जाता है उस समयमे आत्माका परिचय यो होता है कि यह आत्मा कर्मके निमित्तसे होने वाले रागादिकभावरूप है ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयके अवगमसे प्राप्त शिक्षा व प्रेरणा— यह आत्मा कर्मविपाकनिमित्तसे उत्पन्न होने वाले रागादिकभावोरूप हैं । इसमे कितने ही सिद्धान्त आये है तथा हितकारी शिक्षा प्राप्त होती है । आत्मा रागादिकभावोरूप परिणाम रहा है । यहाँ डवल अशुद्धताकी बात कही जा रही है । पर्यायको द्रव्यमे जोडना पहिली अशुद्धता तो यही है । द्रव्यको द्रव्यरूपमे उपस्थित करनेका नाम शुद्धता है और उसे पर्यायके साथ जोडकर वतानेका नाम अशुद्धता है, फिर मलिन पर्यायको ही जोडा जा रहा है, इसलिए यह प्रकट अशुद्ध द्रव्यार्थिकनय है । और इसमे कर्मोपाधिकी अपेक्षाकी बात बतायी जा रही है । इस नयमे हमको यह बात शिक्षामे मिलती हैं कि हम रागादिकभावोरूप परिणमन तो रहे हैं, लेकिन यह परिणमन कर्मोदयका निमित्त पाकर हो रहा है । आत्माके स्वरूपमे, स्वभावमे, शीलमे विभावरूप परिणमनकी बात नही पडी हुई है । जब अपने आपकी भीतरी असलियत का पता पडता है तब एक ऐसी ठसक उत्पन्न होती है कि जिसके बलपर अशुद्धताके वाता-वरणको यह खत्म कर सकता है । जैसे किसी पुरुषको यह पता पड जाय कि मेरे मकानमे इस कमरेमे धनका हडा गडा हुआ है, तो वह यद्यपि अभी गडा ही है, उसका उपयोग भी नही हो पा रहा है, लेकिन भावमे यह बात आ जानेसे उसकी उसे ठसक होती है और उसके व्यवहारमे प्रसन्नता भी रहती है । तो ऐसे ही जब जीवको यह विदित हो जाता है कि भले ही मैं रागद्वेष वाला हो रहा हू लेकिन ऐसा होना मेरेमे शील नही है । यह कर्मोका निमित्त पाकर हो रहा है, तो उसे भीतरमे एक ऐसा वल प्राप्त होता है कि जिस वलपर वह यथा-

शीघ्र कर्मोका क्षय भी कर लेगा।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार--अब एक ऐसे अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयकी चर्चा कर रहे है, जिसके सम्बन्धमे समयसारमे बताया है कि इस जीवको हम इतना भी अशुद्ध न तके कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसे इस अखण्ड आत्मामे ज्ञानादिकका भेद भी न करे। अगर तकते है तो वह भी एक अशुद्धता कहलायेगी। याने बधके कारणसे जीवमे जो अशुद्धता कही गई है, वह तो कही ही गई है, उसकी बात तो दूर रही, वह तो स्पष्ट अशुद्धता है, लेकिन आत्माके सम्बन्धमे इतना भी निरखना कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, ऐसा निरखने वाले ने भी जीवको अशुद्ध वर्णित कर डाला। यहाँ शुद्धका अर्थ है, केवल शुद्धताके मायने कैवल्य। अभेदरूपमे निरखनेका नाम शुद्ध है। तो जब इस ही आत्मद्रव्यको उसके ही अनुरूप भेदकल्पनाये करके निरखा जाता है तो वहाँ विदित होता है कि यह आत्मा ज्ञान, शक्ति, दर्शन, आनन्द, चारित्र आदिक अनेक गुण-वाला है। जैसे किसी बडी सगीत सभामे बडे अच्छे ढगसे सगीत चल रहा हो और उस ही बीचमे कोई उस लयसे बाहर (प्रतिकूल) एक भी ताली बजा दे तो उस संगीतज्ञको बडी ठेस पहुंचती है, इसी प्रकार समझिये कि निरपेक्ष शुद्ध द्रव्यको देखनेके प्रसगसे, उसकी वह शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि, उसका नय यह सब कुछ चल रहा था, ठीक चल रहा था, उस ही बीचमे यदि कोई इतनी भी अशुद्धताकी बात कहे कि इसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, तो वह उस कैवल्यदृष्टिसे ओझल हो गया, जहाँ केवल एक अभेदको ही लखा जा रहा था। तो अब यह अशुद्ध द्रव्यार्थिक दृष्टि हो गयी और इसमे भेदकल्पनाकी अपेक्षा रखी गई। तो भेद-कल्पना सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे आत्मा कैसा है ? ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक अनन्त गुण वाला है।

भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्ध द्रव्यार्थिकनयसे प्राप्त कर्तव्यशिक्षा--भेदकल्पनासापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयने हमारी एक यह आँख खोली कि अरे भाई ! तुम अपने आपमे सहज स्वय स्वरूपको निरखना चाहते हो तो उसमे भेदकल्पना भी मत करो। भेदकल्पना तो एक उपाय है, पहिली सीढियाँ है, स्वरूप नही है। आत्मस्वरूप कैसा है ? उसमे यह भेद नही पडा है कि इसमे ज्ञान भी है, आनन्द भी है। उनका अशरूप आत्मा नही है। वह तो एक अखण्ड अभेद निर्विकल्प है। उसके समझानेके लिए यह सब भेद डाला गया है। तो इस नयसे हमको यह प्रेरणा मिलती है कि हम अंतस्तत्त्वको भेदकल्पनानिरपेक्ष पद्धतिसे देखेंगे तो हम आत्मानुभूतिके अत्यन्त निकट पहुंचे हुए है और भेदकल्पनासे अगर देखते है तो अभी

कुछ अन्तरमे है। हम कुछ परम्पराके निकट पहुंचे हुए हैं। भेदव्यवहार एक उपाय है वस्तुके जाननेका, परतस्तुके अनुभवनेका, उसका कुछ स्वाद लेनेका उपाय भेदकल्पना नहीं है, किन्तु अभेदपद्धतिमे उसका परिज्ञान करना है। इस प्रसगमे समयसारमे दो गाथायें आयी हैं। पहिली गाथामे तो यह वताया है कि शुद्ध आत्मा कैसा है ? वह ज्ञानमात्र है, प्रमत्त नही है, जो जाना गया वही मात्र है। तव एक जिज्ञासा यह हुई—तो क्या उसमे ज्ञान, दर्शन, चारित्र नही है ? क्या वह ज्ञानदर्शन चारित्रवान होनेसे अशुद्ध नही है ? तो उत्तरमे यह कहा गया कि यह सव व्यवहारसे ही उपदेश किया जाता है कि आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, किन्तु परमार्थत न ज्ञान है, न दर्शन है, न चारित्र है, किन्तु वह तो जैसा चैतन्यस्वरूप है वही मात्र है। यहाँ यह इस कर्तव्यकी शिक्षा लेनी चाहिये कि भेदकल्पना-सापेक्ष अशुद्ध द्रव्यसे भी हटकर निरपेक्ष केवल एक शुद्धस्वभाव की निरखमे आना चाहिए।

उत्पादव्ययसापेक्ष द्रव्यार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—पदार्थोके सम्वधमे यह धर्म विदित हो रहा है कि प्रत्येक पदार्थ प्रति समय किसी अवस्थासे उत्पन्न होता है और किसी अवस्थाके रूपसे नष्ट होता है और यह उत्पाद व्यय पदार्थोमे निरन्तर चलता रहता है। अभी स्थूल उत्पादव्ययके भेद स्पष्ट समझमे आते है। कभी सूक्ष्मरूपमे उत्पादव्ययकी वात कुछ देरमे समझमे आती है, लेकिन युक्तिसे यह सिद्ध है कि प्रति समय यदि उत्पाद व्यय नही है तो एक मिनटमे भी नही, वर्षोमे भी न हो सकेगा। वस्तुमे उत्पाद व्यय निरन्तर चलता रहता है, जब और सूक्ष्मदृष्टिसे देखते है तो अगुरुलघुत्व गुणके निमित्तसे जो षड्गुण हानिवृद्धि होती है उस रूपमे तो उत्पाद व्यय सहज ही है। तो यो प्रत्येक पदार्थ प्रति समय उत्पन्न होता है और नष्ट होता है। आत्माके सम्वधमे भी यही वात स्पष्ट है कि कभी किसी भावरूपमे आया और पुराना भाव इसका नष्ट हो गया। क्रोध कषायमे आया तो उसकी पहिली कषाय विलीन हो गयी। अव क्रोध कषायके वाद मानमे आया अथवा माया लोभमे आया तो नवीन कषायरूपमे उत्पाद हो गया और पहिली कषायके रूपमे व्यय हो गया। यो उत्पादव्यय आत्मामे भी निरन्तर चलता है। जब व्यञ्जनपर्यायके रूपसे देखते हैं तो आज यह मनुष्य है और मनुष्यभवके बाद देवपर्यायमे जायेगा तो देवपर्यायका उत्पाद होगा और मनुष्यपर्यायका व्यय होगा। यो आकारमे वे उत्पाद व्यय दोनो निरन्तर चलते रहते है। यह तो हुई एक स्थूलरूपसे आकारभेदकी बात, पर एक ही भवमे शरीरमे कभी कमी होती है, कभी बेशी होती है। बच्चेका देह छोटा है, जवानका देह (उसी पुरुषका) वडा है। तो जब जिस देहमें जितने प्रमाणमे था उस समय आकार उस प्रमाण मे था।

अब बडा हो गया तो देहप्रमाण आत्माका आकार हो गया। यह भी एक मोटसी बात है, पर आत्माका, अणुओका देह प्रवेश और निर्गमन होते रहनेके कारण प्रतिसमय कुछ न कुछ न्यूनता, अधिकता होती रहती है। वहाँ आत्माका आकार भी बदलता रहता है। तो यो हर एक दृष्टिमे पदार्थोंमे परिणमन प्रतिसमय होता है। आत्मामे भी उत्पाद व्यय निरन्तर चलता है, ऐसा कहा भी है, सिद्धान्त भी है कि आत्मा प्रतिसमय उत्पाद व्यय वाला है और जब उत्पाद व्यय है तो साथमे ध्रौव्य भी लगा हुआ है। आत्मा प्रतिसमय उत्पादव्यय ध्रौव्य वाला है, यह प्रक्रिया निरन्तर बनी रहती है। इस प्रकारसे आत्माका जो परिचय होता है वह परिचय है उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्धद्रव्यार्थिकनयकी दृष्टिमे। द्रव्यको देखा मगर पर्यायसे भिडाकर देखा अतएव वह अशुद्धद्रव्यका वर्णन कहलाता है और यह अशुद्धता निरखी गई उत्पाद व्यय ध्रौव्य अशोको कहकर अतएव उत्पाद व्यय ध्रौवय वाला आत्मा है। इस प्रकारका कथन उत्पादव्ययसापेक्ष अशुद्धद्रव्या थिकनयमे होता है।

अनादिनित्य पर्यायार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार——इस प्रसगमे अब तक द्रव्यार्थिकनयके १० प्रकारोमे आत्माका परिचय कराया गया, अब पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे आत्माका परिचय कराते है। इस पद्धतिमे पर्यायार्थिकनयके ६ भेद है, जिनमे प्रथम भेद है अनादि नित्यपर्यायार्थिकनय। वस्तुको पर्यायदृष्टिसे देखा और ऐसी पर्यायको देखा कि जो अनादिकालसे चली आ रही है और सदैव चलती रहेगी। यद्यपि ऐसी कोई पर्याय नही होती कि जो कई समयोमे वही बनी रहे, फिर भी यदि किसी पर्यायकी धारा अनादिसे अनन्तकाल तक चलती है तो जिस प्रकारका परिणमन अनादि अनन्त तक चलता रहता है, उस जाति का उल्लघन नही करते है तो उस पर्यायको अनादिअनन्तपर्याय कह सकते है। जैसे आत्माके विषयमे सोचना कि अभव्य आत्मा और दूरातिदूर भव्य आत्माके मिथ्यात्व आदिक पर्याये नित्य है। अभव्य जीव है, उसके मिथ्यात्व पर्याय अनादिकालसे चली आ रही है। विशिष्ट विशिष्ट परिणमनकी दृष्टिसे तो प्रतिसमय मिथ्यात्वमिथ्यात्व पर्याय बन रही है। और जो पूर्वसमयकी मिथ्यात्वपर्याय है वह उत्तर समयकी नही है, फिर भी मिथ्यात्व तो मिथ्यात्व ही है। जितना उसके मोहभाव चला अनादिसे अनन्त काल तक तो मोहका जो स्वरूप है उसका उल्लघन करके नही चला। यो वह मिथ्यात्वपर्याय अनादि अनन्त है। जिसका निष्कर्षरूपमे यह अर्थ है कि अभव्य जीव अनादिकालसे मिथ्यादृष्टि है और अनन्तकाल तक मिथ्यादृष्टि रहेगा। उसकी मिथ्यात्वपर्याय कभी भी विलीन न होगी। मिथ्यात्वपर्याय मिटकर सम्यक्त्वपर्याय आये, ऐसा कभी भी अभव्य जीवके न हो सकेगा। यह उसका निष्कर्षरूप

अर्थ है ।

अभव्यकी भांति दूरातिदूरभव्यके मिथ्यात्वपर्यायकी भी अनादिता व अनन्तता— अनादि अनन्त मिथ्यात्वपर्याय दूरातिदूरभव्यकी भी है । जैसे मोटे रूपमे कल्पना कीजिए कि भव्यजीव ससारसे मुक्त हो रहा है तो क्या कभी ऐसा भी समय आयगा कि जिस समय कोई जीव मुक्त रहनेके लिए न रहे, अर्थात् सभी भव्य मुक्त हो जाये, अव कोई भव्य ऐसा नही रहा जो ससारमें रहे ? ऐसी स्थिति ससारमे न आयगी । कैसे न आयगी ? उसका प्रथम प्रमाण तो यह है कि आज भी यह स्थिति नही है । अवसे अतीतकालमे अनन्तकाल व्यतीत हो गया, ऐसा ही अनन्तकाल व्यतीत होगा तो अव तक अनन्तकालमे स्थिति नही आयी कि ससारमे कोई भव्यजीव न रहे, सव मुक्त हो चुके । जव यह स्थिति अव तक नही आयी तो आगे भी न आयगी, इस सम्बन्धमे एक दृष्टि और देनी है कि भव्यजीवोकी सख्या सिद्ध-जीवोसे अनन्तगुणी है । और अभव्योकी सख्या सिद्धोसे अनन्तवेभाग है, तो अभव्यसे कितने ही अनन्तगुणे भव्यजीव है । ये भव्यजीव अनन्तानन्त निगोदराशिमे पडे है । वहाँसे ये निक-लते है, व्यवहाररूपमे आते हैं और जैसा सुयोग मिल पाता है वे मुक्त हो जाते हैं । तो ऐसे भव्यजीवोके मुक्त होनेकी धारा रहनेपर भी सदैव अनन्तजीव ससारमे संसारी भव्य पाये जायेगे । तो उनमे जो दूरातिदूरभव्य है अर्थात् प्रकृतिस्वभावमे तो भव्य हैं पर कभी भी उन्हे रत्नत्रयकी प्राप्ति न होगी, ऐसे दूरानदूरभव्यकी मिथ्यात्वपर्याय भी अनादि अनन्त है । तो यो अभव्यजीवोकी व दूरातिदूरभव्यकी मिथ्यात्वपर्याय अनादि अनन्त है, यो निरखना अनादि नित्यपर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे होता है ।

सादिनित्य पर्यायार्थिकनयमें आत्मरिचयका प्रकार—अब आत्माको उस पर्यायमे निरखना कि जिसकी आदि तो हैपर अन्त नही है । जो अनन्तकाल तक रहेगा उस पर्यायको निरखना, यो आत्माका निरखना सादिनित्यपर्यायार्थिकनयसे कहलायेगा । जो पर्याय ऐसी है कि हुई है, आदि है, किसी समय हुई, मगर सदैव रहेगी, कभी भी वह पर्याय न मिटेगी । जैसे आत्माकी शुद्धपर्याय सादि नित्य है, प्रत्येक आत्मा चाहे वे अबसे अनन्तकाल पहिले सिद्ध हो गए हो वे भी पहिले ससारी थे और जब ससारी थे तो कर्मक्षयसे ही वे मुक्त हो सके, यो मोक्ष सादि हो गया । यह सादिकी बात एक ऐसे रहस्यको लिए है कि अनेक दार्शनिकोकी समझमे नही आती, सो उनकी कल्पनामे यह आया कि आखिर ससार कभी तो बना होगा । अब इतने बडे ससारको बनाने वाला कौन हो सकता है ? तो आखिर यह कल्पतामे आया कि कोई एक अलौकिक शक्ति है जो हम लोगोमे नही पायी जाती है । बस उस अलौकिक

शक्तिको एक महत्त्व का रूप दिया, प्रभुताका रूप दिया, और यह बात प्रसिद्ध हो गई कि किसी एक ईश्वरने इस ससारको रचा है। ये सब बाते वस्तुकी अनादिताके विदित न होनेसे घटित हुई है। वे इस वस्तुस्वरूपको भूल गये कि असत्का उत्पाद होता ही नही है।

सिद्धपर्यायकी सादिता—अनादि है ससार और मोक्ष भी अनादि है, लेकिन ससार और मोक्षमें युक्ति बताती है कि कमसे कम ८-९ वर्षका अन्तर तो होना ही चाहिए। कोई भी जीव मोक्ष जायेगा तो मनुष्यभवसे जायगा और मनुष्यपर्याय पाकर भी जल्दीसे जल्दी मुक्त होता तो ८ वर्षसे पहिले मुक्त नही हो सकता। ८ वषकी आयुका बालक भी सिद्ध भगवान बन सकता है। इससे पहिले नही, और इससे पहिले तो सम्यक्त्वकी भी उत्पत्ति नही हो सकती। तो युक्ति बताती है कि मोक्षसे ससार ८ वर्ष बाद होना चाहिए, लेकिन अब पुन दृष्टिपात कीजिए कि ऐसा वह कौनसा समय था कि जिस समयसे पहिले संसार ८ वर्षोंसे अधिक रहा, तब मोक्षका साथ न रहा। केवल ससार ही ससार था। ऐसा कोई समय मुकर्रर कैसे करेगा ? अनादिमे आदिकी बात क्या कही जा सकती है ? ससारी जीव ही मोक्ष जा रहे हैं, फिर भी ससार भी अनादि है और मोक्ष भी अनादि है, लेकिन कर्मक्षय-पूर्वक ही मुक्ति होती है। इस कारण किसी एक विशिष्ट व्यक्तिगत जीवके बारेमे सोचा जाय तो उन सिद्ध जीवोका सिद्धपर्याय सादि है। जब अष्टकर्मोंका क्षय हुआ तब उनके सिद्धपर्याय प्रकट हुई। सिद्धपर्यय होनेके बाद यह सिद्धपर्याय कब तक रहेगी ? इसका कभी अन्त नही है, अनन्तकाल तक रहेगी। यह बात कही जा रही है स्थूल पर्यायदृष्टिसे। सूक्ष्मदृष्टिसे तो स्वभावपरिणमन होने पर भी यहाँ भी सिद्धपर्याय विशुद्ध होने पर भी प्रति समयमे नवीन नवीन परिणमन ही होता रहता है। वह सब सदृश परिणमन है। इस वजहसे वहाँ भेद जाहिर नही होता और इस कारण लगता है कि यह शुद्धपर्याय अनन्तकाल तक वही की वही है। तो स्थूलपर्यायदृष्टिसे शुद्धपर्यायधारा अनादि है, अनन्त है। शुद्धपर्यायकी धारा कभी न मिटेगी।

मोक्षकी अनन्तता—किसी जीवका अभिमत है कि यह जीव कर्मोंके क्षयसे मुक्त हो जाता है, पर मुक्त बने रहने की बहुत अवधि होने पर भी आखिर उसकी है तो अवधि। अनेक कल्पकाल व्यतीत हो जाने के बाद कोई सदाशिव नामका एक सदामुक्त ईश्वर है। उसका भाव हुआ कि वे मुक्त पर्यायसे हट जाते है और उन्हे ससारमे आना पडता है, लेकिन वस्तुस्वरूपकी दृष्टिसे सोचा जाय तो यह बात सत्य नही विदित होती। जीव संसारी होता किस प्रकार है ? उसके रागद्वेष, कषाये, जन्म, मरण ये सभी बाते चलें उसीका नाम तो

संसार है। तो यह ससारपरिणमन मलिनपरिणामोके कारण होता है और मलिन परिणाम होते है नैमित्तिक। यदि मलिनता जीवका नैमित्तिक परिणमन न हो तो वह स्वभाव परिणमन हो बैठेगा और फिर आत्माका कोई स्वभाव शाश्वत न कहलायेगा, यो आत्मवस्तु भी न रहेगा। सो समझिये कि रागादिक भाव ये कर्मके उदयका निमित्त पाकर हुए है। जिस जीवके समस्त कर्मोका सम्बन्ध सम्पूर्णतया मूलत क्षय हो चुका, अब वहाँ कौनसी गुञ्जाइस रही कि वह मलिन बन जाय और ससारमे रुलने लगे ? आत्मा शुद्ध होकर फिर अशुद्ध नही होता, क्योकि अशुद्धताका वहाँ कोई कारण नही। पुद्गलमे तो यह बात देखी जाती है कि पुद्गल परमाणु शुद्ध होकर भी अशुद्ध हो जाते है। एक बार अणु-अणु रह गया, एकप्रदेशी रह गया, फिर भी वह थोडे समय बाद स्कधरूपमे आ सकता है। क्यो आ सकता है ? क्यो आ जाता कि अणु और अणुओका बधन, उनके स्निग्त्व रूक्षत्व गुणके कारण होता है। उन स्निग्धत्व रूक्षत्व गुणोमे डिग्रियोका घटते बढते जाना उसके स्वभावमे पडा है। तो योग मिलता है कि अणु अशुद्ध बन जायेगे, लेकिन आत्मामे ऐसा योग कभी नही आ सकता कि आत्मा शुद्ध होकर फिर वहाँ अशुद्धताका कारण बन जाय, क्योकि जीवकी अशुद्धताके कारणमे निमित्त होता है पुद्गलकर्मका उदय। सो कर्मक्षय हो चुका है फिर कभी कर्म इस जीवके निकट इसमे बँध जाय। उसका कारण भी नही है, क्योकि कर्मबन्धका कारण है मलिन परिणति। सो मलिन परिणतिका भी क्षय हो चुका है, इस कारण सिद्ध भगवान् सिद्धपर्यायमे अनन्तकाल तक रहते है, तो ऐसे पर्यायको मुख्य करके निरखना, जो पर्याय सादि नित्य हैं, पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे निरखना कहा जाता है। सादि नित्य पर्यायार्थिकनयकी दृष्टिमे सिद्धपर्याय सादि नित्य है।

सादि नित्यपर्यायार्थिकनयके अवगममें प्राप्त प्रेरणा—हम आप सब जीव किस अवस्थामे आयें कि सदाके लिए कल्याण हुआ समझिये ? प्रत्येक मनुष्य अपने-अपने भावके अनुसार अपना भारी प्रोग्राम बनाये रखता है। मुझे ऐसा होना चाहिए। मैं इतना धनी बन जाऊँ, इतने वैभव वाला हो जाऊँ, ऐसी इज्जत वाला बन जाऊँ, इतना हो जाने पर मेरे जीवनका लक्ष्य पूरा होगा, यो अनेक लोग अपने-अपने भावोके अनुसार अपना प्रोग्राम रखते है, लेकिन ये सारे लौकिक प्रोग्राम मिथ्या हैं। करोडपति भी बन जाय तो उससे इस जीवको मिला क्या ? उससे उसका जन्ममरण छूट जायेगा क्या ? कीडा मकौडा बनना छूट जायेगा क्या ? दु ख, आकुलता मिट जायेगी क्या ? यह सब कुछ नही हो सकता। लोकमे इज्जत बढ जाय, इज्जतके मायने क्या कि अज्ञानी स्वार्थीजन कुछ प्रशसा कर दें, उसे इज्जत कहते

है, तो ऐसी इज्जत बढानेमे भी इस जीवको बहुत मेहनत करनी पडेगी। सबकी सेवा, सबका दिल रखना, अनेक प्रकारके श्रम करके भी मानलो यह मिथ्या इज्जत बढा भी ली, तो उससे इस आत्माको लाभ क्या होगा? क्या शान्ति पा लेगा, क्या आकुलताये दूर हो जायेंगी? क्या जन्म मरण मिट जायेगा? तो यहाँ किन्ही भी प्रोग्रामोमे कोई लाभ नही है। प्रोग्राम यह बनाना चाहिए कि मुझे तो सिद्ध बनना है। हमे तो यही एक सर्वोत्कृष्ट बात चाहिए। ऐसी मनमे रुचि जगे, श्रद्धा बन जाय तो उस जीवको यह पर्याय प्रकट हो जायेगी, वह भव्य सदाके लिए सकटोसे छुटकारा पा लेगा। यदि ऐसी अवस्था है तो यही है सिद्ध पर्याय। प्रकट होगी ना, इस कारण तो सादि है और सदा रहेगी यह पर्याय, इस कारण नित्य है। तो सादि नित्यपर्यायार्थिकनयकी दृष्टिसे इसकी ओर जाने तथा जानने की जो हम को प्रेरणा मिलती है कि हमको ऐसी पर्याय चाहिए जो आगे कभी भी मिट न सके और कल्याणमय हो।

सत्तागौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्य शुद्धपर्यायार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार— अब ऐसे पर्यायार्थिकनयसे आत्माका परिचय कराया जायगा जो शुद्धपर्यायके रूपमे है। जहाँ किसी विशिष्ट-विशिष्ट परिणतिको लेकर न कहना, लेकिन वे सिद्धपर्याये अनित्य है और दृष्टिगत इन पर्यायोसे भी बहुत अधिक अनित्य क्षणिक है जिन पर्यायोको हम व्यवहारमे पाते है, ऐसी अनित्यता, ऐसी शुद्धपर्यायकी दृष्टि उत्पाद व्ययको ग्रहण करने वाली होगी। जैसे यह कहना कि आत्माकी परिणतियाँ प्रतिसमय नष्ट होती है और उत्पन्न होती है। द्रव्यका स्वरूप ही ऐसा है कि वह प्रतिक्षण नवीन पर्यायोको पाता रहे। तो ऐसी पर्याये इतनी सूक्ष्म है कि जो वचनोसे अगोचर है, ग्रहणमे नही आती, जिसे कह सकते है कि प्रतिसमय षड्गुणहानिवृद्धिरूपसे यह जीव परिणमता रहता है। तो वहॉ उत्पाद व्यय दृष्टिमे आ रहा है। यह ध्रुव है, नित्य है, यह बात यहाँ गौण कर दी गई और जो कुछ वहॉ प्रकट होता है उसकी यहॉ मुख्यता ली गई है। ऐसी दृष्टिको कहते हैं सत्ता-गौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनय। सत्ताको गौण कर दिया गया है, जहॉ ध्रौव्यकी बात गौण कर दी गई है, केवल उत्पादव्ययको उपयोगमे ग्रहण किया गया है, तब ही तो इस दृष्टिमे प्रतिसमय नवीन-नवीनरूपसे परिणमता रहता है, यह बात विदित होती है। तो यो सत्ताको गौण करके उत्पादव्ययको ग्रहण करने वाले और ऐसे उत्पादव्यय को जो प्रतिसमय होता है, ऐसी दृष्टिको सत्तागौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्यशुद्धपर्यायार्थिक नय कहते है। इस नयसे हम अपने हितमे क्या जाने कि आत्मामे प्रतिसमय नवीन-नवीन

परिणमन होता है। वह परिणमन अपनी जातिका उल्लघन करके नही होता। वह सब चैतन्यस्वरूपसे ही धारा-प्रवाह चलता रहता है, लेकिन व्यतिरेक उन सबमे पाया जाता है। जो पूर्वपर्याय है वह उत्तरपर्याय नही, तो पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायमे भेद है। एक मोटी बात यह भी समझ सकते है कि यदि पूर्वपर्याय और उत्तरपर्यायमे भेद न हो, उतने ही सदृश परिणमन हो, और उसमे भेद न हो तो समय अप्रमेय हो जायगा। समयका गुजरना बन्द हो जायगा। समयका प्रयोजन क्या ? समय गुजर रहा है, यह आप कैसे जान रहे हैं पदार्थोके परिणमससे। सूर्यका उदय हुआ, अस्त हुआ, बस जान गए कि दिन हुआ। घडी चलती है, सूईका गमन हुआ तो जान गए कि इतने मिनट हो गए। जहाँ सूई भी नही है, घडी भी नही है, तो वह जानता रहता है कि इतना चले फिरे तो इसमे इतना समय गुजर गया। अब नवीनपरिणमन माना न जाय तो समय नाम काहेका रहा ? अथवा सूक्ष्मदृष्टि से देखा जाय तो नवीनसमय नवीनशक्ति का परिणमन हुआ है, वह नवीन ही परिणमन है। तो प्रतिसमय उत्पादव्यय वाला आत्मा है, यह नजर आया। यह हुआ सत्तागौण उत्पादव्ययग्राहक अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनय।

कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार— अब संसार अवस्थामे रहते हुए भी हम आप सब आत्माओकी परिणति मूलमे सिद्ध भगवानके समान है यह बात दिखायेगे, जिस दृष्टिमे यह बात आयगी उस दृष्टिका नाम है कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्यशुद्धद्रव्यार्थिकनय। मूलमे बात यह है कि जो भी पदार्थ है उसके सत्त्वके कारण उसमे अगुरुलघुत्वगुणके निमित्तसे निरन्तर षड्गुणहानिवृद्धिरूपपरिणति होती रहती है। अब षड्गुणहानिवृद्धिके द्वारा परिणमते हुए पदार्थको यदि विभावकी योग्यता और निमित्त सन्निधान है तो विभावरूप परिणमन हो लेगा और यदि योग्यता मलिन नही, निमित्त सन्निधान भी नही तो उसके स्वभावरूप परिणमन होवेगा, और चाहे स्वभावरूप परिणमन रहा हो अथवा विभावरूप, प्रत्येकपदार्थमे मूलत अगुरुलघुत्वगुणकी शक्तिसे प्रतिसमय षड्गुणहानिवृद्धिरूप परिणमन होता है। अब इस ही अन्त परिणमन को हम स्वभावपर्यायमे रहने वाले पदार्थमे सुगमतया समझ जाते है और विभावरूप परिणमने वाले पदार्थमे हम सुगमतया नही समझ सकते। जैसे अन्त शक्तिकी समझके लिए एक दृष्टान्त लें— जलका स्वभाव मानो ठडा है तो ठडे जलमे जलका स्वभाव ठडा है यह जल्दी विदित हो जाता है और जल गर्म हो जाय तो उसको देखकर यह समझना देरमे बन पाता है कि जलका स्वभाव ठडा है। तो जो विभावपरिणाम से परिणमन रहा है उस पदार्थमे मूलमे अगुरुलघुत्व-

गुणका परिणमन है, वह किस प्रकार है यह बात विलम्बसे समझमे आयगी और स्वभाव परिणमनकी हालतमे इस पदार्थमे निरन्तर अगुरुलघुत्वका परिणमन है यह उसमे सुगमतया समझमे आयगा। सुगमतया जानने मे आये या कठिनरूपमे, षड्गुणहानिवृद्धि परिणमन प्रत्येक पदार्थमे निरन्तर होता रहता है। तो अब हम ससारी आत्मामे भी पदार्थके नाते से मूल परिणमनको निरखते है तो हमे वह परिणमन ऐसा ही विदित होगा जैसा कि शुद्ध सिद्ध भगवानमे चल रहा है।

स्थूलदृष्टान्तपूर्वक अन्तः अर्थपर्यायकी सदृशताका दिग्दर्शन—और भी स्थूलरूपसे इस विषयको समझनेके लिए एक मोटा दृष्टान्त लो। जैसे कोई यत्र जो कि बहुत फिट है और बहुत शीघ्रतासे चल रहा है। मानो ऐसे दो यत्र है और दोनो ही चल रहे है। चलते हुए की हालतमे दोनोके चक्र इस प्रकार चल रहे है कि वहाँ चलना समझमे नही आता। जैसे कि कभी यह बिजलीका पखा जब बहुत तेजीसे चल रहा हो तो फिर उसका चलना नजरमे नही आता। इससे भी और अधिक बारीकी की बात उस चक्रमे है कि जो चक्र निरन्तर चारो ओरसे एक समान है। तो अब चलते हुए उन चक्रो पर उनमे यदि यदि एक पर कोई मलिनता पडी हो, कही कही रग चढा हो या कोई मैल लगा हो तो उस चक्रका घूमना स्पष्ट विदित हो रहा है और उस घूमते हुए चक्रमे उन रगोका मलिनताओका दर्शन हो रहा है। वहा उस दूसरे शुद्ध चक्रकी नाई शुद्ध चक्र परिवर्तन है—यह बात दृष्टिमे नही आती। और दूसरे चक्रमे जो कि शुद्ध है वह चल रहा है तो उसमे शुद्ध चलना कैसे हो रहा है, यह बात स्पष्ट समझमे आती है। तो यो ही ससारी जीवमे भीतर शुद्ध परिणमन किस प्रकार हो रहा है वह बात चाहे देरमे समझमे आये, मगर विशुद्ध परिणमन बराबर है। जिसके आधारपर अशुद्ध परिणमन की भी व्यक्ति हो जाती है इस प्रसगमे शुद्ध परिणमनका अर्थ विभावरहित परिणमन नही रहता, किन्तु जिस परिणमनके साथ मलिनता या स्वाभाविकता आये, कोई भेद न डाला जाय, केवलपरिणमन इतना ही मात्र निरखा जाय तो इस दृष्टिसे आत्माकी ससारी पर्याय भी वैसी ही केवल है और अत परिणमन भी वैसा ही शुद्ध है जैसा कि शुद्ध प्रभुका परिणमन केवल है और अत विशुद्ध परिणमन है, केवलताकी समानता तो व्यक्त स्वाभाविक परिणमन और व्यक्त विभाव परिणमनमे लगाया जा सकता है। सिद्धभगवान जो केवल ज्ञानादिकरूप परिणाम रहे है सो भी केवल परिणाम रहे है और ये संसारी जीव भी जिन पर्यायोरूप परिणाम रहे है सो भी केवलपरिणमन रहे है। केवलता की तुलना तो व्यक्तपर्यायसे हुई और अन्त रपरिणमन जो चल रहा है पदार्थमे सत्त्वके नाते

से वह परिणमनमात्र है, इत ी निगाहसे देखनेपर शुद्धपरिणमन कहा जाता है। तो ससारी-पर्याय भी अत सिद्ध समान शुद्ध केवल है। यह बात कर्मोपाधिनिरपेक्ष अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयसे विदित होती है। उस परिणमनको ‍िरखनेमे कर्मोपाधिकी अपेक्षा नही रखी गई, इस कारण कर्मोपाधिनिरपेक्ष है और वह परिणमन भी अनित्य है, इस कारण अनित्य कहा और वह परिणमन विकल्पजालसे रहित है। शुद्धपरिणमन, अशुद्धपरिणमन विभावस्वभाव ये भेद उसमे नही डाले गए, इस कारण इन्हे शुद्ध परिणमन कहते है। शुद्धका अर्थ है प्यौर, केवल, परिणमनमात्र । इस दृष्टिमे यह स सारीपर्याय भी सिद्ध समान अन्त शुद्ध केवल है।

सत्तासापेक्ष अनित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार----अब आत्माके सम्बधमे इस प्रकार भी परिचय मिलता है कि आत्माकी पर्याये उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं, सो यह किस दृष्टिमे जो विदित होता है यह बताते है। देखिये नवीनपर्याय उत्पन्न होती है पूर्वपर्याय विलीन होती है और यो पर्यायोंके होते रहनेका ताँता निरन्तर रहता है। तो यो पर्यायकी दृष्टिमे उत्पादव्ययध्रौव्य विदित हुआ, ऐसे उत्पादव्ययध्रौव्यसे युक्त आत्माकी भी परिणति है। अर्थात् परिणति नवीन उत्पन्न होती है और पूर्वपरिणति विलीन होती है और परिणति चलती रहती है—यह बात आत्मामे विदित होती है सत्तासापेक्ष अ ‍ित्यशुद्धपर्यायार्थिकनयमे । इस विषयको सत्तासापेक्ष रखा गया है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये सत्ताके लक्षण है। सत्त्वउत्पादव्ययध्रौव्यके बिना कुछ नही ठहरता। तो उत्पादव्ययध्रौव्य ही जिसका एकमात्र लक्षण है ऐसी सत्ताकी अपेक्षा रखकर इन पर्यायोको निरखा जा रहा है और फिर ये पर्याये अनित्य हैं तथा इन पर्यायोको विशुद्धरूपमे देखा जा रहा है, अर्थात् पर्यायोके साथ कोई विशेषता नही लगायी जा रही। जैसे कि घट पर्याय हुई, पिण्ड पर्याय विलीन हुई। ऐसा नाम ले लेकर ऐसी असाधारण विशेष-विशेष पर्याये यहा नही जोडी जा रही है, इस दृष्टिमे जच रहा है कि आत्माकी पर्यायें उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं। यह आत्मपरिचयका प्रकरण चल रहा है। वात तो ऐसी समस्त पदार्थोंमे है। प्रत्येक पदार्थ उत्पादव्यय-ध्रौव्यात्मक है। यहाँ केवल उत्पाद, केवल व्यय और ध्रौव्य लेना, किसका उत्पाद आदि यह विवक्षित नही है। किसका उत्पाद, यदि इस तरह कहा जाता तो यह विशुद्धताका अर्थ मलिनतासे नही, किन्तु विशेष बातसे सयुक्त करके बोलना सो अशुद्धता कहलाती है और एक साधारणतया निरखना, जो सर्वत्र सम्भव हो, उसे कहते हैं शुद्ध। तो आत्माकी पर्याये उत्पादव्ययध्रौव्यात्मक हैं, इस प्रकारसे आत्माका परिचय मिलता है सत्तासापेक्ष अनित्य

शुद्धपर्यायार्थिकनयमे ।

कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब निरखिये एक उस दृष्टिसे जिस दृष्टिमे ससारी आत्माओके जन्ममरण कषायादिक परिणमन चलते रहते है। संसारी आत्माओके जन्म होने, मरण होने, कषाये होनी। आत्माका जन्म मरण नही, किन्तु पर्यायविशिष्ट आत्माको कहा गया ना, अर्थात् उस पर्यायमे रहनेका नाम जन्म है और उस पर्यायमे न रहनेका नाम मरण है? जन्म और मरण वस्तुत किसी भी पदार्थमे नही है, क्योकि जो सत् है उसका कभी नाश नही होता। जो असत् है उसका कभी उत्पाद नही है। सत्का नाश होता, ऐसा यदि कल्पनामे लाया तो यह बताओ कि जो सत् है वह जाय कहाँ? उसका नाश होना क्या कहलायेगा? ऐसा कोई उदाहरण नही है कि नाशके मायने सर्वापरिहार हो याने कुछ न रहे, शून्य हो जाय। यदि लकडी जल गई तो उसका नाश हो गया। नाश हो गया फिर भी राख तो रही। कोई भी वस्तु मूलत नष्ट नही होती, अतएव किसी भी पदार्थमे पुद्गल हो अथवा जीव हो उसका समूल नाश नही हो सकता। कोई कल्पना करे कि पदार्थका असत्का उत्पाद हो जाता तो अनित्यके उत्पादमे जो कुछ व्यक्त हो, जो बात आये वह न था तो कैसे आया? कुछ न था तो उसकी यह व्यक्ति बनी कैसे? किसीमे भी यह सामर्थ्य नही है कि किसी भी असत् पदार्थके उत्पादमे कोई निमित्त भी बन जाय।

प्रभुमें भी परके कर्तृत्वकी असंभवता—अनन्त शक्तिमान् ईश्वर भी अपना ही उत्पाद व्यय करनेमे प्रभु नही है। और वह तो किसी परपदार्थके किसी परिणमनमे निमित्त भी नही है। जैसे लोग कहते है कि इस लोकको ईश्वर ने बनाया, जो यह सामने प्रत्यक्ष दिख रहा है। तो बनानेकी बात क्या, इस पदार्थसमूहकी रचनामे ईश्वर उपादान भी नही और निमित्त भी नही, जब कि हम आप अन्य पदार्थोंकी रचनामे उपादान तो नही, पर निमित्त तो हो जाया करते है। ईश्वर तो निमित्त तक भी नही है। लेकिन वस्तुके उत्पाद व्यय ध्रौव्य जिसे कि कुछ दार्शनिकोने सत्त्व रज तम गुणसे प्रसिद्ध कर रखा है उसका रहस्य जब विदित नही है तो आखिर यह सब बना कैसे? उसके लिए कोई कल्पना करनी होती है। जैसे कि कोई वृद्ध लोग सुनाते है कि जब कभी प्रथम ही बार रेलगाडी निकली तो यह रेलगाडी चल कैसे गई, कितनी तेज चल रही है? यह बात देहाती जनोकी समझमे न आयी तो यह कल्पना आ गई कि आगेका जो काला काला डिब्बा है इसमे काली देवी बैठी हुई चला रही है। कुछ तो कल्पना करते है। जब यथार्थ बात समझमे नही आती तो कुछ

कल्पना उठती है, वस्तुमे उत्पादव्ययध्रौव्यधर्म स्वभावत पडे हुए है, अतएव सत् ही उत्पा रूपमे है, सत् ही व्ययरूपमे है और सत् ही ध्रौव्यरूपमे है। तव किसी भी पदार्थका मरण नही, किसी भी पदार्थका जन्म नही, अवस्थाका उत्पाद है और अवस्थाका व्यय है, फिर भी पर्याय सयुक्तपदार्थका उत्पादव्यय कहा जा सकता है। वहाँ भी भाव यह है कि मूलपदार्थका उत्पादव्यय नही हुआ, किन्तु उसकी अवस्थाका उत्पादव्यय हुआ। यहाँ भी जव कभी किसी मित्रको अपने प्रतिकूल देखते है तव कहा जाता है कि हे मित्र! अव तुम तुम नही रहे। तो क्या यह रहा नही? क्या मूलसे नष्ट हो गया? वहाँ भी वह पर्याय की ही वात कर रहा है, मगर पर्यायिसे सयुक्तद्रव्यके नामसे कह रहा है। तो ससारी आत्माओके जन्म और मरण होते हैं।

जन्ममरणको संकट समझ लेनेके पौरुपकी वार्ता---देखते है कि कितने ही जीव मरण कर जाते है, कितने ही जीव जन्म ले रहे हैं। जीव वही है, आते है, जाते है, मिलते है, बिछुडते है, किसी जीवका परस्परमे किसी दूसरेसे नाता नही। जैसे कि कोई कथानक आता है कि अमुक ये दो जीव तीन चार भवो तक साथ-साथ रहे। तो कुछ कर्मवन्धवश ऐसी बात हो भी जाय, लेकिन उनका जन्ममरण, सुखदु खभोग आदि सव अलग-अलग हैं। तो जन्म और मरण ये नये देहके मिलने और बिछुडनेके नाम है। हो तो रहा है यह सब और बडी विडम्बना है। हम आप पर कितना सकट छाया हुआ है, जाममरण होनेका नाम तो विकट सकट है। कषायमे आकर हम अन्य वातोमे सकट खोजने लगते है और जो खास सकट पडा हुआ है जिस सकटसे छुटकारा पाये बिना शान्ति नही मिल सकती उस सकटपर दृष्टि नही रहती ।

सुयुक्त प्राप्त अवसरका लाभ उठा लेनेकी प्रेरणा---इस जन्ममरणके सकटसे मेरा छुटकारा हो इस ओर दृष्टि होनेमे बडा ज्ञानबल चाहिए और वैराग्य बल चाहिए। खूब अन्त भली दृष्टिसे सोचें कि हमारा इस जीवनमे उपयोग क्या है? किसलिए हम जन्मते हैं, किस वास्ते हमारी जिन्दगी है? और बडे अमूल्य नरभवकी जिन्दगी पाकर हमारा कर्तव्य कौनसा है जिससे कि हमारे ये क्षण सफल कहलाये? जीवन पर्वतसे गिरने वाली नदीकी तरह बड़े वेगकी धारामे गुजरता रहता, जो समय गुजर गया वह अनेक उपाय करने पर भी नही मिलता। बचपनमे हम आपमे बहुतसे लोगोकी बडे आनन्दकी स्थिति थी। विद्या इस तरह सुगमतया आती रहती थी कि थोडा भी गुरुजन बताते तो उसका बहुत अर्थ समझते थे। और जो नही पढे वह भी समझते थे और ऐसा लगता था कि शिक्षा और विद्या

और विद्याके सीखनेमे कितना ही कोई भार रख दे उस सबको निभानेमे समर्थ थे। खेलने कूदने वगैराके मौज प्रसंग उत्तम थे। किसी प्रकारकी चिन्ता न थी, माता पिता आदिकके बडे प्यार मिलते थे, जीवनका वह कितना सुखद समय था? पर वह समय भी निकल गया। निकल तो गया, पर अब अनेक उपाय करने पर भी वापिस नही आ सकता। तो जो समय गुजर गया उसका रोना क्या है? मगर जो आज है उसका तो विचार करना चाहिए। आजका दिन भी तो गुजरने वाला है। अबका समय भी सब व्यतीत हो जायेगा। निकट समय आ जायेगा जब कि देहको छोडकर जाना पडेगा। मान लो आजसे पहिले ही हम गुजर गए होते तो अबकी बात मेरे लिए क्या थी? सोचिये—जिसके विकल्पोमे हम अपने आपका सही सकट नही समझ पाते और आत्मदृष्टि नही कर पाते। कुछ तो न था और क्या ऐसा हो नही सकता था कि हम अबसे पहिले कभी भी मर गए होते। इस भवमे अनेक घटनायें देखते है कि कोई गर्भमे ही मर जाता है, कोई शिशु अवस्थामे, कोई जवानी मे गुजर जाता है तो ऐसे मरणकी सम्भावना पहिले भी तो हो सकती थी। मान लो मर गए होते तो अब किसी अन्य पर्यायमे होते। वहाँ यहाँ का कुछ भी साधन न होता। कोई समागम न होता। तब तो ध्यानमे आया ना कि मेरे लिए ये समागम कुछ नही है। तो अब यदि है यह और सामने समागम भी है तो यहाँ भी इतने ही फटे दिलसे निरखना चाहिये कि यह सारा समागम मेरा कुछ नही है। मैं केवल अपने सत्त्वमे हू, अपने आपमे अपना उत्पाद व्यय करता रहता हू। बस यही मेरी कहानी है।

जन्म मरणसे छुटकारा पानेके उपायकी चर्चा, दृष्टि, उमंगका कर्तव्य—हम आप पर जो आज जन्म मरणके सकट छाये है इस पर कितनी दृष्टि रखना है, कितनी चर्चाकी यह-बात है? और मित्रोमे कब परस्परमे ऐसी चर्चा करते है कि मित्र यह ससार तो बडा दुखद है। चलो यहाँ कोई ऐसा उपाय बना ले कि जिससे जन्ममरणके सकट सदाके लिए छूट जाये। परिवारजनो मे, पति, पत्नी, पिता, पुत्रादिमे क्या कभी ऐसी चर्चा भी होती कि हे आत्मदन्! अपने आपको देखो यह कितना अच्छा सुयोग मिला है कि जहाँ हम आप जन्म मरणके सकटोसे छुटकारा पानेका उपाय बना सकते हैं। बना लो ना ऐसा उपाय, ऐसा सत्संग बनाओ कि जिसमे ज्ञानार्जन अधिकाधिक हो सके, ऐसी बात परिवारजनोमे सोचता ही कौन है? हाँ अगर किसी धार्मिक कार्यमे कभी कुछ खर्च करनेकी बात आ गयी तो उसमे बडा हिसाब लगाना पडता है। ज्ञानार्जन आदिके कार्योमे खर्च करनेके लिए मनमे उमंग ही नही उठती। सासारिक सुखोमे, भोगसाधनोमे, ममताकी पूर्तिमे अपना सर्वस्व

अर्पित करनेके लिए तैयार रहा करते है। लेकिन आपको एक कथानक विदित होगा कि श्रीमद् रायचन्द्र जी जिस समय अपनी दुकान पर बैठे हुए थे उस समय कोई व्यक्ति समयसार नामका एक ग्रन्थ लेकर आया। श्री रायचन्द्रजी ने जब उसके दो चार श्लोक पढे तो पढकर गद्गद् हो गए। सोचा—ओह! इसमे तो बडा ही अद्भुत रहस्य भरा है। जन्ममरण के सकटोसे छुटकारा पा लेना इससे बढ कर और लाभकी बात क्या हो सकती है? उस प्रसन्नतामे जब उस ग्रन्थके दातार पर दृष्टि गई तो और कुछ न देखा एक मुट्ठीमे हीरा जवाहरात भरकर उसे दे डाला। अब वहाँ क्या हिसाव लगाया जाय, कितना धन उसे दे डाला। इससे शिक्षा यह ले कि ज्ञानार्जनके लिए अपना तन, मन, धन वचन आदि सर्वस्व अर्पित करके भी निरन्तर प्रयत्नशील रहे और इस जन्ममरणका सकट मेटनेका उपाय वना लें। तो आत्मामे जो जन्ममरण कषाय परिणमन विदित होते है वे किस दृष्टिमे विदित होते हैं, उसका नाम है कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय। यह काम कर्मोपाधिकी अपेक्षासे है और परिणमन अनित्य है और अशुद्धपर्यायका वर्णन है। अत इस नयका नाम है कर्मोपाधिसापेक्ष अनित्य अशुद्ध पर्यायार्थिकनय।

शुद्ध सद्भूतव्यवहारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—शुद्ध सद्भूत व्यवहारनयसे आत्मा का परिचय किस रूपमे मिलता है, इसका अब वर्णन करते हैं। शुद्ध सद्भूतव्यवहारका अर्थ है शुद्ध सद्भूत तत्त्वका व्यौरा करना। जो तत्त्व शुद्ध है, परतत्त्वसे निराला है, परभावसे पृथक् है और सद्भूत है, पदार्थमे ही स्वय अपने आपके सत्त्वसे हुआ है, ऐसे तत्त्वका वताना सद्भूत व्यवहार है। आत्मामे शुद्ध सद्भूत व्यवहार दो रूपोमे निरखिये। द्रव्यरूपमे और पर्यायरूपमे। जो आत्माकी स्वाभाविक पर्याय है, शुद्ध सिद्ध पर्याय है वह भी शुद्ध सद्भूत है और आत्मस्वभाव चैतन्यभाव यह भी शुद्ध सद्भूत है। तो जव स्वभावकी ओर दृष्टि करके शुद्ध सद्भूतका व्यवहार करेंगे तो इस दृष्टिमे यह विदित होगा कि आत्मामें चैतन्य है। व्यवहार कहते हैं जोड़ और तोड़को। कहीं जोड़कर दिया जाय वह भी व्यवहार है तोड़ कर दिया जाय वह भी व्यवहार है। आत्मा और चैतन्य कोई पृथक् तत्त्व नहीं हैं, लेकिन पृथक्करण किया गया, तोड़ दिया गया आत्मा और उसमें चैतन्य है तो यों तोड़ भी है और तोड़ करके फिर जोड़ा गया है, यह चैतन्य आत्मामे है, इस कारण यह व्यवहार है। और पर्यायार्थिक नयका भेद होने से मुख्यता जब पर्यायपर दी जाती है तो यह विदित होता है कि आत्माकी स्वभावपर्याय शुद्ध सिद्धपर्याय है, शुद्धपर्याय निरपेक्ष है, स्वाभाविक है और सिद्ध है, आत्माके ही स्वभावसे प्रकट हुई है। अतएव सद्भूत है। तो यों आत्माका परिचय

चैतन्यमात्र अथवा स्वाभाविक शुद्धपर्यायमे है। इस प्रकार निरखना सो शुद्धसद्‌भूत व्यवहार नयका दर्शन है।

अशुद्ध सद्‌भूतव्यवहारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार---अब अशुद्ध सद्‌भूत व्यवहार नयमे आत्माका परिचय किस प्रकार मिलता है, सो देखिये--यहा बताया जायेगा अशुद्ध सद्‌भूत। इसकी भी दृष्टि दो प्रकारमे होगी। एक तो द्रव्यदृष्टिमे दूसरी पर्यायदृष्टिमे। द्रव्यदृष्टिमे भेद करके व्यवहार बनाया, अशुद्ध किया गया। यहा अशुद्धका अर्थ मलिनता न लेना, किन्तु जो अखण्ड है उसमे भी भेद करना सो अशुद्ध कर देना है। शुद्ध कहते है केवल अखण्डको। केवल अखण्डमे बाधा आये, उसमे खण्ड अथवा विकल्प किया गया तो उसे अशुद्ध कर दिया समझिये। अब वह अछूता, शुद्ध न रहा। तो यो अशुद्ध हुआ और आत्माके ही स्वभाव गुणकी बात हो तो उमे सद्‌भूत कहेगे। यो अशुद्ध सद्भूतके व्यवहार करनेको अशुद्ध सद्भूत-व्यवहार कहेगे। जैसे यो कहना कि ज्ञानी जीवके अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला ज्ञान है। अहो प्रथम तो आत्माके ज्ञान है और इसका ही व्यवहार किया गया, लेकिन उस ज्ञानके भी और खण्ड करना, अंश करके बताना कि अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला ज्ञान है, यह अशुद्ध कर डाला स्वभावको। वर्णन किया गया सद्‌भावका ही, लेकिन उसके खण्ड विकल्प भेद करके अश और कैसे अंश किए गए कि जिसका दूसरा अश ही न हो सके। अविभाज्य अश को अविभाग प्रतिच्छेद कहते है--ऐसा भाग करना जिसका दूसरा भाग न हो सके। ऐसा अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला ज्ञान है यह कथन अशुद्ध सद्‌भूतव्यवहारका है अथवा अशुद्ध पर्यायके रूपमे देखा तो अशुद्ध पर्याय अज्ञान है। ज्ञानकी कमी, ज्ञानका विपरीतपना ऐसा अज्ञानरूपभाव अज्ञानी जीवके होता है, यह बताना अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है। है वह सब ज्ञानकी बात, ज्ञानकी गुण बताने वाली बात, लेकिन उसकी मलिनताको बताया गया है, इस कारण अशुद्ध सद्भूतव्यवहार है। हम आप सब कथन बहुत करते रहते हैं, किन्तु उसके साथ यह भी समझमे आना चाहिये कि यह इस दृष्टिसे कथन है। नयदृष्टिके ज्ञानसे चित्तमे बडा प्रकाश रहता है और विवाद विरोध उलझन सब समाप्त हो जाते हैं। अज्ञानी जीवके अज्ञानमयभाव हैं, ऐसा वर्णन करना अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनयकी दृष्टिसे है अथवा ज्ञानीका ज्ञान अनन्त अविभाग प्रतिच्छेद वाला है, यो उसमे अविभाग प्रतिच्छेद मानकर कथन करना सो अशुद्ध सद्भूतव्यवहारनय है।

द्रव्यनयसे आत्मपरिचयका प्रकार बताने के प्रसंगमें द्रव्यनयके एकान्तके परिणामका कथन---अब द्रव्यनयमें आत्माका किस प्रकार परिचय मिलता है? उसका कथन करते है।

द्रव्य जो त्रैकालिक है, सीमारहित है, सामान्य है, एक स्वरूप है, अद्वैत है, ऐसे तत्त्वको निरखने की दृष्टि द्रव्यनय कहलाती है। जिन जीवोने, दार्शनिको ने द्रव्यनयका एकान्त किया उनके दर्शनका प्रकटरूप यह बना कि आत्मा अथवा ब्रह्म चैतन्यस्वरूप है। और वह ऐसा चैतन्य कि जिसमे जानने देखने का काम न होगा। जानने देखनेका कार्य तो प्रकृतिके धर्म से होगा। यह आत्माका स्वय निजका काम नही है, उसके स्वभावमे यह नही पडा कि यह ब्रह्म जाने और देखे। जानना तो विकार है, प्रकृतिका धर्म है। आत्माका काम केवल चेतना है। पूछा जाय कि उस चेतनाका अर्थ क्या है ? तो चेतनाका अर्थ कुछ विशेषरूपसे समझानेका जब प्रयत्न किया गया तो यो कहना पडा कि जाननेका काम तो बुद्धिने किया और बुद्धिसे जाने गए पदार्थको चेतनेका काम आत्माने किया। तो यह काम भी क्या है ? बुद्धिसे जान लिया, अब इसके आगे काम क्या रह गया ? नही रह गया। बस ऐसा ही तो देखना था। ऐसा यह दर्शनमे कहा गया कि बुद्धिके द्वारा निर्णीत पदार्थको यह आत्म-ब्रह्म चेतता है। तो चेतना एक ऐसा धर्म माना गया कि जिसका कोई व्यक्तरूप नही, जिसका कोई अर्थ नही। तो ऐसा चैतन्यमात्र यह ब्रह्म है, यह द्रव्यनयके एकान्तमे बात बन गयी। और वह चैतन्य मात्र एक है, यह भी द्रव्यनयके एकान्तमे प्रकट होता है। कहा है नाना ? जहाँ चेतनाका अर्थ इतना सामान्यसूक्ष्म बताया जो कि ग्रहणमे भी नही आये तो उसमे अनेकता कैसे थापी जा सकती है ? इसलिए कहा गया कि वह चैतन्य एक है और एक है तो क्या बटवीजकी तरह किसी एक जगह थोडे हिस्सेमे चेतना पडी है। तो उत्तर दिया गया कि वह चैतन्य सर्वव्यापक है। तब दर्शन बना द्रव्यनयके एकान्तमे कि ब्रह्म चिन्मात्र है और एक सर्वव्यापक है। बन गया यह दर्शन, लेकिन जो भी दर्शन बना वस्तुस्वरूपके बारे मे वह बिल्कुल असत्य न होगा। एकान्त आग्रह होनेसे ही असत्य है।

द्रव्यनयमें चिद्ब्रह्मके परिचयका प्रकार— ब्रह्म एक सर्वव्यापक है, यह बात जिस दृष्टिमे सही है उस दृष्टिका नाम है द्रव्यनय। जो बात कही गई है उस अपरिणामी दर्शन मे वह बात ठीक है। ब्रह्म एक सर्वव्यापक चिन्मात्र है, किन्तु यह द्रव्यनयकी दृष्टिमे कथन है। सर्वथा ऐसा ही है सो नही है। यदि किसी प्रकार द्रव्यनयमे यह देखते हैं कि आत्मा चिन्मात्र है, एक सर्वव्यापक है तो सर्वव्यापककी बात तो बादकी है; "एक है" इतना भी द्रव्यनयमे भेद न होगा। चिन्मात्रस्वरूपको जब निरखा तो उसे एक भी क्यो कहा जायेगा ? एक कहा गया तो वह किसी आकारमे बँध गया। पर चैतन्य तो निराकार है, उसे एक कैसे कहा जायेगा ? चाहे कितना ही बडा कुछ हो, यदि वह एक है तब भी आकारमे बधा

है और अनेक है तो आकारमे बधा है, यह स्पष्ट ही विदित होता है। तो चैतन्यमात्र एक है, इस विकल्पसे भी परे सर्वव्यापक है, इतना कहने मे भी चैतन्यमात्रके स्वरूपको जाननेका जो मर्म है वह अलग हट जाता है, क्योकि व्यापकता निरखी जाती है क्षेत्रदृष्टिमे। जहाँ आकारका फैलाव, क्षेत्रका विस्तार निरखा जाय वहाँ व्याप्य-व्यापकको बात आती है। जैसे आकाश सर्वव्यापक है, लेकिन सर्वव्यापक आकाश है—इस कथनमे इस ज्ञानी ने जाना क्या ? क्षेत्रविस्तार, न कि भाव। चिन्मात्र तो भाव है। क्षेत्ररूप नही है अतएव चिन्मात्र को सर्वव्यापक कहना यह भी चिन्मात्रका महत्व कम कर देना है। वह "सर्वव्यापक" विकल्पसे भी परे ऐसा यह चिन्मात्र ब्रह्म है। यह द्रव्यनयमे निरखा जाता है।

विकल्पनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब चिन्मात्र ब्रह्मको जब समझाने चलेगे तब ही तो तीर्थप्रवृत्ति बनेगी। पाप छोडे, धर्म करे, सदाचारमे लगे, ध्यानादि बनाये ये सब व्यवहार और परिणतियाँ तब ही तो बन सकेगी कि जब हमे उद्देश्यका पता पड जाय। उद्देश्य यह है कि उस चिन्मात्र भावमे समा जावो। फिर संसारका कोई सकट न रहेगा। ठीक है। उस चिन्मात्र भावका परिज्ञान भी तो चाहिए। तो परिज्ञान करना कराना यह भेददृष्टि बिना न होगा। उस एक अखण्ड चैतन्यमात्र, चिन्मात्र, ब्रह्ममे भेद करके जब परखा जायेगा, यह आत्मा अनन्त गुणमय है, पर्यायोमय है, द्रव्य, क्षेत्र, कालकी अपेक्षा इस प्रकार है, जब यो समझा जायेगा तब ही तो परिचय होगा कि आत्मतत्त्व क्या है ? तो एक अखण्ड आत्मब्रह्मका परिचय करनेका उपाय विकल्प है, भेदीकरण है। यो विविध प्रकारका परिचय विकल्पनयमे प्राप्त होता है, अन्यथा 'आत्मा आत्मा' इतना ही कहते जाये कोई तो वे क्या समझे ? जब तक विश्लेषण करके न कहा जाय, जो जानता है वह आत्मा जो देखता है वह आत्मा, जो सदा रहता है और अपनी भावात्मक पर्यायये बनाता रहता है वह है आत्मा। तो द्रव्य गुण पर्याय आदिकका विश्लेषण करके आत्माको समझाया जाय तो उसका परिचय होता है। आत्मा, ब्रह्म, केवल इतना कह देना तो उन जीवोके लिए सार्थक है। जिसने अनुभव किया है और बडे अभ्याससे सब कुछ परिचय पा लिया है, अब वह एक शब्द सुनकर ही उस पूरे आत्मतत्त्वको अवधारित कर लेता है। लेकिन जिनको इस स्वभावपरिचयका अभ्यास नही है, उसका जिन्हे बोध नही है उनके लिए उस निर्विकल्प ब्रह्ममे विकल्प उठाकर प्रयास करना पडेगा।

उदाहरणपूर्वक तीर्थप्रवृत्तिके लिये विकल्पनयके उपयोगके प्रतिपादनकी संगतताका कथन—जैसे जो पुरुष सस्कृत भाषाको नही जानता उस पुरुषके प्रति, राजाके प्रति कोई

पंडित गया और उसने आशीर्वाद दिया—'स्वस्ति' अर्थात् तुम्हारा कल्याण हो, मगल हो, अविनाश हो, अर्थ उसका यह है लेकिन स्वस्ति शब्दसे वह कुछ न समझ सका तो वह राजा आँखे खोलकर देखता रहता है—क्या कहा ? कुछ समझमे नही आया। जो सस्कृत भाषाका और राजाकी भाषाका जानकार हो वह जब राजाको राजाकी भाषामे समझाता है कि स्वस्ति कहा, इसका यह अर्थ है कि तुम्हारा कभी विनाश न हो, तुम सदा फले फूले रहो, तुम्हारा मगल हो। तो इतनी बात सुनकर राजा हर्षसे गद्‌गद् हो जाता है। तो जिस भाषाका परिचय नही है, उस भाषासे अपरिचित लोग कुछ नही समझ पाते। उनके लिए उनकी भाषामे कहना पडता है तो उनकी भाषा है व्यवहारमय, विकल्पमय, भेदमय और यह है अभेद भाषा। तो अभेद भाषामे कहे गए ये ब्रह्मादिक शब्द सबका ज्ञान करानेमे असमर्थ है, अत विकल्पनयसे आत्मपरिचय कराया जाता है तो विकल्पनयमे आत्मपरिचय इस प्रकार होता कि आत्मा गुण पर्याय वाला है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावकी अपेक्षा इस इस प्रकार है, यह सब वर्णन विकल्पनयमे होता है।

अवक्तव्यनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब बताते है कि किया तो विकल्प, लेकिन विकल्प तो करने पडे। परमार्थत आत्माका जो स्वरूप है वह तो अवक्तव्य है। तो जब आत्माके सम्बन्धमे यह कहा जायेगा कि आत्मा अवक्तव्य है, उसको कहा नही जा सकता, उसका स्वरूप नही बताया जा सकता। तो यह कथन किस दृष्टिमे हुआ ? इसे कहते हैं अवक्तव्यनय। आत्मामे गुणोकी परख की, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक अनन्त गुणमय है। आत्मामे परखकी कि यह स्वरूपसे है, पररूपसे नही है, यह द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। ये समस्त परख करनेके बाद जब हमने यह प्रयत्न करना चाहा कि मैं सभी अपेक्षाओंसे एक साथ कह लूँ कि आत्मा कैसा है तो समस्त धर्मोका एक साथ कथन करे, ऐसा कोई उपाय नही है। तब कहा जायेगा कि वह तो अवक्तव्य है। उसका यथावत् स्वरूप वचनोके अगोचर है। यो अवक्तव्यनयसे आत्मा अवक्तव्य दिखता है, क्योकि इसमे समस्तगुणोकी एक साथ प्रधानता की गई है। जब गुणोकी प्रधानता की जाती है तो वहाँ वचनव्यवहार बनता है। जब सभी धर्मोंकी एकता प्रधान की गई हो तब वहाँ अवक्तव्य दृष्टि बन जाती है। यो अवक्तव्यनयमे आत्मा वचनोके अगोचर है, यह प्रतीत होता है।

पर्यायनयमें विशिष्ट गुणकी अपेक्षासे आत्मपरिचयका प्रकार—अब पर्यायनयसे आत्मा किस भाँति निरखा जाता है, सो बताते हैं। इसका विषय स्पष्ट है। पर्यायनयमे पर्याय

से आत्मा किसी विशिष्ट गुण या पर्याय वाला है। देखिये अभेद आत्माका भेद करना सो पर्याय है। पर्यायका मूल अर्थ है भेद करना। अब भेद करना यह भी है कि आत्माका गुणो से भेद करना। आत्मा ज्ञान वाला है, दर्शन वाला है, चारित्र वाला है, तो यो आत्माके गुणो का भेद करना भी पर्यायनयका काम है। यहाँ अवस्थाये नही बतायी गईं किन्तु उस अभेद आत्माका भेद किया गया। पर्यायनयमे यह भी विदित होता है कि आत्मा ज्ञानगुण वाला है, दर्शनगुण वाला है, चारित्रगुण वाला है। यहाँ एक बात अन्तरमे पडी हुई है इस कारण भी इस गुणभेदको पर्याय कहते है। क्या बात पडी हुई है ? यह ज्ञानगुण वाला है ऐसा विशेष नाम देकर गुणका कथन तब ही तो कर सकेंगे जब ज्ञानगुणके कामका भी परिचय हो। यह ज्ञानगुणवाला है, ऐसा जो कहा है उसकी समझमे यह बैठा हुआ है कि यह जानने वाला है, यह जाना करता है। जहाँ जानना होता है वह ज्ञानगुण कहलाताहै, यो आत्मा ज्ञानगुण वाला है। विशिष्ट गुणका नाम लेने पर पर्यायका परिचय सम्बधित रहता है। इस कारण विशिष्ट गुणका भेद करना भी पर्यायनयका काम है।

पर्यायनयमें विशिष्ट पर्यायकी अपेक्षासे आत्मपरिचयका प्रकार– अथवा विशिष्ट पर्याय का नाम लेकर कहना कि आत्मा क्रोध कषाय वाला हो रहा है, मान कषायवान् हो रहा है अथवा शान्त हो रहा है। किसी भी पर्यायरूपसे आत्माका कथन करना, यह एक पर्यायनयकी दृष्टि है। तो पर्यायार्थिक नयमे आत्मा विशिष्ट गुण या विशिष्ट पर्यायमात्र प्रतीत होता है। स्थूलरूपसे इसी प्रकारमें जीवोका परिचय हुआ करता है। किसी भी जीवको देख करके कहना कि यह जीव है, पशु, पक्षी, मनुष्य कोई भी दीखा तो झट पहिचान गए कि यह जीव है। अरे उसने पहिचाना क्या ? जो जीव है, जीवत्व है उसपर किसकी दृष्टि गई ? लोग पर्यायको निरखकर झट कह बैठते है कि यह जीव है। तो यहाँ उसकी व्यवहारनयकी दृष्टि है। तो जैसे भेदमे पर्यायमे विशिष्टरूपका परिचय होता है तो जब अभेदनयसे देखेंगे तो आत्मा अपने गुणपर्यायोमे एक स्वरूप है, यही ज्ञात होगा।

अभेदनयमें आत्मपरिचयका प्रकार––देखिये–दृष्टि कितनी जल्दी मुडती रहती है और उससे हम कितनी जल्दी काम ले सकते है, जैसे लोग कहते है ना कि मनकी गति सबसे अधिक तेज है। तेजसे तेज हवाई जहाज भी जिस गतिसे चलता है क्या उससे भी अधिक ? हाँ उससे भी अधिक। हवाई जहाज दिल्ली से कलकत्ता चार घटेमे पहुंचता है, लेकिन मन कहो इसी सेकेण्डमे कलकत्ता पहुंच जाय। तो कलकत्ता पहुंचनेका अर्थ है कि वहाँका विकल्प आ जाय, उसका ख्याल बन जाय। तो राकेट अथवा वायुकी गति, प्रकाशकी गति, जो जो

भी गति तेजसे तेज मानी गई है उनसे भी तेजगति मनकी है और मन क्या है ? वह एक दृष्टि ही तो है। तो दृष्टिकी गति इतनी जल्दी चलती है कि कहो किसी सेकेण्डमे भेदनयसे आत्माको देखा हो तो उसी सेकेण्डमे आत्माको अभेद भी देख ले। इतनी जल्दी परिवर्तन होता है। यह तो एक परिचयके सम्बन्धका परिवर्तन कहा जहाँ इतने भी अन्तर वाला भाव होता है कि थोडे समयमे बहुत गदा भाव हुआ और कहो उसी सेकेण्डमे उच्च भाव बन जाय। जैसे एक कथानकमे कहा है कि जब एक राजाने पूछा तीर्थंकरकी सभामे कि अमुक मुनिकी इस समय क्या गति होगी ? तो वहाँ समाधान मिलता है कि अभी अभी ही कुछ आध सेकेण्ड पहिले ऐसा भाव था कि उस भावमे मरण होता तो नरक जाता और अब इस समय ऐसा भाव है कि इस भावमे मरण हो तो कल्पोत्तर विमानोमे उत्पन्न हो। तो सेकेण्ड मे ही इतना अधिक भावका बदल जाना, दृष्टिका [illegible] जाना, के कारण सम्भव है। तो अभेदनयसे आत्मा देखा जाय तो यह अपनी समस्त गुणपर्यायोमे एक स्वरूप अभेद है।

नामनयसे आत्मपरिचय—वस्तुस्वरूपका जब कथन करना होता है तो कुछ भी कथन करनेके लिए नाम और संज्ञा सर्वप्रथम चाहिए। नामके बिना कुछ भी व्यवहार नही बन सकता। तब ही तो चारो निक्षेपोमे सबसे पहिले नाम निक्षेपका वर्णन है। व्यवहार ही किसी बातके बोलनेके नामसे होता है। मान लो किसी पुरुषका नाम न हो अथवा किसी भी वस्तुका नाम न रखा गया हो तो उस वस्तुके बारेमे कहा ही क्या जा सकता है और उपयोग भी क्या किया जा सकता है, इस कारण व्यवहारके लिए सर्वप्रथम नाम होता ही है। तो प्रत्येक पदार्थ नामसे कहा जाने योग्य है। कहा ही गया है। आगममे जो कुछ भी द्रव्यका वर्णन है, तीन लोक, तीन कालकी अवस्थाओका वर्णन है वह नाम बिना नही होता। तो आत्मा भी किसी नामसे कहा जाने योग्य है। आत्मा, ब्रह्म, जीव चेतन आदिक किन्ही भी नामोसे कहो—नामनयसे आत्मा किसी नाम से कहा जाने योग्य है। सहजसिद्ध सहस्रनाम स्तोत्रमे आत्माको १००८ नामोसे कहा गया है। यह बात निर्णयमे नामनयकी दृष्टिमे आती है।

स्थापनानयसे आत्मपरिचय——नाम पदार्थका रखा गया। अब उसके बाद यह बुद्धि होती है कि इस नाम वाला पदार्थ यह कहलाता है। तो देखिये—व्यवहारमे स्थापना बतायी गई है यों कि जैसे मूर्तिमे भगवान्की स्थापना करना—ये हैं नाथ भगवान्, ये हैं अमुक भगवान्। तो इस उदाहरणमे शान्तिनाथ भगवान्की मूर्ति अलग है, अन्य भगवान्की अलग हैं। सो भिन्न-भिन्न दो पदार्थोंमे स्थापनाकी यहाँ बात है, लेकिन यहाँ स्थापना इस

प्रकारकी बतायी जा रही है कि जैसे कहा——चौकी । तो 'चौ की' इसमें ये जो दो शब्द है इन दो शब्दो वाली चौकी इसका नाम है तो नामकी स्थापनामे उस वाच्य चौकी वस्तुमे की गई । जैसे भगवान्‌की स्थापना मूर्तिमे की जाती है इसी प्रकार नामकी स्थापना पदार्थमे की जाती है । भला बतलाओ पदार्थका पदार्थकी ओरसे कोई नाम है क्या ? जितने भी पदार्थ है चौकी, बेञ्च, अलमारी, चटाई आदि इनका कोई खुद नाम है क्या ? अगर इन पदार्थोकी ओरसे इनका नाम हो तो जो इन चीजोसे परिचित नही है वे भी इन चीजोको देखकर उसी नामसे बोल दे, पर ऐसा तो नही होता । इससे मालूम होता है कि नामकी बात पदार्थमे नही पडी हुई है । सो स्थापना ही तो की गई है । यह नाम इसका है, इस प्रकार नामकी स्थापना पदार्थमे की गई है । तो द्रव्यनयसे आत्मा किसी प्रकार वाच्यमे प्रतिष्ठित किया जाता है । आत्मा वह है जो एक चैतन्यस्वरूप है, प्रतिभासमात्र सर्वपदार्थोसे विलक्षण है, अनुपम है, समस्त पदार्थोमे सारभूत है, उत्तम है । यह है आत्मा, यह है ब्रह्म, यह है चेतन । तो इन शब्दोके द्वारा वाच्य जाना गया तो वाच्य पदार्थमे इस नाम की स्थापना की । तो स्थापनानयसे यह आत्मा किसी भी वाच्यमे प्रतिष्ठित किया जाता है । किन्ही भी शब्दो द्वारा इस आत्मा पदार्थमे बुद्धिको लगा देनेका नाम स्थापनानय है । स्थापनानयके बिना किसीका काम तो नही चल रहा । जहाँ ही नाम पड चुका बस वही स्थापना हो गई । चौ की — ये दो शब्द इस पदार्थके वाचक है, इस प्रकार प्रतिष्ठा बन गई तो किसी शब्दो द्वारा कहा गया — आत्मा आत्मामे प्रतिष्ठा कराता है । उस शब्दकी वाचकता भी स्थापनानयमे निर्णीतो नीही है । नाम, स्थापना द्रव्य, भाव——चार प्रकारके निक्षेप भी आखिर किसी दृष्टिसे ही तो हैं, इनकी दृष्टियाँ बतायी जा रही है ।

द्रव्यनयसे आत्मपरिचय——द्रव्यनयसे आत्माका किस तरह परिचय मिलता है, सो सुनो । जब आत्माका कुछ मध्यमरूपसे अतरङ्ग वर्णन किया जाता है तो यही तो कहा जाता कि आत्मा अतीत अनागन समस्त पर्यायोके द्वारा जाना जाता है और उस जीवमे अतीत पर्यायोका नाम लेकर बोलते हैं, भविष्यपर्यायका भी नाम लेकर बोलते हैं । जैसे कहते है कि कमठने पार्श्वनाथ पर उपसर्ग किया । अब बतलाओ जब पार्श्वनाथ थे तब कमठ कहाँ था ? कमठ तो ५-७-भव पहिले था । लोग पार्श्वनाथकथा एक उपसर्गका चित्र बनाते है, उसमे कमठका भी चित्र उपसर्ग करता हुआ दिखा देते है और उस चित्रके नीचे लिख देते है "भगवान पार्श्वनाथ पर कमठका उपसर्ग" लेकिन बात सगत कहाँ हुई ? कमठ तो अनगिनते वर्ष पहिले हुआ था । तो द्रव्यनयसे यह बात घटित होती है । कमठ नामसे

जो उपसर्गकी वात वतायी गई वह द्रव्यार्थिकनयसे वताई गई है। द्रव्यार्थिकनय भूतकी या भविष्यकी पर्यायो द्वारा वस्तुको जताता है। जीव तो वही है जो कमठके भवमे था। अव हो गया वह ज्योतिषीदेव। इस भवमे भी वही जीव है, लेकिन यह सम्वन्ध वतानेके लिए कि यह वैर कमठके मनमे आया था, तभीसे उसने विरोध धारण किया था। इस कारण कमठका ही नाम लेकर उसका परिचय कराया जाता है। तो यह वर्णन द्रव्यार्थिकनयसे ज्ञात होता है। तो द्रव्यनयसे आत्मा भूत भविष्य समस्त पर्यायोके द्वारा जाना जाता है। यह आत्मा हुआ कुछ विशेष घटनाकी वातमे, जो अभी उदाहरणमे कहा गया, लेकिन सामान्यतया आत्माको वताते है तो भविष्यकी पर्यायोमे अगर २–४ पर्यायें कम करे तो क्या पूरा आत्माका परिचय वन जायेगा ? उसके वाद क्या आत्मा नही है ? तो भविष्यकी समस्त पर्यायोसे और भूतकी समस्त पर्यायोसे आत्मा जाना जाता है। इसमे अनादि और अनन्तपना सिद्ध होता है। द्रव्यनिक्षेप कहते उसे हैं कि जो भूत या भविष्यकी पर्यायो द्वारा परिचय कराया जाय। जो पहिले कोतवाल था अव नही है, अव भी कोतवाल कहना अथवा जो कोतवाल वनेगा, अभी उसकी वात चल रही है, मजूरी हो गई है, अभी कोतवाल वना नही, चार्ज नही लिया, फिर भी कोतवाल साहव कहते हैं। तो द्रव्यनिक्षेपसे भूत भविष्यकी पर्यायें जोडकर पदार्थको कहा जाता है। तो द्रव्यनिक्षेप एक द्रव्यनयकी दृष्टि है। इस दृष्टिमे आत्माको कितना कहा जायेगा ? अतीत समस्त पर्यायोमे और भविष्य समस्तपर्यायोमे तो अतीत अनागत समस्त पर्यायोके द्वारा आत्माके परिचयकी वात द्रव्यनयमे करायी जाती है।

भावनयसे आत्मपरिचय—अव भावनयसे आत्मपरीक्षण कीजिए। भावनयसे आत्मा वर्तमान पर्यायमात्र है। भावनिक्षेप भावनयकी दृष्टिमे वनता है। भावनिक्षेप उसे कहते है कि वर्तमान पर्यायसे उपलक्षित द्रव्यको कहना। प्रत्येक पदार्थ क्या है, कैसा है ? तो जो वर्तमान पर्याय है वस तन्मात्र हो तो वह पदार्थ है। पर्यायसे निराला पदार्थ और कुछ कहाँ पडा है, और प्रत्येक समयकी पर्याय अपनी वर्तमान पर्यायमात्र है। उससे ज्यादा क्या है ? यह तो युक्तिसे वताया गया है और परिचयमे वताया जाता है कि पदार्थ अनादि अनन्त है। अनादि अनन्त तो है, पर जव कभी भी पदार्थ मिलेगा तव कहाँ मिलेगा ? जो उसकी पर्याय हो रही हो उस पर्यायमे मिलेगा। तो भावनयसे आत्मा वर्तमान पर्यायमात्र है। जब क्रोध कर रहा है तव वह क्रोधमात्र है, जब शान्त है तो वह ऐसा है। तो आत्मा वर्तमान पर्यायमय है—इस प्रकारकी जानकारी भावनयकी दृष्टिमे होती है।

सामान्यनयमे आत्मपरिचय—दर्शनशास्त्रमे कथन आता है कि आत्मा समस्त गुण-

पर्यायमे व्यापक है। इसका भाव यह है कि अनन्त गुण और अनन्तपर्यायो वाला उन सबमें व्यापने वाला आत्मा है। अनन्तगुणोमे तो यह एक ही समयमे व्याप रहा है और अनन्त गुणोकी पर्याये भी अनन्त ही हुई, इस प्रकार प्रति गुणकी पर्याय निरखकर कह सकते है कि अनन्त पर्यायोमे भी आत्मा व्यापी एक समयमे है, किन्तु भूत भविष्यकी पर्यायोमे व्यापकर आत्मा रहता है। इसका भाव यह है कि आत्मा कालमे इतना लम्बा है अर्थात् अनादि अनन्त है। जो कि अनन्त पर्यायोमे व्यापकर रहता है। तो आत्मा सर्वगुणपर्यायोमे व्यापी है, इस प्रकारकी समझ सामान्यनयमे हुआ करती है। सामान्य दृष्टिसे आत्माको देखा ना। जैसा आत्मा, जो आत्मा उन सब अवस्थाओमे रहे, सबमें समान रहे उस समानतासे आत्मा को निरखा तो यह ध्यानमे आया कि यह तो सर्वगुणपर्यायव्यापी है। कुछ ही गुण मात्र हो, सो नही। जितनी शक्तियाँ है सर्वशक्तिमय आत्मा है और इसी प्रकार अतीत अनागत वर्तमान समस्त पर्यायोमे व्याप कर रहा। यह एक समयमे व्यापकर रहनेकी बात नही कह रहे, यह अनादि कालसे है और अनन्त पर्यायोमे व्यापक है, यो आत्माको सर्वव्यापक निरखना सामान्यनयकी दृष्टिसे होता है। सामान्यनयका एकान्त करके ही कोई ऐसा दर्शन बनता है जिसमे वर्णन आता है कि एक सत् ही है। सब कुछ अद्वैतवाद जितने भी बने है वे सब सामान्यनयके एकान्तमे बने है। यदि एकान्त न किया जाय अर्थात् विशेष सापेक्ष सामान्यसे निरखा जाय तो सामान्यनयमे जो देखा वही प्रमाणभूत बन जायेगा। क्योकि विशेषकी अपेक्षा नही छोडी। जो लोग विशेषकी अपेक्षा छोडकर केवल सामान्यनयके आग्रह मे वस्तुमे सामान्यतत्त्व ही देखते है और उसकी ही हठ करते है तो वहाँ वस्तुका परिचय नही होता और अर्थक्रिया भी नही बनती, तब बध मोक्षकी व्यवस्था भी नही बनती, कल्याणमार्ग वहाँ रुक जाता है। तो आत्मा सर्वगुणपर्यायोमे व्यापी है, यह सामान्यनयसे निरखी गई बात है।

विशेषनयमें आत्मपरिचय—अब विशेषनयमे आत्मपरिचय किस ढगमे होता है? सो सुनिये विशेषनयसे जब आत्माको देखा जायेगा तो वह किसी एक पर्यायमे व्यापक है, यो विदित होगा। सर्व अवस्थाओमे व्यापी है, ऐसा तो सामान्य दृष्टिमे ज्ञात होगा, पर विशेष दृष्टिमे बस वर्तमान एक पर्यायमे व्यापी है। बताओ कहाँ अब अतीत पर्यानमे पदार्थ रह रहा और भविष्यमे कहा रह रहा, जिससे इस नयमे दृष्टिमे उसे यह कह बैठे कि आत्मा भूत, भविष्य, वर्तमान सब पर्यायोमे व्यापक है। यदि अतीत अनागत पर्यायोमे व्यापक कहे आत्मा को और दृष्टि रखे विशेषनयकी तो इसका अर्थ हो गया कि एक ही समयमे अनन्त पर्याये

हो जानी पडेगी, फिर आगे शून्य। तो विशेषनयकी दृष्टिमे यह कथन सत्य न बैठेगा कि आत्मा समस्त पर्यायोमे व्यापक है, किन्तु इस दृष्टिमे यह ही विदित होगा कि आत्मा एक पर्यायमे व्यापी है और ऐसा प्राय: सुगमतया विदित हो जाता है, आत्मा किसी एक पर्यायमे व्यापी है।

सर्वगतनयमें आत्मपरिचयका प्रकार— अब बताते है कि सर्वगतनयसे आत्मा कैसा है? आत्मा सर्वव्यापक है, यह कथन सामान्यतया वहुतसे दार्शनिक लोग करते है। आत्मा व्यापक है। कितना व्यापक है, जिसकी कोई सीमा नही। यह वात यदि एकान्त आग्रहसे कही जाय तब तो इसमे कोई हितकी बात नही मिलती। जब सर्वगतनयकी दृष्टिमे कहा जाय तो इसमे तथ्य विदित होता है। वात सही है। ज्ञानकी दृष्टिसे आत्मा समस्त पर्यायोमे रहने वाला है। ज्ञान कितना व्यापक है, यह वात ज्ञानकी विशालतासे मालूम होगी। सर्व पदार्थोंमे विशाल तत्त्व है ज्ञान। कितना विशाल है ज्ञान? जितनी यह दुनिया है, यह लोक है क्या उतना वडा ज्ञान है? आजका माना गया विश्व जितना है उतना ज्ञान है क्या? ज्ञान तो इससे भी वडा है। जो विश्व जाना गया उससे भी आगे जाननेकी कल्पना तो चलती है और कोई स्पष्ट ज्ञाता जानते भी है। आगममे जो वर्णन किया गया—लोकाकाश ३४३ घनराजू प्रमाण क्या इतना वडा ज्ञान है? इससे भी वडा है ज्ञान, क्योकि ज्ञानमे लोकको भी जान लिया और अलोकको भी जान लिया। तो क्या लोक और अलोक मिलाकर जो कुछ हो, क्या उससे भी वडा ज्ञान है? हाँ उससे भी वडा है। ज्ञानमे यह सामर्थ्य वतायी गई है कि जो भी सत्पदार्थ हो वह ज्ञानमे ज्ञात होता है। अब जो सत् है वह सव ज्ञानमे आ गया। प्रभुके ज्ञानमे सव आ गया और कल्पना करो कि जितने सव हैं, अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य, असख्यात कालद्रव्य, इनका ही समूह तो लोक कहलाता है। और उससे आगे जहाँ शेष ५ द्रव्य नही है, आकाश ही है वह कहलाता है अलोक। जितना यह लोक अलोक है उतना ही अगर और भी होता तो वह भी ज्ञानमे ज्ञात होता कि नही? वह तो होता ही। ज्ञानमे कोई वोझ नही वढता कि यदि इतना जाना तो ज्ञान ठीक है और इससे ज्यादा बात ज्ञानमे आयी तो बोझोसे ज्ञान दव जावे। जो जाननमात्र है, जो सत् है उसे जान लिया गया। उसमे बोझकी कोई वात नही होती। तब समझ लीजिए कि ज्ञान कितना बडा है। जो कुछ आज है इससे भी कई गुना होता कुछ तो वह भी ज्ञानमें ज्ञात होता। तो देखिये ज्ञान ऐसा सर्वव्यापी है। बताया गया है कि जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, काल, ये पदार्थ लोकसे बाहर नही जा सकते, अलोक

इनका सद्भाव नही है, लेकिन ज्ञान यह अलोकमे भी चला गया।

ज्ञानकी सर्वगतताका मर्म—यहाँ यह समझना होगा कि ज्ञान तो परमार्थत आत्मा मे ही रहता है। आत्मासे बाहर नही जाता, लेकिन पदार्थके विषयमे ज्ञान किया, उसमे व्यवहार जाननेका ही चलना है। जैसे यहाँ भी कहते कि हमारा दिल उसमे है, हमारा ज्ञान उसमे है, तो इतना तक उसका ज्ञान चला गया। अब उसमे दृष्टान्त देते हैं प्रकाशका। जैसे दीपकका प्रकाश अभी जितना है उससे अधिक भी फैल सकता है। फैल गया, परमार्थत वहाँ भी दीपकका प्रकाश नही उसमे फैला। जैसे दीपक प्रकाशमय पदार्थ है, वह विशेष प्रकाशमय है। तो ये घट, पट, बेन्च आदिक भी एक पदार्थ है और ये भी किसी अशमे प्रकाशमय है। भले ही इनका प्रकाश प्रकाशमान पदार्थका सन्निधान पाकर और ढंगका व्यक्त हो पाता है। भले ही हो यह व्यक्त होनेकी विधि है, लेकिन जैसे सूर्य, चन्द्र, दीपक आदिक प्रकाशका स्वभाव रखते हैं वैसे ही प्रत्येक पदार्थमे प्रकाश स्वभावसे पडा हुआ है। वे स्वत-प्रकाशित है। उनमे इस विधिका प्रकाश पडा है। ये पदार्थ प्रकाशमान पदार्थका निमित्त पाकर अपनी योग्यताके अनुकूल प्रकाश पाते है। इस तरहकी विधि पडी हुई है। तो परमार्थप्रकाशकी भी यह बात है कि प्रकाश फैलता नही है,, लेकिन व्यवहार तो यही रहेगा कि प्रकाश फैल गया। सुगमतया यह विदित होता है कि प्रकाश फैल गया। यो ही ज्ञानका व्यवहार है। ज्ञान फैल गया। जितने पदार्थोको जानता है उन पदार्थोमे ज्ञान व्याप गया। तो ज्ञानदृष्टिमे आत्मा समस्त पदार्थोमे गया हुआ है, ऐसा निरखना सर्वगतनयमें निरखना कहलाता है।

असर्वगतनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब असर्वगतनयकी बात देखिये। असर्वगतनय मे आत्मा आत्मप्रदेशमे ही रहने वाला है। आत्मा कहाँ रहता है? अपने ही प्रदेशोमे, ज्ञान कहाँ रहता है? अपने ही प्रदेशोमे, अपने ही आधारमे। परमार्थत आत्माका कोईसा भी गुण, कोईसी भी पर्याय आत्मप्रदेशसे बाहर नही है। सभी पदार्थोकी यही बात है। प्रत्येक पदार्थकी गुणपर्याय उस ही पदार्थमे व्यापकर रह सकती है और साथ ही यह बात है कि उस पदार्थमे एक देशमे न रहेगे। समग्र पदार्थोमे समग्रगुणपर्यायें रहती है। पदार्थ जितना एक होता है उसको लक्ष्यमे लेकर निर्णय करे तो गुणपर्याय पदार्थमे पूरेमे रहते है। जैसे ज्ञानगुण। क्या यह कहा जा सकेगा कि ज्ञान आत्माके ऊपरके हिस्सेमे है और नीचेके प्रदेश मे ज्ञान नही है? भले ही कुछ समय ऐसा लगता है कि दिमागसे विचारा जाता है तो कुछ ऐसा लगता है कि ज्ञान मस्तकमे है, परन्तु यह बात नही है। जैसे कि हाथमे फोडा हो जाय

तो लगता यो है कि हाथमे बडी वेदना है। लेकिन हाथमे तो वेदना होती नही, क्योकि हाथ चेतन नही। चेतन तो आत्मा है। तो लगता यो है कि इस जगहके प्रदेशमे वेदना है लेकिन यह बात नही है। आत्मा एक अखण्ड पदार्थ है और उसमे जो वेदना बनती है वह आत्मा के सर्वप्रदेशोंमे बनती है, किन्तु लगता क्यो है ऐसा यो कि उस वेदनाका निमित्त वह फोडा है। तो उस समग्र आत्मामे होने वाली वेदनाका निमित्त है हाथका फोडा, तो निमित्त पर ही दृष्टि रहती है। तो इसका उपयोग वही केन्द्रित हो गया और यह जान रहा है कि वेदना इस जगह हो रही है। यदि ऐसे ही कुछ मन मस्तिष्कके निमित्तसे ज्ञान प्रकाश होता है तो ऐसा लगता है कि इस जगह ज्ञान हो रहा, लेकिन एक देशमे ज्ञान नही है। जितना आत्मा है अखण्ड उस समग्रमे ज्ञानगुण है और उससे बाहर जरा भी नही है। तो यो असर्वगतनयसे आत्माका परिचय हुआ कि आत्मा अपने प्रदेशोमे ही व्यापक है। ज्ञानादिक गुण इन्ही आत्मप्रदेशोमे व्यापक हैं, इनसे बाहर नही हैं। यो असर्वगतनयमे असर्वगतपना निर्णीत होता है।

शून्यनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—शून्यनयमे आत्माका किस ढंगसे परिचय होत है ? यह बात अब बता रहे हैं। शून्यनयसे तो सुगमतया सीधी बात यह विदित होती है कि आत्मतत्त्व समस्त परपदार्थोंसे और परभावोसे शून्य है, रहित है, सूना है। जैसे लोग कहते है ना कि यह घर सूना है तो इसका मतलब है कि इस घरमे लोग नही हैं। सिवाय घरके और कुछ नही है। तो यह आत्मा सूना है, इसका भी यह अर्थ होगा कि सिवाय आत्माके यहाँ और कुछ नही है। कर्म शरीर अनेक वर्गणायें अन्य जीव कुछ भी तो तत्त्व इसमे नही हैं। यहाँ तक कि जिस आकाशमे यह जीव रह रहा है वह आकाश भी इस जीव मे नही है। जहाँ यह जीव है वहाँ छहो द्रव्य रह रहे है, फिर भी जीवमे सिवाय स्वजीवके अन्य कोई द्रव्य नही है। शून्यनयसे आत्माका इस भाँति परिचय मिलता है।

शून्यनयकी सम्यक् व मिथ्या पद्धतिमें शून्यताके दर्शनका दिग्दर्शन—शून्यनयके विषयोमे दूसरी बात यह देखिये कि जब आत्माका सही रूपमे वर्णन होते होते ठीक इसके अंतस्तत्त्वपर पहुचे तो वहाँ फिर यह विदित होने लगता कि बस कुछ नही। यह बात दो प्रकारोमे देखिये - एक तो भले रूपमे कोई विधिपूर्वक स्वानुभवके ढंगसे आत्माकी बात निरखते हुए, आत्मा सूक्ष्म है, अमूर्त है, केवल ज्ञानमात्र है, जानन सिवाय यहाँ और कोई तत्त्व नही है, वह जाननभाव जो कि मूर्त नही, जिसमे रूपादिक नही, केवल जानन भाव है, ऐसे जानन भावकी ओर जब दृष्टि अधिक लग जाती है तो वहाँ निर्विकल्पता होती है। वह निर्विकल्पता

भी शून्य दशा कहलाती है। दूसरी तरह यो निरखिये कि मान लो किसी वनस्थलीमे बहुत साधुजन जो कि कुछ दार्शनिक समझदार थे, बैठे हुए थे। वहाँ कोई आचार्य आत्मतत्त्वका प्रतिपादन कर रहे थे। स्याद्वाद विधिसे ही कर रहे थे। आत्मा स्याद्अस्ति, स्याद्नास्ति, स्याद्नित्य, स्याद् अनित्य आदि और उनका बहुत कुछ वर्णन कर रहे थे। आत्माके गुणोके प्रतिपादनमे इसमे गुण अमूर्त है और गुण क्या है? वही आत्मा गुणके रूपमे कहा जाता है। गुणमे अनेक गुण बसे हुए है, फिर भी गुणमे गुण नही होते, क्योकि गुणका स्वरूप निर्गुण है। भला बतलाओ ज्ञानमे अगर सत्ता गुण न व्यापता हो तो ज्ञान कुछ भी रहेगा क्या? ज्ञानमे शक्तिगुण न हो तो ज्ञान कुछ रहेगा क्या? एक गुणमे अनेक गुण व्यापकर रहते है यह विभुत्वगुणका प्रसाद है, फिर भी गुणमे गुण नही है, गुणोका आधार गुण नही है, आदिक बहुत वर्णन चल रहे थे स्याद्वाद शैलीसे। अतस्तत्त्की बात सुनकर कुछ दार्शनिक इतने मस्त हो गए कि कुछ लोग जो कि किसी समय स्याद्वादका आश्रय छोडकर बत अन्त चले तो उन्होने देखा कि सब बात कपोलकल्पित हैं, कुछ भी नही। सारा तत्त्व तो यह है कि वह शून्य है। तो शून्यनयसे आत्मा शून्य नजर आता है। और सीधी बात तो यह है आत्मा शून्य है। इसका अर्थ यह है कि आत्मामे केवल आत्मा है। इसमे कोई दूसरी चीज नही है।

शून्यनयमें अवगत मर्मके परिचय विना जीवोंकी विडम्बना—इस शून्यनयका आश्रय न करके मोहीजन दुखी हो रहे है। मोही जीव यह समझते है कि मेरेमे तो सब कुछ है। अरे एक अणु भी इस आत्माका कुछ नही है। कोई भी जीव इस आत्माका कुछ नही है। आज यदि लोगोका जमाव घरमे हो गया है कुछ लडके लडकी बहुवे नामसे रह रहे है तो क्या ये जीव आपके साथी हो गए? ये यदि आपके घरमे न आये होते और ही कोई आये होते तो क्या ऐसा हो नही सकता था? तब फिर किसका कौन है? सर्वजीव स्वतत्र है, अपने आपके आधीन है और अपने आपमे केवल अपने आप है, इसमे दूसरी वस्तु नही है। तो यो आत्माको सूना निरखना चाहिए। यहाँ अर्थ अकेलासे लेना। घर सूना, तो इसका अर्थ है कि घरमे घर ही है, इसमे अन्य किसी चीजका अभाव है। आज तो पाठशाला सूनी है, दफ्तर सूना है, तो इसका अर्थ है कि केवल वही रह गया। दूसरा कुछ नही है। तो आत्मा सूना है अर्थात् आत्मामे आत्मा ही है, इसमे और कोई दूसरी चीज नही है। यो शून्यनयसे आत्माका परिचय होता है।

अशून्यनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब अशून्यनयसे आत्माका किस भाँति परि

चय होता है इसे बताते है। अशून्य नयसे आत्मा अन्तरङ्ग भावोसे परिपूर्ण है, सूना इसमे कुछ नही है। अन्त देखा तो बडा वैभव पडा हुआ है। आत्मा ज्ञान और आनन्दस्वरूप है। आत्मामे क्या सच्चा वैभव है–इसके पारखी लोग कल्याण कर जाते हैं। और जिन्हे अपने आपके आत्मामे बसे हुए वैभवका परिचय नही हुआ है वे परकी आशा रखकर भिखारी बने रहते हैं। क्या वैभव है आत्मामें? वह वैभव है जो पूरा प्रकट हो जाय तो प्रभु हो जाय। प्रभुमे और अपनेमे अन्तर क्या रह गया कि प्रभुमे वैभव पूरा प्रकट है, पूर्ण ज्ञान है, पूर्ण आनन्द है और अपनेमे ज्ञान अपूर्ण है, याने पूर्ण विकसित नही है, आनन्द भी विकसित नही है, किन्तु इसके विपरीत धाराये चलती है।

ज्ञानानन्दवैभवके आधिपत्यका निर्णय—पहिले तो यह निर्णय करें कि हम आपमे ज्ञान और आनन्द है कि नही। कुछ दार्शनिक ऐसा मानते है कि आत्मामे तो आनन्द है ही नही और ऐसा साबित करने के लिए सच्चिदानन्द शब्दके तीन अर्थ करते हैं। सत्, चित् और आनन्द। सत् अश तो सभी जीव है, चित् अंश ज्ञानी जीव है और आनन्द अश भगवान् है। यो तीनो अंश कर करके बहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये तीन रूप कर देते है। सत् तो बहिरात्मामे है, चित् अन्तरात्मामे है और आनन्द परमात्मामे है। इन तीनोका अर्थ यह निकलता है कि आनन्द तो प्रभुमे है, प्रभुकी भक्ति करते जावो तो वहाँ आनन्द मिल जायेगा क्योकि हममे आनन्द है नही। जिसमे आनन्द है उसकी उपासना करें तो आनन्द मिल जायेगा। इस बातका स्थूलरूपसे अर्थ देखना तो कुछ ठीक भी है। व्यवहारमे ऐसा कहते हैं कि प्रभुकी भक्तिमे सब कुछ मिलता है। कैसे मिलता है कि भक्ति करनेसे पाप कटते है, पुण्यरस बढता है और पुण्यके उदयमे यह लोकका वैभव सब कुछ प्राप्त होता है और यदि प्रभुके ठीक सही स्वरूपकी भक्ति हो गयी जैसा कि प्रभुका ज्ञान और आनन्द स्वरूप है, यदि इस तरहकी दृष्टि हो गयी तो मोक्ष मार्ग मिल जायेगा, मुक्ति प्राप्त हो जायेगी। तो प्रभुभक्तिसे सब कुछ मिलता है–यह बात ठीक जची, आनन्द भी मिला, लेकिन जब वस्तुस्वरूपपर दृष्टि देते है तो एक यह नियम है कि जो बात जहाँ नही है लाख उपाय करने पर भी वह बात वहाँ आ नही सकती। जो बात किसी भी रूपमे शक्तिरूपमे, स्वभाव रूपमे किसी भी ढगमे नही है वह कहाँसे आ सकती है? मगर जो बात नही है वह बात दूसरेमे मिल जाय, जैसे कि जो लोग मानते हैं कि जीवमे आनन्द नही है। आनन्द तो प्रभुमे है और प्रभुसे मिलेगा तो यो अगर बन जाय कानून कि जो बात नही है, वह किसी अन्यसे मिल जायेगी तो बालूमे तैल नही है तो बालूमे तैल किसी दूसरेसे आ जाना चाहिये–कोल्हू

से आ जाय, तेलीसे आ जाय, तिलोसे आ जाय, किसी भी बाह्य पदार्थसे उस बालूमे तैल आ जाना चाहिये। पर आ सकेगा क्या ? उपादानमे जिस परिणतिकी जो शक्ति नही हैं वह कितने ही प्रयत्न करके बाहरसे नही आ सकती। हम आप सब जीवोमे आनन्दगुण भरा हुआ है। अगर आनन्दगुण न होता तो सुख दुःख भी नही आ सकते थे। इतना तो सामने विदित हो रहा है कि हम आप जीवोमे सुख और दुःख चल रहे है। ये सुख दुःख किसके परिणमन है ? ये आनन्द शक्तिके विपरीत परिणमन है। तो आनन्द गुण सर्वत्र है। तो आत्मामे वैभव है ज्ञान और आनन्द। अगर अपने वैभवकी दृष्टिरूप अमृतका पान कर लिया जाय तो विषय-विषोसे यह जीव दूर हो जायेगा और सदाके लिए इसका जन्ममरण छूट जायेगा।

संसारी जीवको मरणका महान् भय——यह जीव मरणसे बहुत डरता है। इसके जो और दुःख हैं वे सब दुःख मरणके दुःखसे कम है। कभी-कभी तेज दुःखमे यह मनुष्य सोचने लगता है कि मेरा इष्ट गुजर गया, मुझे इसका क्लेश है, उससे तो अच्छा कि मैं ही गुजर जाता, लेकिन कदाचित् यह नौबत आ जाय कि खुदके मरनेकी बात आने लगे तो उसे अपना मरण पसद न होगा। एक बुढिया बहुत परेशान थी। उसके बच्चे भी परवाह न करते थे। नाती पोते भी बहुत हैरान करते थे। सो वह इतना परेशान थी कि रोज-रोज वह भगवानसे प्रार्थना करती थी कि हे भगवान् मुझे उठा ले। एक दिन ऐसा हुआ कि एक सर्प निकल आया, वह चिल्लाने लगी और अपने नाती पोतोको पुकारने लगी, अरे दौडो, बचाओ, सर्प निकल आया है .. । उन नाती पोतोने कहा—अरी बुडिया दादी, तू घबडा मत। तू रोज रोज भगवानसे प्रार्थना किया करती थी कि मुझे उठा ले, तो भगवान ने आज तेरी सुन ली है। तो अपना मरण किसी भी स्थितिमे यह जीव नही चाहता। करणानुयोगके सिद्धान्तसे सिवाय नरकगतिके तिर्यञ्च, मनुष्य और देव वे कोई भी मरना नही चाहते। नरकगतिके जीव तो भीतरसे अपना मरण चाहते है कि मैं मर जाऊँ, पर और गतिके जीव नही चाहते। इससे यह सिद्ध होता है कि नरक आयु पापप्रकृति है और बाकी तीन पुण्यप्रकृति है।

मरणसे छुटकारा पानेका उपाय——मरण होता है तब जब इसका जन्म होता है, तो इसका मरण मिट जाय, जो मरण इसके लिए अनिष्ट है उससे छुटकारा मिले, यदि यह चाहिये तो पहिले यह ध्यान रखना होगा, ऐसा उपाय बनाना होगा कि मेरा जन्म छूटे। मेरे जन्म चलते रहेगे तो मरण कैसे छूटेगा ? जन्म छूटें, इसका उपाय क्या है ? जन्म छूटे,

इसका उपाय क्या है ? इसका उपाय यह है कि जन्ममे जो बात होती हो उसके विरुद्ध चलने लगें। जन्म कहते है इस देहके मिलते जानेको। अब इसे जन्म न चाहिये, इसका अर्थ है कि देह और जीवका मिलाप न चाहिये। तो यदि देह और जीवका मिलाप न चाहिये तो उसके विरुद्ध सोचने लगे। होगा तो उसके विरुद्ध, किन्तु होगा यथार्थ। मैं देहसे निराला हू, देह जड है। देह अनेक अपवित्र पदार्थोंकी खान है। इस देहमे सार बात कुछ नही है। केवल एक हड्डियो पर मॉस जरा अधिक चढा हुआ है जिससे कि हड्डियाँ दिखती नही है। उन हड्डियोमे मॉसका लोथड जमा है और उसपर साफ चमडी चढी हुई है तो वह कुछ सुहावनासा जँचता है। मगर है क्या वहाँ ? महा अपवित्रता ही सारी भरी पडी हुई है। अगर इस शरीरके भीतरकी चीज बाहरसे दिख जावे वो वह देखी नही जा सकती, इतनी उसमे अपवित्रता है। और तो जाने दो, नाकसे जरासी नकेऊ अगर निकल आये तो सुन्दरता खत्म हो जाती है। तो महाअपवित्र है यह शरीर। यह शरीर जड है, मैं चेतन हूं। यह शरीर आनन्दविविहीन है, मैं आनन्दस्वरूप हू।

शून्यनयके उपयोगकी भांति अशून्यनयके उपयोगका प्रभाव—जब देहसे निराले ज्ञानानन्दस्वरूप अपने आत्माको निरखा जायगा,तो उस समय तत्काल निरख लिया जायगा। जिस परिग्रहके लगावसे जीवके मोह से या अन्य किसी कारणसे जो कुछ बेचैनी बसी हो वह भी समाप्त हो जायगी, और आगेका मार्ग भी शुद्ध हो जायगा। वह समय निकट आ जायगा जब कि मुक्ति मिल जायगी। तो मुक्तिका उपाय चाहिये हो तो शून्यनयकी भाँति अशून्यनय का भी उपयोग करिये। जैसे शून्यनयसे देखा था कि आत्मा शून्य है, वहाँ और कुछ नही है, खालिस आत्मा ही आत्मा है, ऐसे हो अशून्यनयसे देखो कि आत्मा खूब भरा पूरा है आत्मा ज्ञान और आनन्दसे भरा पूरा है। उसमे ज्ञानानन्दका एक ऐसा उत्कृष्ट वैभव है कि उसमे दृष्टि जाये तो समझो कि हमने कोई सार बात पायी, रत्न पाया। उसको दृष्टिमे लेनेसे सारी दीनता खत्म हो जायगी, कोई सकट न रहेगा। अशून्यनयसे आत्मा ज्ञानानन्दसे भरा पूरा नजर आता है।

ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब बतायेंगे कि ज्ञानज्ञेयाद्वैतनय आत्माका परिचय किस भाँति मिलता है ? ज्ञानज्ञेयाद्वैत—इसका अर्थ है ज्ञान और ज्ञेयमे अद्वैतपना रहना। वास्तवमे ज्ञान जानता किसको है ? अपने ही स्वरूपको, दूसरेको नही कह सकते है ऐसा कि भीत, चौकी, ईंट, पत्थर आदि हमने जाना। मगर ज्ञानने जाना ना तो वह ज्ञान गुण किसका है ? आत्माका। तो ज्ञान गुण क्या आत्माके प्रदेशको छोडकर जाता

है ? कोई भी गुण अपने द्रव्यको छोडकर बाहर नहीं जाता। तो ज्ञान तो आत्मप्रदेशसे बाहर नहीं जाता। आत्मप्रदेशोंसे बाहर ज्ञानकी क्रिया नहीं होती। आत्मप्रदेशोंसे बाहर जानना नहीं हो रहा, तब हो क्या रहा कि ज्ञानमें एक ऐसी अद्भुत कला है कि जिसके प्रसादसे जो कुछ भी सत् है वह सब झलक जाता है। जैसे दर्पणके सामने अनेक पदार्थ रखे हैं। क्या दर्पण उन अनेक पदार्थोंमें जा जा कर उनका फोटो लेता है ? दर्पणमें ही दर्पण है। दर्पणमें स्वयं ऐसी स्वच्छता और कला है कि जो भी समक्ष हो वह सब दर्पणमें आ जाता है। जैसे दर्पण अपने आपमें अपनी जगह में रहते हुए भी अनेक पदार्थोंकी झलक अपने में करता है, इसी तरह आत्मा अथवा कहो ज्ञान, यह अपने ही स्थानमें रहता हुआ अपनी कलासे सत् पदार्थोंकी झलक अपने आपमें करता रहता है। तो वस्तुतः ज्ञानने जाना किसको ? अपने आपको। अपने आपको जानते हुए की स्थितिमें ही यह व्यवस्था बन जाती है कि जिससे यह जीव यह कह उठता है कि मैंने घर, लोग, सबको जान लिया। जाना इसने बाहरमें कुछ नहीं, मगर जो यहाँ झलका उस झलकके माध्यमसे यह व्यवहार करते हैं कि हमने इन पदार्थोंको जाना। जैसे एक मोटा दृष्टान्त ले। आप दर्पण लिए हुए बैठे हैं, पीछे दो चार लडके खडे हैं, तो आप पीछे कुछ नहीं देख रहे, केवल सामने दर्पणको देख रहे हैं और दर्पणको देखते हुए भी आप पीछे खडे लडकों द्वारा की जाने वाली हरकतोंका बयान करते रहते हैं। देख तो रहे दर्पणको और बयान कर रहे हो उन लडकोंका, किन्तु दर्पणमें वे सब झलक रहे हैं ना। इसी तरहसे ज्ञान तो रहे आप ज्ञानको, झलकको और बता रहे दुनियाकी बातें। तो परमार्थतः ज्ञान और ज्ञेय ये जुदे-जुदे नहीं हैं। इनका ही ज्ञान ज्ञेय बन रहा है। ज्ञान और ज्ञेयमें एकरूपता है अतएव यह एक है।

ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयके अवगमसे प्राप्त शिक्षा—ज्ञान ज्ञेयाद्वैतनय है। यही ज्ञानरूप और ज्ञेयरूप होनेसे एक है। यह मैं आत्मा ही ज्ञानरूप हूँ और ज्ञेयरूप हूँ। देखिये—इस निर्णयमें यह शिक्षा मिलती है कि जब मैं बाह्य पदार्थोंको ही नहीं जान रहा हूँ याने बाह्य पदार्थोंके साथ मेरा इतना सम्बन्ध भी नहीं है कि जाननका भी सम्बन्ध बन जाय, फिर बतलावो रागद्वेषका सम्बन्ध, रचनाका सम्बन्ध ये सब कितने मिथ्या हैं ? तो यह निर्णय होता है इस दृष्टिसे कि यह मैं आत्मा ही ज्ञान हूँ और यह मैं आत्मा ही ज्ञेय हूँ। मेरा मेरेमें ही सब कुछ है। ये भाव, प्रभाव, अवस्था, पर्याय, क्रिया, आनन्द, परिणमन कुछ भी मेरेसे निकले नहीं हैं। यह कुछ मुझमें ही है। मेरा इस आत्मामें मैं हूँ, ज्ञानमय हूँ और ज्ञेयमय हूँ। मुझमें ज्ञानके नातेके माध्यमसे भी भेद न पड़ेगा। मैं ज्ञान और ज्ञेय दोनों

मे अद्वैतरूप एक आत्मतत्त्व हू।

ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब बताते हैं कि ज्ञानज्ञेयाद्वैतनयमे किस प्रकार दृष्टि बनती है ? यहाँ ज्ञान और ज्ञेय इनको पृथक् पृथक् देखा है। द्वैतभाव क्या है ? इस नयमे आत्मा चूँकि अनेक ज्ञेयरूप बन रहा है। सत्व सब झलक रहे हैं तो यह ज्ञान अनेकरूप बन गया। उस दृष्टिसे यह ज्ञान अनेकरूप है, आत्मा अनेकरूप है। देखिये—अद्वैतपना तो इसमे था कि यह ज्ञान जानता किसको है ? खुदको। और अब इस नयमे यह बता रहे हैं कि भले ही ज्ञानने जाना खुदको, यहाँ भी बाह्यज्ञेयोकी अनेकताको अनेकता नही बता रहे, क्योकि बाह्य ज्ञेयोका सम्बध है। जाना इस जीवने अपने आपको, मगर वह झलक कितने ढगकी हुई ? जितने सत् हैं उतनी ही झलक है। तो अनेक ज्ञेयाकाररूप बन जानेसे यह ज्ञान अनेकरूप है। यह आत्मा अनेकरूप है। मैं हू खुद, एक हू और अनेक हू, एक यहाँ यह बात तो स्पष्ट है। अनेक हू, यह कथन इस दृष्टिमे है कि मैं आत्मा अनेक सत्पदार्थोंके आकारकी झलक वाला हू। जितनी झलक है, जितने प्रतिभास है उनको दृष्टिमे रखकर देखा जाय तो कहा जायगा कि यह ज्ञान अनेकरूप है। ज्ञान और आत्मामे भेद नही है। केवल एक निरखनेके लिए स्वभाव और स्वभाववान का भेद किया गया है, तो जब उन झलकोपर दृष्टि देते हैं तो यह ज्ञान अनेकरूप है और पहिले यह दृष्टि दी थी कि ज्ञानने जाना अपनेको ही इसलिए वह एकरूप है, जाना अपनेको ही, मगर वे झलके नाना है। उन नाना झलको की दृष्टिसे यह अनेकरूप है। इन्ही दृष्टियोका कोई यदि एकान्त कर लेता है तो विभिन्न दर्शन करते हैं। द्वैतज्ञानमे भिन्न भी माना और उसे एकपन भी माना, ये दो बातें एक साथ कैसे घटित हुईं ? तो उनको घटित किया अपने ढगसे जो युक्तिसे नही उतरती। यदि उनको इन नयोमे घटित किया जाय तो ज्ञान ज्ञेयाद्वैत या अद्वैत है और ज्ञान ज्ञेयाद्वैतनयसे भिन्न है। लो वहाँ भी सिद्धान्त बन गया। अन्य दार्शनिक भी यदि स्याद्वाद जैसे ढगको उत्पन्न कर देंगे वह ढग उनके स्वयके वशका नही है, फिर स्याद्वादका सभी सिद्धान्तोमे समन्वय और वस्तु मे यथार्थस्वरूपका परिचय करानेकी तो अनुपम कला भरी ही है।

नियतिनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—आत्मा चैतन्यस्वभावमात्र है, ध्रुव है। आत्मामे चैतन्यस्वभाव अनादिकालसे है और अनन्त है। यहाँ यह बात ध्यानमे रखना कि ऐसा नही है कि आत्मा कोई पदार्थ है और उसमे चैतन्यस्वभाव रखा गया है। आत्मा ही चैतन्यस्वभावमात्र है। जो वस्तु होती है उसका कोई न कोई स्वभाव होता ही है। स्वभाव बिना वस्तु नही रहती। कुछ भी पदार्थ है, उसमे कुछ तो है। उसका परिणमन तो होता

है तो स्वभाव उसका अवश्य है। ऐसा स्वभाव आत्मामे चैतन्य है, ध्रुव है और वह सदैव एक समान है, नियत है। आत्माका चैतन्य स्वभाव न कभी कम होता, न कभी उसमे कोई परिवर्तन होता। जो वस्तु जैसी है वह वैसी ही रहती है। जैसे एक मोटा दृष्टान्त लो। कोई सोने की डली है वह अगर कीचडमें गाड कर रख दी जाय, उस पर कितना ही मल चढ जाय, फिर भी वह सोना अपने मे सही है। उसमे फर्क नही आता। यद्यपि यह दृष्टान्त कोई दार्ष्टान्तिकी पूरी बात बतानेके लिए नही है, क्योकि सोना खुद पर्याय है, वह पदार्थ नही है, पर एक स्थूलरूपमे समझाने के लिए कह रहे हैं। अब प्रकृत बात देखिये—आत्मा निगोद हुआ, निकृष्ट अवस्थाओमे अनन्त काल तक रहा, तिस पर भी यह अनादिसे चैतन्य स्वभाव मात्र है और सदाके लिए चैतन्यस्वभाव ही रहेगा। तो यह आत्मा नियत स्वभाव वाला है, यह बात नियतनयसे परखी जा रही है।

नियतस्वभावमें आत्माको निरखनेका प्रभाव—आत्मा नियत है अर्थात् जो स्वभाव है उस रूप ही आत्मा रहता है, रहेगा। यो आत्माको नियत स्वभावमात्र निरखने मे हमे बडा बल मिलता है। हम अपनी प्रतीति जब चैतन्यस्वभावमात्रकी करते है कि मै यह हू, इतना हू, नियत हू, मेरेमे कोई घटा बढी परिवर्तन नही होता है, जब मै इस प्रकार अपने आपमे नियतपनासे निरखता हू तो अशान्ति आकुलताये ये सब दूर भाग जाती है। मै तो एक चैतन्यस्वभावमात्र हू। उसका क्या बिगाड ? उसका यहाँ कुछ बिगाड़ नही। बाह्यपदार्थ वे अपने स्वभावरूप है वे पदार्थ चाहे घटा बढी कैसी ही स्थिति हो धन नष्ट हो, जाय अथवा किसी का वियोग हो जाय या देहकी कैसी ही स्थिति हो जाय, मुझ आत्मा का कुछ बिगाड नही, क्योकि मैं आत्मा एक नियत चैतन्यस्वभावरूप हू। यह तो जीवोके बडा अधकार छाया है। जो इस चमडे की आँखोसे बाहर निरखकर परखा करते है कि यह मेरा है कुछ। अरे सभी पदार्थ अपनी-अपनी सत्ताको लिए हुए है। किसका कौन है ? किसी भी अणुका दूसरा कुछ नही है। किसी भी जीवका कोई दूसरा जीव कुछ नही है। मै मै ही हू। मेरा कही कुछ नही है, तथा यह मैं एक नियत चैतन्यस्वभावमात्र हू। किसी ने अपमान कर दिया, किसी ने गाली दे दिया तो मैं मानता हू कि मेरा बिगाड हो गया। पर मेरा क्या बिगाड हुआ ? मैं तो चैतन्यस्वभावमात्र हू। बिगाड मानते है वे जिनको पर्यायमे मोह लगा हो। तो मेरा कही कुछ बिगाड नही है। मैं सदा नियत चैतन्यस्वभावमात्र हू।

नियतस्वभावसे अपरिचित मोहनिद्रान्ध जीवोंकी विडम्बना—लोग निरखते है कि ये सब लोग मुझे क्या समझते है अथवा किसी ने अपमान किया तो यह दर्द इस बातका

मानता है कि ये लोग मुझे बडा तुच्छ समझते होगे। तो ये सब दृष्टियाँ मोहाधकारमे चलती है। यहाँका यह वैभव भी क्या है ? कुछ नही। जैसे स्वप्न आया और स्वप्नमे देखा कि हम रत्न जवाहरातकी खानमे पहुच गए। वहाँ अनेक रत्न पडे है। वहाँ यह स्वप्न देखने वाला खुश हो रहा है। वाह मुझे बडा लाभ मिला, मैं तो खूब धनी हो गया। अरे लाभ क्या मिला ? वह तो सो रहा है, अचेत है। वह तो स्वप्नकी बात है। वहाँ है कुछ नही। तो ऐसे ही समझिये कि जो मोहकी नीदमे सो रहा है, मोहमे जैसा ही उपयोग बना रहा है, उसकी यह जानकारी बन रही है कि मेरा इतना बडा परिवार है, पर वहाँ इसका है क्या ? शरीर भी इसका नही है। इससे भी न्यारा वह चैतन्यस्वभावमात्र है। जब यह दृष्टि जगती है कि मैं चैतन्यस्वभावमात्र हू, मेरेमे परिवर्तन नही होता, मैं चेतन ही रहता हू, अचेतन नही बनता, तब उसे तृप्ति होती है, उसका कही कुछ बिगाड नही हो सकता। मैं सदा स्वरक्षित हू। यह मेरे चैतन्यस्वरूपका किला इतना मजबूत है कि इसमे कोई दूसरी वस्तुका प्रवेश भी नही हो सकता। बिगाड तो क्या नियतनयसे जो इसने अपना नियत चैतन्यस्वभाव समझा उस रूप प्रतीति करनेमे इसका मोक्षमार्ग स्पष्ट प्रकट होता है।

अनियतिनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—यह आत्मा नियत चैतन्यस्वभाव वाला होने पर भी हो तो रहा है इसमे नाना प्रकारका परिणमन, कभी मनुष्य बनता, कभी तिर्यञ्च बनता, पशु बनता, क्रोध, मान वाला बनता, कभी कुछ इच्छा करना—नाना प्रकारकी बातें बनती रहती है। यह कोई झूठ नही है, हो रहा है, पर्यायें है, फिर ये पर्यायें आयी तो कैसे आयी ? इसका समाधान यह है कि इस आत्मामे विभावरूप परिणमनेकी शक्ति है। जीव और पुद्गल यह विकाररूप उल्टा भी बन जाता है। तो इसमे इस प्रकारके अनियतपनेका स्वभाव भी पडा है। क्योकि विकार एक किस्मके नही होते। क्रोधकी स्थिति हुई [illegible]नकी हुई, नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य देव, इन गतियोकी भिन्न-भिन्न स्थितिया है और [illegible]न्न समयमे होती हैं वे स्थितिया यह सिद्ध करती है कि आत्मामे अ[illegible] [illegible]भाव है। देखिये—यह बात इतने शब्दोसे जाहिर हो जाती है कि द्रव्य[illegible] [illegible]ी है भी परिणामी होता है। तो जो परिणामी है वह तो है नियतस्व[illegible] [illegible]अ[illegible] मन होता है उस दृष्टिसे है वह अनित्यस्वभाव वाला, यो आत्मा[illegible] [illegible]भा है। तो यह आत्मा अनियतिनयसे अनियत स्वभाव वाला प्रती[illegible] [illegible]। ज[illegible] नियतस्वभावपर दृष्टि दे रहे थे तब यह विदित हो रहा था कि[illegible] मात्र हू। अब जबकि आत्माके इन परिणमनोपर दृष्टि दे र[illegible]

प्रतीत हो रहे है वहाँ इस तरह विदित होता है कि आत्मामे अनियतस्वभाव भी पडा हुआ है अर्थात् अनियत विभिन्न नानारूप परिणमनका स्वभाव भी पडा हुआ है। तो अनियति-नयसे यह अनियत विदित हुआ।

प्राकरणिक नियत और अनियत शब्द द्वारा वाच्य अर्थ—कुछ भाई लोग नियत और अनियतके सम्बधमे विवाद भी करते है कि जो भी पर्याय होनी है वही होगी, इसलिए यह नियत कहलाता है। पर यहाँ नियत और अनितयसे यह अर्थ नही लेना है। यहाँ अर्थ लेना है कि आत्मामे जो स्वभाव है वही रहता है, उसकी बदल नही होती। आत्मा आज चैतन्य है तो कल जड बन जाय, यह नही हो सकता। चाहे कितनी ही स्थितियाँ गुजरें आत्मा चैतन्यमात्र ही रहा था, रहता है, रहेगा, उसमे परिवर्तन नही होता, ऐसे आत्मस्वभाव नियत है। इस नियतस्वभाव आत्माको अनियतिनयसे देखिये— जब इस ओर दृष्टि देते है कि आत्मामे परिणतियाँ तो विभिन्न प्रकारकी हो रही है। यद्यपि आत्मसम्बधसे कुछ परिस्थितियाँ पौद्गलिक भी चल रही हैं तो भी आत्मामे स्वयका जो विपरीत परिणमन है वह तो स्वयका परिणमन है, वह पुद्गलका नही। जैसे इच्छा हुई, क्रोध हुआ, मान, माया, लोभादिक हुए, नाना विचार चले तो ये परिणमन किसके है? पुद्गलके नही, जीवके है। तो जीवमे ये नाना विभिन्न परिणमन प्रतीत हो रहे है, तो विदित होता है कि आत्मामे ऐसा भी स्वभाव पडा है कि यह विभिन्न नाना परिणमनोमे भी परिणमता रहे। यह बात आयी है वैभविक शक्तिके कारण। तो अनियतिनयसे आत्मा अनियत स्वभाववाला है अर्थात् नाना समयोकी नानारूप पर्यायोसे परिणमते रहनेकी इसकी प्रकृति है।

स्वभावनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब ऊपर जो दो नय बताये गए है नियतिनय और अनियतिनय, उनसे ही सम्बध रखने वाले दो नयोकी बात और कहते है—एक स्वभावनय और एक अस्वभावनय। यदि इन नयोसे इनका नाता जोडा जाय तो स्वभावनय का मेल है अनियतिनयसे और अस्वभावनयका मेल है नियतिनयसे स्वभावनयकी दृष्टिसे आत्मा स्वत सिद्ध है। आत्माका जो स्वभाव है, जो नियत है, चैतन्यमात्र है वह चैतन्यमात्र स्वभाव कबसे हुआ है, किससे हुआ है? तो इसका उत्तर यह मिलेगा कि अनादिसे है और अपने आप है। चैतन्यका स्वभाव किसी अन्य पदार्थकी कृपासे नही हुआ करता। उसमे उसका अपना स्वत सिद्धिस्वभाव है। आत्मामे जो चैतन्यस्वभाव है वह कहाँसे आया? अरे कहासे आया? यह प्रश्न उठानेकी गु जाइश भी तब थी जब कि आत्मा पहिलेसे हो और स्वभाव उसके बाद आया हो। तब तो कहा जाय कि आत्मामे यह स्वभाव किसकी कृपासे

आया है ? अरे स्वभावमात्र ही तो वस्तु है, चैतन्यस्वभाव ही तो आत्मा है। आत्माका चैतन्यस्वभाव आत्माके साथ है, सहज है। सहज कहते उसे है जो साथ ही उत्पन्न हो, साथ ही जिसका अस्तित्व हो। आत्माके साथ ही चैतन्यस्वभाव है। जबसे आत्मा है तबसे चैतन्यस्वभाव है। अनादिसे आत्मा है, अनादिसे ही चैतन्यस्वभाव है। तो यह चैतन्यस्वभाव स्वत सिद्ध है, स्वभावनयकी दृष्टिमे यह विदित हुआ।

स्वभावनयके अवगमका प्रभाव—जो स्वत सिद्ध होता है वह अनादि अनन्त होता है। जो अनादि अनन्त स्वत सिद्ध है वह नियत हुआ करता है। जो नियत अनादि अनन्त स्वभाव है वह अपने ही सहायपर होता है, किसी दूसरेकी सहायता पर नही होता। स्वभाव स्वसहाय है, यह बात तो निश्चित ही है। इसका कथन भी क्या करे लेकिन परिणमनो पर भी जब दृष्टि देते है तो परमार्थदृष्टिसे निरखने पर परिणमन भी अपने आपसे सिद्ध होता है। किसी दूसरे पदार्थसे परिणमन नही आता। तब फिर स्वभावकी बात स्वसहायतामे दृढ ही है। आत्माका चैतन्यस्वभाव स्वत सिद्ध है। स्वभावनयकी दृष्टिमे आत्माका परिचय इस प्रकार होता है, मैं स्वभावमात्र हू, अन्यरूप नही, अमुक लाल, अमुक चद, अमुक परिवार वाला, इज्जत वाला, जैसा कि कुछ लोगोने अपने आपको मान रखा है उन उपाधियो रूप मैं नही हू, मैं एक स्वभावमात्र हू—यह श्रद्धा जब दृढ होती है और इस ही रूप जब अपना अन्त आचरण होने लगता है, ऐसा ही जब उपयोग बना रहता है तो उसकी दुनिया अलौकिक होती है। जिसको तृप्ति, शान्ति सतोष, कल्याण सब कुछ प्राप्त हो गया है वही आत्मा पूज्य है, महान् है, आदर्श है। यही वास्तविक पुरुषार्थ है। स्वभावनयकी दृष्टिसे निरखनेपर हमे अपने आपके अलौकिक वैभवकी प्राप्ति होती है।

अब अस्वभावनयसे आत्माको देखा तो विदित हुआ कि जो आत्मा जिस योग्य है उसका जैसा उपादान है उस अनुकूल जैसा निमित्त प्राप्त होता है उस निमित्तयोगसे यह आत्मा उस प्रकारसे सस्कृत हो जाने वाला है। आत्मा मलिन पर्यायोमे है, मलिन परिणमनोके योग्य है, पर आत्मामे तो ये कषायादिक कर्मके उदयके निमित्तमे यह अपने आपको क्रोधी बनाता, मानी, मायावी बनाता, नानारूप अपना परिणमन बनाता। तो यह सस्कार कैसे बना, यह बात परिणमन कैसे बना ? मालूम होता है कि इस स्वभावरूप तो आत्मा नही है, मगर बन गया। कषाय करनेका आत्मा का स्वभाव नही है। मगर कषाय होती नही क्या आत्मामे होती है ? तो स्वभाव न होनेपर भी कषायपरिणमन होते है। यह अस्वभावनय बतला रहा है। जो स्वभाव नही है उस रूप भी परिणमन होता है। इस प्रसगमे

यह बात ध्यानमे रखनेकी है कि इस अस्वभावनयका सीमा लाँघकर उपयोग न होगा। जैसे आत्माका स्वभाव रूप, रस, गंधादिकरूप बनना भी नही है। तो वे भी हो जाये, आत्मामे ऐसा नही हो सकता। अपनी जातिका उल्लघन न करके विकारमे रहेगा। अपनी जातिका, स्वभावका उल्लघन न करके पदार्थ विकाररूप परिणमा करता है। देखिये—स्वभावनय और अस्वभावनय, इन दोनो नयोके होनेसे यह व्यवस्था बन रही है। जब यह कहा जायगा कि अस्वभावनयसे आत्मा स्वभावनयसे बाहर बन जाता है, कषायादिकरूप परिणम जाता है तो स्वभावसे जब बाहर बन गया यह तो रूप रस भी तो स्वभाव नही, उस रूप बन जाय तो स्वभावनय आकर इस उद्दण्डताको खत्म कर देता है। स्वभावनय कहता है कि आत्मा चैतन्यस्वभाव है तो यह मूर्त, अचेतनस्वभावरूप न बन सकेगा। तब एक शब्दमे कहा जाय तो क्या बात कही गई कि यह स्वभाव ही तिरोहित होकर कुछ विकाररूप परिणमन कर रहा है। तो विकार परिणमन सीमामे ही तो होगा। किसका विकार परिणमन ? जिसका विकार परिणमन है उसकी ही सीमा मैं तो विकार चलेगा। अन्य विपरीतरूप तो न हो जायगा ? चैतन्यस्वभावमे विपरीत रूप, रस, गध आदि नही हो सकते। वे तो अन्य हुए। अन्यमे और विकारमे अन्तर है। अन्य होता है बिल्कुल पृथक्, जिसका क्षेत्र भी पृथक्, बात भी पृथक्, परिचय भी पृथक्। और विकार होता है लगावमे। जैसे यह मित्र विकृत हो गया तो मित्र भी है और कुछ पृथक् भी है, उस स्थितिमे ही तो कहा जायगा कि मित्र विपरीत है, और जब इतना हो गया कि वह मित्र भी न रहा, जरा भी बात न रही, विपरीत क्या रहा ? वह अन्य हो गया, जैसे कि और लोग है। तो अस्वभावनयमे जो विकारकी बात आती है वह सीमाको लाघकर नही आ सकती। तो जो आत्मा जिस योग्य है, उसमे जैसी उपादान शक्ति है उसके अनुकूल निमित्तके योगमे नाना विकाररूपसे परिणमता है। यह बात अस्वभावनयसे विदित होती है।

कालनयसे आत्मपरिचयका प्रकार—अब बतलाते है कि कालनयसे आत्मा किस प्रकार है ? कालनय, इसका सम्बध समयसे है। इस नयमे यह दिख रहा है कि आत्मा अपने अपने कालकी प्राप्ति होने से फल पाता है, सिद्धि पाता है, परिणमन पाता है। लोकमें जैसे कहते हैं ना कि जब समय आयेगा तब काम बनेगा। जब जिस पर्यायका समय आयेगा उस समय वह पर्याय बनेगी। और बात भी यह एक दृष्टिमे यथार्थ है। कोई भी परिणति अपने समय पर बनती है। कल जो होगा, सो कल होगा जब जो होगा वह तब होगा। तो अपना

अपना काल प्राप्त होने पर सिद्धि होती है। काललब्धिकी बात मुख्यतया मोक्षके मार्गमे कही जाती है। जब काललब्धि होगी तब सम्यक्त्व मिलेगा, मोक्ष होगा, याने जब समय आयेगा तब मोक्ष होगा। एक नियम है कि जब जीवका ससार कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन रह जाता है तब जीव सम्यक्त्व पाने के योग्य होता है। जब इस बातको कोई यो घटाये कि जब जीव सम्यक्त्व पाने के योग्य हो रहा है तबके बाद उसका काल कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तनसे अधिक नही रह सकता। तो वहाँ काललब्धिकी बात आयी। तो अपने-अपने काल पर अपनी सिद्धि प्राप्त होती है। यह दर्शन बनता है कालनयकी दृष्टिमे।

विवक्षित दृष्टिके विषयको उस ही दृष्टिसे निरखनेमें विवादका अनवसर––जिस दृष्टि मे जो बात है वह बात उस दृष्टिमे ही लेना। यदि उसका एकान्त कर लिया जाय कि जिस समय जो पर्याय होनी है सो होती ही है, उसमे दूसरेका क्या सम्बन्ध ? निमित्त भी कुछ नही है। जब जो होना है सो होता है और जब कोई उन्हे तग करे तो फिर निमित्त शब्द ही शास्त्रोमे क्यो आया ? और निमित्तकी इतनी चर्चायें क्यो आती ? तो उत्तर वे देते है कि जिस समय जो परिणमन होता है उस समय जो सामने हाजिर हो उसको निमित्त कह डालते है और तब फिर यो प्रश्न किया जाता है कि कार्यके समय तो हाजिर बहुत-सी चीजे है। घडा बननेके समय ही कुम्हार भी है, गधा भी है, घोडा, बकरी आदि भी खडे है, और भी बहुतसे दर्शक लोग खडे है वे तो निमित्त नही पडते है। तो कहते है कि सामने जो हाजिर है उनमे जो अनुकूल निमित्त हो उन्हे निमित्त कह देते है। तो पूछते है कि भाई अनुकूल शब्दका अर्थ ही क्या हुआ ? बात जो तथ्यकी है उसको माने बिना गुजारा न चलेगा। अरे अनुकूलका अर्थ ही यह है कि जिस निमित्त सन्निधानको पाकर पदार्थ जिस प्रकार परिणम सकता है उसे पाकर पदार्थ उस रूप परिणम जाय। यह ही तो अनुकूलताकी बात है। तो कालनयकी दृष्टिमे जितनी बात देखी जाती है उतनी ही बात समझी जाय तो विवाद नही, पर उससे बाहरकी बाते भी करें और दृष्टि बनाये रहे कालनयकी तव उसमे विवाद जगता है। कालनयकी दृष्टिमे तो मात्र इतना ही विदित हो रहा है कि काललब्धिसे यह आत्मा अपने कालमे सिद्धि पाने वाला है। बस इतना ही कालनयमे निरखना चाहिये। बाकी विषय तो युक्तिके है, निर्णयके है। निमित्त क्या, उपादान क्या ? कैसे परिणमन होता है, उन सब बातोको इसमे न लपेटकर काललब्धिसे सिद्धि होती है, केवल इतनी बात कालनयसे समझना।

अकालनयमें आत्मपरिचयका प्रकार––अकालनयसे आत्माका परिचय किस प्रकार

होता है? अब यह बात कह रहे है। अकालनयका अर्थ है–काल नही, ऐसी दृष्टि। अकालनय से यह आत्मा समयकी आधीनता बिना सिद्धि प्राप्त करता है। यद्यपि समस्त पदार्थोंके परिणमनमे काल निमित्त होता है इतने पर भी परिणमनोको देखा जाय तो कालका परिणमन कालमें है और पदार्थका परिणमन पदार्थमे है। पदार्थका परिणमन समयकी आधीनता बिना हो रहा है क्योकि प्रत्येक पदार्थ अपनी-अपनी परिणतिसे ही परिणमता है। किसी की परिणतिसे किसी अन्य पदार्थकी परिणतिकी आधीनता नही होती। तो यो आत्मा समस्त परिणमनोमे चाहे शुद्ध परिणमन हो अथवा अशुद्ध परिणमन हो, प्रत्येक परिणमनोमे समयकी आधीनता बिना ही परिणम रहा है। यो इस अकालनयसे देखनेपर वस्तुकी स्वतन्त्रत का भान होता है और फिर किसी वस्तुका किसी वस्तुके साथ नाता नही दिखता, और जब सम्बध नही दिखता तो मोहका विनाश हो जाता है तो मोहके विनाशका उपाय मिलता है इस नयमे कि मैं अपने आत्माको देखूं कि परिणमनस्वभावके कारण यह अपने आपमे अपनी परिणतिसे परिणमता है, अन्य निमित्त अथवा अन्य द्रव्यकी आधीनताकी तो कथा ही क्या करे? जो सर्वपदार्थोंके परिणमनमे साधारणरूपसे निमित्त होता है, ऐसे काल की भी आधीनता बिना यह मैं परिणमन किया करता हूँ।

पुरुषकारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार----अब पुरुषकारनयसे आत्माका परिचय कराया जा रहा है। आत्मा जब-जब जिन-जिन सिद्धियोको प्राप्त करता है उनको यह अपने पुरुषार्थसे प्राप्त करता है। पुरुषार्थ क्या? जो परिणमनका साधन है अभेद दृष्टिमे स्वयं स्वयके परिणमनका साधन है ऐसे अभिन्न निजसाधन द्वारा, निजपरिणति द्वारा, निजशक्ति पौरुष द्वारा परिणमन किया करता है। पुरुषकारनयसे यह आत्मा जिस-जिस रूप भी परिणम रहा है वह अपने पौरुषसे परिणम रहा है। किसी अन्य पदार्थके श्रमसे या साधनसे कोई कुछ नही निकलता है। तो पुरुष कारनयसे यह आत्मा अपने आपमे अपने ही साधनसे परिणम रहा है और विशेषतया आत्मसिद्धिकी ओर जब दृष्टि दी कि आत्माको जो प्राप्ति, मुक्ति, सिद्धि, उपलब्धि होती है उसमे क्या कोई भाग्य काम करता है या अन्यका पौरुष? तो उसका उत्तर इस नयमे स्पष्ट मिलता है। मोक्ष भाग्यसे नही मिलता, किसी अन्य जीवके पौरुषसे नही मिलता, किन्तु जीव स्वय अपने आपमे अपना पौरुष करे तो उसे मुक्ति प्राप्त होती है। अपना पौरुष क्या? आत्मा जिस स्वभावरूप है उस स्वभावरूपमे श्रद्धा होना, उस स्वभावरूपमे ज्ञान होना और उसी स्वभावरूपमे आचरण होना, बस इस दर्शन, ज्ञान, आचरणके महान् पौरुषसे आत्माको मुक्तिकी प्राप्ति होती है।

मुक्तिका अर्थ और पौरुष—मुक्तिका अर्थ है छुटकारा। किससे छुटकारा पाना ? परभावसे परपदार्थसे, देहसे, कर्मसे, कषायोसे छुटकारा पानेका नाम मुक्ति है। तो छुटकारा तब ही मिल पायेगा जब कि यह श्रद्धामे आये कि मैं देह, कर्म, कषाय आदिकसे निराला, अनादि अनन्त चैतन्य स्वभावमात्र हू, यह श्रद्धामे आये और इसी प्रकारका अपना उपयोग बनाये और इसही मे अपने आपको रत करे तो इस पौरुषसे आत्माको मुक्तिकी प्राप्ति होती है। तो परमकल्याणका लाभ आत्माके पुरुषार्थसे ही होगा, कर्मसे नही, भाग्यसे नही। वल्कि भाग्यके फूटनेसे, कर्मोके नाशसे परमकल्याण प्राप्त होता है। तो पुरुषकारनयके प्रयोगके साधनका परिणाम यह होता है कि आत्मामे सदाके लिए पवित्रता होना, ज्ञानानन्द रहना, पूर्ण विकसित होना कभी सकटोमे न आना यह सब अपने पुरुषार्थसे होता है, किसी दैवभाग्यसे नही। ऐसा जानकर यह प्रयोग करना चाहिए कि अपने आपके स्वभावका दर्शन, श्रद्धा, ज्ञान और आचरण करें। यह काम सुगम हैं, अपने द्वारा शक्य है। जो वस्तु पर है, उसे अपना न मानें तो इसका क्या बिगड रहा है ? जो वस्तु पर है उसकी चिंता न रखे, उसमे लगाव न बनाये, उसे दिलमे न वसाये तो इस आत्माका क्या बिगाड है ? बल्कि यह सुधरता है। तो जब अपने स्वरूपका दर्शन ज्ञान, श्रद्धान और आचरण करें तो इस पुरुषार्थ से आत्माको परमकल्याणकी सिद्धि होती है।

दैवनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब दैवनयसे आत्मपरिचय कराया जाता है। ससारमे जितने भी कार्य होते हैं--सम्पदा मिलना, इज्जत मिलना, आराम मिलना, विषय-साधन मिलना आदिक, जितनी भी इष्टसिद्धियाँ लोकमे मानी जाती है वे सब दैवोदयसे प्राप्त होते है। ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक सम्बध हे कि उस प्रकारकी सातावेदनीय आदिक पुण्य-प्रकृतियोका उदय आये तो ऐसे ही साधन स्वय जुटते हैं, स्वय ऐसी बात बनती है कि यह जीव साता प्राप्त करता है और मनमे हर्ष मानता है। तो लौकिक जितने भी कार्य है वे श्रमसे न होगे किन्तु दैवसे, भाग्यसे होगे। यहा जो विषमता नजर आती है कि कोई सुखी है, कोई दुखी है। कोई पुरुष बहुत ऊँचा अध्ययन करके भी अधिक लाभ नही पाता। जैसे बहुतसे इजीनियर थोडी भी सर्विसको तरसते है और कितने ही पुरुष ऐसे है कि विद्याध्ययन अधिक नही किया, फिर भी घरमे श्रीमान् बने बैठे है। कोई ज्ञानी है, कोई कम ज्ञानी है, ये जो नाना प्रकारकी विषमताये है, ये दैवके अनुसार है। कोई चाहे कि हम बहुत अधिक श्रम करें और व्यापार आदिकमे लाभ उठा लें तो यह श्रमपर आधारित नही है, वह पूर्वकृत सुकृतपर आधारित है। तो लौकिक कार्योमें मुख्यता भाग्यकी है और कल्याणप्राप्तिमे मुख्यता

पुरुषार्थकी है। यद्यपि किसी न किसी प्रकारसे पौरुष लौकिक कार्योमे भी सिद्ध होता है। जैसे कि जिस पुण्यके उदयसे लौकिक लाभ हुआ है वह पुण्य कैसे बँधा ? तो इस जीवने शुभ-परिणाम किया तो किसी न किसी प्रकार पुरुषार्थ ही तो किया था। जीव अपने भावोंमे कुछ विशुद्धता लाये, मदकषाय वाला बने, यही उसका पौरुष है। तो यद्यपि किसी रूपमे पौरुष था, पर वर्तमानमे देखा जाव तो जो लौकिक लाभ मिल रहा है वह वर्तमान पौरुषसे नही, किन्तु पूर्वकृत सुकृतसे मिल रहा है।

धर्मभावमें ही शांतिकी संभूति—कुछ ऐसा भी दृष्टिगत होता है कि कोई पुरुष परिणाम तो बहुत गदे रख रहा, कषायीपनेका काम कर रहा, बूचडखाना खोले हुए है, लोकमे अनेक लोग उसकी इज्जत भी करते है। और कहो सरकारी कामोमे उसकी पहुंच हो, धन वैभव भी उसके खूब बढ रहा हो, विषयोके साधन भी अच्छे जुट रहे हो तो ऐसे व्यक्ति को देखकर मनमाने लोग ऐसा कहने लगते है कि ये पुण्य पाप कुछ चीज नही है, अथवा धर्म करनेकी बात तो एक बहमभरं की है, जिस तरह भी बने उस तरह यहाँ विषयोकी मूर्ति करो। देखो ये लोग बूचडखाने खोलकर भी बडे आरामसे रह रहे है, पर वे तो धन वैभव सतान आदिकसे रहित है। ये लोग तो धर्म करते है फिर भी बडी तकलीफमे है। तो धर्म क्या है, बहम है, इस प्रकारका कुछ लोग भ्रम करते है, लेकिन इस नयसे आँखे खुल जाती है। लोकमे जितने भी इष्ट समागम मिलते हैं वे भाग्यानुसार मिलते है। इनमे वर्तमानका पौरुष काम नही कर रहा है। हाँ, जिस पुरुषको धर्मकार्यमे लगकर भी क्लेश होता हैं तो वह पूर्वकृत पापकर्मका उदय है। उसे पूर्वकृत पापकर्मका उदय भोगना पड़ेगा, मगर वर्तमानमे उसका भाव विशुद्ध बन रहा है अत उस हीनतासे वह दु ख भी नही मानता तथा आगेके लिए अपना सुन्दर भविष्यका निर्माण भी करता है, और एक जीवघात करने वाला पुरुष भले ही पूर्वकृत पुण्यके उदयसे कुछ लौकिक वैभव पा चुका हो, लेकिन वर्तमानमे भी वह भीतर क्षुब्ध रहता है और उसका भविष्य भी बुरा बनता है। तो इन लौकिक कार्योमे भाग्यकी प्रधानता होती है। तो दैवनयसे यह विदित होता है कि आत्मा प्रयत्न बिना पुण्ययोगसे इष्टसिद्धि प्राप्त कर लेता है। ऐसी इष्ट बातको निरखकर कोई फूलनेकी बात नही है। ये सब असार बाते हैं। पुण्योदय आया तो क्या ? वह भी विकार है, पापोदय आया तो वह भी संकट है। पुण्य और पाप दोनोसे रहित जो आत्माकी पवित्र शुद्ध निराकुल दशा रहती है वह ही श्रेष्ठ है। इस नयसे जो शिक्षा मिलती है वह भी आत्मकल्याणमे प्रेरणा देने वाली है।

पारतन्त्र्यनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब बतला रहे है कि पारतन्त्र्यनयसे आत्मा का कैसा परिचय होता है ? पारतन्त्र्यनय अर्थात् परतन्त्रताकी दृष्टि । इस नयमे प्रतीत होता है कि यह आत्मा कर्मोदयजन्य भावोके कारण परतन्त्रताका भोक्ता हो रहा है । कोई अनिष्ट बात भोगनेमे आ रही है तो वहाँ भी यह आत्मा कर्मोदयसे परतन्त्र होकर ही तो भोग रहा है । जैसे कहते है कि यह वैभवहीन हो गया, भूखा भी रहता है, इसको बड़ी पीडा है । अनेक प्रकारके सकट आ गए, परिवारके लोग भी गुजर गए । यह बडी पराधीनतामे है । तो ऐसा फल उसे क्यो भोगना पड रहा है ? कर्मोदयसे कारण । और यदि कोई पुण्योदयमे विषयोमे परतन्त्र बन रहा है, विषयभोगोमे भी तो जीव परतन्त्र रहा करता है । बल्कि जीव दु खोसे भी अधिक परतन्त्र है सुखोमे । जिस पदार्थसे जीवने अपने सुखकी आशा रखी हो उसकी कितनी अधिक आधीनताये हो जाती हैं । वहाँ भी जो कुछ विषय भोगने पड रहे है वे भी तो परतन्त्रता से भोगे जा रहे है । वह परतन्त्रता भी कर्मोदयजन्य भावोके कारण मिल रही है । तो यह जीव इस ससारदशामे परतन्त्र है । नाना प्रकारके इष्ट अनिष्ट भोगोको भोगना पडता है । यो जीव परतन्त्र है—यह पारतंत्र्यनयसे प्रतीत होता है । यह जीव देहोमे बध बधकर कितना तकलीफ पा रहा है, कितना परतन्त्र हो गया ? जीव शरीरके स्वरूपसे न्यारा है, पर उस न्यारेपनसे कुछ लाभ नही उठा पा रहा कि थोडी देरको यह रागसे दूर हो जाय, कष्टोसे छुटकारा पा जाय ? कितना परतन्त्र है यह जीव ? बाह्य समागमोके मोह, रागादिके कारण यह जीव कितना परेशान हो गया है ? गायका थोडे समयका ही जाया हुआ बछडा कोई पुरुष गोदमे लेकर आगे चलता है तो गायको भी पीछे-पीछे भागना पड़ता है । कितना परतन्त्र हो गया यह जीव । तो जह जीव मोहसे, रागसे, द्वेषसे परतन्त्र है । उस परतन्त्रताका विकटरूप बन गया है । भावमे परतन्त्र हो ही गया, पर देहसे भी परतन्त्र बन गया । देहसे बन्धनमे पड गया । तो पारतन्त्रनयसे इस जीवकी परतन्त्रता मबको दृष्टतगत होती है ।

स्वातन्त्र्यनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—स्वातन्त्र्यनयसे यह जीव स्वतन्त्र प्रतीत होता है । प्रत्येक पदार्थ स्वके ही तन्त्र हैं । परमार्थदृष्टिसे प्रत्येक स्थितिमे प्रत्येक पदार्थ अपने परिणमनसे ही परिणमता है । मान लो कुछ स्थितिया ऐसी रख लो, जहाँ परतन्त्रता अधिक विदित हो वहा वस्तुस्वरूपसे तो परिणमन स्वतन्त्रताका हो रहा है । जैसे ज्वर, खासीसे कोई पुरुष पीडित है तो वहा आत्मामे कितना काम बन रहा ? खेद मान रहा । और देहमे कितना काम बन रहा ? जहा जो कुछ है, गर्मी है, कफ है, अटक है, जो बात जिस रूप बन रही है वह

पुद्गलकी परिणति है। तो जीव जब खेद मानता है इस स्थितिमें भी क्या शरीर और जीव दोनो मिलकर खेद मान रहे हैं ? केवल जीव खेद मानता है। और यह जीव खेद मानता है तो अपनी ही विकारपरिणतिसे मानता है या शरीरकी परिणति लेकर मानता है ? अपनी ही विकारपरिणतिसे मानता है। तो देखो इस स्थितिमे भी यह जीव स्वतंत्रतासे ही खेद माननेकी परिणति कर रहा है। और परमार्थतः तो जीवका स्वातंत्र्य परिणमन तो एक ज्ञाताद्रष्टा रहनेका है। उस स्थितिमे तो प्रकट ही कोई कुछ सम्बंध नही रख रहा। तो यों जब निरखा तो विदित हुआ कि सभी जीव स्वतन्त्रताके भोक्ता है। यदि कोई पुरुष किसी कुटुम्ब या मित्रके स्नेहसे कुछ क्षोभ मचा रहा है तो वह स्वतंत्रतासे क्षुब्ध हो रहा है। किसी दूसरेके कारणसे दूसरेकी तरकीबसे नहीं। अपने आपमे अपनी कल्पनायें करके क्षुब्ध हो रहा है। तो वह भी स्वतंत्रताका ही तो भोक्ता हुआ।

लौकिक प्रसङ्गोंमें भी स्वतन्त्रताका दर्शन—लोकमे यो लगता है कि राजा तो मालिक है। प्रजा उसके अधिकारमे है ? राजा किसीको दण्ड देता है, किसीको फांसीका हुक्म देता है, जल्लाद फांसी लगाता है तो मालूम होता है कि वह फासीपर लटकाया जाने वाला आदमी बहुत परतत्र है। लेकिन वहा भी अगर प्रत्येक वस्तुका स्वरूप निहारे तो प्रत्येक वस्तुका स्वतत्र ही स्वरूप विदित होता है। फाँसी दिये जाने वाले आदमीमे जो बात बनी वह उसकी स्वतंत्रतासे, जल्लादमे जो बात बनी वह उसकी स्वतत्रतासे बनी और राजामे जो बात बनी वह राजाकी स्वतंत्रतासे बनी। और मोटेरूपसे मान लो कि उसका उस भव से मरण हो गया, वह आगे गया, वहा जीवन पाया। सत्ता तो उसकी नही मिटी। तो किसीको कोई मिटा तो नही सकता। लोकव्यवहारवश यह सब विदित हो रहा है कि यह इसके आधीन है, लेकिन कोई पदार्थ किसी वस्तुके आधीन नही है। यों स्वतंत्रताकी दृष्टिसे आत्मा अपनी शक्तिके परिणमनके कारण स्वतत्र है और स्वतत्रताका भोक्ता है, यो विदित होता है।

कर्तृनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—यह जीव अपने आपके परिणमनका कर्ता प्रतीत होता है। वस्तुतः कर्ता नाम तो कहना भी न चाहिए। कर्तापन क्या है ? है और होता है। इतनी ही तो बात वस्तुमे पायी जाती है और इसी कारण यदि कोई १०-५ मिनट यो ही बोलता रहे या लिखे कि जिसमे सिवाय "है" और "होने" के कोई तीसरी क्रिया न लायी जाय तो अपना वह लेख लिख सकता है। वह पुरुष जाता है, इसका अनुवाद बन जायगा—उस पुरुषका गमन होता है। 'है' और 'होता है', ये केवल दो ही क्रियाये रखकर यदि कोई

बोलना चाहे या लिखना चाहे तो बराबर बोल या लिख सकता है, मगर 'है' और 'होता है' ये दो बाते बिल्कुल न आयें और कोई लेख बनाये तो नही बना सकता है। तो ये दो बाते ऐसी अनिवार्य है कि वे होती ही है। तो यो पदार्थोंको भी देखे तो इन दो रूपोमे देख लें—'है' और 'होता है'। यहा करनेका काम क्या ? जीव है रागरूप हो रहा है। इसमे करने की बात क्या ? और देखिये—कोई पदार्थ किसी दूसरे पदार्थका करने वाला होता नही, क्योकि सत्ता न्यारी न्यारी है। और पदार्थ स्वय अपने आपमे करे क्या ? तो पदार्थ है और परिणमनस्वभावके कारण उसमे परिणमन होता रहता है। यो परमार्थत कर्तापनकी बात कही भी नही है। अज्ञानी जीव भी परका कर्ता नही है। अगर अज्ञानी जीव परका कर्ता बन जाय तो इसका अर्थ यह हो गया कि उसमे भगवानसे भी अधिक शक्ति आ गयी, याने प्रभु किसी परको नही कर सकते और इस अज्ञानीने देखो परको कर डाला। वस्तुस्वरूपमे ही यह बात नही है कि कोई पदार्थ किसी परका कुछ कर सके। अज्ञानी जीवने परपदार्थको करनेका विकल्प किया, अज्ञानीमे परके कर्तृत्वका विकल्प हुआ। इस ही बातको इन शब्दो मे कहा जाता है कि अज्ञानी परका कर्ता बन रहा है। तो कर्ता कोई किसीका नही है। होनेकी बात है। अब इसी बातको जब हम लौकिक भाषामे बोलते हैं तो कहते है कि जीव अपने परिणमनरूप परिणमता रहता है, होता रहता है। तो कर्तृत्वनयसे जब आत्माको निरखते हैं तो वहा यह विदित होता है कि यह आत्मा रागादिक परिणामोका कर्ता है। जीव बाह्यका कर्ता नही है, बाह्यका करे क्या ? और अपनेमे भी करे क्या ? अपनेमे बात होती रहती है। पर जो बात स्वभावमे नही पडी है उस बातके होनेको कर्ता शब्दसे विदित कराया जाता है। तो यह आत्मा कर्तृनयसे रागादिक परिणामोका कर्ता है—यह विदित होता है।

अकर्तृनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—प्रत्येक पदार्थ है, परिणमता है। इस स्वभाव-के बलपर जब आत्मामे निरखा जाता है तो वह "है" और परिणमता रहता है। प्रत्येक पदार्थ उस ही विधिमे परिणमता है जैसा कि उसमे स्वभाव पत्ता है। आत्मामे स्वभाव है चैतन्य, चेतनेका प्रतिभासनेका। अतएव आत्मा समस्त पदार्थोंका प्रतिभासक है, साक्षी है, न कि वह किन्ही विभावोका करने वाला है। कर्तृनयमे जो यह बात देखी थी कि निमित्तका सन्निधान पाकर आत्मा रागादिक परिणामोंका करने वाला है तो उस कर्तृनयकी दृष्टिमे निमित्तनैमित्तिक भावपूर्वक जो भाव हुआ करता था, कर्तृनयमे जाना गया था, उन भावोका यह आत्मा अकर्तृनयकी दृष्टिमे कर्ता नही है, किन्तु उन भावोका भी साक्षी ही यह आत्मा

है । आत्मा है चैतन्यस्वरूप, उसका काम चेतनेका है । तो जैसे बाह्यपदार्थका जो जो ज्ञेयाकार परिणमन है अर्थात् ज्ञानने उन पदार्थोंके अनुरूप या समझनेके अनुरूप जो आकार बनाया है उस आकारका जैसे यह साक्षी है अथवा बाह्यपदार्थोंका मात्र साक्षी है यो ही आत्मामे निमित्त सन्निधान पाकर होने वाले जो रागादिक भाव है उन भावोका भी यह साक्षी है। जैसे बाह्यपदार्थ बाह्य है, अपने प्रदेशोसे निराले हैं, पर है, उनका यह साक्षी , तो रागादिक भाव भी आत्माके स्वभावसे निराले है, प्रदेशसे निराले तो नही, किन्तु प्रदेशमे स्वभावत है कहाँ ? वे तो नैमित्तिक भाव है अतएव वे पर है और भिन्न है । उन भिन्न परभावोका भी यह आत्मा साक्षी होता है, किन्तु कर्ता नही होता । तो अकर्तृत्वनयमे आत्मा साक्षी दृष्टगत हुआ ।

भोक्तृनयमें आत्मपरिचयका प्रकार--अब भोक्तृनय और अभोक्तृनयकी बात कह रहे है । भोक्तृनयकी दृष्टिमें आत्मा सुख दु ख आदिकका भोक्ता होता है । किसे भोग रहा है यह जीव ? सुख और दु खको । और जब यह जीव सिद्ध हो जाता है तो भोक्ता है आनन्दका । इस सम्बधमे सत्कार्यवादीके सिद्धान्तमे एक प्रसंगमे यह भी बताया है कि आत्मा कर्ता तो नही, किन्तु भोक्ता है । उनकी दृष्टिका अगर समन्वय किया जाय तो इस तरह किया जा सकता है कि आत्मामे जो रागादिक परिणाम होते है उनका यह स्वतंत्र कर्ता नही है क्योकि वे प्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर होते है । पर जो रागादिक भाव हुए और उनके अनुरूप जो सुख दु ख परिणाम हुए उन परिणामोंका अनुभवने वाला तो यह जीव ही है । उसे प्रकृति या अन्य कोई न भोग जायगा । तो जैसे उनके दर्शनमे आत्माको कर्ता नही माना किन्तु भोक्ता मा ा तो मालूम होता है कि भोगनेका सम्बध विशेष समीप का है । जैसे दर्पणमे किसी चीजकी छाया आ यी तो छायाके होनेमे दर्पण स्वतंत्र नही है । चीज सामने आयी तो छाया बन गई, ची हट गई तो छाया भी हट गई । तो छायामे आधीनता दर्पणकी नही हुई । अब उसका अनुभवन कौन करेगा ? छायारूप परिणमने की बात तो दर्पणमे ही होगी ना । इसी तुलनामे यह कहा गया कि यह जीव कर्ता नही है, भोक्ता है, जैनदर्शनके अनुसार क्तृनयमे कर्ता है और अक्तृनयमे अकर्ता है । भोक्तृनयमे भोक्ता है और अभोक्तृनयमे अभोक्ता है । जीवमे जो सुख दु ख आदिक परिणाम होते है उनके भोगने वाला यह जीव है । उन सत्कार्यवादियोके दर्शनसे अथवा इनकी इस दृष्टिसे यह शिक्षा भी ले सकते है कि रागादिक परिणामोका करने वाला तो और है निमित्तदृष्टिसे, पर भोगने वाला खुद आत्मा है । तो भोगना खुदको पडा और भोगना एक महत्वकी बात है । करे

और भोगे। करनेमे तो कोई भार नही पर उसे भोगे यह जीवके लिए भार है। भोक्तृनय की दृष्टिमे यह बात विदित हो रही है कि सुख दु ख आदिक परिणामोका भोगने वाला यह जीव है। ये सुख दु ख किसके फल है? परमार्थत जीवकी परिणतिके ही फल है और निमित्त-दृष्टिसे ये पुद्गलकर्मके फल है। कर्मका उदय होनेपर ऐसी बातें हुआ करती हैं, अत यह पुद्गलकर्म का फल है। ऐसी बातोको देखा जाय तो व्यवहारसे यह जीव पुद्गलकर्मके फल को भोगने वाला है और अशुद्ध निश्चयसे यह जीव सुख दुःख आदिक परिणमनोका भोगने वाला है, किन्तु परमार्थदृष्टिसे जीवमे सुख दु ख परिणमन ही नही विदित होते, एकमात्र चैतन्यस्वरूप ही विदित होता है, अतएव वहाँ भोगनेकी बात ही नही उठती। पर भोक्तृनय की दृष्टिमे दो नयोकी अपेक्षासे अशुद्धनय और व्यवहारनय दो नयोकी अपेक्षासे दो उत्तर मिलते है। व्यवहारसे तो पुद्गल कर्मोके फलका भोगने वाला है और निश्चयनयसे आत्माके सुख दु ख आदिक परिणमनका भोगने वाला है। तो यो भोक्तृनयसे आत्मा भोक्ता प्रतीत होता है।

अभोक्तृत्वनयमे आत्मा सुख दु ख आदिक का भोक्ता नही है किन्तु केवल साक्षी है। जैसे अकर्तृत्वमे यह जीव रागादिक परिणामोका करने वाला नही किन्तु साक्षी है, यह विदित हुआ यो ही, अभोक्तृनयमे यह जीव सुख दु ख आदिकका भोगने वाला नही किन्तु साक्षी है। सुख दु ख है उसका भी ज्ञाताद्रष्टा रहता है यह जीव। जो जीव सुख दु खका ज्ञाता नही रह सकता वह मलिन है और सुख दु खमे अपने आपको एक कर लेता है। यो पर्यायोमे जिनको स्वकी बुद्धि है उनकी दृष्टि मिथ्या है। ज्ञानी जीव सुख दु.खका साक्षी है किन्तु भोगने वाला नही और कुछ अन्त परमार्थदृष्टि रखी जाय और भोगनेकी बात सोची जाय तो वहाँ यह विदित होगा कि परमार्थसे तो यह जीव अपनी अर्थपर्यायको अनुभवता है जो जीवमे जीवके स्वभावमे अर्थपर्याय बन रही है। चैतन्यका ही जो सहजपरिणमन बन रहा है उसे ही अनुभवनेकी बात है जीवकी। बाह्यतत्त्वोके भोगनेकी बात जीवमे नही पडी हुई है। अभोक्तृनयकी दृष्टिमे यह जीव कर्मफलका अथवा सुख दु ख आदिक परिणामोका भोक्ता नही है।

क्रियानय और ज्ञाननयकी सापेक्षता बिना किसीके एकान्ताग्रहमें सिद्धिसे पराङ्मुखता—अब एक विषयप्रसग ऐसा आ रहा है कि जिसका काम भी बहुत पडता है क्रिया और ज्ञानकी बात। कोई लोग कहते हैं कि मोक्ष क्रियासे होगा। शुद्धतासे रहे, हाथ पैरकी

प्रवृत्ति ठीक रखे; व्रत, तप, दान संयम आदिक खूब करे तो ये ही बाते मोक्षमे ले जायेंगी, किन्हीका यह एकान्त रहता है कि क्रिया तो जडकी है, शरीरकी है। मुक्ति तो ज्ञानसे मिलेगी। इन दो विवादोके बीच अगर कोई भी एकन्त कर लिया जाय इस समय जैसे कि ज्ञानसे ही मुक्ति मिलेगी और क्रियाकी ओरसे रहे बेखबर, व्रत तप आहिकमें रखे निरादरता तो उसकी सिद्धि क्या बनेगी? नाम तो ज्ञानका रखेगा और समय-समयपर ज्ञानकी बाते कहकर अपने दिलको बहलायेगा। पर प्रवृत्ति वैराग्यके प्रयोगमे प्रमादी रहेगा। और जिसने क्रियानयका एकान्त किया है वह क्रियाकी ओर ही दृष्टि रखेगा, ज्ञानस्वभावकी ओरसे तो बेसुध रहेगा। तो ऐसे क्रियाके एकान्ती भी क्या लाभ उठायेंगे?

क्रियानयमें आत्मपरिचयक प्रकार—क्रियानय व ज्ञाननयके सम्बधमे जानना होगा कि क्रियानयसे क्या बात भाली जाती है और उसका कितना उपयोग है? ज्ञाननयसे क्या समझा जाता है और उसका कितना उपयोग है? क्रियानयसे यह प्रतीत होता है कि आत्मा क्रिया, व्रत, तप, चारित्र आदिकसे सिद्धि प्राप्त करने वाला है। बहुत विषयकषायोके पकमे फँसा हुआ यह जीव अनादिसे किस तरफका उपयोग बनाये रह रहा है, यह बात यहाँ अपरिचित नही है। सभी समझते है कि इस जीवने अनादिसे लेकर अब तक परतत्त्वोकी ओर, विषयोकी ओर ही अपना लगाव रखा, उससे अलग होकर कुछ सोचा ही नही, ऐसे पुरुष इस लगावसे छूटकर शुद्ध ज्ञानानुभवमे कैसे आये? उसके लिए जब वे सही यत्न करेंगें तब उनकी वृत्तियोमे अन्तर आ जायगा। उस समय अव्रतोका पापक्रियाका भग होगा और इसका आधार व्रत, क्रिया, चारित्र आदिकका बनेगा। जैसे एक थोडा स्थूलरूपसे समझ ले कि कोई व्यक्ति ऐसा है कि कोई व्यक्ति ऐसा है पूजा, दान, व्रत, तप आदिकमे बहुत लग रहा है और रहता है घरमे ही, तब उसकी जिन्दगी किस प्रकारकी बनती है? भले ही वह थोडा अपना दिल बहला ले, कुछ ज्ञानकी बात कहकर या सीखी हुई बातें सुनाकर, लेकिन उसका जीवन अहर्निश किस प्रकार रहता है, सो यहाँ परख सकते है। तो ऐसे पुरुषोको आवश्यक है कि क्रिया व्रत, तप आदिककी ओर आये। जब ज्ञानमे वृद्धि होती है, सत्यज्ञान की ओर प्रगति होती है तो उसकी किसी न किसी अशमे चारित्रमे भी प्रगति होनी चाहिए। विषयकषाय जैसी विडम्बनाओसे छूटनेका उपाय व्रत तप आदिकमे प्रवृत्ति करना है। दान, भक्ति आदिकमे उपयोग का लगाना है, रमाना है। इन उपायोंसे वह विषयकषायोके घातसे बचेगा।

दृष्टान्तपूर्वक क्रियानय व ज्ञाननयकी उपयोगिता का दिग्दर्शन—जैसे युद्धस्थलमे

योद्धाओको दो प्रकारके उपकरण रखने की आवश्यकता होती है—एक तो शस्त्र और एक ढाल । चाहे इनके जमाने-जमानेमे और-और तरहके रूप रख लिये जाये, लेकिन इन दो के प्रयोगकी जरूरत अवश्य रहती है । ढाल—याने दूसरेके प्रहारका बचाव करनेका साधन और शस्त्र—याने दूसरे पर प्रहार कर सकनेका साधन । यदि प्रहारका साधन ही रखे और बचावका साधन न रखे तो उस सुभटका गुजारा न चलेगा और केवल बचावका ही साधन रखे, प्रहारका साधन न रखे तो युद्धमे जानेका प्रयोजन क्या रहा ? तो इसी प्रकार समझिये कि क्रियानयमे जो कुछ बताया जाता है वह तो कर्मोसे युद्ध करने अवसरमे ढालका काम करता है और ज्ञाननयसे जो कुछ बताया जायगा वह प्रहारका काम करता हैं । प्रहार और बचाव—-इन दो के बिना प्रगति न हो सकेगी । तब समझिये कि क्रियानय भी कितना उपयोगी है ? क्रियानयकी दृष्टिमे यह विदित होता है कि आत्मा व्रत तप चारित्रआदिकसे सिद्धि प्राप्त करता है । इससे दूर रहकर सिद्धि नही पा सकता । और इन्ही व्रत तप आदिक के करनेमे और इनके विश्लेषणमे और इनकी पद्धतिमे ऐसी विशदता आती है ज्ञानीके कि वही निश्चयक्रिया अन्त क्रियाकी ओरका साधन बन जाती हैं । तो क्रियानयमे व्रत तप चारित्रादिकसे सिद्धिकी बात दिखती है, वह यथार्थ है ।

ज्ञाननयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब ज्ञाननयकी बात निरखिये ज्ञाननयकी दृष्टिमे आत्मा ज्ञानसे ही सिद्धि प्राप्त करने वाला है । सिद्धि कहते किसे हैं ? साधना, प्राप्ति, लाभ, किसका लाभ करना ? कैवल्यका । आत्मा जैसा है केवल उतना ही रह जाय बस यही सर्वोत्कृष्ट सिद्धि । यह ससारीजीव तो विपत्तिमे पडा हुआ है जो बाह्यपदार्थोके मेलसे सिद्धि समझता है, लेकिन बाह्यपदार्थोके सम्पर्कमे न सिद्धि अब तक हुई, न कही होगी बल्कि विडम्बना ही मिलती है । तो सिद्धिका अर्थ ही यह है कि ज्ञान, ज्ञान रह जाय, केवल जाननहार आत्मा बन जाय उसे सब सिद्धि मिल गयी । तो आत्मा केवल जाननहार बने इसके उपाय मे करना क्या होगा ? भेदविज्ञान । और केवल जाननकी स्थितिके लिए ज्ञानस्वरूपका परिज्ञान । जब यह ज्ञान अन्य सबका जानन छोडकर केवल जाननेके स्वरूपमे ही लगता है तो वहा जानने वाला भी ज्ञान हैं और जाननेमे जो आया वह भी ज्ञान है, और वह ज्ञान भी वह स्वय ज्ञान है । तो यह ज्ञान स्वय ज्ञान है । ज्ञानके अलावा अन्य किसीका करने वाला ही कहा है ? तो यह ज्ञान जब ज्ञानस्वरूपमे मग्न होता है तो ज्ञानकी स्थिति प्रगति इतनी विशद होती जाती है कि वहा ज्ञान ज्ञान ही रह जायगा, जो रागद्वेषादिक कुछ मिलेजुले आ रहे थे वे सब हट जायेंगे । उन विभावोसे हटते हुएमे यही आत्माको सिद्धि प्राप्त हुई

कहलायगी, तो ऐसी सिद्धि, जिसका नाम मुक्ति भी है।

सिद्धि और मुक्तिकी अविनाभाविता होनेपर भी सिद्धिके मर्मकी विशेषता—सिद्धिमे तो पानेकी बातकी मुख्यता है और मुक्तिमे छूटनेकी बातकी मुख्यता है। पाना और छूटना ये दोनो ही भरे पडे है। जो बाह्य पदार्थ है उनसे छुटकारा हो और जो निज तत्त्व है उस का लाभ हो। ये सिद्धि और मुक्ति दोनो पर्यायवाची शब्द क्यो बन गए कि आत्मलाभ और कर्मयुक्ति, विभावमुक्ति, परमुक्ति, इन दोनोका परस्पर अविनाभाव सम्बन्ध है, पर मुक्ति हुए बिना आत्मलाभ नही। आत्मलाभ हुए बिना मुक्तिलाभ नही। तो ज्ञाननयकी दृष्टिमें यह विदित हुआ कि आत्मा ज्ञानसे ही सिद्धि प्राप्त करने वाला है। ज्ञान न हो तो अन्य क्रियायें कितनी ही हो उनसे क्य सिद्धि होगी? खुदका लाभ होना, खुदमे खुदका मिल जाना, खुदमे खुदका समा जाना, इसके अतिरिक्त और कौनसी चीज उत्कृष्ट कहलायेगी? क्योकि जगतमे सार नही, और कैसा भी यह जीव यहाँ बन जाय, पर कही भी अन्यत्र सार न पायेगा। तो आत्मा विवेकसे (ज्ञानसे) ही सिद्धि प्राप्त करने वाला है। यह रहस्य ज्ञान-नयकी दृष्टिमे विदित होता है।

व्यवहारनयमें आत्मपरिचयका प्रकार—अब अध्यात्मविषयके मूलभूत नयोकी दृष्टिमे आत्माका परिचय किस-किस प्रकार होता है? इस प्रसंगमे अब प्रसिद्ध चार नयोकी बात चलेगी, दो युगलोकी बात चलेगी। पहिला युगल है व्यवहारनय, निश्चयनय और दूसरा युगल है अशुद्धनय, शुद्धनय। तो पहिले युगलमे व्यवहारनयसे आत्माका परिचय किस भाँति होता है? इस बातका वर्णन कर रहे है। व्यवहारनयसे आत्मा बधमोक्षकी अवस्थामे रहने वाला है। कोई बंधमे, कोई मोक्षमे, बंधन दशा **भी** दो के सम्बन्धमे हुई और छूटना यह भी दो का सम्बन्ध जानकर बात जानी गई। **अथवा** यो कह लीजिए कि बधका वर्णन और मोक्ष का वर्णन व्यवहारनयसे हुआ करता है। बंधनमे तो यह जीव और कर्म—(दोका) सम्बन्ध चाहिए और छूटनेमे भी जीव और कर्म दो की बात बताना चाहिये। जीवसे कर्म छूटे, कर्म से जीव छूटे और जैसे बन्धन बुरो दृष्टिमे देखा जाता है (आदरकी दृष्टिमे नही देखा जाता) इसी प्रकार मोक्ष भी शब्दश चलकर देखें तो आदरके योग्य नही देखा जाता। आत्माके मोक्षमे आत्माकी शुद्ध बात पडी हुई है। इसलिए हम आप भक्तजन मोक्षका गुणगान करते हैं और मोक्षको आदर देते है। मोक्षके शब्दार्थ पर दृष्टि दें और वस्तुके सहजस्वरूप पर दृष्टि दें तब यह अन्तर विदित होगा। जैसे किसीको कह दिया जाय कि यह पुरुष कैदमे बँध गया तो वह पुरुष भला तो न मानेगा। और कह दिया जाय कि यह पुरुष कैदसे छूट

गया तो वह भी भला न मानेगा। वन्धनकी बात कहनेमे तो वर्तमान सम्बन्ध वताया है कैद का और छूटने की बात कहनेमे अतीत सम्वन्ध बताया है कैदका। कैदसे छूट गया—इसमे यह बात भरी हुई है कि यह पुरुष कुछ गल्ती पर था, कोई पाप काम किया था, इस वजह से कैदमे था, अब समय पूरा हुआ सो छूट गया। इसी प्रकार जब आत्माको कहते है कि यह बन्धनमे है तब तो यह बात साक्षात् जानी गई कि यह जीव कर्म, राग, शरीर आदिकके सम्पर्कमे मलिन है और जब यह कहा गया कि यह जीव कर्मोसे छूट गया तो वहाँ यह बात जानी गई कि यह कर्मोसे मिला था, ऐसी दुर्दशा थी। तो वस्तुस्वरूप तो नही मिला। जो निर्विकल्प है, वस्तुके सत्त्वके कारण, स्वयमे सहज है अतएव व्यवहारनयकी दृष्टिमे वधकी और मोक्षकी व्यवस्था बतायी गई है। एकत्वके निश्चयसे हट गया। तव व्यवहारनय दृष्टिका उपयोग रख रहा कोई। वस्तु अपने आपके एकत्वमे गत है। निज स्वरूपमे लीन है। वह दृष्टि कहाँ रही, जहाँ दो पर दृष्टि गई। तो व्यवहारनयसे आत्माका परिचय इस भाँति मिलता है कि यह आत्मा बध मोक्ष अवस्थाकी द्विविधामे रहने वाला है।

मानवजीवनके क्षणोंको सफल करनेकी उमंग—हम आपका आजका जीवन कैसा दुर्लभ जीवन है कि जिसमे यदि कोई मानव इस बातके लिए भी तुल जाय कि मुझे इस जीवनका एक क्षण भी व्यर्थ नही खोना है, तो यह उससे सुन्दर भविष्यकी बात बनेगी। समागम जितना जो कुछ मिला है और जिस समागमके लिए हम अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व न्यौछावर किए जानेपर तुले है। वह सब समागम असार हैं, इस आत्माके लिए रच भी लाभदायक नही है। लाभकी बात तो दूर रहे, बल्कि उस समागमका सम्बध इस जीवकी बरबादीके लिए ही है। यह बात जिसके निर्णयमें पडी हो वही पुरुष धर्ममार्गमें प्रगति कर सकता है। यह बात कैसे समझ मे आये ? यह उपाय जैनसंतो ने भेदविज्ञान और वस्तुस्वरूपका अवगम बताया है।

मोहसे परेशानी—जगतके समस्त जीव इस मोहसे परेशान है। बाह्य चीजोंसे परेशान नही, बाह्य वस्तुवें तो है, अपने आपमे है, आती हैं, जाती है, जो कुछ हो उनका उनमे है, उनसे मेरेमे सुधार बिगाड नही है, पर मैं ही स्वय बाह्यवस्तुओके सम्बधमे कल्पनायें बनाता हू और अपने स्वभावकी सुधसे अलग हट जाता हू, बस यही बेसुधी हम आपकी बरबादीका कारण है। इस जगतमे बरबाद होते हुए अनेक कुयोनियोमे भ्रमण करते-करते, जिसकी यदि कहानी सुनी भी जाय, किसी जीवमे आखो देखी भी जाय तो दिल दहल जायगा।

ऐसी ऐसी कठिन-कठिन कुयोनिया भोगी है। कीड़े मकौडोंका जन्म क्या जन्म है? पशु पक्षियोंकी कौन परवाह करता हैं? मारने वाले लोग निर्दयतासे उन्हे मारते है, दुखी करते है, और ऐसा समझते है जैसे कोई साग-भाजी बनायी जाय। चित्तमे रहम नही रहता। ऐसी-ऐसी कुयोनियोमे हम आपने भ्रमरण किया, दुख पाया। वहाका समागम कुछ न रहा। कभी पुण्यवश राजा भी हुए तो भी स्वप्नवत् बात है। वे समागम भी कुछ नही रहे। और बात तो जाने दो, इस ही जीवनकी बात देख लो—बचपनके आनन्द, युवावस्थाके आनन्द, जो-जो भी मौज थे वे सब काल्पनिक थे। आज जो भोगसाधन प्राप्त है वें भी सब स्वप्नवत्। आजकी स्थिति और प्रकार है, अनेक प्रकारकी ठोकरे भी सहते जाते है और अपने आपके कल्याणके लिए संकल्प नही करते।

धर्मरुचिका परीक्षण व जीवन साफल्यका साधन—यो तो भैया धर्ममे लगनेके लिए बहुतसे लोग दिख रहे है, दिखे, मगर सचमुच लगनसे चल रहे हैं यह परीक्षा होगी तुलना मे। जब कभी कोई आकस्मिक दुर्घटना घटती है और उसी समय धर्मकी भी कोई घटना घटती हो तो उस समय देखिये किस ओरका इसका झुकाव होता है, किसको इसने अपना सर्वस्व समझा है और किसके प्रति यह अपना सर्वस्व न्यौछावर कर रहा है—यह बात इसका प्रमाणपत्र देगा कि वास्तवमे इसने धर्ममे रुचि की है या केवल दिखावा किया है। यह मनुष्य जीवन कितना दुर्लभ जीवन है, कितनी कुयोनियोसे पार होकर आज मनुष्य हुये हैं जिसका क्षरण-क्षरण सफल करना चाहिये। सफलता इसीमे है कि अन्य समस्त बाह्यवस्तुओसे उपेक्षा हो जाय और अपने आपके सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी रटन लग जाय, यह उपयोग बने तो समझिये कि हम अपना क्षरण सफल कर रहे है। तो भेदविज्ञान, वस्तुस्वरूपका अवगम—ये दो ऐसे मूल उपाय है कि जिनके द्वारा हम मोहको दूर कर सकते है। यदि इन उपायोंको छोड़-कर अन्य कोई उपाय बनाया जाय तो उससे मोह दूर नही हो सकता। इस उपायके बिना भग-वानकी भक्ति भी हो तो प्रथम बात तो यह है कि वह सद्भक्ति न होगी। होगी बहुत लगनके साथ, आनन्दमे गद्गद् होकर भी नाचकर, न्यौछावर होते हुए बहुत लगनके साथ भक्ति बनेगी, किन्तु सद्भक्ति न बन पायेगी। तो भेदविज्ञान और वस्तुस्वरूपका अवगम नही प्राप्त हो तो मोह दूर करनेके लिए अन्य भी कोई उपाय किये जाये उनसे सफलता नही होती। मोह दूर हो सकेगा तो वस्तुस्वरूपके अवगमसे हो सकेगा।

मोह मेटनेके उपायका दर्शन—पदार्थका स्वरूप समझते-समझते जहा यह निर्णय किया कि प्रत्येक पदार्थ अपने स्वरूपचतुष्टयमे है, उससे बाहर उसका रच भी लेनदेन नही

है। यह त्रिकाल भी नही हो सकता कि कोई वस्तुका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव किसी अन्य वस्तुमे पहुंचे। जव यह स्वरूप ज्ञानमे आयगा तो वहा मोह टूट जायगा। क्या हो जायगा ? जिन स्त्री पुत्रोपर आज हम इतना न्यौछावर हो रहे हैं वे ही स्त्री पुत्रादिक वस्तुका वस्तुत्व ज्ञानमे आनेपर भिन्न लगने लगेंगे। ठीक उतने ही भिन्न जितने कि जगतके समस्त जीव। क्या फर्क ? इन कीडा मकौडा पशु पक्षी या विदेशके लोग या अन्य लोग उनसे इनमे कौनसी विशेषता है कि ये मेरे कुछ कहला सकें ? वतलाओ यदि कोई सम्वंध हो तो ? स्त्री पुत्रादिक का जीव आपका कुछ है क्या ? जैसे अन्य सभी जीव न साथ जन्मे न साथ मरे, वहा भी क्या साथ ? यो तो निगोदमे एक साथ जन्ममरण अनन्त जीवोका होता है। कौनसी विशेषता है कि जिससे यह कह सकें कि ये स्त्री पुत्रादिक मेरे है हीं ? रच भी वात नही है। सारा अज्ञान अंधकार है और उस मोहमे दवे हैं, परेशान है, तो फल होगा कि संसारमे जन्ममरण का चक्र वढेगा, और कुछ हाथ नही आता है। यहाका परिचय यह भी स्वप्न है। क्या परिचय है ? इसी परिचयका ही तो कारण है कि जरा-सी वातोमे दु खी होते रहते हैं, ईर्ष्या करते है, मैं धनी नही हू, विद्यावान नही हू, सारा जगत इस मोहसे परेशान है। उस मोहको दूर करनेका उपाय है वस्तुस्वरूपका अवगम। भैया ! मोह मेटनेका जो खास उपाय है उसके लिए साहस नही करते, और दिलवहलावाके लिए सव कुछ है तन, मन, धन, वचन सर्वस्व प्राण तक उस दिलवहलावाके लिए न्यौछावर करनेको तैयार रहते हैं, और जो सदासे लिए सकटोसे दूर कर सके उस उपायके लिए कातरता है। और समझते है कि समय वचेगा तो कुछ स्वाध्याय भी कर लेंगे, कुछ ज्ञानार्जन भी कर लेंगे। मोहियोको तो वचनमे धर्म है, उद्देश्यमे धर्म नही है। अव यह वात किसे समझानी है ? खुद ही खुदको समझानी है। खुदके सिवाय कुछ भी नही वन सकता। अपने कल्याणके लिए अपनेमे अपनी वात निरखनी है। तो वस्तुस्वरूपका अवगम कैसे हो, इस ही वातको इस दशमपरिच्छेदमे वताया जा रहा है। विभिन्न दृष्टियोमे आत्माका परिचय किस-किस प्रकार मिलता है ? वहुत दिनोंसे यही वर्णन चला आ रहा है।

निश्चयनयक अवलम्वनसे मोहापमरकी प्रेरणा—प्रसंगमे आत्मपरिचयके प्रसगमे कल व्यवहारनयसे आत्मपरिचय किस प्रकार होता है ? यह वताया था। आज निश्चयनयसे आत्मा का परिचय किस पकार मिलता है ? यह प्रसग चल रहा है। निश्चयनय एक वस्तुको उस ही स्वरूपमे निरखता है। एकका सब कुछ एकमे ही निरखता है। जब एक आत्मतत्त्वको उस एक आत्मतत्त्वमे ही निरखा तो क्या निरखा गया ? जो है सो निरखा गया। स्वरूप है,

चैतन्य है वह निरखा गया। क्या और कुछ भी देखा गया? ना। क्योंकि दृष्टि निश्चयनयकी बसी हुई है। जब एक अंतस्तत्त्वके सिवाय और कुछ दीखा ही नही इस दृष्टिमे रहकर, तो बंध मोक्षकी कहानी कहाँसे आ गयी? एक अद्वैतदर्शनमे बध और मोक्षकी बात नही पडी हुई है। हम अपने आपको ही जानते रहते है, पर जानते रहते हैं अन्य-अन्य प्रकारसे। यदि अपने आपका जो सहज स्वरूप है उस प्रकारसे अपनेको लखते होते तो कभीके पार हो गए होते। यहाँ समझते हैं कि हम इन वैभवोसे बडे सम्पन्न है, धन मिला या परिवार मिला तो उससे बडी सम्पन्नता है। लेकिन जरा उन्हे तो निरखिये जो पहिले चक्रवर्ती तीर्थंकर हो गए। जिन्होने सब कुछ तज करके और आत्मस्वरूपमे मग्न होकर मुक्ति प्राप्त कर ली। अब वे मुक्तिमे है, अकेले है। शायद उनसे भी अधिक सम्पन्न अपनेको मानते होगे मोही। अरे क्या सम्पन्न अपनेको मानते होगे मोही? अरे क्या सम्पन्नता है? उन चक्रवर्तियोकी विभूति भी जब उनकी न रही, वे भी उस विभूतिको अपनी न मानते थे, उन सब विभूतियो को त्यागकर उन्होने जब अपनेमे अपने आपकी उपासना की तब ही वे सकटोसे दूर हो पाये, तो यहाँ क्या सोचा जा रहा है? किस ओर उपयोग लगाया जा रहा है? मनुष्य जीवनके क्षण बडे दुलभ क्षण है। क्षणोकी सफलताकी ओर दृष्टि रहनी चाहिए।

अन्तर्दृष्टिकी प्रभुति—अन्तर्दृष्टिका पहिचानने वाला कोई दूसरा नही। ज्ञानी पुरुषकी जो स्थितियाँ वतायी गई है उनमे बाहरसे देखनेमे ऐसा लगता है कि वह खूब फसा है, लेकिन उसकी अन्तर्दृष्टि तो जब चाहे स्वभावको छू लेती हो, जब चाहे स्वभावक दृष्टि का स्पर्श करके आनन्द भी लूट लिया जाता हो, इन बातोंको दूसरोको क्या पता? और कोई पुरुष खुले रूपमे धर्मका ढोग, धर्मकी बात बडे ढगसे कर रहा हो और अन्त कभी भी स्व-भावदर्शन न होता हो, वह स्थिति भी न बन पाती हो, जो गुपचुप गम्भीरतासे अपने आपमे स्वय बन जाय, उस स्थितिका कभी अनुभव न किया हो, ऐसे भी कोई पुरुष होगे, इसका भी क्या कुछ पता ले सकते हैं? और पता लगानेकी जरूरत क्या है? अपनी बात निरखिये कि स्वय किस तरहसे अपने को मानूँ कि सकटोसे पार हो जाऊँ

धर्मकी गलीकी खोजमें—सक्षिप्त और थोडे शब्दोमे शास्त्रोपदेशके मर्मको यदि कहा जाय तो यो कह लीजिए कि मैं अपनेको किस प्रकारसे समझूँ, बस इस ही पर ससार और मोक्षका मार्ग लगा हुआ है। मूल बात यहा इतनी है कि मैं अपनेको कैसा मानूँ? बहुत सूक्ष्म खोज है इसके अन्दर। असली जो गली है वह गली इन सब गलियोमे रलनेके कारण खोई हुई है। जैसे कि कोई साधु गगा नहाने गया। कमण्डल उसका बहुत सुन्दर था। तो

सोचा कि यह कमडण्ल कहाँ धरा जाय कि जिससे चोरीका डर न रहे और मैं घटो नहाता रहू। होते है कोई ऐसे आरम्भ करने वाले साधु नामके। तो उसने यह निर्णय किया कि इस ही नदीके रेतमे इस कमण्डलको दबा दिया जाय, उसके ऊपर थोडी रेत चडा दी जाय, फिर जरा भी डर न रहेगा। सो उसने कमण्डलको रेतसे ढक दिया, चला गया नहाने। अब अनेक भाइयोने सोचा कि यह हमारे वडे पुरुष है, और नहानेकी यही विधि होगी कि पहिले रेतका एक ढेर लगा दिया जाय फिर नहाया जाय, सो उन पचासो लोगोने एक-एक अलग-अलग ढेर लगाया और नहाने लगे। लो उन ढेरोमें वह कमण्डल गुम गया। कहा ढूँढे? ऐसे ही धर्मकी कलायें लगती है बहुत-सी निकट-निकट वाली, धर्म भी करते हैं, पूजा पाठ भी करते है, दूसरोका ख्याल भी नही रख रहे, घरके कामकाज भी नही कर रहे, सामायिक मे भी दृढता बनाकर बैठे हुए है, मौनसे है, और सब तरफसे अपना दिल भी हटा लिया है, किसी बाह्यपदार्थमे अपना दिल भी नही फँसाये है, यो बहुतसी बाते धमके नामपर करते हैं, यह भी समझते है कि हम धर्म कर रहे है। पर धर्म करनेकी असली गली कौनसी है ? वह गली इन सब गलियोमे रल गयी। उस गलीका जिसने परिचय पाया है, जो कि सुगमतया मिल जाया करती है बस वह पुरुष धन्य है, वीर है। वह ससारसकटोंसे पार हो जायगा। तो इस बातपर सोचना होगा, दृष्टि अधिक देनी होगी कि मेरा यह दुर्लभ मानव-जीवन सफल हो। इस जीवनके क्षरण प्रतिक्षरण हमारे सदुपयोगमे जाये, इसकी ओर ध्यान बहुत अधिक रखना होगा, तब जाकर उस भावकी प्राप्ति होगी कि जिस भावमे हम अपने आपके सहज स्वरूपका अनुभवन कर सके।

नयप्रयोगविधि----सहजस्वरूपका अनुभव कर सकनेके लिए मार्ग बताया है निश्चय का, जिस गलीसे चलकर उस स्वरूपका परिचय पाया जाय। व्यवहारनयसे तो विविध निर्णय किये और निश्चयनयसे केवल एक ही पदार्थमे एक उस ही सहजस्वरूपकी प्रतिष्ठा बनायी। व्यवहारका उपकार था जिससे बहुत कुछ सीखकर हमने निश्चयनयका मर्म जाना और निश्चयनयका उपकार है कि हम इस अद्वैतकी गलीसे चलकर उस निर्विकल्पस्वरूपका अनुभव कर लें। तब ही यह उपाय बताया गया कि व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होकर निश्चयनयके आलम्बनसे मोह दूर करके निर्विकल्प अन्तस्तत्त्वका अनुभव करना चाहिए। निश्चयनयमे यह निर्णय आया कि मैं सहज चैतन्यस्वरूपमात्र आतमा बधमोक्षकी द्विविधासे परे हू। जहा बाहर झाका वहा द्विविधा है और जहा अन्त झाका वहा द्विविधा खतम। जीवनमे बडेसे बडे सकट आयें और वहा भी यह मनुष्य ऐसा अन्त साहस बनाकर

कि जो होता हो हो, जो कष्ट आते हो आये, जो भी सकट आयेगे उन्हे मै समतासे सह लूंगा । इस तरहका एक साहस बनानेसे कितने ही सकट सुगमतासे दूर हो जाते है । और एक पुरुष जिसपर कष्ट तो आये नही, पर कष्ट आनेकी सम्भावना दीखे तो झट घबडा गया, हाय अब क्या होगा ? लो घबडाकर, अपने साहसको खोकर उसने बीसो गुणे सकट बना रखे है ।

भविष्यका मूल भाव—ज्ञानबल, अन्त चिन्तन यह जड है हम आप लोगोके भविष्य की । किस प्रकार ? हमको सवप्रथम यह निर्णय करना होगा कि मैं क्या हू ? इस ही पर तो सारी गलिया निकलेंगी—संसारमे रुलने की गली, ससारसे छूटनेकी गली, सतोषकी गली, सुख दु ख आदिककी गलि ये सभी इस ही बातके निर्णय अनिर्णयपर निकलती है । मै क्या हू ? प्रत्येक जीव सोचता तो है ही, समझता तो है ही कि मैं क्या हू ? किसीने समझा कि मैं अमुक चंद हू, अमुक लाल हू, ऐसे परिवार वाला हू, ऐसी इज्जत वाला हू, अथवा किसीने समझा कि मैं त्यागी हू, व्रती हू आदि । यो अपनेको सोचनेके फलमे तो क्षोभ ही मिलता है । और जो सोचता है कि मैं सर्वसे अपरिचित केवल चैतन्यस्वरूपमात्र हू, जिसको न पहिचानकर, जिसके बारेमे लोग कितनी ही निन्दा करे, कितना भी अपमान करे, कितनी ईर्ष्या करे, कितना ही कुछ भी सोचे, उसका जहाँ रच प्रभाव नही, अपरिचित ही तो है, सबसे निराला केवल सहज चैतन्यमात्र मैं हू । इस तरह जहाँ अपना परिचय बनाया वहाँ सारे संकट समाप्त हो गए । इसी बातके समझनेके लिए इस दशमपरिच्छेदमे विभिन्न दृष्टियोसे आत्माका परिचय कराया जा रहा है । आत्मतत्त्व क्या है, किस प्रकारका है और वह किस दृष्टिमे इस प्रकार नजर आता है ? साराश यह है कि अपनेको किसी जाति वाला, कुल वाला, घर वाला, कुटुम्ब वाला, धन वाला . माने, औरकी तो बात क्या ? अपनेको मनुष्य भी मत मानें । यह मनुष्यपना किसी दिनसे मिला, किसी दिन खत्म हो जायगा । मैं शाश्वत हू, इन सब पर्यायोरूप अपनेको न मानकर केवल सहज चैतन्यस्वरूप अपनेको मानें तो संसारके सकट सदाके लिए टलेगे अन्यथा तो ससारमे रुलना ही है ।

मोहका क्लेश और महान् अपराध—इस संसारमे जो भी दु ख है वह मोहका है । सिवाय मोहके दु खका और कोई साधन नही है । क्योकि जो चीज पर है वह पर ही है, वह अपनी कभी हो नही सकती और उसे जबरदस्ती हम अपनी मानते है, जिसका परिणाम यह होता है कि हम दु खी होते हैं । लेकिन इन मोही जीवोको अपनी गल्ती, गल्ती नही मालूम होती । वे जानते है कि हम सच्चा काम कर रहे है । ये घर द्वार, बाल बच्चे,

धन वैभव हमारे ही तो है। है और किसके ? तो इस मिथ्या मान्यताकी गल्ती सबसे पहिली गल्ती है। किसी परवस्तुको अपनी मानना, यह तो एक महान् गल्ती है ही और दूसरी महती गल्ती यह कर रहे है कि इस गल्तीको वे गल्ती नही समझ रहे हैं। तो ऐसी हालत होने के कारण इस जीवको बडी परेशानी है। तो मोह ही इस जीवके लिए एक दु खका साधन है।

मोहविनाशका उपाय—मोह कैसे मटे ? पहिले तो यह बात ही मोहीके मनमे नही आती कि इस मोहको कैसे मेटा जाय ? और अगर मनमे कभी आती भी है तो सही ढगसे नही आती। किसी ने सोचा कि घर छोड दें तो मोह मिट जायेगा। यद्यपि घर छोड कर मोह मेटना यह भी एक साधन है, पर घर छोड देने मात्रसे मोह नही छूटता। कोई लोग सोचते है कि यह सारा ससार तो ईश्वरकी एक लीला है, यहाँ अपना बनकर कुछ भी न रहेगा, ऐसा मान लेने से मोह छूट जायेगा, ऐसा लोग कहते तो हैं, पर भीतरमे यह बात नही बैठती कि वास्तवमे मेरा यहाँ कुछ भी नही है। यो मोह मेटनेके तो कल्पित अनेक उपाय है, पर एक सच्चा उपाय है वस्तुस्वरूपका यथार्थ परिज्ञान होना। जब वस्तुस्वरूपका सही परिज्ञान बनेगा कि मैं आत्मा एक चैतन्यस्वरूप हू और ये धन वैभव, स्त्री पुत्रादिक समस्त परपदार्थ मुझसे अत्यन्त निराले है, किसी भी परवस्तुसे मेरा रचमात्र भी सम्बन्ध नही है, क्योकि समस्त वस्तुओ का स्वरूप न्यारा-न्यारा है। तो जब वस्तुके स्वरूपका द्रव्य, गुण पर्यायके माध्यमसे सही परिचय होता है तब जाकर मोह दूर होगा। मैं आत्मा द्रव्य हू, अपनी शक्तिमे ही अपने गुणोमे ही तन्मय हू, और मेरेमे जो परिणति बनती है वह मेरे से ही बनती है, उसे कोई दूसरा पदार्थ बना दे या मिलकर बने, ऐसा नही है। तब यह द्रव्य गुण पर्यायकी व्यवस्था समझमे आती है और पदार्थ स्पष्ट भिन्न-भिन्न जचने लगते हैं तो वहाँ मोह दूर होता है। शान्ति पानेके लिए उपाय तो लोग बहुतसे करते हैं जैसे—यात्रा करना, कलायें सीखना, विषयसाधन जुटाना, परिग्रह जोडना आदि, मगर इन किन्ही भी उपायोसे शान्ति नही प्राप्त हो पाती। शान्ति प्राप्त करनेका उपाय है—वस्तुस्वरूपका सम्यक् बोध होना।

शुद्धनयसे वस्तुस्वरूप बतानेका उपक्रम—वस्तुस्वरूपको बताने के लिए सक्षेपमे दो नय बताये गए हैं—शुद्धनय और अशुद्धनय। यहाँ शुद्धनयका मतलब है परमशुद्धनयसे, जहाँ भेद भी न ज्ञात हो, कोई मलिनता भी नही है। अशुद्धताके दो अर्थ हैं—मलिनता और भेद करना। दोनो प्रकारकी अशुद्धतासे जो परे भाव है वह शुद्धनय है। जैसे कहा कि जीवमे

रागद्वेष मोह है तो यह अशुद्धनय हुआ, क्योकि मलिनताकी बात कही और यदि यह कहा जाय कि जीवमे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण हैं तो यह भी अशुद्धताकी बात कही, यहाँ भेदकी बात कही गई, पदार्थ जैसा है सही अपने आप, वैसा न रहने दिया, कल्पनामे उसका भेद किया, खण्ड किया तो इसे भी अशुद्धता करना कहते है। तो जीवमे परसम्बन्धकी व भेदकी अशुद्धता मत करो। जीवमे देहकी अशुद्धता नही, सो आत्माको जुदा देखना, अपने को इस तरह निहारना कि मैं देहसे निराला हू। जीवमे कर्मकी भी अशुद्धता नही है, सो निहारिये मैं कर्मसे निराला हू। राग द्वेष भावकी भी अशुद्धता नही है। मैं रागद्वेषसे निराला हू और जो अन्य परिणमन शुद्ध परिणमन चलते है, जिनमे रागद्वेष नही है ऐसे परिणमन भी मेरे स्वरूप नही है, क्योकि मैं शाश्वत हू। पर्यायें क्षणिक हैं, इस कारणसे उन पर्यायोसे भी निराला हू और आत्मामे ज्ञान, दशन, चारित्र, आदिक शक्तियाँ है, लेकिन आत्मा कोई आधार हो और ये शक्तियाँ उस आत्मामे रख दी हो, ऐसी बात नही अथवा आत्मा ही सत् है, शक्तियाँ सत् नही है, क्योकि शक्तियाँ तो सत्के कल्पित अश है। तो जो अभेद वस्तु है उसमे भेद करना, इतनी भी अशुद्धता नही है। यो मैं उपाधि औपाधिक भावोसे रहित, भेदातीत, ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र हू। यह विषय शुद्धनयका है, तो शुद्धनयसे आत्माका किस ढगसे परिचय होता है ? यह बात यहाँ बतायी जा रही है।

शुद्धनयमें आत्मतत्त्वका परिचय करनेके अनन्तर अशुद्धताके विकल्पकी परिस्थिति— शुद्धनयमे अपना आत्मा यो प्रतीत होता है कि मैं परवस्तुओसे निराला, शरीरसे निराला, कर्मसे निराला, रागादिक भावोसे निराला और शक्तिभेदसे निराला केवल चिन्मात्र हू। यह परिचय शुद्धनयका परिचयका है। अब इस शुद्धनयसे जैसे हटे, वहाँ प्रतिभात चिन्मात्रस्वरूप से जैसे हटे कि वहाँ अशुद्धताये विदित होती है। शुद्धपर्यायका वर्णन करना भी इस प्रसगके विषयमे अशुद्धता है। वस्तुके सहजस्वरूपका निरखना, जिसने यह उद्देश्य बनाया है उस उद्देश्यमे जहाँ कही थोडा फर्क हुआ कि इस ज्ञानीको कुछ न कुछ थोडा क्षोभ होगा। जैसे जिसको पूर्ण शुद्ध सोनाका ले लेना, बेचना, देखना, निरखना, छूना पसद है उसके हाथमे यदि कोई थोडा भी अशुद्ध सोना दे दे तो वह उसे देखकर झुँझलाता है और फेंक देता है। जिसकी पूर्ण शुद्धकी रुचि है वह रच भी अशुद्धतापर झुँझलाता है, यो ही जैसे अभेद निरुपाधि शुद्ध अतस्तत्त्वकी रुचि है और उस रुचिके मार्गमे चल रहा है कोई ज्ञानी, उस जगह यदि इतना भी भेद कर दिया जाय — आत्मामे दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है तो उसे झुँझलाहट होती है। कहाँ तो हम एक अभेद आत्मस्वभावके अनुभवका आनन्द लेनेके निकट थे और

भेद करके विकल्पमे डाल दिया गया, यह बात उसे सहन न होगी । तो परमशुद्धसे जब उपयोग हटता है तो पहिली अशुद्धता यह आती है कि जीवमे शक्तिभेद कर दिया जाता है। आत्मामे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, आनन्दगुण आदिक अनेक गुण है, इस प्रकारका भेद कर दिया जाता है ।

परिणति व अपूर्णविकासकी अशुद्धता—अब इसके बाद जब और अशुद्धनामे आते है तो आत्मामे परिणतियाँ निरन्तर होती रहती हैं । एक अवस्था बदली, दूसरी अवस्था आयी, यो नवीन अवस्था आना, पुरानी अवस्था विलीन होना, यो अवस्थाओका होते रहना प्रतीत होता है, किन्तु इस ज्ञानीको तो शुद्ध अंतस्तत्त्व की रुचि जगी है, वह अभेदनिरुपाधि आत्मस्वभावको देख रहा है, उसे झुँझलाहट हो जाती है । जब पर्यायकी बात सामने आती है तो दूसरे नम्बर की यह परिणतिमात्रकी अशुद्धता विदित होती है । इसके बाद जब और अशुद्धनयमे चलते है तो वितर्कविचार आदिक जो गुणके ही अधूरे विकास हैं उनका परिचय होता है । गुणोका अधूरा विकास होना भी अशुद्धता है । यहाँ अशुद्धताका अर्थ है निरुपाधि अभेदस्वभावमात्र वस्तुके उपयोगसे हट जाना । चाहे शुद्धपर्यायकी बात हो वह भी इस प्रसग मे अशुद्धता है और शक्तिभेदकी बात हो वह भी इस प्रसगमे अशुद्धता है । तो तीसरे नम्बर की अशुद्धता प्रतीत हुई ज्ञानादिकके अधूरे विकास वाली बातकी ।

अव्यक्त राग, व्यक्त राग, मोह, कर्मसम्बन्ध व देहसम्बन्धकी अशुद्धतायें—इसमे और चौथे नम्बरकी अशुद्धता जानी गई अव्यक्त रागादिककी बात । श्रेणियोमे साधुजनोके जो रागद्वेष भाव उठते हैं वे अव्यक्त हैं । उन साधुवो तकको पता नही होता और वह राग विकार बनता है और उनके अनुसार बध भी चलता हैं । तो अव्यक्त रागादिक भावोकी अशुद्धता प्रतीत हुई । तो यहा तक कितने क्रम हुए अशुद्धतामे ? पहिली अशुद्धता—भेद पडा, दूसरी अशुद्धता—परिणतिया जाना, तीसरी अशुद्धता—गुणोका अधूरा विकास होना । चौथी अशुद्धता—अव्यक्त राग जाना । अब इसके बाद जब ५वी अशुद्धता पर चलते है तो वहा विदित होते हैं व्यक्त रागद्वेष । जो रागद्वेष व्यक्त है, हम आपके बोलनेमे आते हैं उन रागद्वेषोकी अशुद्धता प्रतीत हुई । फिर इसके पश्चात् जब छठवी अशुद्धतापर आये तो वह छठवी अशुद्धता है मोहकी । जीवमे जो मिथ्यात्व भाव है उसकी अशुद्धता रागकी अशुद्धतासे भी बढकर है । रागद्वेषकी अशुद्धता तो ज्ञानी सम्यग्दृष्टिके भी होती रहती है लेकिन मोहकी अशुद्धता तो मोहाध जीवोके ही होती है । इसके पश्चात् ७वी अशुद्धता होती है परपदार्थके सम्बन्धकी । अब तक एक ही जीवके परिणमनकी बात चली थी अथवा एक ही जीवके गुण-

पर्यायोकी बात । जब दूसरे पदार्थका सम्पर्क जोडा जाता है तब यहाँ और विशेष अशुद्धता कहलायी । यद्यपि यह अशुद्धता जीवमे नही है कि परपदार्थका मेल जीवमे हो गया हो, लेकिन वर्णनमे अशुद्धता आती है । जो जीव देहमय है, देहरूप है, देहको जीवको एक करने की बात आती है वह ८ वी अशुद्धता है । इससे पहिले कर्मके सम्बन्धकी अशुद्धता है वह ७वी अशुद्धता है । फिर ये सारी अशुद्धतायें है, जिनका आत्मामे एकक्षेत्रावगाह भी सम्बन्ध नही है वे सब अशुद्धताये है ।

शुद्धनयके प्रयोगसे हटनेके अनन्तर प्रथम व द्वितीय अशुद्धताका ईक्षरण——यहाँ शुद्धनय और अशुद्धनयकी बात चला रहे है । शुद्धनयका अर्थ किया गया है कि परसम्बंधरहित, औपाधिकभावरहित और भेदभावरहित केवल एक चिन्मात्र स्वभावमय अन्तस्तत्त्वका देखना यह है शुद्धनय । जब इस शुद्धनयसे हटते हैं तो अशुद्धनयमे उपयोग पहुंचता है । तो ऐसे अशुद्धनयके स्थान कुछ और बढाकर ९ प्रकारकी अशुद्धता भी कह सकते है । शुद्धता तो केवल एकरूप ही है । भेदरहित, औपाधिक भावरहित, परसम्बधरहित, केवल चैतन्यस्वभावको निरखना, यह है शुद्धकी उत्कृष्टकोटि । तो जब शुद्धनयसे हटे तो पहिली अशुद्धता यह आयी कि आत्मामे स्वभाव स्वभाववानका भेद कर दिया जाय । आत्माका चैतन्यस्वभाव है, इतना भी वर्णन अशुद्ध कथन हुआ । आत्मा चित्स्वभावमात्र है, यह तो शुद्ध कथन है और आत्मामे चैतन्यस्वभाव है यह अशुद्धपद्धति हुई । स्वभाव और स्वभाववानका भेद करके समझिये वहाँ अशुद्धताकी पद्धति हुई । अब लो यो अशुद्धताकी १० दशायें हो गयी । ख्याल मे आनेसे एक दशा और बढा ली गई । तो ये सब नय जितने प्रकारके अभिप्राय है उतने ही प्रकारके होते है, इसलिये नयोमे सख्याका नियतपना नही है । लेकिन नयोकी जो मूलपद्धति है वह नियत है । नयोकी मूलपद्धति भेद और अभेद है । जहाँ अभेद है वह है शुद्ध कथन और जहाँ भेद है वहाँ है अशुद्ध कथन । तो प्रथम तो स्वभाव और स्भाववानका भेद किया । दूसरी अशुद्धता है——आत्मामे दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, ऐसी गुणकी बात कही तो गुणभेद किया, शक्तिभेद किया ।

परिणति व परसम्पर्ककी अशुद्धतायें——परिणतिकी बात, अर्थपर्यायकी बात नवीन परिणति होती है, पुरानी परिणति विलीन होती है और ऐसी परिणतिकी बात जिसमे विशेष परिणति न हो, सामान्य वर्णन, निर्विशेष भी परिणतिका कथन करना यह तृतीय अशुद्धता है । फिर इसके पश्चात् गुणके शुद्ध परिणमन पर दृष्टि देना शुद्ध परिणमन है और वह भी मिटती है, दूसरे समयमे नवीन शुद्ध परिणमन होता है । आत्माके शुद्ध परिणमनमे धारा

शुद्ध परिणमन की ही चलेगी, लेकिन वे भी तो समय-समयमे नये नये है ना। तो शुद्ध परिणमनकी बात कहना यह है चौथी अशुद्धता। इसके बाद गुणोके अधूरे विकास की बात होना यह ५वी अशुद्धता है। पश्चात् अव्यक्त रागकी बात कहना छठवी अशुता है। जैसे ८वें ९वे गुणस्थानमे जो रागद्वेष चलते है वहाँ उन साधुवोको भी वे रागद्वेष स्पष्ट विदित नही है पर वे अपना काम करते ही रहते है। फिर व्यक्त रागद्वेषकी बात ७वी अशुद्धता है। जैसे कोई जीव क्रोध कर रहा है तो चेहरेसे ही जान रहे है अथवा खुदकी कपायका खुदको ज्ञान रहता है। फिर मोहकी अशुद्धता ८वी अशुद्धता है। रागकी मलिनतासे मोहकी मलिनता विशेष है, एक तो गल्ती करना और एक गल्ती करते हुए भी गल्तीको गल्ती न समझ सकना। तो रागकी गल्ती करके भी रागकी गल्ती समझमे न आ सके, बस यह मोहभाव है। इसके बाद ९वी अशुद्धता है अपनेको कर्मसहित मानना। कर्मोंसे अपनेको एकमेक करना यह ९वी अशुद्धता है। १०वी अशुद्धता है देहसे अपनेको एकमेक मानना। इसके बाद फिर जितने भी घर मकान, कुटुम्ब मित्रादिक पदार्थ है उन पदार्थोरूप भी अपनेको समझना, ये सब अनेक सम्पर्क वाली अशुद्धताये है।

नयोंके अवगमसे उपलभ्य शिक्षा—अशुद्धनयमे भी आत्माका परिचय होता है और वहाँ शिक्षा मिलती है कि यह अशुद्धनयका परिचय है, ऐसा परिचय करके हमको अपना उपयोग कैसा बनाना चाहिये ? जहाँ पर वस्तुके सम्बन्धकी अशुद्धता जानी वहाँ शिक्षा मिलती है कि इससे उपयोग हटाओ, यह पर है, जहाँ अपनी पर्यायकी अशुद्धता जानी वहाँ उपयोग बनता है, ये बरबादीके कारण हैं, मेरे स्वरूप नही है, इनसे उपयोग हटावे। जब गुणपर्यायकी भाँतिकी अशुद्धता जानी जा रही है तो वहाँ शिक्षा मिलती हैं कि इस भाँति कल्पनाओमे भी जब तक रहेगे तब तक आत्मानुभूति न पायेंगे। यहाँ तक कि जब स्वभाव और स्वभाववानमे भेदकी कथनी चल रही हो और मालूम हो गया कि यह भेद कथन भी एक प्रकारकी अशुद्धता कर देना है, तो वहा भी यह शिक्षा मिलती है कि हे आत्मन् ! तू इतना भी भेद न कर और अपने को स्वभावमात्र अनुभव कर। यो सब प्रकारके नयोके परिचयमे हमे कल्याण की शिक्षा मिलती है। इस बातका इस दशम परिच्छेदमे वर्णन किया गया कि किन-किन दृष्टियोंमे आत्माका हमे कैसा-कैसा परिचय मिलता है और उससे हमे क्या शिक्षा प्राप्त होती है ?

शुद्धनयकी पद्धतिका दिग्दर्शन—इस प्रकरणमे यह बताया जा रहा था कि किन नयो की दृष्टिमे आत्माका किस प्रकारसे परिचय मिलता है, यह बात ७३ प्रकारोमे बतायी गई

थी और उन सब प्रकारोमे जो आत्माका परिचय मिलता है उससे हमे हितके लिए क्या शिक्षा मिलती है ? यह भी ध्वनित होता गया था, जैसे प्रकृत प्रसङ्गकी बातको पुन दुहराये तो अभी-अभी शुद्धनय और अशुद्धनयकी बात कही थी, तो शुद्धनयका अर्थ है अपने सत्त्वके कारण सहज ही आत्मामे जो भाव पाया जाता हो उस भावमय अपनेको निरखनेकी दृष्टि । यदि यहा इतना भी भेदनिरख लिया गया कि आत्मामे चैतन्यस्वभाव है तो चू कि भेद किया गया अतएव अशुद्धनय हो गया । यहा अशुद्धनयका अर्थ मात्र मलिनता न लेना । यहा वह भी अर्थ है और भेद करना भी अर्थ है । वस्तुमे जोड करना और तोड करना—ये दोनो अशुद्धताये कहलाती है । जैसे आत्मामे रागादिक जोडना अशुद्धता है इसी प्रकार आत्मामे ज्ञान दर्शन आदिक गुणोका तोडना यह भी अशुद्धता है । तो इस प्रसगमे जो शुद्धनयका भाव है उसमे केवल एक अनादि अनन्त अहेतुक चैतन्यस्वभावमात्र अपने आपको निरखना, वहा स्वभाव स्वभाववानका भी भेद न रखना इस दृष्टिको शुद्धनयकी दृष्टि कहते है । इससे हमें क्या शिक्षा मिलती है ? कल्याणके लिए यही मार्ग अपनाना होता है ।

शुद्धनयके एकान्त आग्रहमें भी विडम्बना— यहाँ यह बात जान लेनी चाहिये कि अन्य नयोका विरोध रखकर ऐसा अभिप्रायवान पुरुष जब इस नयकी दृष्टिमे देखता है तो वहाँ ऐसा एकान्त धर्म नजर आता है कि जहाँ फिर अन्य समस्यायें उलझ जाती हैं और मार्ग नही मिलता । जैसे कि एक दर्शन है जो जीव को चैतन्यस्वरूप मानते है, ब्रह्मको चैन्यस्वरूप कहते है । बात सुननेमे भली लग गयी होगी किन्तु जब उसका विश्लेषण किया जाता है तो वहाँ अर्थ निकलता है एक चेतना । कोई पूछे उसका 'क्या जानना' यह अर्थ है ? नही । जानना तो विकार है । जानना तो प्रकृतिका धर्म है । उस जाननेसे अलग है चेतना । तो यह अन्य नयोका विरोध रखकर इस शुद्धनयमे उतरनेका परिणाम हुआ । जब पूछा कि चेतना भी वह क्या है जिसमे जानना कुछ नही है ? तो उनका उत्तर होता है कि बुद्धि तो पदार्थोंको जानती है, बुद्धिसे पदार्थ का निर्णय होता है, और बुद्धिसे निर्णय किए गए पदार्थको चेतनेका काम यह ब्रह्म करता है । अब आपने पाया क्या वहाँ ? तो सर्वत्र यह लेनी चाहिए । अन्य नयोका विरोध न करके उसमे मध्यस्थ होकर जिस समय जो बात बात निरखी जाती है उस दृष्टिमे उस विषयको निरखना—एक बात । दूसरी बात यह जानना चाहिए कि जब जिस नयसे निरखा जा रहा है तब उस नयसे ही निरखना । निरख तो रहे हो किसी नयसे और बात उठा देते हो अन्य नयकी तो यहाँ उलझनें सामने खडी हो जाती हैं । जो नयोकी दृष्टिमे रखकर बातको समझेगा वह वादविवादसे प्रकरणमे न फँसकर स्व-

तत्र विहार कर सकता है अन्यथा तो धोखा ही खायेगा। तो शुद्धनयकी दृष्टिमे क्या निरखा गया ? एक चित्स्वभावमात्र। प्रभाव क्या होता है इस निरखनेका ? रागद्वेष मोह विकल्पके जजालसे छूटना। और विश्लेषण करके भी देखे तो भला वतलावो—जिसने अपनेको सर्वसे निराला, देह, वैभव, कर्म, कषाय, विकल्प, विचार आदिक सबसे परे होकर केवल चैतन्य-स्वभावमात्र देखा, यो आत्माका अपना परिचय पाया तो किसी जीवमे मोहभाव कैसे होगा ? उसके फिर इष्ट अनिष्टकी बुद्धि कैसे जगेगी ? यह अमूर्ततत्त्व है और इस ओर ही पहुचकर जीव अपने कल्याण मार्गमे साक्षात् प्रगति कर पायेगा।

भेदप्ररूपक व अपूर्णविकासनिरीक्षक अशुद्धनयका तत्त्वपरिचयमें सहयोग— शुद्धनयसे तो हमने सर्वविशुद्ध अन्तस्तत्त्व देखा और जव शुद्धनयसे चिगकर अशुद्धनयमे आते हैं तो वहाँ हमे बहुतसी बातोका परिचय मिलता है। जैसे आत्मामे चैतन्यस्वभाव है। चैतन्यस्वभाव एक लक्षण है और उस लक्षणसे हम लक्ष्यकी परिचान करते है लो इसने मदद ही तो दी, अपने आत्मतत्त्वको समझनेके लिए। इससे और दूसरे दर्जेपर उतरे तो वहाँ जाना कि जिसमे ज्ञान, दर्शन आदिक गुण है वह आत्मा है। इसने भी अतस्तत्त्वको समझनेके लिए मदद दी। और उतरे अशुद्धनयमे जहाँ वितर्कविचार अपूर्व गुणविकास नजर आया, उनसे भी हमे उस शुद्धतत्त्व तक पहुचनेके लिए इसी प्रकार मदद मिली। जैसे जब कभी घटाये छा जाती है दिनमे उस समय सूर्यप्रकाश यहाँ कम हो जाता है, और घटायें ज्यो-ज्यो हटती है त्यो-त्यो सूर्यका प्रकाश बढता जाता है। तो कभी दिखता है कि यह १० मीलमे प्रकाश है अब यह ५ मीलका प्रकाश हुआ, इस तरह उन प्रकाशोंके जो अधूरे विकास है उनको निरखकर निरखने वाला यह जानता ही है कि सूर्यमे प्रकाशस्वभाव है और वह तो ज्योका त्यो है। वहाँ यह भेद नही पडा है, किन्तु उस घटाका निमित्त पाकर ये भेद आ गए। तो ये भेद, ये प्रकाश ये अधूरे विकास यद्यपि नैमित्तिक है लेकिन उस प्रकाशको निरखकर जो कि अखण्ड अभेद जैसा है उसपर उसका विश्वास जमता है, इसी प्रकार अशुद्धनयमे आत्माके गुणोका अपूर्व विकास निरखकर जिसके अतस्तत्त्वकी रुचि है वह पूर्णस्वभाव तक पहुंचता है।

मलिनपर्यायप्ररूपक अशुद्धनयसे उपलब्ध बोध—देखिये—नयोके परिज्ञानकी यह महती कृपा है कि हम किस ढगसे परिज्ञानमे चलें कि हम अन्त स्वभाव तक पहुच जाये ? यह उद्देश्य न भूलना चाहिये। यह उद्देश्य रखकर फिर किसी नयका विश्लेषण करें, आप फिर चूकेंगे नही। इसके बाद और अशुद्धनयमे चलें जहाँ रागादिकरूप आत्मा है इस तरहका

परिचय किया है। और यह परिचय मिला अशुद्धनयमे कि क्या अशुद्धता है कर्मविपाकका निमित्त पाकर आत्मामे रागादिक विभाव हुआ। निमित्तनैमित्तिक भाव जैसा है वैसा समझ ले और वस्तुस्वतंत्र्य समझ ले तो दोनो बातोको जो यथार्थरूपसे समझता है वह पुरुष चूकेगा नही। वस्तुस्वातंत्र्य मिट जायगा, इस डरसे निमित्तनैमित्तिक भावके निर्णयमे उपेक्षा करके उसका स्वरूप बिगाडना—यह भी एक अपनी कमजोरी है या निमित्तनैमित्तिक भाव विगड़ जायगा, इस वजहसे उपादानकी स्वतत्रताको, वस्तु स्वातंत्र्यको मना करना—यह भी एक कमजोरी है। विवेकपूर्वक विचार करे तो दोनो बाते यथा अवस्थित दिखती हैं। कर्मविपाक का निमित्त हुए बिना रागादिकपरिणाम नही होते। इसका रागादिकके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बध है। अत निमित्तनैमित्तिक सम्बध व्यवस्था है और उसी आधारपर संसारकी विडम्बनाये चल रही है। इसके साथ ही यह भी निरखे कि निमित्तनैमित्तिक भावके प्रसग मे भी प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतासे, अपनी शक्तिसे, अपने चतुष्टयसे अपने आपको परिणमाता हुआ रहता है। उत्पादव्ययध्रौव्य ये वस्तुके स्वभाव है, वस्तुमे यह प्रकृति पडी हुई है कि वह नवीन अवस्था रूप परिणमे। और नवीन अवस्था रूप परिणमे, यही हुआ पुरानी अवस्थाका विलीन होना। ऐसा होता रहे जिसमे वहाँ मिला ध्रौव्यतत्त्व, ये तीन वस्तुकी प्रकृतियाँ है, उनको कोई नही हटा सकता, उनसे कोई पदार्थ अलग नही हो सकता। चाहे मूर्त पदार्थ हो, चाहे अमूर्त पदार्थ हो, चेतन हो, अचेतन हो, सूक्ष्म हो, स्थूल हो, यदि वह है तो उसमे उत्पादव्ययध्रौव्य अवश्य है। तो पदार्थ अपनी स्वतत्रतासे उस रूप परिणमता है। यह जीव रागादिकरूप हुआ। हुआ क्योकि उस समय निमित्त सन्निधान है, वह अपनेमे अपना कार्य कर रहा है, उस सन्निधानके अवसरमे इस उपादानमे चूँकि ऐसी कला पडी है और ऐसी योग्यता है कि वह ऐसा सन्धिान पाकर अपनेमे अपना विभावरूप प्रभाव बनानेकी कला इस उपादानमे पडी है, वह कहींसे उधार नही लायी गयी, किसी अन्य पदार्थसे नही खीची गई। अध्यात्मसूत्रमे एक सूत्र आया है—"निमित्त प्राप्त उपादान स्वप्रभावत्" अर्थात् निमित्त पाकर उपादान अपने प्रभाव वाला होता है। आत्मामे जो रागादिक हुए वह है प्रभाव। प्रभाव का अर्थ जो हो सो प्रभाव। यह प्रभाव अन्य वस्तुका नही। अन्य वस्तुसे नही आया, किन्तु आत्मामे आत्माके चतुष्टयसे वह प्रभाव जगा, ऐसी स्वतत्रता है। तो इन सब दृष्टियोंसे अशुद्धनय निर्णय किया तो वहाँ शिक्षा मिली कि रागादिक भाव नैमित्तिक है, औपाधिक है, परभाव है, आत्मस्वभावसे विपरीत हैं। इनमे सार नही। ये मेरे स्वभाव नही है। मैं इनमे लगाव न रखूँ, इनसे हटकर निजचैतन्यस्वभावमे

ही अपना लगाव रखना, उपयोग रखना यह उचित है।

नयोंके अवबोधमें तत्त्वरुचिकको हितशिक्षाका लाभ——प्रत्येक नयके अनुरूप बोधसे स्वभावमे आनेकी प्रेरणा मिलती है। यदि हम तलके रुचिया है तो सभी नयोसे प्रेरणा मिलती है, क्योकि नयोके नाम ही इस प्रकार है। एक और कल्पना करो, जिसको कि नयो से बहिर्भूत कहा उपचारसे नयसंज्ञा दी है जिसका नाम उपचरितोपचार कह देते हैं। लोग कहते है कि ये मकान, धन वैभव, स्त्री पुत्रादिक मेरे है, पर यह किस नयसे कहा गया है? किसी एक पदार्थका किसी अन्य पदार्थसे कुछ सम्बध तो है नही, सो पदार्थमे सम्बध मानना उपचार करके कथित किया गया है। उसका अर्थ क्या निकला? अरे ये तो अत्यन्त भिन्न चीजें है। कल्पना करके जबरदस्ती इनको अपना मानने वाली दृष्टिकी बात कही गई है। तो शिक्षा मिल गई कि इन्हे जबरदस्ती क्यो अपना माना जा रहा है? इसमे तो क्लेशका ही पात्र होना पडना है। तो जैसे अशुद्धनयमे यह निरखा कि ये रागादिक भाव कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामे उत्पन्न हुए हैं और अब रागादिक रूप यह आत्मा है। लो वहाँ भी शिक्षा मिली। इससे और नीचे चलकर कर्म, देह, वैभव आदिकका सम्बध कुछ भी बात लगायी उन सब अशुद्धताओमे हमे उनसे हटनेकी प्रेरणा मिलती है। तो शुद्धनयमे आत्मपरिचय बताकर अशुद्धनय मे भी आत्मतत्त्व का परिचय अनेक दृष्टियो से कहा गया था।

विभिन्नदृष्टियोंमें आत्मपरिचय करके किन नयोंका आश्रय करनेके कर्तव्यकी जिज्ञासा——विभिन्नदृष्टियोमे आत्मपरिचयका वर्णन हो चुकनेके बाद एक जिज्ञासा यह होती है कि तो आखिर हमको उन नयोमे से किन-किन नयोसे आत्माका ज्ञान करना चाहिए? समाधान तो प्राय होते ही गए है इन प्रश्नोके, लेकिन उपसहाररूपमे यह समझिये कि ज्ञान अनेक नयोसे कर लेना चाहिये। और नयोमात्रसे ही क्या, पदार्थके जाननेके उपायोमे पहिले जो चार चीजें मुख्य बतायी गई हैं——लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप। इन सबका उपयोग कीजिये। लक्षणसे तो वस्तुका परिचय कीजिए, पहिचान कीजिए, चिन्ह देख करके वस्तुको जाने और नय एव प्रमाणसे वस्तुके स्वरूप का निर्णय करिये। निक्षेपसे व्यवहार कीजिए किन्तु अपना उद्देश्य एक रखिये——एक उद्देश्य रखे बिना हम करेंगे भी क्या? प्रत्येक पुरुष अपने आपमे नित्यप्रति एक अपना मुख्य उद्देश्य रखता है लेकिन उस प्रसगमे अनेक बाते और भी बीच-बीचमे आती रहती है। जैसे किसीका मकान बनवानेका मुख्य एक उद्देश्य है तो बीच-बीचमे रोडी मगवाना, सरिया मगवाना, सीमेन्ट आदिकी व्यवस्था करना,

ये अनेक बाते आती रहती है। ये उद्देश्यकी बाते नही हैं, ये तो उद्देश्यके साधनमे फुटकर बाते है। तो यो ही उद्देश्य तो हम आपका एक मुख्य होना चाहिए और ऐसा अनिवार्य-रूपसे होना चाहिए कि चाहे घरमे हो, चाहे मदिरमे हो, चाहे दूकानमे हो, किसी भी जगह हो, इस उद्देश्यमे अन्तर न आये। वह उद्देश्य क्या होना चाहिए। मोटेरूपमे समझना चाहे तो यो समझ लीजिए कि मैं इस शरीरके झझटोसे छूटूँ और अलग होकर अकेला रह जाऊँ। ऐसा उपाय बनावे कि इस शरीरके सम्पर्कसे अलग होकर मै केवल जो कुछ हू अपनी सत्तासे वही अकेला रह जाऊँ।

देहसे प्रविमुक्त होनेके उद्देश्यकी आवश्यकताका कारण--देहसे प्रविमुक्त होनेका उद्देश्य क्यो होना चाहिये ? यो कि शरीरका सम्बन्ध हमारे सारे झंझटोका कारण बन रहा है। भूख, प्यास, ठड, गर्मी, सम्मान, अपमान आदिकके समस्त कष्ट इस शरीरके सम्पर्क होने के कारण है। आपको हर तरहसे यही बात समझमे आयेगी कि यदि इस शरीरका सम्पर्क न होता तो हम आप आनन्दमे होते। सम्मान अपमानके बडे भयकर दुख जो हो रहे है वे इस शरीरके सम्पर्कके कारण ही तो हो रहे है। इस शरीरको यह जीव मानता है कि यह मैं हूँ बस इसी भूलके कारण सम्मान अपमान आदिकके क्षोभ सामने खडे हो जाते है। किसी ने गाली दी तो यह सोचता है कि देखो इसने इन लोगोके सामने इस मुझ को गाली दी। तो देखिये तीनो जगह वह इस शरीरसे ही सम्पर्क बनाकर निरख रहा है। तो शरीरका सम्बन्ध ही तो समस्त झझटोका कारण बन रहा है। अत अपना मुख्य उद्देश्य एक यही होना चाहिए कि हम कोई ऐसा उपाय बना ले कि जिससे इस शरीरके सम्पर्कसे हम सदाके लिए छूट जाये। शरीर और जीव, ये दोनो अलग-अलग चीजें है। इसी कारण इन दोनोको अलग-अलग भी किया जा सकता है। ये दोनो (जीव और शरीर) एक नही है। इसी बातको यदि कुछ अन्य दृष्टिसे विचारकर निरखे तो यो निरखनेमे आयेगा कि मुझे तो ऐसा विशुद्ध चैतन्यमात्र रहना है, अन्य मेरा यहाँ कोई काम नही है।

परपदार्थोंके लगावमें विडम्बना ही सभव होनेमे असारताका प्रतिपादन—धन वैभव बढाकर क्या कर लिया जायेगा ? लखपति हो गए, करोडपति हो गए तो वहाँ शान्ति मिल जायेगी क्या ? वहाँ तो अशान्ति ही बढेगी और दुर्लभ जो यह नर जीवन पाया है इसके सदुपयोगसे गिर जायेगे। यह भी जीवन उसी गिनतीमे आ जायेगा जैसे कि अनन्त भव गुजार डाले। गुजरनेके बाद फिर कोई मददगार होगा क्या ? भाई धन किसलिए कमा रहे ? तो उनका मन उत्तर देता है कि मेरे लडके अच्छी तरहसे सुखपूर्वक रहने लगे।

अरे ! मोही पुरुष, लडके तेरे कहा है ? तू तो एक चैतन्यमात्र सबसे निराला है, अपने आप मे एक है और मरने के बाद तो फिर कौन किसका लडका और फिर इस दुनियामे जितने लडके है क्या ये कभी तेरे लडके नही हुए ? क्या ये तेरे सम्बन्धी नही हुए ? एक स्वप्नवत् जरासी जिन्दगीमे कुछ परिवार सम्बन्ध मिला, उनको अपना मानकर पूरा मोहका पर्दा अपने आप पर डाल दिया। कुछ लाभ है क्या ? किसके लिए इतना अधिक धन कमाने की होड मचायी जा रही है ? और कमर इस बातके लिए कस रहे है कि इन स्त्री पुत्रादिक परिजनोंके लिए ही हमारे तन, मन, धन, वचन अर्पित होंगे। अन्य लोग तो सब गैर है, उनके लिए यदि कभी कुछ खर्च करनेका समय आये तो बडा हिसाब लगाना पड़ता है कि कितना निकाल कर दिया जाय ? देखो यह कितना गहन मोहान्धकार है और किस बातमे सार है सो बताओ। लौकिक इज्जत बढा ली, सरकारमे नाम कर लिया अथवा कोई मिनिस्टर आदिककी पदवी ले ली, अथवा बडे बडे लोगोंमे अपने आपका बडा सम्मान हो गया, लेकिन अरे मोही, उससे तुझे मिला क्या ? तू तो अपने भावमात्र है। अपने भावोंसे अपनी सृष्टि करता जाता है। अपने आपको निरख और ऐसा विवेक बना ले कि गुपचुप ही अपने आपमे गुप्त रहकर किसीको क्या दिखाना ? अपना कल्याण कर लो, अपने आपमे अपने आपको पा ले-ऐसा विवेक बना ले। व्यर्थके विकल्पजालोसे हटे, घर वैभव, परिजन, पार्टी आदिक सभी को तिलाञ्जलि दें और तैयार हों जायें एक शुद्ध चैतन्यस्वभावके निरखने के लिए। बस हे आत्मन् ! तेरा भला हो जायेगा तेरेमे तेरे ही पुरुषार्थसे। तो ये सब बाते, ये तैयारी ये अपने स्वरूपके निकट पहुचनेकी बातें ये तब ही तो हुई जब कि सभी नयोसे हमने सब तरहसे निर्णय किया और उनसे फैसला पाया और उनके हुक्मको माना और मान करके हेयसे हटे, उपादानमे आये तब ही हमारा श्रेय सभव है, उन नयोमे सक्षेपरूपसे यदि कुछ बात कही जानी चाहिये तो यह कह सकेंगे कि जो पर्याय और भेदकी प्रमुखता रखकर नय है उनको जानें, उनके विषयको समझ लीजिए, उनमे मध्यस्थ हो जाइये और जो अभेदस्वरूपकी प्रमुखताको लेकर नय है उनका उपयोग कीजिए। उपयोग तो कीजिए पर यह लक्ष्य न बनाइये कि मुझे इतना ही करके रहना है। इस उपयोगके फलमे निर्विकल्प स्वतत्त्वकी अनुभूति जगा करती है। लालसा रखिये और इन नयोसे अपना उपयोग कर लीजिए। आखिर उद्देश्य अपना यही बने कि मैं अपने आपको निर्विकल्प चित्स्वभावमात्र अनुभऊँ जहाँ अन्य कोई तरग न उठे।

सर्वजीवोंके कामका दिग्दर्शन—हम आप सब स्थितियोंमे काम क्या किया करते हैं ?

काम करते है जाननका। किन्तु जब किसीका जानना केवल जानना नही रह पाता, उसमे इष्ट अनिष्ट बुद्धिके ढगसे जानना बनती है तो वस्तुत कर तो रहा है यह प्राणी जाननका ही काम किन्तु, साथमे इष्ट अनिष्ट बुद्धिकी मलिनता होनेसे वह अनेक प्रकारके काम कर रहा है यो लगता है। और कोई शुद्ध जीव भी केवल जाननका ही काम करते है किन्तु वहाँ मन, वचन-कायकी प्रवृत्तियाँ, इष्ट अनिष्ट बुद्धि या कोई बाह्य संग न होनेसे वहाँ एकदम सीधा स्पष्ट विदित हो जाता है कि लो यह शुद्ध आत्मा तो केवल जाननेका ही काम करता है। आत्मा ज्ञानस्वभावरूप है अतएव स्वआत्माकी परख जाननके रूपमें ही की जा सकेगी। जानना ही काम है, ज्ञा स्वभाव है और ज्ञानमय ही यह आत्मतत्त्व है, इस कारण जब हम अपनी जानकारी जाननस्वभावके रूपसे करते है तो हमे सन्मार्ग मिलता है और जब अन्य-अन्य ढगोसे जानकारी करते है और साथ ही वैसा विश्वास भी बना लेते है तो हमे मिथ्यामार्गपर चलना पडता है।

शुद्धनय द्वारा ज्ञात शुद्ध विषयका परिचय—यहा शुद्धनयकी बात चल रही थी। शुद्धनय ऐसे शुद्धको बताता है कि जहा किसी प्रकारका भेद अथवा परसम्बधकी अशुद्धता न हो। तब फिर किस-रूपमे बताया जाय ? तो यह बताने वाली बात न होगी। शुद्धनय तो केवल परखका प्रयोजक है, बतानेका प्रयोजक नही, व्यवहारका प्रयोजक नही। शुद्धनयसे जाना, शुद्धनयसे जाननेका काम करें, उसमे व्यवहार उपदेश न चलेगा, उसकी वृद्धि न बनेगी। तब फिर यह बताया किसने ? यह सब अशुद्धनयकी महिमा है। उनका बडा उपकार है कि जिन्होने हमे शुद्धनयके निकट पहुंचा दिया है। अब वहां शुद्धनयसे जाना, इतनी शुद्धदृष्टिसे कि जहा ज्ञानकी व्याख्या करे, समझाये तो इतना भी करनेकी गुंजाइश नही है शुद्धनयकी दृष्टिमे कि यह ज्ञेयको जानता है इसलिए ज्ञान है, ज्ञेयमे रहता है इसलिए ज्ञान है। इतना वर्णन भी शुद्धतामे दोष है। वह तो जो ज्ञात हो सो वह ही है अथवा गाओका अर्थ अमर नाथ कर दे तो वह नाथ जो जाना गया सो ही है। गाओकी दो व्याख्या हो सकती है—नाथ और ज्ञाता। वह नाथ तो जाना गया सो ही है। क्या जाना गया ? अब नही बता सकते क्योकि वह नाथ है। न अथ, अथ ही नही, जिसकी आदि ही नही। जिसका आदि अन्त हो उसकी तो व्याख्या बतायी जाय, पर इस निज नाथकी क्या व्याख्या बनायें ? वह तो जाननेमे ही अपना रस, प्रभाव, विस्तार बनाता है।

परमात्मत्वका स्वतः विकास—यह ज्ञानस्वभाव हम आपमे अनादिसे है और यह ज्ञानस्वभाव ही विकासमे आता है, उसीको परमात्मा कहते हैं। परमात्मा होने के लिए

कोई बाहरकी चीज नही मिलानी पडती, बल्कि वाहरकी ीजोको टाना पडता है। और वा रकी ीजे हटते-हटते यह स्वय जो कुछ रह गया, विकसित हुआ, प्रकट हुआ बस वही परमात्मा है। जैसे पाषाणकी मूर्ति कोई बाहरकी चीज लगाकर नही बनायी जाती, उसमे हटाने हटानेका ही काम रहता है, जोडनेका कोई काम नही होता। मिट्टीकी मूर्ति बनायी जाय तो वहाँ तो बाहरी चीजे जोडनेका काम है, किन्तु पाषाण मूर्तिमे जोडनेका काम नही। जो पाषाण अटपट लगे हुए थे, जो कि उस मूर्तिका आवरण किए हुए थे बस उन आवरणो के हटाने हटानेका काम किया। आवरण हटे कि वह मूर्ति जो थी सो ही निकल आयी। वह मूर्ति कही बनायी नहीं गई। यो ही वह परमात्मा बनाया नही गया। वह तो निकल आया। उसमे जो आवरण थे विषय, कषाय, इच्छा, विकार आदिके वे सब हट गए, उसी को कहते है परमात्मा। परमात्मतत्त्वके विकासका कितना सुगम उपाय है, पर मनमे आये तब ना। हम आपके उपयोगमे परमात्मत्व दृढ हो तब ना। दृढ होना कठिन बात नही, व्यर्थके ो झझट रागद्वेष आदि लगे हुए है बस उन्हे ही तो दूर कर ा है। वह भी अपनी भलाईके लिए। एक भी उदाहरण ऐसा नही कि रागद्वेष करके किसीने भला पाया हो।

हमारी वर्तमान स्थिति और धर्मपालनकी रीति—यहाँ अनेक जीव आये और चले गए, अपनी-अपनी करामात दिखा गए। रहा क्या ? सो बताओ। पर इस मोह बुद्धि ने, इस पर्याय बुद्धिने इस लोकको परेशान कर दिया, बरबाद कर दिया। आज हम आप मनुष्य भवमे है, अच्छी बुद्धि पाई है, कैसे अच्छे विचार चलते हैं, कैसा अ छा व्यवहार चलता है। भला इन पशु पक्षी कीडा मकौडा आदिक योनियोको तो देखो, उनकी क्या दशा हो रही है ? हम आपकी भी कभी वैसी ही दशा थी। आज सुयोगसे मानवपर्याय पाया, अच्छी बुद्धि मिली, फिर भी इस मानवजीवनको सफल करने का अन्दरसे चाव नही होता। कुछ थोडी देर को धर्म करनेका ख्याल करके मदिर आते है पर वहाँ भी क्या गारटी कि वास्तवमे धर्मभाव ा पूर्वक आते है। वास्तवमे धर्म नाम है किसका ? धर्म नाम है वस्तु-स्वभावका। अपना धर्म है अपने स्वभावका। आत्माका धर्म है आत्माका स्वभाव। आत्मा का स्वभाव ैतन्यभाव। वह धर्म कोई करनेकी चीज नही, पर उस धर्ममे दृष्टि करनेका ही नाम धर्म करना कहलाता है। धर्म तो स्वत सिद्ध है, उसमे करना ही क्या है ? उसमे अपूर्णता नही है, धर्म तो स्वसहाय है, अभेद है, सहजभाव है, उसमे करना क्या ? उससे विमुख हो रहा है यह उपयोग बस यही अधर्ममे चलना हो रहा, यही उपयोग स्वभावके सम्मुख आये, उपयोगमे स्वभाव जगा रहे, यही धर्मका करना हुआ।

तब समझ लेना चाहिये कि हमे आखिर करना क्या है ? हमे स्वभावदृष्टि करना है । अब जिसकी जैसी परिस्थितियाँ है उन परिस्थितियोमे वह स्वभाव दृष्टि करने लायक है अथवा नही, कितने क्षण ठहर सकता है ? उसकी ये परिस्थितियाँ व्यवहारधर्मका रूप दे देती है । जो भव्य है, किन्तु अभी रागके गृहस्थीके प्रसगमे रहता हो उसका काम केवल इतनी बातसे न चलेगा, कुछ त्याग करना पड़ेगा, अपने को सयत बनाना पडेगा । बिना प्रतिज्ञाके, बिना सन्यासके, बिना त्यागके उस वस्तुसे संस्कार मिटाना कठिन है । भला जब हमारे नियत काल वाले थोडे नियमसे भी संस्कार नही मिटना तो सोचिये मिथ्यासंस्कार तोडनेके लिये कैसा पौरुष करना होगा ? जैसे किसीको भादो सुदी १४ का उपवास करना है तो उसके सोचनेमे यह भी तो पडा है कि चौदश निकलने तो दो और पूर्णिमाका दिन आने तो दो फिर तो हमारा ही राज्य है । (हसी) याने खूब मनमानी भोजनसामग्री बनाकर भोजन करेंगे । तो थोडे छोटे नियतकाल वाले नियमसे भी पिछला पडा हुआ सस्कार नही मिटता । लेकिन जब आजीवनका नियम हो जाता है तो फिर वह विचलित नही होने पाता । तो आप जब अपना व्यवहार यो रखे दो चार ही समय खानेका अथवा और और भी विषय भोगनेके नियम वनाये, अनेक समय परिहार करें तो ऐसी परिणतियोमे रहने वाले पुरुषमे स्वभावदृष्टि अनेक बार कर सकनेकी पात्रता बनती है । तो ये बाते सबकी अपनी-अपनी परिस्थितियोके अनुसार होती है, पर उन सबके बीच भी वास्तविक बात करनेकी क्या समझना है एक चैतन्यस्वभावका उपयोग ।

नयोंकी उपयोगिता—बडे ऊचे ध्यानोमे क्या ध्येय किया जाता है ? यही, जो शुद्ध-नयका विषय है । फिर यह नय विकल्प भी दूर होगा और निर्विकल्प परिणति होगी, यहाँ एक जिज्ञासा यह बनेगी कि अशुद्धनयका फिर वर्णन ही क्यो किया गया ? जब सभी नय छोडने है तो फिर उनके जाननेका श्रम ही क्यो किया जाता है ? बात यह है कि नयोके जाने बिना आत्माका परिज्ञान न होगा । और अज्ञानदशामे यह पात्रता नही रहती कि कोई व्यवहारनयसे गुजरने पर निश्चयनयमे आकर, निश्चयनयसे गुजरकर स्वानुभूतिमे परिणत हो जाने शान्तिके अर्थ व्यवहारसे उत्तीर्ण होकर निश्चयसे उत्तीर्ण होकर निर्विकल्प स्वानु-भूतिमे आना यही एक मार्ग है, लेकिन जिसने व्यवहारनयसे अथवा तीर्थप्रवृत्तिके साधनसे कुछ परिज्ञान भी नही किया वह उत्तरोत्तर ऐसे मार्गमे पहुंचेगा कैसे ? जो सर्वत पहिचानते थे उन्होने यह मार्ग अपनाया था । यह बात हमे उपास्य ॐ के ढाँचे से भी विदित होती है । प्राय सभी दार्शनिक लोग ॐ की उपासना करते है और अपने-अपने अभिप्रायके आधार

पर ॐ का अपना अर्थ लगाते है। ॐ शब्दमे कितनी बाते बसी हुई है ? ॐ का कोई अर्थ लगाते हैं अ उ म् अर्थात् ब्रह्मा, विष्णु, महेश, तो कोई अर्थ लगाते है अ अ आ ऊ म् अर्थात् अरहत; अशरीर (सिद्ध , आचार्य, उपाध्याय और मुनि । और भी सभी लोग अपने अपने अर्थ लगाते है । अब जरा ॐ के ढाँचेको तो देखिये—ॐ के आकार मे ५ भाग पडे हुए हैं। पहिले है ३ जैसा अक, इसके बाद है एक डंस जैसा सीधा डडा और उसके बाद है शून्य, जो उस सीधी रेखाके अन्तमे लगा है। उसके ऊपर है अर्द्ध चन्द्र और उसके ऊपर है शून्य ये ५ भाग हमे साधनकी प्रक्रिया बताते है। ३ का अंक व्यवहारनयका प्रतीक है, क्योकि उसमे विषय विविध होते हैं और तीनके मायने विविध । सस्कृत व्याकरणमे एकके मायने एक, दो के मायने दो और तीनके मायने बहुत । इसी प्रक्रियाको बतानेके लिये एक वचन, द्विवचन और बहुवचन माने गए है, तो यह ३ का अक व्यवहारनयका प्रतीक है। उस रेखा के बाद जो शून्य है वह निश्चयनयका प्रतीक है, जैसे शून्यमे आदि अंत नही, शून्यमे एक-रूपता है, यो ही निश्चयनयके विषयमे आदि अन्त नही, और शुद्धनयका विषय एकरूप है, अभेद है, अखण्ड, ऐसे यहाँ व्यवहार और निश्चय दो विषय परस्परमे एक दूसरेसे भिन्नता रखते है, इसलिए अलग-अलग पडे है। कहाँ ३ का अंक है, कहाँ शून्य है, इन दोनो नयोको मिलाने वाली जो रेखा है वह प्रमाणका प्रतीक है। इन तीन सम भागोके ऊपर अर्द्धचन्द्र है जो स्वानुभूतिका प्रतीक है। यहाँ तक यह अर्थ हुआ कि व्यवहारनय व निश्चयनयसे प्रमाणपद्धतिपूर्वक जानो, फिर उससे भी परे होकर स्वानुभूतिकालमे आवो। इस पौरुषसे क्या मिलेगा, उसका निर्देश करने वाला है ऊपरका शून्य । इस आत्मपौरुषके फलमे रागादिसे शून्य सहज स्वत सिद्ध परमात्मत्वकी प्राप्ति होगी। अब देखे इस प्रक्रियामें सर्वप्रथम व्यवहार उपयोगी रहा, उसने उपकार किया निश्चयनयके निकट पहुंचानेका । इस प्रयोगमे प्रमाणका सहाय ही सन्मार्गपर ला सका । इस सब प्रकाशका फल हुआ स्वानुभूति तथा स्वानुभूतिका फल होता है निर्दोष परमात्मत्वकी प्राप्ति ।

ॐ की प्रक्रियामें निर्णय— इस प्रकियामे यही निर्णय भरा हुआ है कि केवल व्यवहार-नय कार्यकारी न होगा केवल निश्चयनय हितकर न होगा, अर्थात् व्यवहारनयकी बात छोड-कर, व्यवहारनयका विरोध करके निश्चयनयसे भी सिद्धि न होगी, क्योकि व्यवहारका विरोध कर निश्चयनयके एकान्तमे ही तो अनेक दार्शनिक जनोने अपना-अपना दर्शन बनाया, जिनमे अपरिणामी, नित्य, सदामुक्त आदि अनेक प्रकारकी कल्पनायें जगी। इसी प्रकार निश्चयनय की अपेक्षा न रखकर, उसको लक्ष्यमे न लेकर व्यवहारनयकी बात भी अकिञ्चित्कर है, उससे

कुछ सिद्धि नही है, जिसने अपना उद्देश्य ही नही बनाया वह कितनी ही खटपटे करे उससे फायदा क्या मिलेगा ? तो उन नयोंको प्रमाणने साधा, व्यवहारनयसे जाना, निश्चयनयसे भी जाना, प्रमाणसे उनको साधा और नयो प्रमाणसे सब कुछ जानकर निर्णय करना है, फिर इन तीनोसे परे ऊपर जो अर्द्धचन्द्र इन तीनो को ऊपर छुये हुए नही है उस अर्द्धचन्द्रपर आवे, वह है अनुभूति। स्वानुभूतिमे आय, स्वानुभूतिमे निश्चयनयका भी आलम्बन नही। व्यवहारनयका तो आलम्बन होगा ही कैसे ? समस्तविकल्पोसे परे उस अनुभूतिमे आयें तो फल क्या मिलेगा ? शून्य। कोई कहेगा कि फल तो बुरा मिला, शून्य मिला ? तो उस शून्यका अर्थ भी समझिये कि शून्य कहते किसे है ? शून्य कहते है केवल ठोसको। जैसे किसीने कहा कि यह घर सूना है, तो इसका अर्थ हुआ कि घरमे केवल घर ही है, अन्य कुछ भी नही है। ऐसे ही अगर कहा गया कि आत्मा सूना है तो इसका अर्थ हुआ कि आत्मामे केवल आत्मा ही रह गया है। उसमे अन्य किसी परतत्वका लगाव नही रह गया है। आत्मामे जब तक ये रागद्वेष, पर्याय, परभाव आदि समाये हुए है तब तक आत्मा सूना नही। ये सभी खटपटे निकले उसे कहते है आत्माका सूना होना। जैसे घरमे डाकूलोग आ गए तो घर अशान्ति छा गई, और जब घरसे डाकूलोग बाहर निकल गए तो घरके अन्दर शान्ति हो गई। इसी प्रकार इस आत्माके अन्दर जब तक रागद्वेषादिकरूपी डाकू भरे है तब तक आत्मा अशान्त है और जब इन रागद्वेषादिक डाकुवोका उपद्रव आत्माके अन्दरसे समाप्त हो तो आत्मा शान्त हो। याने जब आत्मा सूना रह जाय तब आत्माको शान्ति प्राप्त है। तो आत्माको इस शून्य अवस्थाके अनुभवनेके निकट पहुँचाया निश्चयनयने और निश्चयनयके निकट पहुंचाया व्यवहारनयने। ऐसे निकट पहुचनेपर भी हम स्वानुभवके पात्र बने रहे, इसके लिए निश्चयव्यवहारका उपयोग हमारा इस प्रकार होता रहेगा जैसे छठे, ७वे गुणस्थानमे असख्याते बार परिवर्तन होता रहता है।

निर्विकल्प स्वकी अनुभूतिमें पहुँचनेकी प्रयोज्यता—बात यह है कि जो जिस कला मे निपुण है वह उस कलाको अनेक ढगोसे खेला करता है, उसे अडचन नही आती। यो ही जो लोग तत्त्वरमणकी लीलामे निपुण है वे जिस किसी भी प्रकार हो, उस तत्त्वकी दृष्टि बना लेते है। तभी एक प्रसगमे जिनसेनाचार्यने समयसारकी ठीकामे व अमृतचन्द्रजी सूरिने भी अपनी टीकामे बताया है कि यह रागभाव पौद्गलिक है और यहाँ तक कह डाला कि निश्चयसे राग पौद्गलिक है। अब भला बतलाओ कथनमे एकदम विरोधसा लग रहा, पुद्-

गलके परिणाम न हो तो पौद्गलिक कहे लेकिन पुद्गलका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए विभावो को पुद्गलमे जोडा और इसको निश्चयनयकी भी सज्ञा दी, सो अब जरा सोचिये वह निश्चय क्या है ? उसका पूरा नाम होगा विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनय । एक घटना कल्पनामे ले । एक प्रश्न हुआ कि ये रागादिक किसके है ? तो इस प्रश्नका उत्तर ऐसी सावधानीसे देना कि आत्माके चैतन्यस्वभावपर आँच न आये । निश्चयनयमे यही तो किया जायगा ना ? तब ये रागादिक किसके है ? आत्माके हैं—ऐसा कहनेमे चैतन्यस्वभावपर रच आँच न आये, यह बात बिगडती हुई नही देख सकें । तव ऐसी स्थितिमे आत्माको तो चैतन्यस्वभावमात्र ही करार करना है और उत्तर भी यह देना है कि ये रागादिक किसके है, तो ऐसे मूडमे उत्तर होगा—ये रागादिक पौद्गलिक है इनका अभिप्राय भी एक ढगका है, और निश्चयसे रागादिक पौद्लिक है, इसका अभिप्राय भी अपना एक ढगका है । दोनो आशयोने स्वभावको निर्दोष रखा । जो तत्त्वक्रीडामे निपुण जन हैं वे अपने उपयोगमे उस सारभूततत्त्वको ग्रहण करते हैं । तो समस्त नयोसे जानना और जानकर जो आत्माको स्वानुभूतिके निकट पहुंचाने मे साधकतम लग रहा हो उस नयका आलम्बन ले और फिर उस नयका भी विकल्प नही रखना, उससे अतिक्रान्त होकर अनुभवमे पहुवें, बस यही हम आपका एक परमकर्तव्य है, इसके लिए शान्तिमार्गके अर्थ बुद्धिपूर्वक यही प्रयत्न करे कि प्रमाण और प्रमाणके अशोसे नयोंसे आत्माका परिज्ञान करे और अविकार अतस्तत्त्वको उपयोगमे बराबर रखकर अपने कर्म कलुष कलक इन सबको धोवें पवित्र बने और आन्नदमय हो सके, इसी हेतु चाहिए यह कि आत्मतत्त्व के परिज्ञान का सब तरह से उपाय बनायें और अपने जीवन को इसी कार्यमे लगायें ।

॥ अध्यात्मसहस्री प्रवचन चतुर्थ भाग समाप्त ॥

अध्यात्मसहस्री प्रवचन पञ्चम भाग

(एकादश परिच्छेद)

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक
मनोहरजी वर्णी सहजानन्द महाराज]

दश परिच्छेदोंके प्रकरणका विषय बताते हुए ग्यारहवें परिच्छेदके वर्णनका सम्बन्ध उपक्रम—इस ग्रन्थके प्रथम परिच्छेदमे जीवके हितके लिए उद्देश्यकी बाते निर्णीत की हैं कि इसे अपना उद्देश्य क्या बनाना चाहिये ? वह उद्देश्य बताया गया है कि आत्मा का स्वाधीन सहज आनन्द लाभ हो, बस यही उद्देश्य होना चाहिए। इस उद्देश्यकी पूर्तिके लिए वस्तुतत्त्वके अवगमकी सामान्य बात कही गई है। दूसरे परिच्छेदमे बताया गया है कि पदार्थका निर्णय किन-किन उपायोंसे होता है, जिस निर्णयके बलपर यह आनन्द लाभ का उपाय बना सके। वे मुख्य उपाय चार बताये गए है–प्रमाण, लक्षण, नय और निक्षेप। इनके अलावा निर्देश, स्वामित्व आदि कभी उपाय बताये गए। लक्षण, प्रमाण नय, और निक्षेपोका विशद रूपसे वर्णन दूसरे तीसरे चौथे और ५वे परिच्छेदमे किया गया। जिसका निर्णय बताया है उसका विशद ज्ञान करने के लिए गुणोका स्वरूप छठे परिच्छेदमे कहा गया है। ७ वे परिच्छेदमे कहा गया है। ७वे परिच्छेदमे जीवका यथार्थ स्वरूप क्या है और उस जीवमे अयथार्थ बाते क्यों आ गयी ? इन बातोका सयुक्तिक वर्णन किया गया है, जो कि उपादान निमित्तके सत्यस्वरूपके समझने पर ही सही विदित होता है। ८वे परिच्छेदमे उपादानमे कार्य होने की शक्तिका विशद वर्णन किया गया है। इसीमे उपादान निमित्तका सयुक्तिक वर्णन और आत्मामे उत्पन्न होने वाली प्रतिक्षणकी विकारपरिणति का स्वरूप बनाया गया है। नवम परिच्छेदमे प्रतिसमयमे जो रागादिक परिणति होती है उसका स्वरूप कहा गया है। जहाँ यह भी बताया गया कि प्रतिसमयका राग अनुभवमे नही होता तब अन्तर्मुहूर्त रागधारा उपयोगमे प्रतीत होती है, उसमे विकारका अनुभव जगता है। इतने पर भी रागपरिणति प्रतिसमय एक-एक नवीन-नवीन हुआ ही करती है। ऋजुसूत्रनयकी अपेक्षासे इस विषयका भले प्रकार वर्णन किया गया। दशमपरिच्छेदमे विभिन्न दृष्टियोमे आत्माका परिचय प्राप्त होने पर हितके मार्गमे चलनेकी बहुत सुगम

प्रणाली विदित हो जाती है। यह समस्त वर्णन कर चुकने के वाद जो द्वितीय अध्यायमे यह वताया गया कि पदार्थका स्वरूप लक्षण, प्रमाण, नय और निक्षेप द्वारा होता है और साथ ही निर्देश, स्वामित्व आदिक द्वारा भी वताया गया था। अव निर्देश, स्वामित्व आदिक उपायोसे किस तरहसे आत्माकी पहिचान होगी। यह वात इस ११वे परिच्छेदमे वतायी जायेगी। सो यह विषय भी विभावपरिणामके माध्यमसे वतायेंगे अर्थात् कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामे जो कषायभाव जागृत होता है वह कषायभाव किस तरह निर्देष आदिक उपायोंसे पहिचाना जाता है? यह वर्णन किया जायगा।

वारह प्रकारोंमें कषायका निर्देश—इस प्रकरणमे सवसे पहिले निर्देशकी वात कह रहे है। निर्देशमे यह वताया जाना चाहिये कि कषाय क्या चीज है? विभावपरिणामसक्षेप मे यदि नाम लिया जाय तो मोह और कषाय इनका नाम लिया जा सकता है। मोह और कषायमे सर्वविभाव आ जाते है। मोहका भी निर्देष आदिकसे वर्णन हो सकता है और कषायादिकका भी वर्णन किया जा सकता है। यहा कषायके सम्वधमे वर्णन कर रहे हैं। जो वर्णन कषायके सम्वधमे होगा वही वर्णन एक स्वरूप दृष्टिका परिवर्तन करके सवका सव मोहके वर्णनमे भी होगा। कषाय क्या है? निर्देशमे यह एक प्रश्न उत्पन्न होता है। कषायका निर्देश १२ प्रकारसे किया जा सकता है—नामकषाय, स्थापनाकषाय, आगमद्रव्यकषाय, ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकषाय, भावी नोआगमद्रव्यकषाय, तद्व्यतियिक्त नोआगमद्रव्यकषाय, प्रत्ययकषाय, समुत्पत्तिकशाय, आदेशकषाय, रसकषाय, आगमभावकषाय और नोआगमभावकषाय। ये समस्त वारह प्रकारके निर्देश नाम, स्थापना, द्रव्य और भाव—इन चार विधियोके अन्तर्गत है। निर्देश अथवा व्यवहार जिसका भी किया जाता है वह इन चार निक्षेपोंके वलपर किया जाता है, तो यहा भी निर्देश इन चारोंके वलपर कर रहे है। उनमे सर्वप्रथम है नामकषाय।

नामकषायसे कषायपरिचय—नामकषायका सम्बध नामसे है। कषायके नाम हैं क्रोध, मान, माया, लोभ; इस प्रकार इन अक्षरसमूहोमे जो नामकषाय है, जिस नामके द्वारा कषायभाव वाच्य होता है उसे नामकषाय कहते हैं। यह नामकषाय नैगम, संग्रह, व्यवहार, ऋजुसूत्र नय, शब्दनय, समभिरूढनय और एवभूतनय—इन सातो नयोके विषयमे आते हैं अर्थात् सातो नयोंके द्वारा नामकषायका विश्लेषण किया जा सकता है। क्योकि नाम एक स्थूल निर्देश है, जो कि उसीके अन्तर्गत सूक्ष्म-सूक्ष्म विषय ले लेकर सातो नयोके द्वारा कहा जा सकता है। जैसे—नैगमनयसे जिसमे इन भावोके नाम का संकल्प किया हैं,

जिस नामसे इसे बताया गया है उस सकल्पसे इन कषायोको कहा जाता है। नामकषायसे कोई विशेष कालकी बात न आयगी। चाहे वह भूतमे हो, वर्तमानमे हो अथवा भविष्यमे हो, सभी प्रकारके कषाय नामकषायसे व्यक्त हो जायेगे। इसी प्रकार जितने भी क्रोध, मान, लोभ आदिक है, जिनको इन नामोसे पुकारते है, ये नामकषाय भी सब संगृहीत हो जाते है। किसी भी प्रकारका क्रोध हो वह क्रोध नामसे संगृहीत हो जाता है, यो ही मान, माया, लोभादिक कषाये भी मान, माया, लोभादिक नामोसे सगृहीत हो जाती है। इनका व्यवहार इन कषायोके वशपर होता ही है। नामकषायसे कषायोके नामका बोध होता है, इसी प्रकार शब्द, समभिरूढ, एवभूत आदिक नयोकी पद्धतिसे नामकषायका प्रयोग किया जा सकता है। नामकषाय से कषायो का नाम के रूप मे परिचय मिलता है।

स्थापनाकषाय—अब स्थापनाकषाय द्वारा उन कषाय अर्थोमे नामकी प्रतिष्ठा की जाती है। सद्भावरूप कषाय हो अथवा असद्भवरूप कषाय हो, उन सबमे यह कषाय है। इस प्रकारकी स्थापनाको स्थापना कषाय कहते है। ये वे कषाय भाव है जिनको क्रोधादिक नामोंसे लक्षित किया गया है, मान, माया, लोभादिक नामोसे लक्षित किया गया है उन्हे उस नामसे कहा है। इस नामसे कहा जाय तो इस कषायका ग्रहण करता, इस प्रकारके कथन प्रतिष्ठित हुए है, इस स्थापनाकषायसे कषायका भावरूपमे परिचय होता है। केवल नामकषाय ही हो और स्थापनाकषाय न माने तो कुछ भी व्यवहार नही बन सकता। आखिर व्यवहार तब ही बनता है जब यह विदित होता है कि इस नामसे यह पदार्थ कहा जाता है अन्यथा कोई कहे कि घट लावो तो सुनने वाला यो ही खडा रहेगा। वह जब स्थापना करने लगेगा कि घड़ा नाम इस अर्थमे प्रतिष्ठित है तब वह उस वस्तुको ला सकेगा तो केवल नामकषायसे व्यवहार न बनेगा। स्थापनाकषाय होनेपर नामकषायकी सार्थकता होगी। किसी एक वस्तुका व्यवहार नाम और स्थापना हुए बिना नही हो सकता। स्थापनाकषाय नैगम, सग्रह और व्यवहारनयका विषयभूत है। स्थापना चूंकि बुद्धिमे दो पदार्थ आये तब हुआ करती है। इसमे इसकी प्रतिष्ठा करना वह और जिसमे करना वह ये दो बाते सामने हो तब स्थापना बनती है। व्यवहारमे भी यदि मूर्तिमे प्रभुकी स्थापना की है तो मूर्ति और प्रभु ये दो बातें ज्ञानमे हो तब ही तो स्थापना बनती है। यो ही स्थापनाकषाय भी दो की बुद्धिमे बनती है। अमुक प्रकृतिका निमित्त पाकर आत्मामे जो कषायविभाव उत्पन्न हुआ है वह तत्त्व और क्रोध, मान, माया, लोभ आदि इन शब्दोसे जो यहा कहा जा रहा है वह शब्द, वह नाम यह दूसरा तत्त्व है। तो नाम और भाव—ये दोनो

जब बुद्धिमे हो तब स्थापना हो सकेगी कि इस नामके द्वारा यह भाव कहा गया है। तो यह बात नैगम, संग्रह, व्यवहार——इन तीन नयोमे सम्भव है। लेकिन ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे यह सम्भव नही है। ऋजुसूत्रनय केवल वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है और स्थूलरूपसे उसका विषय कहा जाय तो इतना भी कह सकेंगे कि वर्तमान पर्याय संयुक्त अर्थको विषय करता है, लेकिन विषय किया गया एक ही, वहां दो विषय बुद्धिमे नही आये तो ऋजुसूत्र-नयकी दृष्टिमे स्थापनाकषायका व्यवहार नही बन सकता। इस कारण स्थापनाकषाय नैगम, सग्रह, व्यवहार——इन तीन नयोका विषभूत है, तब स्थापनाकषाय ऋजुसूत्रनयका विषय नहीं बन सकता। तब शब्द, समभिरूढ, एवभूतनयका विपय तो हो ही न सकेगा, क्योकि शब्द, समभिरूढ और एवभूत, ये ऋजुसूत्रनय द्वारा बताये गए पदार्थ मे और सूक्ष्मता को विषय करता है। यो स्थापनाकषाय नैगम, सग्रह, व्यवहार——इन तीन नयोका ही विषयभूत है। इस प्रकार नामनिक्षेप और स्थापनानिक्षेपके माध्यमसे कषायोका निर्देश नामकषाय और स्थापनाकषायके रूपमे क्रिया गया।

आगमद्रव्यकषायसे परिचित किया गया आगमद्रव्यकषाय——अब द्रव्यनिक्षेपके माध्यमसे कषायका वर्णन करेंगे। द्रव्यमे दो भेद हैं——पहिला है आगमद्रव्य और दूसरा है नोआगमद्रव्य। नोआगमद्रव्यमे तीन प्रकार होते हैं——ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्य, भावी-नोआगमद्रव्य और तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य। यो द्रव्य निर्देश माध्यमसे चार प्रकारोमे कषायोका वर्णन किया जायगा। तो उन चारो प्रकारोमे प्रथम प्रकार और निर्देषके बारह प्रकारोमे तीसरा प्रकार है आगमद्रव्यकषाय। आगमद्रव्यकषाय उसे कहते हैं जो पुरुष कषाय का प्रतिपादन करने वाले शास्त्रोका ज्ञाता हो, किन्तु उस शास्त्रमे अनुपयुक्त हो, वहाँ उप-योग न लगा रहा हो, ऐसे पुरुषको आगमद्रव्यकषाय कहते हैं। आगमद्रव्यका अर्थ है आगम को जानने वाला पुरुष, किन्तु आगममे उपयोग न रख रहा हो उस पद्धतिसे आगमद्रव्यकषाय वह पुरुष जो कषायका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रका ज्ञाता हो, किन्तु उसमे उपयोगी न हो। द्रव्यनिक्षेपके माध्यमसे जो कषायोका वर्णन चल रहा है उसमे मुख्यता द्रव्यकी है। द्रव्यनिक्षेपमे काल अतीत और भविष्य विशेषतया विषय हुआ करते हैं। तो अतीत भविष्य-कालकी विषमता द्रव्यकी मुख्यतामे ही सभव है। तो कषायके सम्बधमे द्रव्यनिक्षेपके माध्यम से जो वर्णन चल रहा है उसमे द्रव्याधिकारी जीवकी मुख्यता ली गई है, तो आगमद्रव्य-कषाय उसे कहते है जो पुरुष कषायके प्रतिपादन करने वाले शास्त्रके ज्ञाता तो हो, किन्तु उसमे उपयुक्त न हो। यदि उपयोगी हो गए तो वह भाव निक्षेपका विषय बनेगा, क्योकि

वर्तमानमें भी उपयोग उसका चलने लगा। तो ऐसे पुरुषको आगमद्रव्यकषाय कहते है। ऐसा पुरुष नैगमनय, संग्रहनय और व्यवहारनयके द्वारा ही विदित किया जा सकता है। ऋजुसूत्रनय वर्तमान पर्यायको ग्रहण करता है और वर्तमान पर्यायसे उपलक्षितभाव भावनिक्षेपका विषय है, द्रव्यनिक्षेपका विषय नही है। इस कारण यहाँ ऋजुसूत्रनयका उपयोग नही है।

निर्देशसे नोआगमद्रव्यकषायके परिचित किया गया नोआगमद्रव्यकषाय— अब नोआगमद्रव्यकषाय अर्थात् जो जीव नही किन्तु जीवसे अतिरिक्त कुछ है उनका वर्णन करेगे। यह वर्णन भी द्रव्यनिक्षेपके माध्यमसे है लेकिन उस द्रव्यजीवके साथ रहने वाला जो बाह्यपदार्थ है उसकी मुख्यताको विषय करता है। नोआगमद्रव्यकषायके तीन प्रकार है—ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्य, भावीनोआगमद्रव्य और तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्य। ज्ञायकशरीर नोआगमद्रव्यकषाय ज्ञायकशरीरको कहेगे। यहाँ ऐसे जीवके शरीरको कहा गया, जो जीव कषायके स्वरूपको जानने वाला है तो यहाँ जीवका शरीर ग्रहण किया गया अतएव नोआगम है किन्तु कषायस्वरूपके जानने वाले जीवके शरीरको लिया गया है, इस कारण यह ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकषाय है। दूसरा प्रकार है भावीनोआगमद्रव्यकषाय। जो जीव भविष्यकालमे कषायविषयक शास्त्रको जानेगा उसे भावीनोआगमद्रव्यकषाय कहते हैं। द्रव्यनिक्षेपका विषय अतीत भी है और भविष्य भी है। इसमे भावीकालकी मुख्यता है। जो जीव अभी कषायविषयक शास्त्रको चाहे न जान रहा हो लेकिन आगे जानेगा, ऐसे जीवको भावीनोआगमद्रव्यकषाय कहते है तीसरा प्रकार है तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यकषाय जो कषायों का आधारभूत हो, किन्तु शरीर और जीवसे व्यतिरिक्त हो ऐसे पदार्थको नोआगमद्रव्यकषाय कहते हैं। इस नोआगमद्रव्यका सम्बध तो कषायके साथ है। वह किसी भी प्रकार हो लेकिन यह न तो स्वय जीव है और न जीवका शरीर है। उन दो से जो व्यतिरिक्त है ऐसा पदार्थ तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकषाय कहलाता है। ये भी नैगम, संग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रनयके विषयभूत है। चूंकि यहाँ कालकी विवक्षा नही है कि अतीत हो अथवा भावी, सो तद्व्यतिरिक्त पदार्थ इस तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकषायमे है तो कालकी अपेक्षा न होने से तीनो कालके तद्व्यतिरिक्त इस विषयमे ग्रहण किये जा सकते है। तो अतीत और भावीकालकी अपेक्षासे तो नैगमनय घटित होगा और सग्रहव्यवहार भी घटित हो जायगा, किन्तु वर्तमानपरिणामकी अपेक्षासे ऋजुसूत्रनय ही इसकी सिद्धि कर सकेगा। इस कारण तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकषाय इन चार नयोका विषयभूत कहा गया है।

प्रत्ययकषायका परिचय——अब तद्व्यतिरिक्त क्या-क्या पदार्थ हो सकते है ? उसीके विवरणमे कुछ बात कही जायगी। जिनमे प्रथम बनाया गया प्रत्ययकषाय। कर्म तद्व्यतिरिक्त कहलाते हैं। कर्म न तो जीव है और न जीवका शरीर है। तो जीव है और न जीवका शरीर है। तो कर्म जीव और शरीरसे भिन्न है किन्तु कषायके साधनभूत है। कर्म का उदय आये बिना क्रोध, मान, माया, लोभ रूपपरिणाम नही होते है। इस कारण प्रत्यय का अर्थात् कर्मप्रकृतिका कषायके साथ बहुत अधिक सम्बन्ध है। बल्कि इस निमित्तनैमित्तिक भावमे इतना भी कह दिया जाय तो अत्युक्ति नही है कि कषायका स्वामी यह प्रत्ययकषाय है। जीवमे जो क्रोध, मान, माया, लोभादिक भाव जागृत होते हैं वे तो हैं भावकषाय अथवा आदेशकषाय। और उस भावकषायका स्वामी है प्रत्ययकषाय अर्थात् क्रोधप्रकृतिके उदय होनेपर ही जीवमे क्रोधभाव जगता है।क्रोधप्रकृति जब नष्ट हो जाती है तो जीवमे क्रोधभाव नही जग सकता। तो यो क्रोधभावका प्रकृतिके साथ अन्वयव्यतिरेक है ,इस कारण भावकषायका स्वामी प्रत्ययकषायको कह दिया जाय तो अव्युक्ति न होगी। एक दृष्टिमे यह कथन ठीक बैठेगा। तो प्रत्ययकषायका इस भावकषायसे इतना अधिक सम्बध है। प्रत्यय कषाय किसे माना है जो उदयमे आ रहे हैं, ऐसे क्रोध, मान, माया, लोभादिक प्रकृति अर्थात् उदयागतप्रकृतिको प्रत्ययकषाय कहते है। ये प्रत्ययकषाये यहाँ नैगम, सग्रह, व्यवहार और ऋजुसूत्रनयके विषय हैं। नवीनप्रत्ययकषायका सम्बध अथवा बन्ध भी प्रत्ययकषायके सम्पर्कमे चलता है। नवीनकर्मका जो आस्रव होता है उसका कारण कर्मका उदय है। उदयागतप्रत्यय (प्रकृति) नवीनप्रत्ययबधका कारण है। हॉ इतनी बात अवश्य है किउदयागतप्रत्यय नवीनबंधका कारण बन जाय, ऐसी निमित्तता आनेका निमित्त है भावकषायका उदय, जिससे यह स्पष्ट अर्थ निकलता है कि जब जीव क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायोरूपपरिणाम करता है तो उसके निमित्तसे जिन प्रत्ययकषायोके उदयमे यह भाव हुआ है उन प्रत्ययकषायोमे ऐसा निमित्तपना आ जाता कि नवीन कर्मबध होने लगे, तो यो नवीनकर्मबंध होनेका साक्षात् निमित्त है उदयागतकर्म और उदयागतकर्ममे नवीन कर्मबन्धका निमित्तपना आ जाय, इसमे निमित्त है जीवका भावकषाय। तो जीवका भावकषाय जिसे कर्मबन्धके लिए निमित्त कहने की पद्धति है सो यो पद्धति बनी कि मूल तो यह भावकषाय निमित्त हुई, क्योकि भावकषाय न हो तो उदयागत कर्ममे नवीनकर्मबधका निमित्तपना नही हो सकता है। तो यो उदयागत कर्मप्रकृति प्रत्ययकषाय कहलाती है और यह प्रत्ययकषाय नैगम, सग्रह, व्यवहार और ऋजु सूत्रनयका विषयभूत है।

समुत्पत्तिकषायका परिचय—निर्देशका आठवा प्रकार है समुत्पत्तिकषाय, जो तद्व्यतिरिक्त नोआगमद्रव्यके प्रकाररूपमे कहा जा सकता है। तद्व्यतिरिक्तका अर्थ है कि जिस जीवमे कषायभाव जग रहा है उस जीवके अलावा और उस जीवके शरीरके अलावा शेष वे अन्य पदार्थ जो कषायके उत्पन्न होनेमे सम्बधित हो, चाहे निमित्तरूपसे सम्बधित हो अथवा आश्रयभूतसे, वे सब पदार्थ तद्व्यतिरिक्त कहलायेगे। इस दृष्टिसे समुत्पत्तिकषाय क्या होता है? इसका वर्णन कर रहे हैं। कषाय प्रकृतिके उदयमे जो सहायक कारण है जिन्हे नोकर्म कहते है उनको समुत्पत्तिकषाय कहते है। जीवमे कषायभाव जागृत होता है, उसमे कारण है प्रकृतिका उदय, किन्तु प्रकृतिका उदय किसी नोकर्मका सन्निधान पाकर अपना फल देनेमें समर्थ होता है। जैसे किसी मनुष्यके निद्राप्रकृतिका उदय तो आया, पर निद्रा प्रकृतिके उदयमे सहकारी नोकर्म है, जैसे परिश्रम करके कोई थक गया हो तो वह थकान या दही आदिक पदार्थ खाया हो तो यह भी उसका नोकर्म है। तो यो नोकर्म जुटने पर निद्राप्रकृतिका उदय निद्राका साधक बन जाता है अथवा और समझिये कि जैसे किसी जीवके क्रोध प्रकृतिका उदय आया और क्रोध प्रकृतिके उदयकालमे जीव अथवा अजीव कुछ भी पदार्थ इसके क्रोध करनेके लिए विषय बना, आश्रय वना, वह समुत्पत्तिकषाय है। जीव क्रोध करेगा तो उस क्रोधमे कुछ तो विषय आयेगा, जिस किसी चीजको उपयोगमे लेकर गुस्सा बन रहा है ऐसी वह चीज कुछ सामने तो होगी, किसी बाह्य वस्तुका उपयोग बनाये बिना, किसी बाह्य वस्तुको विषय किए बिना कषायभाव जागृत न होगे, उनका रूप भी न वनेगा। जैसे कोई कहे कि इस जीवने क्रोध किया तो क्या क्रोध किया, उसका वर्णन जब भी करेंगे तो उसमे कोई बाह्यवस्तु विषय बनेगी। इस जीव पर क्रोध किया या अमुक पदार्थ पर क्रोध किया, यो क्रोध करनेकी वात किसी बाह्य वस्तुको विषय बनाकर ही बताया जा सकता है, तो इन प्रत्ययकषायोके द्वारा जो जीवमे कषायभावका परिणाम बनेगा उसमे कोई नोकर्म होगा जो भी नोकर्म हो उन्हे समुत्पत्तिकषाय कहते है।

समुत्पत्तिकषायोंके आठ घटित प्रकारोंमें से प्रथम व द्वितीय प्रकार—कषायप्रकृतिके उदयके फल होनेमे सहकारी कारण, नोकर्म समुत्पत्तिकषाय कहलाते है। ऐसे कारण ८ प्रकारसे जुट सकते है। पहिला प्रकार है एक जीव अर्थात् किसी जीवके क्रोध, मान, लोभ जगा हो तो वह जीव किसी एक जीवका उपयोग बनाकर कषाय बनायेगा तो वहाँ एक जीव समुत्पत्तिकषाय हुआ। किसी मनुष्यका किसी एक जीव पर ही क्रोध जग रहा है, इष्टमे बाधा आने से या अनिष्टका समागम जुटनेसे एक जीव पर क्रोध जगा तो वहा वह

एक जीव जिसको लक्ष्यमे लेकर क्रोधभाव जगा है वह समुत्पत्तिकषाय बनेगा। समुत्पत्ति कषायका दूसरा प्रकार है एक अजीव। समुत्पत्तिकषाय एक अजीव भी हो सकता है। किसी मनुष्यका क्रोध एक अजीव पदार्थ पर ही बना तो एक अजीव समुत्पत्तिकषाय हुआ। जैसे कोई पुरुष घरमे जा रहा था और उसके शिरमे द्वारका चौखट लग गया, पीडा हुई, उसे क्रोध जग गया। तो वहाँ क्रोध जगने के समयमे वह द्वारका चौखट विषय ही कषायोपयोग बना और वह है एक अजीव स्कध, यो उसके कषाय जगनेमे एक अजीव आश्रय बन गया तो वहाँ एक अजीव समुत्पत्तिकषाय बन गया।

समुत्पत्तिकषायोंके आठ घटित प्रकारोंमें तीसरा व चौथा प्रकार--समुत्पत्तिकषायका प्रकार तीसरा है बहुत जीव। किसी जीवको क्रोधादिक कषाये जगे, उसमे बहुत जीवआश्रय बन सकते है। कोई कार्य बहुतसे पुरुषोने मिलकर किया जो कि अनिष्ट हो, तो अनिष्ट लगने के कारण इस पुरुषको उन बहुतसे जीवो पर क्रोध जग जायेगा। तो यों बहुत जीव समुत्पत्तिकषाय बन गए। जैसे किसी एक कामको दूसरे पुरुषोको सौंप देते हैं, उन्होने वह काम बिगाड दिया, उसमे बहुतसी हानि उत्पन्न कर दी, अब वे बहुत पुरुष क्रोधके विषयभूत बन गए तो यो कषायमे बहुत जीव भी आश्रयभूत हो जाते हैं। यो बहुत जीव जीव समुत्पत्तिकषाय कहलाते हैं। जैसे बहुत जीव क्रोधकषायके जगनेमे निमित्तभूत होते है, यो मानकषायके जगनेमे भी होते है। किसी ने मानकषाय किया अर्थात् हजारो आदमियो को निरखकर जब मनमे अपनी उच्चताका भाव बनाते है तो वहाँ मानकषायके जगने बहुत जीव आश्रयभूत बने, वहाँ समुत्पत्तिकषाय भी बहुत जीव बन गए। तो जैसे बहुत जीव समुत्पत्तिकषाय बनते है इसी प्रकार किसी घटनामे बहुत अजीव पदार्थ भी समुत्पत्ति कषाय कहलाते है। किसीको क्रोध बहुतसे अजीवपदार्थोंके विषयमे जग गया तो वहाँ उसके क्रोध कषायके निमित्तमे बहुत अजीव समुत्पत्तिकषाय बन बैठे। तो किन्हीं-किन्ही घटनाओ मे बहुत अजीव पदार्थ भी समुत्पत्तिकषाय बन जाते हैं। जैसे कोई जीव अनेक प्रकारकी वस्तुवें खरीद रहा है, वे सब वस्तुवें यदि अनिष्ट आ गईं, उनमे कुछ खोखासा जँचा तो उनको लक्ष्यमे लेकर क्रोधभाव करने लगता है। तो उसके क्रोधमे वे बहुतसे अजीव पदार्थ आश्रय बन गए। तो वहा ये बहुत अजीव पदार्थ समुत्पत्तिकषाय बन गये। तो यो कभी एक जीव, कभी एक अजीव, कभी बहुत जीव, कभी बहुत अजीव--इस तरह चार प्रकारोमे समुत्पत्तिकषायकी उद्भूति होती है।

समुत्पत्तिकषायका पांचवां व छठवाँ प्रकार--समुत्पत्तिकषायका ५वा प्रकार है एक

जीव और अजीव । जैसे कोई योद्धा किसी शस्त्रधारी योद्धाको निरखकर क्रोधमें भर जाता है तो इसके क्रोधमे आनेका सहकारी कारण नोकर्म वह शस्त्रधारी योद्धा है । यदि वह योद्धा शस्त्रधारी योद्धा है । यदि वह योद्धा शस्त्रहीन होता तो इसके क्रोधका विषय न होता अथवा वह जीव न होता । केवल तलवार ही पडी होती तब भी क्रोधका विषय न बनता, किन्तु तलवार लिए हुए सुभट योद्धा जब दिखनेमे आया तब यदि क्रोध उत्पन्न होता है तो वहा क्रोधप्रकृतिके उदयमे नोकर्म वह तलवार वाला योद्धा बना, सो तलवार अजीव है और वह मनुष्य जीव है तो वहा क्रोधकषायके लिए एक जीव और एक अजीव निमित्त हुआ समुत्पत्ति कषायका छठवा प्रकार है बहुत जीव और एक अजीव । कभी किसी एक अजीव पदार्थके सम्बधको लिए हुए बहुत जीव हो और ऐसी घटनामे कषाय किसीको उत्पन्न हुई तो उसके कषायमे निमित्त बहुत जीव और एक अजीव हुआ । जैसे बहुतसे लोग किसी एक मकान या किसी पदार्थका प्रश्न लिए हुए आपसमे वे विवादग्रस्त हो तो ऐसी हालतमे कोई निर्णायक पुरुषका जो क्षोभ होता है या उस प्रसगमे जो विचार बनाता है तो उसके उस कषायमे विचारमे एक अजीव और बहुत जीव निमित्त हुए, कषायमे नोकर्म पडे तो ससुत्पत्तिकषायका एक प्रकार यह भी है कि बहुत जीव हो और एक अजीव हो । मानकषायके उदयमे तो एक ऐसी घटना बहुत आती है । जब किसी पुरुषको मानकषाय होनेको होता है तो उसमे विषय बहुत जीव पडते है । अर्थात् बहुतसे मनुष्योमे वह अपना सन्मात्र यश चाहता है ना तो उस मानकषायके विषय बहुत जीव हुए और मानकषायकी पूर्ति किसी एक घटनाको लेकर करना चाहते हैं तो वह एक घटना अजीव हुई, तो यो एक जीव और बहुत अजीव । मानकषायमे नोकर्म हो जाता है । कोई पुरुष किसी धन वैभव आदिक अजीव पदार्थका इच्छुक है और उसीके इच्छुक बहुत मनुष्य है तो वह पहिला बताथा गया इच्छुक मायाचारसे कोई जाल रचता है ताकि इन जीवोको सम्पत्ति लाभ नही हो सकता, तो उसके इस माया-चारमे विषय एक अजीव रहा, किन्तु यहां बहुत जीव विषय पड गए । तो यो मायाकषायमें बहुत जीव और एक अजीव निमित्त होते है ।

समुत्पत्तिकषायका सातवां प्रकार—समुत्पत्ति कषायका सातवा प्रकार है एक जीव बहुत अजीव । जैसे कोई कामी पुरुष किसी एक महिला पर आसक्त होता है तो वह शृङ्गार-सहित हो तो उसकी आसक्तिमे शृङ्गारमे आये हुए अनेक अजीव पदार्थ है—आभूषण माला, चमकीले वस्त्र, केश आदिक ये बहुतसे अजीव पदार्थ और वहा जीव एक ही पदार्थ हैं तो उस घटनामे इसके लोभ कषायके बननेमे एक जीव और बहुत अजीव निमित्त हुए ।

लोभ कषायके बननेमे एक जीव और बहुत अजीव निमित्त हुए, अथवा किसी पुरुषका शुभ-भाव हो रहा है और वह समवशरणमे दर्शन करने गया तो वहाँ भक्तिभावके लिए साधन वहा एक जीव तो परमात्मा है जिसका लक्ष्य लेकर गया, पर वहा जब अष्टमङ्गलद्रव्य, प्रतिहार्य, समवशरणरचना आदिक निरखता है तो वे शोभाये और अनेक रचनायें भी उसके भक्तिभावकी प्रगतिमे नोकर्म बन जाते है। तो यो एक जीव और बहुत अजीव एक शुभभाव मे निमित्त हो गए। शुभभाव भी कषायभाव है, वहा उपयोग निष्कषायभाव नही है, मद-कषाय वाले भावमे भी अनेक बाह्य नोकर्म सहकारी कारण होते है और तीव्रकषायके होनेमे भी अनेक बाह्य नोकर्म सहकारी कारण होते है। तो एक जीव और अजीवकी घटना भी समुत्पत्तिकषाय बनती है।

समुत्पत्तिकषायका आठवां प्रकार व समुत्पत्तिकषायके वर्णनका उपसंहार——८वा प्रकार है समुत्पत्तिकषाय, कि बहुत जीव और बहुत अजीव। जैसे सैन्यचक्रकी चढाई सुनकर किसी राजाको विशेष क्षोभ उत्पन्न होता है तो उसके उस क्षोभमे कारण बहुत जीव और बहुत अजीव है। नाना प्रकारके अस्त्र शस्त्र और नाना सुभट इनका ही समुदाय तो सैन्यचक्र कहलाता है। तो उस सैन्यचक्रके आक्रमणको सुनकर जो क्रोधादिक क्षोभ हुए उनमे निमित्त हुए बहुत जीव और बहुत अजीव। ऐसी अनेक घटनायें होती है जो क्रोध, मान, माया, लोभ की प्रकृतिमे, समुत्पत्तिमे नोकर्म सहकारी कारण होता है। करणानुयोगका सिद्धान्त है कि किसी प्रकृतिके उदयसे जीवमे विभावपरिणाम होता है किन्तु प्रकृतिका उदय फलीभूत तब हो पाता कि जब उसे नोकर्म भी मिलता है। नोकर्मका फल प्राय ससार है इसलिए ऐसी कम स्थितिया आती है कि जहा कर्मका उदय हो और नोकर्म सामने न हो। फिर भी प्रकृतिका उदय मद हो ऐसी स्थितिमे और नोकर्म सामने न हो तो वहा फलमे अन्तर आ जाता है। नेकिन सारा ससार ही तो नोकर्म है। जो कुछ सामने समागममे आया वही विभावका नोकर्म बन जाता है। तो करणानुयोगके सिद्धान्तमे कर्मका उदय नोकर्मका सन्नि-धान पाकर जीवके विभावका निमित्त हुआ करता है। तो वहा जो कर्मका उदय हुआ वह तो है प्रत्ययकषाय, जिसके उदयसे जीवमे क्रोध, मान, माया, लोभादिक होते है और जो बाह्य-नोकर्म सहकारी कारण पडे वह है समुत्पत्तिकषाय। क्रोधप्रकृतिके उदयमे क्रोधकषायका निर्माण होनेमे जो विषय हुए, आश्रय हुए वे सब समुत्पत्तिकषाय कहलाते हैं। यो समुत्पत्ति-कषायके ये सब प्रकार नैगमनयके विषयभूत है, क्योकि ये सब घटनायें एक स्थूलरूप हैं, उनमे सूक्ष्मता नही है।

भिन्न द्रव्यकषायोंके रूपोंका वर्णन—यह कषायोका वर्णन नामस्थापना, द्रव्यस्थापना और भावके विचारसे चल रहा है जिसमे नामकषाय, स्थापनाकषाय और द्रव्यकषायका वर्णन किया है। द्रव्यकषायमे द्रव्य लेना है और वह द्रव्य भूतभविष्य वाला भी लिया जा सकता है। तो जहां भूतभविष्य वाला लिया जाता है उसमे तो यह भाव रखा कि जो कषायके प्रतिपादनको करने वाले शास्त्रोके ज्ञाता तो हैं किन्तु अनुपयुक्त हैं, अभी उनमे उपयोग नही दे रहे, भावी कभी दे देंगे, जो कुछ भी हो, पर वर्तमानमे अनुपयुक्त है वे पुरुष आगामीद्रव्यकषाय कहलाते है। और जो जीव आगामीकालमे कषायविषयक शास्त्रको जानेगा उसे भावीनोआगमद्रव्यकषाय कहा है। तो स्वय द्रव्यको लिया जाय तो वह अतीत भविष्यकालकी अपेक्षा रखता है। यदि भिन्न वस्तुको लिया जाय तो उसमे कालकी अपेक्षा नही रखी जा रही, क्योंकि वह स्वय ही भिन्न है, स्वसे दूर हो गया, लम्बा हो गया। ऐसे भिन्नद्रव्यकषायमें तद्व्यतिरिक्तनोआगमद्रव्यकषाय, ज्ञायकशरीरनोआगमद्रव्यकषाय, प्रत्ययकषाय और समुत्पत्तिकषाय आ जाते हैं।

आदेशकषायका परिचय—अब जब उपयोगपर, वर्तमान परिणमनपर दृष्टि देकर निरखते है तो वहां आदेशकषायकी बात आती है। आदेशकषाय उसे कहते है कि जहा इस तरहकी बुद्धि हो कि यह कषाय है; अथवा स्थूलरूपसे समझना हो तो यो कहेगे कि सद्भाव स्थापनाकषायका वर्णन करना यह आदेशकषाय है। सद्भावस्थापनाकषाय ही वह है कि जहाँ कषायभाव है वहा उसे कषाय नामसे कहा जाय, इसे कहते है "कषाय"। यो जो कषाय नाम द्वारा वाच्य है वह है यह कषाय। तो जहां यह कषाय है, इस प्रकारकी बुद्धि हो उसे आदेशकषाय कहते है। आदेशकषायके रूपमे ही यह रूप अन्तर्गत हो जाता है जहा कि किसी पुरुषकी शकल देखकर सद्भाव स्थापनाका वर्णन चल बैठता है। कोई भौह चढाये हो अथवा जिसके ओठ फडक रहे हों, जिसकी आखे लाल हो गई हो, जिसका चेहरा विकृत हो गया हो, बोल भी स्पष्ट न निकलता हो, ऐसी स्थितिमे क्रोधकषायका एकदम रूप सामने रहता है और उस समय दर्शक लोग यो कहते कि देखो यह तो विकट क्रोधमें आ गया है। तो जहां कषायभाव पहिचान लिया जाय वह है आदेशकषाय। आदेशकषाय नैगमनयका विषय है क्योकि वह सकलमे आनेपर विदित होता है और उसमे एकदम वर्तमान समयकी पर्याय का रूप नही आता। एक समयकी क्रोध आदिक कषाय विकाररूप बन सके, ऐसा उपयोग नही बना सकते हैं। उपयोग चूंकि अन्तर्मुहूर्तमें पदार्थको स्पष्ट ग्रहण कर पाता है तो आदेशकषायमे भी केवल एक समय मात्रका ग्रहण नही हो पाता, अतएव वह नैगमनयका

विषय है। कषायोमे यह कषाय है, इस प्रकारकी बुद्धि होना अथवा कषाय करने वाले जीवके शरीरकी विकृत चेष्टा निरखकर यह निरखना कि यह है कषाय, यह सब आदेश कषाय कहलाता है।

कषायपरिणमनकी नैमित्तिकता व स्वतन्त्रता—कषाय चूँकि नैमित्तिकभाव है अतएव वह दूसरे के द्वारा भी चिह्नादिकके द्वारा समझा जा सलता है। ये कषायें होना आत्मा का स्वभाव नही है, विभाव है, क्योकि पर निमित्त पाकर उत्पन्न होती है। कर्मोदय न हो तो ये कषायें नही हो सकती। कही आत्मामे स्वभावत कषायें नही जगती। यद्यपि एक दृष्टिसे निरखने पर यो लगता है कि पदार्थ है और पदार्थमे, जीवमे कषायोकी परम्परा चल गई। जब तक भी चलती हो और एक ही जीवमात्रको निरखकर कहा जा सकता है कि यह जीव रागरूप परिणमा, क्रोधरूप परिणमा, अपने ही साधनसे परिणमा, अपने कारणसे ही रागरूप बना, इसमे दूसरेका परिणमन नही है, दूसरेका सहाय नही है, अपने आपके चतुष्टयसे ही रागादिकरूप नही है अपने आपके चतुष्टयसे ही रागादिकरूप परिणम रहा है—यह बात ठीक है, एक वस्तुको निरखने पर और उसे विकाररूप निरखनेपर किन्तु जब उसका सर्वतोमुखी निर्णय करने की बात कोई मनमे ठान ले तो इतना कहने मात्रसे काम न चलेगा, बल्कि इतना ही आग्रह कर लेने पर अनेक विडम्बनायें आवेंगी। क्योकि जब कोई अपने ही कारणसे अपने आपमे स्वय होता है तो अब उसे मेटेगा कौन? मिटेगा किस प्रकार? वह तो स्वय होता है। आत्माका स्वभाव होगा क्योकि परनिमित्त हुए बिना जो बात होती रहती हो वह तो स्वभावपरिणति हो सकेगी। उसके मिटनेका फिर कोई अवसर न रहेगा। तो यद्यपि एक जीवमे जीवके चतुष्टयसे जीवकी परिणतिसे कषायें जगती है, किन्तु सर्वतोमुखी निर्णय यह है कि क्रोधादिक प्रकृतियोका उदय होने पर उनके उदयका सन्निधान रूप निमित्त पाकर जीव स्वय अपनी परिणतिसे क्रोधादिक कषायरूप परिणम जाता है। ऐसा मानने पर ही हमे हितकी शिक्षा दृष्टिगोचर होगी। चूकि ये क्रोधादिक कषाये क्रोधप्रकृतिका उदय पाकर होती है, अतएव ये मेरे आधीन नही, इनका मैं स्वामी नही, इनपर मेरा कब्जा नही, ये मेरे स्वरूपसे पृथक् है। होते है मेरेमे ही परिणमन, पर मेरे स्वरूपकी बात नही है।

दृष्टान्तपूर्वक कषायोंकी नैमित्तिकताका कथन और उससे शिक्षालाभका निर्देश—जैसे दर्पणके सामने कोई चीज रखी हो उसका प्रतिबिम्ब आ गया। आ गया प्रतिबिम्ब और वह प्रतिबिम्ब है दर्पणका परिणमन, इतने पर भी दर्पणकी स्वच्छतासे ही मात्र नही

आया। स्वच्छता एक आधार है। न हो स्वच्छता तो छाया नही आ सकती। भीत पर तो छाया नही आती, क्योकि वहा स्वच्छता नही है, तो स्वच्छता यद्यपि छायाका आधार है किन्तु मात्र स्वच्छतासे ही छाया नही हुई, परवस्तु का सन्निधान पाकर छायारूप परिणति हुई है तो वह छाया दर्पणकी चीज नही है। वह हट सकती है। इसी प्रकार आत्मामे जो क्रोधादिक कषायें जगी है वे आत्माके सत्त्वमात्रसे नही हुई है, हुई है चेतनामे। चेतना न हो तो क्रोध कहाँसे आयगा ? तो क्रोधकी झलक यद्यपि चेतनाके आधारमे हुई है किन्तु स्वय अपने स्वभावसे सहज नही हुई है। प्रकृतिका उदयरूप निमित्त पाकर हुई है। तो यह कषायभाव नैमित्तिक भाव है अतएव यह दूर किया जा सकता है। मेरे स्वभावसे मेरेमे सहज नही हुआ है, इसलिए मेरे रूप नही है, मैं इनसे निराला चैतन्यमात्र हू। तो ये कषायें नैमित्तिक है, ऐसा समझमे आने पर दो उत्साह जगते है–एक तो उन कषायोसे हटनेका उत्साह जगता है, ये मेरे स्वरूप ही नहि है इनको हटावो, इनमे उपयोग मत दो और दूसरी प्रेरणा मिलती है स्वरूपमे आनेकी। मै तो इनसे निराला चैतन्यस्वरूप मात्र हू। ये कषाये तो नैमित्तिक है अतएव ये हटाई जा सकती है और इनसे हटकर अपने स्वरूपमे आया जा सकता है। यह आदेशकषाय नैगमनयका विषय है। जो हमारी बुद्धिमे आ सका है ऐसा कषायपरिणमन केवल वर्तमान समयमात्रका नही, किन्तु अनेक क्षणोके धारावद्ध प्रवाहरूप है।

रसकषायका परिचय–अब कषायोके निर्देशका दशवा प्रकार रसकषाय कहा जा रहा है। रसकषायका अर्थ होगा रसविषयक कषायभाव। तो जीवकी बुद्धिने जिस रसको विषय किया है उस रसको रसकषाय कहेगे। रसनाइन्द्रिका विषय है रस, जिसके कि ५ प्रकार है– खट्टा, मीठा, कडवा, चरफरा, कषायला आदि। उन रसोमे बुद्धि जगती है। कषाय उन रसोको अपनाती है और लोभादिक कषायोसे उन रसोको अपनी कल्पनासे मिलाया जाता है। तो इस प्रकार बुद्धि जब उन रसोका ग्रहण करती है तो वह रसकषाय है। कभी क्रोध द्वारा रसकषायका प्रारम्भ होता है, मान, माया, लोभ द्वारा रसकषायका प्रारम्भ होता है और प्राय करके रसकषायका लोभ द्वारा ग्रहण हुआ करता है। तो यह सब रसकषाय हैं। चूंकि रसमे जब उपयोग लग रहा है और कषाय उन्हे एकमेक कर रहा है उसमे भी यद्यपि लगते है अनेक क्षण अर्थात् अनेक क्षणके उपयोग द्वारा यह बात शक्य है तथापि स्थूलदृष्टि द्वारा देखा जाय तो वह वर्तमान रसका ही तो उपयोग कर पा रहा है अतएव वह ऋजुसूत्रनयका विषय कहलायेगा। तो रसकषाय उपलक्षणसे अन्य भी

कषाय कही जा सकती है। पञ्चेन्द्रियके विषयभूत अर्थ है ५– स्पर्श, रस, गध, रूप और शब्द, इन पाचो ही विषयोके सम्बन्धमे कषाय जगती है और इन विषयोका ग्रहण जीव कभी क्रोध द्वारा करता है, कभी मान माया लोभ आदि द्वारा करता है, तो रसकषाय कहकर उपलक्षणसे यहाँ शेष चार कषायोका भी ग्रहण किया जा सकता है। स्पर्शकषाय, गधकषाय, वर्णकषाय, और शब्दकषाय। कषायसे इन इन्द्रियके विषयोको एकमेक करना और उन रूपोमे अपना अनुभव उपयोग बनाना, सो यह सब रसकषाय कहलाता है। अथवा इन सभी विषयोके ग्रहणमे यह जीव जब उपयोगसे रस लेता है, अनुभवन करता है तो उस रसमे सभी विषयोका अन्तर्भाव हो जाता है। जैसे सूत्रजीमे कहा है—रुपण पुद्गल, अर्थात् पुद्गल रूपी होता है, स्थूलरूपसे तो यह बात आयगी कि पुद्गलमे जो रूप, रस, गध, स्पर्श हैं उनमे से रूपका वर्णन किया है। पुद्गल रूपी होता है तो उपलक्षणसे रस, गध, स्पर्श भी ग्रहण करना पडता है और रुढिवशरूपी नाम मूर्तिकका भी है। जो रूप, रस, गध स्पर्श का पिण्ड हो उसे भी रूपी कहते हैं तो इस रूढि अर्थमे रूपीका अर्थ वह पुद्गल पूरा ले लिया जाता है। उसमे रस गध आदिक कौन छूट गए, यह बात ग्रहणमे नही आती। इस प्रकार रसकषाय कहकर जब रसनाइन्द्रियके विषयभूत गुणकी बात ग्रहणमे लावें तो वहा उपलक्षणसे शेष विषय और ग्रहण करें, किन्तु जब रसका रूढ अर्थ लगावे कि विषयोका रस भोगा तो इस रसकषायके अर्थमे पञ्चेन्द्रियके विषय गृहीत हो जाते है। यह रसकषाय भी ऋजुसूत्रनयका विषय है।

परको आपारूप माननेमें कष्टकी उपपत्ति—सब जीवोको अपने आपकी जानकारी बनी रहती है, वे अपने आपकी जानकारीके अनुसार अपना-अपना अनुभवन किया करते हैं, यह बात केवल मनुष्य ही नही, पशु पक्षी हो, कीट हो, स्थावर हो, निगोद हो, परमात्मा हो, कोई भी जीव हो, सभी अपने आपकी जानकारी बनाये हुए हैं और उस जानकारीके अनुसार जीवोमे अनुभव होता है तथा हम सबका सारा भविष्य एक इस ही आधारपर है कि हम अपनी कैसी जानकारी बना रहे हैं। ससारी जीव प्राय पर्यायोमे आपा माननेकी जानकारी बनाये हैं, फल इसका क्या होता ? जन्ममरण। तो सबसे बडी बातयह है कि अपना भविष्य सुधारना है, शान्ति पानी है तो अपनी जानकारीमे जो बात ठीक होती हो उस प्रकारकी जानकारी करनी चाहिये। शास्त्रोमे बताया है कि जीव कैसे समझा जाता है कि यह जीव है। अपने आपको कोई कैसे समझता है कि मैं जीव हू ? उसकी निशानी बतायी है—अहप्रत्ययबेधता। सर्वजीवोमे चाहे वे मुखसे न बोल सके, चाहे बोल रहे हो,

अथवा जिनको बोलनेका प्रयोजन भी न रहे, सब जीवोमे अहंका अनुभव चलता है, मै हू। मिथ्यादृष्टि जीव अपनेको पर्यायरूप मानता, अपनी जानकारी उसने भी कर रखी। वह देह को मैं समझता। अन्य कोई अजीवोको मैं समझता। उसका फल यह होता है कि वह कष्टमें रहता है, क्योकि पर्यायरूप मै वस्तुत हू नही। मैं शाश्वत हू और मान लिया किसी पर्याय-रूप। तो परको अपना माननेमे कष्ट ही है। भैया! कष्ट केवल इतना ही है कि हम पर-को अपना मानते है। यहा तो मोही जीवोंका निवास है सो ऐसी व्यवस्था बनाये हुए है कि नगरपालिकामे जिस मकानकी रजिस्ट्री हो गई है वह मेरा ही तो है, और किसका है ? और इसी आधारपर ऐसा विश्वास बनाये बैठे है कि है और किसका, तब ही तो उसकी रजिस्ट्री है सो ऐसा मानने वाले लोग अशान्त हैं कारण यह है कि परको अपना मान लिया, ऐसा अपना मान लिया कि अब कोई भुलावे भी तो भूलमे न आयगा। वह मकान पर है और उसे अपना माना अतएव दुखी है। इसी प्रकार यह देह भी पर है और इसे अपना मान लिया अतएव दुखी हैं। सारे दुख इस देहके सम्बधसे बन रहे है। जरा भी गहराईसे, विचार करो तो यह बहुत ही जल्दी समझमे आ जायगा। जब प्यास भूख आदिक लगी हो, तब यदि विवेक हो, विचार चलेगा कि उपाय बना लो, ऐसा कि यह देह भी साथ न रहे; केवल मैं ही रह जाऊँ तो भूख, प्यास, सम्मान, अपमान, इष्टवियोग, अनिष्टसयोग आदिक के सभी झगडे खत्म हो जायेंगे और जब तक इस शरीरका सम्बध रहेगा तब तक सब झगडे करने पड़ेगे।

शरीरसे छुटकारा पा लेनेका उपाय बना लेनेसें चतुराई—भैया! ऐसा उपाय बनाने मे बुद्धिमानी है, इस मानवजीवनके क्षणकी सफलता है जिससे कि भविष्यमें फिर इस देह का सम्बंध न रहे। मैं अकेला ही रह जाऊँ, केवल रह जाऊँ उसीमे शान्ति है, पवित्रता है, यह बात वह ही पुरुष कर सकेगा जो इस समय भी मान ले कि मैं देहसे निराला हू, केवल चैतन्यस्वरूप मात्र हू। ज्ञानी कहते और किसे है ? सारे पर्दोसे पार होकर उस चिन्मात्र अपने आधिपत्यके दर्शन कर ले, वही तो ज्ञानी पुरुष है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला एक्सरायन्त्र होता है तो वह चमडा, कपडा, खून मास आदिक को ग्रहण न करके सबको पार करके केवल हड्डीका फोटो ले लेता है इसी प्रकार जिस दिन हम आपकी बुद्धि इतनी पैनी बन जायगी कि विभाव बुद्धि, शरीर, कुटुम्ब इज्जत सबको पार करके केवल एक चिन्मात्र कारण समयसारके दर्शन कर लेगी तो समझ लीजिए कि हमारा संसार निकट है, हम संसारसे शीघ्र पार हो जायेंगे।

परसे हटकर स्वरूपमें आनेकी सारभूतता—सारभूत बात केवल इतनी ही है कि हम अपने आपमे अपने इस सहजस्वरूपको समझ जाये। यह स्वरूप कब समझमे आयगा, जब परको हम पर जान ले। यह पर है, इससे हटना है, इसमे लगाव नही रखना है, तो हम स्वरूपमे आ जायेगे। जैसे आजादीके दो ही तो साधन है—असहयोग और सत्याग्रह, परका तो हम असहयोग कर ले और अपने अतस्तत्त्वका सत्याग्रह कर ले, ये दो ही उपाय है कि हम अपने आपमे शुद्धताका आनन्द ले सकते हैं। तो हमे समझना होगा सबको कि पर क्या है, घर वैभव आदिक प्रकट पर है, इसे तो बहुतसे लोग कह देते है। कुटुम्ब, परिजन, मित्रजन ये भी पर है, देह भी पर है। क्यो पर है ? यो पर है कि ये सब मेरे क्षेत्रसे, मेरी सत्तासे बाहर है। इसीलिए तो ये पर है। कर्म भी पर है क्योकि ये भी मेरी सत्तासे बाहर है। और मेरी कषाय भी पर है, क्योकि यह कषाय परनिमित्त पाकर उत्पन्न हुई है। पर होनेका कोई कारण तो होना चाहिए। भले ही कषाय मेरा परिणमन है, मेरे ही साधनसे मेरी ही परिणतिसे हुआ है, पर कर्मोदयका निमित्त पाये बिना कषाय हुए होते तो ये स्वभाव बन बैठते है मेरे परिणमन। मेरेसे हुए है, मेरे आधारमे है, अभेदषट्कारकता कषायभाव भी मेरेमे है लेकिन फिर भी यह पर है। क्यो पर है ? इसका कारण क्या है ? यह परभाव है, परका निमित्त पाकर उत्पन्न हुआ है। परने नही उत्पन्न किया। वस्तुमे यह सामर्थ्य नही है कि कोई वस्तु अन्य वस्तुका द्रव्यगुण उत्पन्न कर दे। इस कारण हमने रागादिक उत्पन्न नही किये। कर्मका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव आत्मामे नही गया। आत्माने कर्म मे से कुछ खीचा नही। आत्मा कर्मोदयका निमित्त पाकर सन्निधान पाकर स्वय अपनी परिणतिसे रागरूप परिणम रहा है। तो यह नैमित्तिक भाव है, अतएव पर है, विकल्प, वितर्क विचार आदि जितने भी उठते है वे सके पर है,इनसे हटना ही उचित है।

अपने सहजस्वरूपकी जानकारी और उसका प्रभाव—मैं सर्वसे निराला एक ऐसा चैतन्यस्वरूपमात्र हू, कि वह दृष्टिमे आ जाय तो जगतके सब जीवोंसे मित्रता हो जायगी, जब बाहर दृष्टि देंगे, क्योकि जैसा भिन्न मेरा स्वरूप है वही सबका स्वरूप है। उनमे यह द्वैतभाव न रहेगा। यह मेरा है, यह पराया है। पर है तो सब है, मेरा है तो सब है, पर तो है ही, और सभी पर हैं। अब स्वरूपसाम्य है इसलिए कह दीजिए कि मेरा है, सो सब मेरे है। इस जगतके जीवोमे यह भेद न रहेगा कि यह पराया है और यह मेरा है; ये लडके, नाती, पोते आदिक तो मेरे है और बाकी सभी लोग पराये है, यह सब पर्दा, यह विड़म्बना का साधन है और इन भावोसे आत्मामे क्या गुजरता है ? जो गुजरता है सो अकेले ही तो

भोगना पडेगा, कोई दूसरा साथी नही है। अज्ञानके रंगमे रंग करके इसका खोटा फल भोगेगा कौन ? खुदको ही भोगना पडेगा, दूसरा कोई मददगार न मिलेगा। तो इन परभावोको परतत्त्व जानकर निज जो स्वतत्त्व है चैतन्यमात्र स्वरूप, जो शुद्धनयके आलम्बनसे हमे निकट पहुंचायेगा वह चिन्मात्र मैं हू।

निज कैवल्यस्वरूपके दर्शनका प्रभाव—शुद्ध नयका अर्थ क्या है ? शुद्ध केवलका दर्शन। जिसमे यदि इतना भी भेद कर दिया जाय कि आत्मामे चैतन्यस्वरूप है, स्वभाव है, तो जो चैतन्यस्वभावमात्र अपनेको निरखकर आनन्दमे आ रहा था उसकी दृष्टिमे यदि इतना भी भेद आ जाय कि मुझमे चैतन्यस्वभाव है, तो बस वह परम अभेदरूपरूप शुद्धतासे गिर जायेगा, यह भेद क्यो आ गया ? लो अशुद्धता हो गयी। अभेद वस्तुमे भेद करना भी अशुद्धता है और मलिन परिणाम होना भी अशुद्धता है। मैं एक चैतन्यस्वभावमात्र हू अन्य स्वरूप नही, यह दृष्टिमे आना चाहिए। बात कोई कठिन नही कह रहे, आप सब समझ सकते है। सभी लोग अपने बारेमे सोचते है कि मैं फलाना लाल हू, फला चंद हू, फलां प्रसाद हू आदि, पर यह सब मिथ्या है, अज्ञान है। मैं फलाना चंद, फलानी बाई आदि ये कुछ मैं नही हू। किन्ही ने ऐसा ही विश्वास बनाया हो कि मे अमुक मजहब वाला, अमुक कुल, जाति आदिकका हू तो यह सब अज्ञान है, तुम इन रूप भी तुम नही हो। पर व्यवहार करना होता है और व्यवहार करना कुछ परिस्थितियोमे आवश्यक भी है, लेकिन उसका भी फल विडम्बना है। भीतर अपने आपके स्वरूपको देखो जिससे मोह टूटेगा और आपका कल्याण बनेगा। वह भीतरका स्वरूप है कैवल्य। केवल चैतन्यप्रकाश और कुछ मैं नही। जब उस चैतन्यप्रकाशपर दृष्टि होगी तब यह जंचेगा—ओह ! कितनी बडी विडम्बना थी ? यह मानते थे कि यह मेरा है, वह पराया है और ऐसा मानकर जो घरके स्त्री पुत्रादिकको अपना माना, उनके ही लिए अपना तन, मन, धन, वचन सर्वस्व लगाया, वह तो एक अज्ञान अधकार था। इस प्रकारसे जब इस जीवको सच्चे स्वरूपका भान होगा तो अज्ञानतिमिरका विनाश हो जायेगा। गृहस्थीमे रह रहे है, इस वजहसे आपके तन, मन, धन वचनका विशेष उपयोग परिवारजनोमे हो रहा है, मगर आपका आग्रह न रहेगा कि मेरा शरीर इनके लिए ही है। जो भी दुखी जन हो सबका दुख दूर हो, यह मनकी भावना बनेगी और जितनी सामर्थ्य है उतना दूसरोका दुख दूर करने के लिए अपना तन, मन, धन खर्च करके उसका उपयोग कर लेगा।

परके लगावसे हटकर ज्ञानमय अन्तस्तत्त्वके उपयोगमें वास्तविक वैभवका लाभ—

भैया ! कौन यहा मेरा है, कौन यहाँ पराया है ? स्वरूप दृष्टिमे देखो, सबको उनके अपने अपने पदार्थ दृष्टिसे देखो, व्यक्तित्वसे देखो तो सब पर है। घरमे जो लोग है, जिनके पीछे अपनी सारी जिन्दगी लगायी जा रही है वे आपके साथ जन्मे क्या ? वे आपके साथ मरण करके जायेंगे क्या ? जब तक जीवित है तब तक भी वे आपके सुखके साधन बनेंगे क्या ? कुछ भी नही बन सकते। कारण यह है कि वे अपनी परिणति करें या तुम्हारी ? एक ८ वर्षका भी बालक हो। जिसे आप बडे आरामसे रखते है, जिसकी आप बडी परवरिश करते हैं, उससे यदि आप एक गिलास पानी भी पीनेको माँग ले तो यदि उसका चित्त खेलमे लगा होगा तो वह भी आपकी बातकी कुछ भी परवाह न करके भाग जायेगा। ऐसी ही बात आप सभी घटनाओमे सोचिये—जो भी लोग आपकी सेवा करते है वे अपने आपमे कुछ सोचे हुए है कि ऐसा करनेसे हम भी सुखमे रहेगे, अतएव वे सेवा करते है, आपकी सेवा वे कहाँ करते है। इस मोह रागमे आप ऐसा सोचे हुए है कि इस प्रकारका सुख हमे इस ढगमे ही मिल सकेगा इसलिए करते है, पर वस्तुस्वरूप ऐसा नहीं है कि परपदार्थसे कुछ मिल जाय। लेकिन खुदगर्ज कहकर भी आप किसीका अपमान न करे, क्योकि खुदगर्ज भी क्या है ? सब अपनी-अपनी सत्ताके भरे है, अपनी सत्तामे अपना परिणमन करते हैं, खुदगर्जी की क्या बात ? तो सही स्वरूप जानकर परसे नेह तजे, अपने आपके स्वरूपकी उपासना करें तो दुर्लभ मानवजीवन सफल हो जायेगा। वह समय आयेगा कि शरीर और कर्मसे सदाके लिए छुटकारा मिल जायेगा। उस पथमे चलना है, उस ज्ञानार्जनके मार्गमे प्रमाद छोड करके बढना है कि जहाँ हम अपने आपका वैभव प्राप्त कर सके।

आगमभावकषाय—कषायके निर्देशमे ११वा प्रकार है आगमभावकषाय। जो पुरुष कषायके स्वरूपका प्रतिपादन करने वाले शास्त्रका जानकार तो हो, किन्तु वर्तमान समय मे शास्त्रका उपयोग न रख रहा हो ऐसे जीवको आगमभावकषाय कहते है। यह आगमभाव-यद्यपि भावनिक्षेपके माध्यमसे कहा जा रहा है तथापि यह आगमरूप है। नोआगमरूप नही है। इस कारण वर्तमानमे यह शास्त्रका जानकार है—इतना अश वर्तमानभावको पुष्ट कर रहा है और वह नोआगमभाव नहीं है, इस कारण उस सबमे अपना उपयोग नही रख रहा। आगमभावकषायमे और आगमद्रव्यकषायमे इस दृष्टिसे अन्तर विदित किया जा सकता है कि आगमद्रव्यकषायमे वह कषायप्रतिपादक शास्त्रका जानकार था। चाहे वर्तमानमे उस जानकारीकी बात न हो तब भी वह उस भावमे आगमद्रव्यकषाय कहा जा सकता है, किन्तु आगमभावकषायमे वही पुरुष गृहीत होता हैं जो वर्तमानकालमे भी कषायस्वरूपके प्रतिपादक

शास्त्रका जानकार हो। हा, आगम होनेके कारण वर्तमानकालमे उस शास्त्रमे उपयोग नही रख रहा, उपयोग रखे तो वही पुरुष नोआगमभावकषाय बन जाता है। तो आगमभाव-कषायकी अपेक्षासे ऐसा पुरुष निहारा गया है जो पुरुष कषाय प्रतिपादक शास्त्रमे उपयोग नही रख रहा, किन्तु जानकारी सही बनी हुई है, ऐसा पुरुष आगमभाव-कषाय है। कषाय एक पर्याय है, फिर भी पर्यायका पर्यायवानसे भेद नही है। जिस द्रव्यमे कोई कषाय उत्पन्न होती है उस द्रव्यसे कषायका पार्थक्य नही है अतएव कषाय का पार्थक्य नही है, अतएव कषाय और कषायवानमे भेद न डालकर जो कषायवान पुरुष है, कषायप्रतिपादक शास्त्रका जाननहार है अथवा मदकषाय है, कषाय न भी कर रहा हो तब भी जानकारीकी अपेक्षा वह आगमभाव कषाय कहा सकता है।

नोआगमभावकषाय—अब नोआगमभावकषाय क्या है ? इस बातका वर्णन करते है। नोआगमभावकषायमे निक्षेपकी झलक भी भावनिक्षेपमे है और साथ ही नोआगम होने के कारण वह उपयुक्त जीव गृहीत होता है। इस नयकी दृष्टिमे क्रोधका वेदन करने वाला अर्थात् क्रोधमे उपयुक्त जीव क्रोधकषायी कहलाता है। मानकषायमे उपयुक्त मानकषायी कहलाता है। मायाकषायमे उपयुक्त जीव मायाकषायी है और लोभ-कषायमे उपयुक्त जीव लोभकषायी है। समयसारमे जहा यह वर्णन किया गया है कि क्रोध मे उयुक्त जीव क्रोधी कहलाता है वह इस नोआगमभावकषायकी दृष्टिमे सिद्ध होता है। क्रोध किसका नाम है ? जिस भावमे क्रोध हो रहा है और वह क्रोधमे उपयुक्त है, क्रोधका वेदन कर रहा है, क्रोधरूप परिणम रहा है वही जीव तो क्रोध है। क्रोधपरिणमनका जीवसे पार्थक्य तो नही है, प्रदेशभेद भी तो नहीं कि क्रोधका प्रदेश कुछ और हो।

कषायभाव व आत्मामें प्रदेशभेदके कथनपर विचार—यद्यपि संवरतत्त्वमे यह बताया गया है कि कषायभावमे और आत्मामे प्रदेश भेद है। उस प्रदेशभेदसे तात्पर्य दो प्रकारका लेना चाहिए। पहिला प्रकार तो यह है कि प्रदेशका अर्थ है स्वरूप आदेश प्रदेश सन्देश। यह सब एक ही धातुसे निष्पन्न हैं। तो जीवमे चैतन्यभावमे, आत्मामे एव इन क्रोधादिक कषायविभावमे स्वरूपभेद है। दूसरा प्रकार यो देखिये कि क्रोधादिक भावोका अन्वय व्यतिरेक कर्मप्रकृतिके साथ है। कर्मप्रकृतिके उदय होने पर ही क्रोधादिक भावोंका आ सकना और कर्मप्रकृतिका उदय न रहने पर क्रोधादिक कषायोका न हो सकना, यह अन्वयव्यतिरेक कषायका कर्म प्रकृतिके साथ पाया जाता है। इस कारण कषाय विभावका कर्मप्रकृतिके साथ सम्पर्क है। तब इस दृष्टिमे पूछा जायेगा कि कषायका स्वामी कौन है ? तब कहना होगा—

कर्मप्रकृति । जिसके होनेपर ही जो हो, जिसके न होनेपर न हो, वह ही तो उसका स्वामी होगा । इस दृष्टिमे और आगे बढकर अब कषायभावको कर्मप्रकृतिके साथ जोड दिया जाय तब इस दृष्टिमे कषायके प्रदेश कहा हैं और किसके हैं ? यह निर्णय स्वय हो जायगा । तो प्रदेशभेद हो गया अब । कर्मके साथ कषायको जोड दिया गया, यह भी एक दृष्टि है। जितनी दृष्टिया होती है उतने तथ्य तो हैं, किन्तु उनमे से किसी भी दृष्टिका आग्रह कर लिया जाय तो उस दृष्टिके आ हमे ी तो एकान्तवाद बनता है । जिन एकान्तवादियोने यो कहा है कि क्रोधादिक भाव प्रकृतिके परिणमन है, जीवके कुछ न ी है, यह उनका आग्रह भी इस दृष्टिको एकान्त ग्रहको सिद्ध करता है । यदि इस दृष्टिको एकान्तरूपसे ही मान लिया जाय तब तो इसका विषय मिथ्या होगा, पर एकान्त आग्रह न करके अन्य नयोकी बात मानते हुए प्रमाणसे परिगृहीत इस आत्मतत्त्वमे कषायोका इस प्रकारका परिचय पाना जहा कि प्रदेशभेद जँचने लगे वह है अन्वयव्यतिरेक सम्बध वाले पदार्थका स्वामी मानकर कहनेकी दृष्टि । तो सम्वरतत्त्वके प्रकरणमे जहा यह बताया गया है कि क्रोधादिक भावोमे और आत्मामे प्रदेशभेद है वह केवल विवक्षाभेद है । वस्तुत क्रोधादिक कषायें आत्मप्रदेशोसे बाहर नही होती, तब क्रोधादिककषायें क्या है बस वही जीव तो जो क्रोधादिककषायोका वेदन कर रहा हो तो यो क्रोधकषायका वेदन करने वाला अर्थात् क्रोधमे उपयुक्त जीव क्रोधकषाय

नोआगमभावकषायका उपसंहार—नोआगमभावकषाय यहा चार रूपोमे निरखा

कहलाता है ।

जा सकेगा और सामान्यतया कहे तो यह कषायका अनुभवन करने वाला, कषायमे उपयुक्त हुआ जीव नोआगमभाव कषाय है । नोआगमभाव निक्षेपसे इस तत्त्वका वर्णन आता है और यह है स्थूलऋजुसूत्रनयका विषय, क्योकि क्रोधका वेदन कर सकने वाला जीव वही होता है जो अन्तर्मुहूर्त धाराबद्ध किसी एक जातिके कषायका आधार बन रहा हो । तभी उस प्रवाहका उपयोगने ग्रहण किया जिसके कारण उस कषायका वेदन हुआ । सूक्ष्मऋजुसूत्रनयके विषयभूत एक समयवर्तीकषायके जाननेपर ज्ञाताकषायका वेदक नही बन पाता । वह ज्ञाता ही रह सकता है । कषायका वेदक जीव वही है जो अन्तर्मुहूर्तप्रमाण धाराबद्ध कषायप्रवाह का उपयोगी हुआ हो । इस कारण नोआगमभावकषाय सूक्ष्मऋजुसूत्रनयका विषय नही, किन्तु स्थूलऋजुसूत्रनयका विषय है ।

आत्माका बारह प्रकारसे निर्देशके कथनका समापन—कषायके निर्देशमे ये बारह प्रकार बताये गए हैं—कषाय क्या है ? इसके उत्तरमे जो सक्षेपरूपमे बात होती है उस ही

को निर्देश कहते हैं। कषाय क्या है—ऐसा कहनेपर कषायपर्याय भी कषाय है, कषायपर्याय के जो साधन है वे भी कषाय है। जिनका अन्वयव्यतिरेक सम्बध है, ऐसे साधन भी उस ही कार्यरूप कहलाने लगते है। कषाय—ऐसा नाम रखकर कोई कहे तो कहेगा कि यह भी कषाय है। जैसे किसीने क षा य ऐसे ३ शब्द लिखकर कागज दिखाया और पूछा—बताओ यह क्या है ? तो वह कहेगा ना कि यह कषाय है। अथवा किसी कषायभावका कुछ भी तो नाम होगा तब तो उसका परिज्ञान और व्यव ार बन सकेगा तो उस कषायके जाननेके लिए जो कुछ भी शब्द बोला जाय, जो कुछ भी नाम रखा जाय वह सब नाम कषाय कहलाता है। कषाय क्या है ? इसके विवरणमे जो-जो भी उत्तर ो सकते है वे सब कषायके ही तो निर्देश है। कषायभावको निरखकर कहा जाता है—यह है कषाय। तो यह स्थापनाकषाय हुई। किसी वस्तुसे कषायकी स्थाप ा की, यह है सद्भावस्थापना याने जो कषाय न हो और उसमे कषायकी स्थ पना की हो, सो बात नही। जैसे अतदाकारस्थापनामे जिसकी स्थापना की गई उसका आकार नही है फिर भी स्थापना कर दी ऐसी बात यहा स्थापनाकषायमे नही बनती, किन्तु यहा कषायभावमे ही कषायनामकी स्थापना की गई है। द्रव्यनिक्षेप और भावनिक्षेपकी विधिसे कषाय कि-किनको कहा जा सकता, इसके वर्ण मे शेष १० प्रकारकी कषायोका वर्णन किया गया है। ये सब कषाये है।

कषायोका निर्देश करके अब कषायका स्वामी, कषायका साधन अधिकरण स्थिति और विधान बतलाया जायेगा। इन सब अनुयोगोमे पहिले यह बतला रहे है कि कषायका स्वामी कौन है ? इसका सर्वप्रथम उत्तर यह है कि कषाय जीवके होती है सो कषायका स्वामी है जीव। सभी जीव कषायके स्वामी होते है, य नही कहा जा रहा, पर कषायका स्वामी जीव हो सकेगा, अन्य पदार्थ नही हो सकता। स्वामा व तुत स्वसे अभिन्न ही होगा। स्व और स्वामी इनमे पार्थक्य न होगा कि स्वामीका स्व धन सर्वस्व कोई पृथक् क्षेत्रमे रहता हो और स्वामी पृथक् क्षेत्रमे रहता हो। जो जिसका स्व है वह उसका स्वामी कहलाता है। अब स्वमे अन्तर आ गया। कोई स्व होता है सहज और कोई स्व होता है औपाधिक। इस दृष्टिको लेकर सूत्रजी मे जीवके वतत्त्व ५ कहे गए है—औपशमिक भाव, क्षायिकभाव, क्षायोपशमिक भाव, औदयिकभाव और पारिणामिक भाव। इ मे पारिणामिक भाव तो जीवका सहज स्व है और औपाधिक भाव जीवका प्रकट औपाधिक स्व है। शेष औपशमिक, क्षायिक और क्षायोपशमिकभाव भी किसी दृष्टिमे औपाधिक अथवा नैमित्तिक कह सकेंगे, नैमित्तिक और औपाधिक शब्दमे अन्तर है। किसी चीजके अभावके निमित्तसे बात

बने उसे नैमित्तिक तो कह सकते है, किन्तु औपाधिक न कह सकेंगे। औपाधिकभाव वही कहा जायेगा जो किसी उपाधिके सद्भावके निमित्तसे हुआ हो। तो स्व अनेक प्रकारसे देखा जाता है। यहाँ औपाधिक स्वकी बात चल रही है। जीवमे कषाय होती है, अजीवमे नही होती, इस कारण कषायका स्वामी जीव कहा जा सकता है। जीवको छोडकर अन्य द्रव्य कषायका स्वामी नही होता।

कषायोंके विधान—कषायोके विधानमे प्रकार बताये जायेंगे और उन प्रकारोसे यह विदित होगा कि अमुक कषायका स्वामी इस प्रकारका जीव होता है, अमुक कषायका स्वामी इस प्रकारका जीव होता है। विधानसे सम्बन्ध सभीका है, अतएव विधानको अन्तमे न कह कर इसी समय देखा जाय तो कषायोके विधान चार है अर्थात् कषाये मूलमे चार प्रकारकी है। कषाय कोई क्रोधरूप है, कोई मानरूप है, कोई मायारूप है कोई लोभरूप है। जीव के क्षोभ उत्पन्न हो उसे क्रोध कहते हैं। कठोरताका भाव है, अपने मे अहभाव है वह मान कषाय है और मनमे कुछ हो, प्रवृत्ति कुछ हो, दूसरे लोगो को मनका भाव कुछ जताये और पडा हो कुछ भाव, वह माया कषाय है और परवस्तुमे जो लालचका भाव जगता है वह लोभ कषाय है। यो चारभेद है और ये प्रत्येक चार चार प्रकारके होते है। क्रोधकषाय चार प्रकारकी है—अनन्तानुबधी क्रोध, अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, प्रत्याख्यानावरण क्रोध और सज्वलन क्रोध।

अनन्तानुवंधी क्रोधकषाय—अनन्तानुबधी क्रोध उसे कहते है जो अनन्तका अनुबधन करे। अनतन्तके मायने है मिथ्यात्व। जो क्रोध मिथ्यात्वका सम्बन्ध वनाये, मिथ्यात्वका पोषण करे उसको अनन्तानुबधी क्रोध कहते है। जब जीवके भेदविज्ञान नही है और पर्याय मे आत्मबुद्धि है ऐसी अवस्थामे जो क्रोध होता है वह अनन्तका अर्थात् मिथ्यात्वका वर्द्धन करने वाला क्रोध होता है। अनन्तानुबधी क्रोध किसी जीवमे मंद भी हो तब भी वह मिथ्यात्वका ही पोषण करता है। ऐसे-ऐसे साधु भी होते होगे जिनको समता पालन करनेके लिए बुद्धिमे बहुत कल्पनाये उठती हैं। शत्रु और मित्रको समान माने तो हमारी मुक्ति होगी। हम मुनि हैं, हमारा काम समताका है, इस तरहके विचार करके शरीर लिङ्गको मुनिपना समझकर उसमे आत्मबुद्धि करके कषाय मद भी कर डाली, तिस पर भी मिथ्यात्व का पोषण न रुका। कोई साधु घानीमे भी पिल रहा हो और उस शत्रुके प्रति यह कल्पना कर रहा कि हमे इसे गाली नही देना, इससे वदला नही लेना, इसको समतासे सह लेना चाहिए, हमारा मुनिका यही धर्म है इस प्रकारकी कल्पना भी की, पर मुनिपना क्या है इस

का पारमार्थिक परिचय न होनेसे इस भेषको ही मुनि संभकर समताके लिए बलिदान भी खूब किया तिस पर भी मिथ्यात्वका बंध नही रुक सका। अनन्तानुबंधी क्रोधकषाय भी हो तिस पर भी अनन्तानुबंधीकी प्रकृति नहीं हटती। यह क्रोध क्रोधमे महान् क्रोध है जिसके फलमे अनन्त ससारमे रुलना पड़ता है। क्रोधका एक प्रकार है अनन्तानुबंधी।

अप्रत्याख्यानावरण क्रोध कषाय—दूसरा क्रोध है अप्रत्याख्यानावरण। जिस जीवको भेदविज्ञान जगा है, सम्यक्त्व भी जगा है, आत्म वरूपका परिचय पा लिया है, किन्तु बाह्य सम्पर्कमे अभी पडा है, गृहस्थीमे रहता है तो अनेक घटनाये ऐसी है कि जिन प्रसगोमे क्रोध भी जगता है लेकिन वह क्रोध अपनी सीमा तक ही रहता है वह मिथ्यात्वका सम्वर्द्धन पोषण या सम्बन्ध बध नही कर सकता है। इसको कहते है अप्रत्याख्यानावरण क्रोध। अप्रत्याख्यान का अर्थ है अणुव्रत। अ मायने थोडा प्रत्याख्यान मायने त्याग, व्रत, सयम अर्थात् अप्रत्याख्यान का अर्थ है देशसयम, उसका जो आवरण करे, देशसयम प्रकट न होने दे ऐसे क्रोधको कहते है अप्रत्याख्यानावरण क्रोध। तृतीय व चतुर्थ गुणस्थानमे अनन्तानुबंधी रहित अप्रत्याख्यानावरण क्रोध होता है, यद्यपि जिसके बडी कषाय है उसकी छोटी कषाय बराबर है। अनन्तानुबंधी कषाय जिस जीवके है उस जीवके शेष तीन प्रकारकी भी कषाये है। पर अनन्तानुबंधी कषाय न रहे व उस जीवके अप्रत्याख्यानावरण कषाय होगी तो वहाँ देशसयम प्रकट न होगा। सम्यग्मिथ्यात्व व अविरतसम्यक्त्व गुणस्थानमे अप्रत्याख्यानावरण क्रोध होता है। अनन्तानुबंधी क्रोधमे तो मिथ्यात्वका अंधकार था किन्तु अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके समय अंधकार चित्तमे नही है। पर क्रोधकी प्रेरणा परेशान कर डालती है। उस परेशानीमें भी इस ज्ञानीकी भावना बनी रहती है और उस विवेकके कारण ऐसा अनर्थकार्य नही कर पाता जो सम्यक्त्वका घात कर दे। अप्रत्याख्यानावरण क्रोधके स्वामी चारों गतियोके जीव हो सकते है, अनन्तानुबंधी क्रोध भी देव, मनुष्य, नारकी, तिर्यंच—इन चारो गतियोमे पाया जा सकता है और विशेषतया पाया ही जाता है क्योकि मिथ्यादृष्टियोकी सख्या अत्यत अधिक हैं, बहुत है अनन्त है, अनन्तमिथ्यादृष्टि असख्याते देव, मनुष्य, नारकी मिथ्यादृष्टि है। इन चारो जो पञ्चेन्द्रिय सज्ञी गतियोमे हैं। जो द्रय सम्यग्दृष्टि ज्ञानी हुआ है, जो कुछ भी व्रत धारण नही कर पाता है उस समय उस जीवके अप्रत्याख्यानावरण कषाय रहती है।

प्रत्याख्यानावरण व संज्वलन क्रोध कषाय—क्रोधका तीसरा प्रकार है प्रत्याख्यानावरण क्रोध। जो क्रोध प्रत्याख्यानको नही होने देता उसको प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते है। प्रत्याख्यानका अर्थ है त्याग महाव्रत पूर्णसयम। उसका जो आचरण करे सो प्रत्याख्या-

नावरण क्रोध है। जिस जीवके अनन्तानुबंधी कषाय न रही, अप्रत्याख्यान भी न रहा, और प्रत्याख्यानवरण है ऐसे जीव होते हैं देशसयमी।पञ्चम गुणस्थानमे यह प्रत्याख्यानावरण कषाय पायी जाती है। प्रत्याख्यावरण क्रोधके उदयमे यह जीव क्रोधी तो हो जाता है पर वह क्रोध इतना अल्प है कि जिस क्रोधमे ऐसे खोटे भाव नही होते जिनमे देशसयम बिगड जाय-अथवा मिथ्यात्व आ जाय। ऐसे क्रोधको प्रत्याख्यानावरण क्रोध कहते है। चौथा प्रकार है क्रोधका सज्वलन क्रोध। सज्वलनका अर्थ है जो सयमके साथ भी चलता रहे याने जो क्रोध सयमको न बिगाडे। महाव्रत भी जिसके हो गया है उसके भी जब क्रोध आता है तो उमे कहते है सज्वलन क्रोध। यह क्रोध साधुवोके छठे ७वे ८वे ९वे गुणस्थानमे पाया जाता है।

अनन्तानुबंधी कषायके संस्कारकी स्थिति—अनन्तानुबधी क्रोधके लिए दृष्टान्त दिया गया है जैसे बज्रकी रेखा। बज्र पर कभी कदाचित् रेखा आ जाय तो वह चिरकाल तक नही मिटती अथवा पाषाण रेखा, पत्थरमैं जो रेखा कर दी गई छेनीसे फोडकर वह रेखा मिट नही पाती। बहुत वर्षोके बाद कोई सुयोग बने तो मिट भी जाय, मगर चिरकाल तक रेखा रहती है। इसी प्रकार मिथ्यादृष्टि जीवके अनन्तानुबधी क्रोध चिरकाल तक सस्कार बनाये रहता है, इसका उदाहरण पुराण पुरुषोमे भी मिलता है। जैसे कमठके जीवने अनेक भवोमे मरुभूतिके जीवको सताया, पर क्रोध न मिट सका और यहाँ तक कि जब पार्श्वनाथ भगवानके रूपमे वह जीव आया वहा कमठका जीव ज्योतिषी देव हुआ। वहाँ भी उपद्रव किया। तो अनन्तानुबधी क्रोध बहुत बडी स्थितिका होता है, भव-भवमे सताता है। इसका सस्कार उतना ही कठिन है जितना कि पत्थरकी रेखा।

अप्रत्याख्यानावरण कषायके संस्कारकी स्थिति—अप्रत्याख्यानावरणक्रोध होता है पृथ्वीमें बनाई हुई रेखाकी तरह। जैसे खेत जोते जाते हैं, हल चलाया जाता हैतो हलके चलनेसे पृथ्वीमे मोटी रेखा पड जाती है। वह रेखा मिट तो जायेगी, पर करीब ५-६ माह तक बनी रहती है। ऐसे ही अप्रत्याख्यानावरण क्रोधका सस्कार जीवमे अधिकसे अधिक ६ माह तक चलेगा। इसके बाद सस्कार न रहेगा। पुराणोमे जब यह वर्णन आता है कि श्री लक्ष्मण जी के वियोगमे श्री राम लक्ष्मणके देहको लिए ६ माह तक फिरते रहे, ऐसा यदि यहाँ कोई मनुष्य करे—अपने भाईके मुर्दा शरीरको लिए रहे, जलाने न दे तो ऐसे भाईको यहाँके लोग क्या कहेगे ? समझ लीजिए ऐसी भयकर स्थिति श्री रामचन्द्रजी पर बीती। लेकिन अन्त दृष्टिका बडा प्रभाव होता है। इतना होने पर भी चित्तमे सुप्त, जैसे समझ लीजिए

ज्ञान ज्योति बनी थी। महापुरुष थे और वह संस्कार ६ माहसे आगे न चल सका। कोई निमित्त पाकर या कुछ भी घटना पाकर श्रीराम इतने विरक्त हुए कि सर्वविकल्पोका परित्याग करके साधुव्रत अंगीकार किया और सन्यासमे अपना जीवन बिताया। तो क्या था वहाँ ? प्रत्याख्यानवरण ६ माहसे अधिक नही चल सकता है।

प्रत्याख्यानावरण व संज्वलनकषायके संस्कारकी स्थिति—प्रत्याख्यानावरण क्रोध-चक्रकी रेखाकी तरह होता है। जैसे कच्चेमार्गपर कोई गाडी निकल जाय तो गाडीचक्रकी रेखा होती जाती है कि १०-५ दिनमे मिट ही जाती है, अधिक नही चल सकती इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण क्रोधका संस्कार १५ दिनसे अधिक नही चल सकता। यह होता है पञ्चम गुणस्थानमे। श्रावकजनोके भी सस्कार अधिकसे अधिक १५ दिन रहेगे, उससे बाद कषायके सम्बधकी याद भी न रखेगा। अन्य भिन्न प्रकारकी कषाये हो जाये, पर किसी एकका सस्कार १५ दिनसे अधिक नही चल सकता। सज्वलन क्रोधका प्रभाव है जलरेखाकी तरह। जैसे कोई पानीमे बासकी लाठीसे रेखा बना दी तो वह कितनी देर ठहरेगी ? वह वही मिट जाती है। तो ऐसे ही जिन जीवोका क्रोध अन्तर्मुहूर्त तक ही सस्कार रख सकता है, इसका आगे सस्कार नही रहता। इनका क्रोध है सज्वलन क्रोध, यह मुनिजनोके होता है। मुनि-जनोके कषाय कभी हो भी जाय तो उसका संस्कार अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नही होता। संज्व-लन क्रोध होता है जलरेखाकी तरह। क्रोध हुआ तो दूसरे क्षण समाप्त हो जाता है।

क्रोधकषायके स्वामित्वके वर्णनका उपसंहार व कषायविजयके उपायका दिग्दर्शन—क्रोधकी चारो जातियोके स्वामी इस प्रकार है—अनन्तानुबधी क्रोध तो होता है मिथ्यात्व और सासादन गुणस्थानमे। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध जहा कि अनन्तानुबंधी नही रहता है, वह होता है तीसरे और चौथे गुणस्थानमे। अनतानुबधीरहित व अप्रत्याख्यानावरणरहित प्रत्याख्यानावरण क्रोध होता है पञ्चम गुणस्थानमे और केवल सज्वलन क्रोध होता है छठे, ७वे, ८वें, ९वे गुणस्थानमे। अब ऊपर ऊपरके गुणस्थानोमे क्रोध मद होता चला गया है। तो यो क्रोध चार प्रकारका है और इसके स्वामी उक्त प्रकारसे पाये जाते है। इन कषायोमे जो अनन्तानुबंधी कषाय है उसका असर इस जीवपर बहुत बुरा है और जीवकी बरबादी के लिए है। यो समझ लीजिए कि फिर तो कोई जीव अनन्तानुबधी क्रोध वाला है, तो उसका तात्पर्य यह हुआ कि वह अपने आपपर महान् क्रोध कर रहा है। उस क्रोधकी हालत ऐसी भयकर होती है जिससे वह जीव स्वय कुयोनियोमे जन्ममरण कर करके अज्ञान गहन अधकारमे रह रहकर यातनाये सहेगा। अनन्तानुबधी क्रोध इस जीवकी बरबादीका प्रमुख

साधन है । उस क्रोधसे क्षयका उपाय तत्त्वविज्ञान है, भेदविज्ञान है, देहादिकसे अपने आपको भिन्न परिचयमे ले लेना उस परिचयके ये सब साधन वताये गये है । इस विविक्त आत्मतत्त्व के वाधक विभावोके क्षयके उपायमे नय और प्रमाणसे निर्णयका काम लेना चाहिए । तत्त्व-निर्णय करके परवस्तुका व्यामोह हटाये और अपने आपको शान्तिमे ले जाये ।

अनन्तानुबन्धी मानरूप यत्रा विवरण—मान कषाय भी चार प्रकारकी है—अनन्तानुवधी मान, अप्रत्याख्यानावरणमान, प्रत्याख्यानावरणमान और संज्वलन मान । मान कठिन परिणामको कहते है । जहाँ नम्रता नही रहती; अन्य जीवोमे उच्चता दिखानेका भाव रहता है उसको मान कहते है । मानकषाय वाले जीव कठिन हृदयके हो जाते हैं, उनमे दयाका फिर प्रवेश नही होता, ऐसा मानकषाय चार श्रेणियोमे विभक्त है । जो अनन्त अर्थात् मिथ्यात्वका सम्बन्ध वनाये उसे अनन्तानुवधी मान कहते हैं । अनन्तानुबधी मान इस प्रकार का कठोर होता है जैसे कि वज्र अथवा पाषाण । पत्थर नम्रीभूत नही हो सकता, वह चाहे टूट जाय पर नमनेका वहाँ काम नही है इसी प्रकार अनन्तानुबधी मानमे खुद अपनी बरवादी जीव कर लेगा, किन्तु नम न सकेगा । देव, शास्त्र, गुरु, पूज्य पुरुष, गुणियोंके प्रति इसका नम्र भाव नही होता, आदरभाव भी नही होता । कभी किसी जीवके अनन्तानुवधी मान मद भी हो, उस मद स्थितिमे भी गुणी जनोके प्रति नम्रता नही आती । ज्ञायकस्वरूप निज अंतस्तत्त्वकी ओर झुकाव हो सके, यह वात अनन्तानुवधी मानमे सम्भव नही है । भले ही धर्मके नाम पर कुछ साधुभेष भी रखे, तपश्चरण आदिक महान् क्लेश भी करे किन्तु ज्ञायकस्वभाव उसके सम्मुख नही हो पाता, ज्ञायकस्वभावकी अनुभूतिमे वह डूब नही सकता जिसके अनन्तानुवधी मान विद्यमान है । मानकषायका ठीक परिचय पा सकना वडा कठिन काम है, कोई जीव वचनोसे, शरीरचेष्टासे ऐसा दिखावा करे कि जिसमे नम्रता भरी हो, नमस्कार करना, नम्र शब्द बोलना, अपने को नीचा जाहिर करना, दूसरेको ऊचा जाहिर करना, इतनी जाहिरात होने पर भी यह नही कहा जा सकता कि उसके चित्तमे मानकषाय अव है अथवा नही । कहो भीतरकी यह मानकषाय ही ऐसी प्रेरणा देती है कि जिससे कि दूसरेको ऊचा वताया, अपने को नीचा वताया, क्योकि समझ रखा है उसने यह कि अपने आपको इतना नम्र जाहिर करनेमे ही मान रह सकता है । कहो ये चेष्टाये मानकषायकी पूर्तिके लिए भी सम्भव हो सकती हैं । तो मानकषायकी विकट सकटमय श्रेणी है अनन्तानुवन्धी मान । अनन्तानुवधी मानके उदयमे सम्यक्त्व प्रकट नही होता । सम्यग्दर्शन की घातक ७ प्रकृतिया मानी गई है—अनन्तानुवधी क्रोध, अनन्तानुवधी मान, अनन्तानुवंधी

माया, अनन्तानुबधी लोभ, मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति। इन ७ प्रकृतियो का उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर सम्यग्दर्शन प्रकट होता है। जहा अनन्तानुबधी मान कषाय है वहा सम्यक्त्व न होगा।

अप्रत्याख्यानावरण व प्रत्याख्यानावरण मानकषायका विवरण—मान कषायकी दूसरी श्रेणी है अप्रत्याख्यानावरणमान। ऐसा मानभाव जो सम्यक्त्वका तो घात न कर सके, किन्तु अणुव्रत भी होने दे ऐसे कषायभावको अप्रत्याख्यानावरण मान कषाय कहते है। इस अप्रत्याख्यानावरण मानकषायका उदय चतुर्थ गुणस्थान तक माना गया है, किन्तु जहां अनन्तानुबधीकषाय नही रही और अप्रत्याख्यानावरण मान है ऐसा मान तीसरे और चौथे गुणस्थानमे होता है। तीसरी श्रेणी है मानकी। प्रत्याख्यानावरण मान जो मान सकल संयम का घात करे, महाव्रत न होने दे उसे प्रत्याख्यानावरण मान कहते है। उस मानके उदयमे जीव महाव्रत धारण नही कर सकता। जिन जीवोके अनन्तानुबधी और अप्रत्याख्यानावरण कषाय नही रही, प्रत्याख्यानावरण मान चल रहा है वे जीव पचम गुणस्थानमे पाये जाते है। अप्रत्याख्यानावरण कषायका क्षयोपशम होने पर ही देशसयम गुणस्थान प्राप्त होता है। तो प्रत्याख्यानावरण मान मानकषायकी तीसरी श्रेणी है जिसमे सम्यक्त्व और अणुव्रतका घात नही है, किन्तु महाव्रत सम्भव नही है।

संज्वलन मानकषायका विवरण—मानकषायकी चतुर्थ श्रेणी है सज्वलनमान। जो मानकषाय सयमके साथ भी चलती रहे अर्थात् संयमका घात तो न कर सके, महाव्रतको तो न हटा सके किन्तु मानकषाय बनी रहे जिससे आगेकी प्रगति न हो सके, ऐसे मानकषायको संज्वलनमान कहते है। जिन जीवोके अनन्तानुबधी अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरण कषाय नही रहती, संज्वलनमान है वे जीव छठे गुणस्थानसे लेकर ९वे गुणस्थान तक पाये जाते है। अनन्तानुबंधी मान तो पाषाणवत् कठोर है और अप्रत्याख्यानावरण समझ लीजिए कि हड्डीकी तरह कठोर है, जैसे हड्डीमे कुछ (थोडी बहुत) नमशक्ति है, पाषाणमे तो जरा भी नम्रता नही। तो जहां कुछ थोडी नम्रता हो उसे अप्रत्याख्यानावरण मान कहेगे। प्रत्याख्यानावरण मान काष्ठकी तरह कठोर है। जैसे काठ बहुत कुछ नम जाता है, पर अधिक नही नम सकता, इसी प्रकार जहा अपेक्षाकृत अधिक नम्रता है पर अधिक नम्रता नही है, ऐसे मानकषायको प्रत्याख्यानावरणमान कहते है। सज्वलनमान पतले बेतकी तरह नम्र होत है। जैसे पतला बेत बहुत नम जाता है, एक सिरेसे दूसरे सिरे तक भी नमाया जा सकता है; तो जहा इतनी अधिक नम्रता है किन्तु अन्तरङ्गसे कठोरता नही गई, उसे कहते है सज्व-

लनमान ।

मायाकषायका विवरण—जिस प्रकार मान चार श्रेणियोमे विभक्त है, मायाकषाय भी चार श्रेणियोमे विभक्त है। अनन्तानुबधी माया, अप्रत्याख्यानावरण माया, प्रत्याख्यानावरण माया और सज्वलन माया। माया नाम छलकपटका है। मनमे कुछ हो, वचनसे कुछ कहा जाय, शरीरसे कुछ चेष्टा की जाय उसे मायाकषाय कहते है। जहा मन नही है ऐसे जीवोके भी सस्कारमे छलकपट इसी प्रकार पडा हुआ है। जहा वचन भी नही है केवल काय ही काय है। एकेन्द्रिय जीवोके भी मायाचारका सस्कार वसा हुआ है। मायाकषायको व्यक्त समझनेके लिए हम आपमे सम्भव वात कही जा रही है। मनमे कुछ हो, वचनसे कुछ कहा जाय और करनीमे कुछ आये उसे मायाकषाय कहते हैं। अनन्तानुवधी माया सम्यक्त्वका घात करने वाली है और यह कषाय पहिले दूसरे गुणस्थानमे पायी जाती है। अनन्तानुवधी माया इतनी वक्रकषाय है जिसके लिए उदाहरण वताया गया है वासकी जड। जैसे वासकी जड वक्र होती है और कितनी ही उसमे वक्रताये पायी जाती हैं, इस प्रकारका वक्रअभिप्राय मायाकषायमे होता है। अप्रत्याख्यानावरण मायाकषाय उस कषाय को कहते हैं जिस मायाचारमे सम्यक्त्वका घात न हो सक रहा हो, किन्तु अणुव्रत न वन सके उसे अप्रत्याख्यानावरण मायाकषाय कहते है। इसमे वक्रताका दृष्टान्त दिया जाता है। जैसे बारहसिहा के सीघ। वे कई टेढोमे चल रहे है, किन्तु बासमूलकी वक्रतासे उसमे कम वक्रता है। प्रत्याख्यानावरण मायाकषाय उसे कहते हैं जिस कषायमे सम्यक्त्व और अणुव्रत का घात न हो, किन्तु महाव्रतका घात हो जाय। इस कषायमे वक्रता अप्रत्याख्यानावरणसे तो कम है फिर भी विशेष है। जैसे कि चलता हुआ बैल मूत्र करता जाय तो उसके मूत्रमे जैसी टेढ आती है वह टेढ कुछ सीमाको लेकर सीधी सरल है जिसका परिज्ञान भी लगाया जा सकता है। उसमे अधिक वक्रता नही है। इसी प्रकार प्रत्याख्यानावरण मायाकषायमे इतनी अधिक वक्रता तो नही है, फिर भी वक्रता बनी हुई। संज्वलन माया कषाय सयमके साथ-साथ भी बनी रहती है। इस कषायमे यद्यपि महाव्रतका घात नही होता, किन्तु प्रगति नही हो पाती। इस कषायमे वक्रता इतनी कम रहती है जो पीछे मिट सकती है। जैसे जलमे वक्ररेखा करे तो वह रेखा कितने समय तक ठहरेगी ? वह तो शीघ्र ही मिट जायेगी, यो ही सज्वलन माया कषायमे वक्रता होती है। यह कषाय छठे गुणस्थानसे लेकर ९वें गुणस्थान तक पायी जाती है।

लोभ कषायका विवरण—लोभकषाय भी चार श्रेणियोमे विभक्त है—अनन्तानुबधी

लोभ—जो मिथ्यात्वका सम्बन्ध बनाये; देव, शास्त्र, गुरु धर्मकी सेवामे, उपासनामे, उदारता मे न बर्त सके, वहा भी तृष्णा, लोभकषाय बनाये रखे, ऐसी तीव्र तृष्णाको अनन्तानुबधी लोभ कहते है। यह लोभ स.यक्त्वका घातक है। इसका लोभ इतना गहरा होता है जैसे चक्रमलका रंग। चकेका जैसे कपडेमे लग गया तो कपडा चाहे फट जाय पर वह चक्र-मल नही छूटता, ऐसे ही . बधी लोभका रग इतना गहरा है कि जिसमे रंच भी उदारता नही आ पाती। अप्रत्याख्यावरण लोभकषायमे सम्यक्त्वका घात तो नही हो रहा किन्तु अणुव्रत नही धारण किया जा सकता, ऐसे कषायको अप्रत्याख्यानावरण लोभकषाय कहते है। इसका रंग अनन्तानुबधी की तरह गहरा तो नही है फिर भी बहुत कुछ है। जैसे हरा मज ट आदिकका रग इतना गहन होता है उस प्रकारका रग इस कषायमे चढा हुआ रहता है। प्रत्याख्यानावरण लोभ जहा सम्यक्त्व और अणुव्रतका घात तो नही है किन्तु महाव्रत नही हो सकता ऐसी कषायको प्रत्याख्यानावरणकषाय कहते है। जहाँ अनन्तानुबधी और अप्रत्याख्यान रहे, प्रत्याख्यानावरण लोभ है वह पचम गुणस्थान कहलाता है। उसमे सज्वलनलोभ है जो महाव्रतका भी घात नही कर सकता। सयमके साथ साथ भी बना रहता, पर निर्विकल्पता नही होने देता, ऐसा यह लोभकषाय जहा अनन्तानु-बंधी अप्रत्याख्यानावरण प्रत्याख्यानावरण नही है, किन्तु सज्ववन लोभ ही है वह कषाय छठे गुणस्थानसे लेकर १०वे गुणस्थान तक पायी जाती है।

कषायके स्वामित्वका उपसंहार—कषायके स्वामित्वके सम्बन्धमे सक्षेपरूपसे यह बात है कि कषायके वामी प्रथम गुणस्थानसे लेकर दशम गुणस्थान तक होते है और विशेषरूपसे यह विवरण है कि अनन्तानुंबंधी क्रोध, मान, माया, लोभके स्वामी प्रथग और द्वितीय गुण-स्थानवर्ती जीव होते है अर्थात् मिथ्यादृष्टि और सासादन सम्यग्दृष्टि होते है। अप्रत्याख्या-नावरण क्रोध, मान, माय लोभके स्वामी प्रथम गुणस्थानसे लेकर चतुर्थ गुणस्थान तक होते है। और यदि अनन्तानुबधी कषाय न रही तो अप्रत्याख्यानावरण कषायके स्वामी सम्य-क्मिथ्यादृष्टि और अविरत सम्यग्दृष्टि याने तीसरे व चौथे गुणस्थान वाले जीव होते है। प्रत्याख्यानाबरण क्रोध, मान, माया, लोभके स्वामी प्रथम गुणस्थानसे लेकर पञ्चम गुणस्थान तकके जीव होते है और यदि अनन्तानुबधी व अप्रत्याख्यानावरण कषाय न रही तो ऐसे प्रत्याख्यानावरण कषायके स्वामी देशसयतनामक पञ्चम गुणस्थानवर्ती जीव ही होते है। सज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभके स्वामी प्रथम गुणस्थानसे लेकर ९वे गुणस्थान तक है और दशम गुणस्थानमे केवल सज्वलन लोभ है। विशेषतया यो कहिये कि अप्रत्याख्याना-

वरण व प्रत्याख्यानावरण आदिक ये बारह कषाये नही रही तो ऐसे सज्ववन क्रोधके स्वामी छठे गुणस्थानसे लेकर ९वे गुणस्थान तक होते है और सज्वलनमानके स्वामी छठे गुणस्थान से लेकर ९वे गुणस्थान तक होते है । क्रोधकी अपेक्षा मानके स्वामी नवेमे गुणस्थानके और आगे भाग तक होते है । और सज्वलन मायाके स्वामी छठे गुणस्थानसे लेकर ९वे गुणस्थान तक होते है और मानसे एक भाग आगे तक होते है । सज्वलन लोभके स्वामी छठे गुण-स्थानसे लेकर १०वे गुणस्थान तकके जीव होते है । कषायके परिणामकी दृष्टिसे यह भी कहा जा सकता कि कषायोंके स्वामी वे जीव होते है जो कषायोको अपनाते हैं, अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव कपायोके स्वामी है । ज्ञानी जीवोमे कही तक कपाये होती है, पर वे कषायो के स्वामी नही वनते । इस दृष्टिसे मोटेरूप मे यह कहा जायगा कि जो कषायोको अपनाये सो कषायोका स्वामी है । जो कषायोको न अपनायें वे कषायोके ज्ञाता होते है ।

कषायोंके साधयका विवरण— अब कषायोके साधनका विवरण करते है । परमार्थत कषायोका साधन वे ही कषायें है, क्योकि अपनी परिणतिसे ही वे परिणमित हुए है । किसी अन्य साधनकी परिणतिसे कषायपरिणमन नही हुआ है और बाह्य साधनकी अपेक्षा निर्णय किया जाय तो इस साधनको दो भागोमे विभक्त करना चाहिये । एक तो आश्रयभूत, दूसरा निमित्तभूत । निमित्तभूत साधन कषायका कर्मोदय है । क्रोध प्रकृतिके उदयसे क्रोधकपाय होता है तो क्रोधका अतरङ्ग साधन अथवा कहो निमित्तभूत यह प्रकृतिका उदय है । बाह्य साधन कोई प्रतिकूल कार्य सामने आये अथवा विषयोकी बाधक कोई घटना उपस्थित हो, उसका जो प्रमुख व्यापार करने वाला है वह कषायका आश्रयभूत बनता है । कषायोंके जो आश्रयभूत साधन है उनका नाम समुत्पत्ति कषाय है और समुत्पत्ति कपायके प्रकरणमे इस बातको विशेषरूपसे स्पष्ट किया है । कषायोमे अनन्तानुबधीके साधन कुछ और ढगके होते हैं, अप्रत्याख्यानावरण आदिक कषायोके साधन और ढगके होते है । बाह्य साधन तो आश्रय-भूत कहलाते है और अतरङ्ग साधन निमित्तभूत पदार्थ कहलाते हैं और उपादान कारण वह जीव स्वय है जिसमे कषायभाव उत्पन्न होता है ।

कषायोंका अधिकरण—-कषायका अधिकरण परमार्थत वह कषाय ही है । कषाय किसमे हुई है ? जब कषायका सूक्ष्मरूपसे दर्शन करने वाले ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे देखते हैं तो कषायका आधार वही स्वय कषाय है । इस नयकी दृष्टिमे कषाय परिणाम न किसीसे उत्पन्न हुआ है और न किसी साधनसे नष्ट हो सकता है, किन्तु वह अपने मे अपने कालमे

उत्पन्न हुआ है और उत्पन्न होते ही नष्ट हो जाता है। तो कषाय एक पर्याय है और पर्यायो का सूक्ष्मतासे दिग्दर्शन करने वाला नय ऋजुसूत्रनय है। तब ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे कषायोका आधार वही स्वय है लेकिन केवल ऋजुसूत्रनयसे ही तो पदार्थका निर्णय नही होता। जब अन्य नयोकी दृष्टिसे नैगम आदिक नयोके आश्रयमे कषायोका अधिकरण कहा जाय तो अन्तरङ्ग अधिकरण वह जीव ही है जिसमे कषाय जगी है। बाह्य अधिकरण क्षेत्र कह सकते है कि किन-किन क्षेत्रोंमे कषाये होती है, तो यह समस्त लोकाकाश ही कषायोका आधार हुआ। लोकाकाशमे ससारी जीव भरे पडे हुए है। त्रसनालीमे तो केवल त्रस जीव है और किन्ही-किन्ही स्थितियोमे त्रसनालीसे बाहर भी त्रस सम्भव हो सकते है, किन्तु बहुत कम समयके लिए मारणातिक समुद्घात और उपपादसमुद्घात जैसी स्थितिमे। जैसे किसी त्रस जीवके मरणका समय है और अपने उन अतिम मरणामे मरणसमुद्घात करता है उसे उत्पन्न होना है त्रसनालीके बाहरी क्षेत्रमे स्थावर तो मारणातिक समुद्घातके समय वह त्रस जीव उत्पन्न होनेके स्थानको छू आयगा और वह वापिस आकर उस ही त्रस देहमे आ जायगा। तो है तो वह त्रस जीव, पर उसके प्रदेश मारणाति समुद्घातमे त्रसनालीसे बाहर भी चले गए। उपपातसमुद्घातकी बात यो है कि कोई स्थावर जीव त्रसनालीसे बाहर है और वह मरण करके त्रस जीव होनेको है सो त्रस-नालीसे बाहरी क्षेत्रसे विग्रहगति करके त्रस नालीमे त्रस उत्पन्न हो रहा है तो विग्रहगतिमे वह जीव त्रस कहलाता है। अभी त्रसके उस नवीन देहमे नही आया किन्तु त्रससज्ञा पूर्वभवकी आयुके क्षयके अनन्तर ही हो जाती है तो ऐसे मौकोमे दो एक समय तक जीव त्रसनालीसे बाहर रहा और त्रस कहलाया। अत इन कषायवान जीवोका अधिकरण यह समस्त लोकाकाश है, परमार्थसे विचारा जाय तो कषायो का अधिकरण इन जीवोको ही कहा जा सकता है, कषायोके अधिकरण अथवा स्वामित्वके सम्बन्धमे यह भी सिद्धान्त आया है कि मुख्यतया क्रोधके स्वामी नरकगतिके जीव होते है, मानके स्वामी मनुष्यगतिके जीव होते है, मायाके स्वामी तिर्यचगतिके जीव होते है और लोभके स्वामी देवगतिके जीव होते है। यह मुख्यतया कथन है किन्तु जिसमे क्रोध है उसमे शेष तीन कषायें भी है, जिनमे मान है उनमे भी शेष तीनो है, माया, लोभके साथ भी समस्त कषायें है। केवल ६वे गुणस्थानवर्ती जीव कुछ ऐसे होते हैं कि जिनमे संज्वलन क्रोध नही रहा, पर मान, माया, लोभ बना हुआ है। कुछ समय बाद उन्हीके संज्वलन मान भी नही रहता। केवल सज्वलन माया लोभ रह गया है। उन्ही जीवोके कुछ समय बाद संज्वलन माया कषाय भी नही रहती। केवल सज्वलन बादर लोभ रह जाता है और दशम

गुणस्थानमे तो केवल सूक्ष्म सज्वलन लोभ रहता है ।

कषायोंकी स्थिति---कषायकी स्थितिके सम्बवमे यह निर्णय है कि किसी भी विशिष्ट कषायकी स्थिति अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नही होती । किन्ही परिस्थितयोमे इससे भी कम हो जाता है । एक दो आदिक कुछ समयके लिए कषाय हो और मरण अथवा व्याघात होनेपर दूसरी जातिकी कपाय जग जाती है। यो इसकी स्थितिकी बात सस्कारकी अपेक्षा कही जाय तो इस प्रकार होगी कि अनन्तानुबधी कषाय सस्कारसे ६ माहसे अधिक भी रहती है। और भव-भवमे भी अनन्तानुवधी कषाय जा सकती है। अप्रत्याख्यानावरण कषाय सस्कारसे अधिकसे अधिक ६ माह तक रहेगी। अप्रत्याख्यानावरण कषायके संस्काररूपमे भी स्थिति ६ माहसे अधिक नही होती, यही कारण कहा जा सकता है कि जब श्रीरामचन्द्रजी लक्ष्मण के वियोगगमे क्षुव्ध हो गए और मृतक देहको लिए फिरे तो ऐसी क्षुव्ध दशा ६ माहसे अधिक न चल सकी। इसके पश्चात् उस कषायका सस्कार ही नही रह सकता। प्रत्याख्यानावरण कषायके सस्कारकी म्याद अधिकसे अधिकसे अधिक १५ दिनकी होती है। १५ दिन से अधिक पञ्चम गुणस्थानवर्ती पुरुषके कषायका सस्कार नही चलता है। सज्वलन कषायके सस्कारकी स्थिति केवल अन्तर्मुहूर्त रहती है । किसी भी साधुके क्रोधादिक कषायोका सस्कार अन्तर्मुहूतसे अधिक न रह सकेगा। यदि सस्कार इससे अधिक रहता है तो समझना चाहिए कि वह उस गुणस्थानसे गिर गया।

कषायोंके विवरणके अवगमसे उपादेन शिक्ष—कषायोका विधान पहिले बता ही दिया गया है। कषायें १६ रूपोमे विभक्त है और कषायोके साथ कुछ चित्त प्रवृत्तिया होती है, वे वृत्तिय ९ रूपोमे प्रकट होती है। जिन्हे नोकषायके नामसे कहा है—हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुरुषवेद और नपुसक वेद। यदि अनन्तानुबधीके साथ ये ९ कषाये हैं तो इनमे उस प्रकारकी तीव्रता आ जायेगी। जिस जिस प्रकारकी कषायके साथ ये नोकषाये चलती है उसके अनुसार इन नोकषायोकी प्रवृत्ति बन जाती है। यो कषायोका परिचय है । इस परिचयको पाकर यह शिक्षा लेनी है कि कषायें जीवके स्वभाव नही, ये विनाशके हेतु हैं, उनको न अपना कर अपने ध्रुव अखण्ड सहज चैतन्यभाव मे रुचि करना चाहिये जिससे सम्यग्दर्शनका पोषण हो।

सम्यक्त्वकी हितरूपता—इस जीवका हित सम्यक्त्व है। सम्यक्त्व ही हम आपका एक सर्वोपरि सर्वप्रथम वैभव होगा। जीवको चाहिए शान्ति, शान्ति प्राप्त होनेका मूल उपाय सम्यक्त्व है। यह जीव बिना काम व्यर्थ ही अशान्ति लादे हुए है। जहा-जहाँ भी जीवने

राग व बाह्यसम्पर्क किया वह बिना ही काम तो किया। आत्माको उसमे लाभ क्या मिला ? अब तक अनन्त देह प्राप्त किये। जिस देहमे वह जीव पहुचा उस देहको आपा मानकर रम गया। लाभ क्या मिला ? और जिस जिन्दगीमे जीते रहे उस भवमे आपा माननेके कारण अनेक कष्ट और भोगे। अब तक अनन्त भव पाये और गुजर गए। उन अनन्त भवोके सामने आजका यह एक भव कौनसी गिनती रख रहा है ? लेकिन यह भव गिनती रख लेगा यदि सम्यक्त्व प्राप्त हो गया तो। और यदि सम्यक्त्व नही प्राप्त हुआ तो फिर इस एक भवकी कोई गिनती नही। जैसे अनन्त भव पाये वैसे ही यह भी भव पा लिया। यह भी उन गये बीते भवोमे ही शामिल हो गया। सम्यक्त्वके समान श्रेय और कुछ नही है, मिथ्यात्वके समान अश्रेय, अहितकर, विडम्बना और कुछ नही है।

सच्चिदानन्दमय आत्माका सम्यक्त्वमें कल्याणलाभ—जीव स्वय शान्तस्वभावी है, आनन्दमय है। इसे सच्चिदानन्द कहते है। आत्मा सत् चित् और आनन्दस्वरूप है। कुछ लौकिक दर्शन यह मानते है कि सत् होता है जीव, चित् होता है आत्मा और आनन्द होता है परमात्मा अथवा परमात्मामे ये तीनो बाते है—सत्, चित् और आनन्द। आत्मामे दो बात है—सत् और चित्। जीवमे एक बात है—सत्। उनकी यह कल्पना कुछ प्रधान और कुछ गौणताके ख्यालसे है, सो बहिरात्माको जीव, अन्तरात्माको आत्मा और परमात्माको प्रभु कहा करते है। यह कहना किस ख्यालमे है सो देखिये—सरसरी निगाहमे स्थूलरूपसे यह बात घटित हो जाती है कि यह प्राणी क्या है, सत् ही तो है। और इस सत् शब्दसे यहा एकेन्द्रिय आदिक प्राणियोको लिया गया है। जहाँ प्रतिक्रमण पाठमे पढते हैं ना—ये जीव जो कि बोलचाल नही सकते, ऐसे कीडा मकौडा एकेन्द्रिय स्थावर आदिकको सत्त्व शब्दसे लिया गया है। कहा स्थावर बोलते है ? प्रयोजन यह है कि सत्त्व मायने है जीव। (उन दार्शनिकोका समन्वय करते हुए कह रहे है), और जहा चित् आ गया, ज्ञान आ गया, विवेक आ गया वह है अन्तरात्मा और जहा आनन्द प्रगट हो गया, जैसे कि आत्मा उस सहज सत्त्वसे खुद भरा है तो वह हो गया प्रभु, किन्तु स्वरूपदृष्टि कहती हैं कि प्रत्येक जीव सच्चिदानन्दमय है। आनन्द तो जीवका स्वभाव है, और उस आनन्दशक्तिका सुख और दु खरूपमे परिणमन चल रहा है। न भी विवेक प्रकट हुआ हो लेकिन चित् तो है ही। चेतना सब जीवोमे है और सत्की बात तो चेतन अचेतन सब ही मे पायी जाती है। तो पदार्थके नाते तो सत् है, असाधारण पदार्थके नाते चित् है और स्वभाव आनन्दका है और प्रयोजन आनन्दका है, सो आनन्द भी है। ऐसे सच्चिदानन्द स्वरूप आत्माका श्रेय सम्यक्त्व है और अकल्याण

मिथ्यात्व है ।

सम्यक्त्वकी श्रेयोरूपता व मिथ्यात्वकी विडम्बनारूपता—सम्यक्त्वका अर्थ है समीचीनता, यथार्थता । आत्माको आत्मा समझ लेना, मान लेना, अनुभव लेना, बस यही तो समीचीनताका रूप है, फिर व्यक्त रूपमे ऐसा परिणमनमे भी बन जाय, इसका भी आधार यह सम्यक्त्व है । सम्यक्त्वमे क्या समझना है ? मैं स्वय केवल अपने आप किस प्रकार हू, बस इसकी यथार्थ प्रतीति होना यह बात सम्यक्त्वमे बनेगी । यह वैभव अब तक नही पाया, लौकिक वैभव कुछ भी पा लिया जाय, पर वह तो धूलवत् है, तृण समान है । वह लौकिक वैभव किस कामका है ? थोडासा मान लेते हैं कि लोकमे इज्जत तो आजकल लौकिक वैभवमे है । जो अधिक धनिक होगा वही समाजमे इज्जत पाता है उसीको लोग सभा सोसाइटियोमे आगे बैठालते है । बैठालते है ठीक है, लेकिन उसकी इज्जत किन लोगोंने करी ? मोहियोने । मोहियोका राजा वह बना । मोही शब्दको सुनकर तो आपको बुरा न लग रहा होगा । मोही की जगह अगर बेवकूफ कह दिया जाय तो आपको बुरा लग जायेगा । बेवकूफका अर्थ है अविवेकी, अज्ञानी, मोही । अगर कोई उन मोहियोका सरदार है तो वह कहलायेगा महाबेवकूफ । जो व्यक्ति इन मोही जीवोका अगुवा बनना चाहता है, उनमे अपनी प्रतिष्ठा पाने के लिए धनार्जनकी होड लगा रहा है तो यह तो उसका मलिनता का ही काम है, यह कोई सन्मार्ग नही है । ये सब मिथ्यात्वकी बातें है, स्वप्नवत् हैं । मोहियोमे अपनी इज्जत पा लेना उससे इस जीवको क्या लाभ मिल जाता है ? मिथ्यात्वके समान जीवका अकल्याण कुछ नही है । बात कितनी सी है ? भीतरमे ही यह उपयोग उल्टा मुख किए है, मिथ्यात्व बन गया है । यह उपयोग सीधा मुख करले तो सम्यक्त्व बन जायेगा और वह उल्टा सीधा कितना है भीतरमे ? अगर अन्तरमे देखे तो कितनी सी बात है ? स्व और पर इन दोनोके उपयोगको मुडनेके लिए कितनी मोटाई चाहिये । जरा अन्तर्दृष्टि करके विचारिये कुछ भी मोटाई न चाहिए । कितना जरा सा फेर है ? एक सूत बरावर भी नही । केवल वहाँ भावका फेर है । अपने सम्मुख उपयोग बने, वहाँ ही अलौकिक वैभव है और अपने से हटकर बाह्यकी ओर उपयोग रहे उससे तो विचित्र विडम्बनाये हैं । उसका उदाहरण यह सारा ससार है । जितने ये जीव पशु पक्षी कीट आदिक नजर आते हैं दुःखी, क्लिष्ट, अज्ञानी, वह सब इस मिथ्यात्व विडम्बनाका फल है । सम्यक्त्वके समान जगत्मे श्रेय कुछ नही है । मिथ्यात्वके समान जगत्मे अकल्याण कुछ नही ।

सम्यक्त्वके योग्य व्यवहार वृत्ति बनानेकी प्रेरणा—घरमे लोग परिजनोमे बैठते हैं,

राग करते है, बाते करते है। क्या बाते करते है? प्राय करके अकल्याणकी बाते करते है। परिजनको परजन बना लिया, उन्हे परिजन बनाये। यदि धर्मचर्चा करके वातावरण घरमे विशुद्ध बना लिया जाय तो समझ लीजिए कि आपने परिजनताकी। अपना वातावरण अपने लिए ठीक किया, कुटुम्बके लिए ठीक किया। पर घरमे धर्मचर्चाका रूप कौन देता है? समझ रखा है कि घर तो इसीलिए है कि सतान पैदा हो, नाम चले। धर्मका वातावरण बनानेका कोई मतलब नही। जिस घरमे रह रहे उस घरसे ही परिचय मिलेगा उस घरके मुखिया पुरुषका कि वह किस प्रकृतिका है? वह विवेकी है, अविवेकी है, मोही है, अथवा किस प्रकारका इसके घरका वातावरण है, यह उसके घरसे ही परिचय मिल जायेगा। घरमे अगर सुरूपा महिलाओके, आजकलके अभिनेताओके, या और भी मलिनभाव उत्पन्न करने वाले चित्र (अश्लील चित्र) लगे हो तो पता पड जाता है कि इस घरका मुखिया इस प्रकृतिका है और अगर घरमे मुनिराजोके या जिन साधुसतोके ऊपर बडे बडे उपसर्ग आये, उनके चित्र या वैराग्यता उत्पन्न करने वाले चित्र लगे हो तो उससे पता पड जाता है कि इस घरका मुखिया इस प्रकार की प्रकृतिका है। तो ये तो बाहरी बाते है। भीतरी बात तो सम्यक्त्वकी है। सम्यक्त्वके समान श्रेय कुछ न मिलेगा। जब सम्यक्त्व जगे तभीसे आप अपनी जिन्दगीका प्रारम्भ समझिये। वरना सम्यक्त्व बिना जो जिन्दगी है वह कोई जिन्दगी नही है। अगर आप अपनेको इस भवकी ५० वर्षकी जिन्दगीको जानकर ऐसा कहे कि मैं तो ५० वर्षका हू तो आप ५० वर्षके ही क्यो है? आप तो अनन्तकालके बूढे है। सम्यक्त्व जगा कि आपका नया जीवन बना, अलौकिक जीवन बना। सम्यक्त्व जगने पर आप इस संसारसमुद्रसे पार हो जायेगे।

आत्माके केवल रह जानेकी स्थितिकी श्रेयोरूपता——आत्माके केवल रहनेकी बात सुननेमे तो अभी अच्छी लगेगी आपको, मगर उस केवलके आनन्दकी बात कही जाय। एक आत्मा हम आपमे ही भीतरमे समझ लो ऐसा ही कोई आत्मा आत्मा ही अकेला रहा, अब शरीर उसके साथ नही है, केवल जीव, केवल जीव वह भी तो होता है। यहा मरेके वाद तो झट लोग कहते है कि जो इसमे जीव था वह चला गया। जो चला गया उसीकी बात कह रहे है। चला तो गया, अब वह नया शरीर लेगा। जो चला गया उसके साथ सूक्ष्मशरीर लिपटा था, वह भी न हो, नया शरीर भी न ले, उसमे खाली जीव जीव हो तो इतनी मोटी बात तो आपकी समझमे आ ही जायगी कि वहा फिर भूख, प्यास, सर्दी गर्मी, सम्मान, अपमान आदिकके कोई क्लेश नही है। जब शरीरही नही है तो फिर ये सब बाते

होंगी ही क्यो ? जो केवल जीव है, केवल चैतन्यप्रकाश है, प्रतिभासस्वरूप है, वह पकडा नही जा सकता, चखनेसे चखा नही जा सकता। ऐसा जीव केवल रह जाय तो आप जान गए होंगे कि हजारो झंझट तो मिट ही गए। जहा शरीर न रहा, केवल आत्मा ही आत्मा रह गया वहा कितने आनन्दकी बात है ? लग तो रहा होगा कि हा आनन्द तो उसी स्थिति है। और जब कहा जाय कि यदि इसी स्थितिमे आनन्द है तब तो फिर ऐसा ही बननेका प्रयत्न करो, पुरुषार्थ करो। हा हा जरूर पुरुषार्थ करना चाहिये। तो क्या पुरुषार्थ करना है ? वस्तुका यथार्थ वरूप सीखना है। और उसमे खो जाना है, उसके भीतरमे ध्यानका अभ्यास करे। जब द्रव्य गुणपर्यायके स्वरूपको जानकर परख लिया जाय कि सत्पदार्थ अन्यसे अत्यन्त पृथक है, परस्परमे असकीर्ण है, मिला हुआ नही है, सबका सत्त्व जुदा है, परिजनसे मैं निराला हू, धनवैभवसे मैं जुदा हू, देहसे निराला हू और जो विकल्प विचार उठते है उनसे भी निराला हू। अब जरा ऐसा प्रयोगात्मक माननेके लिए अन्त-पुरुपार्थ तो करें। यहा कुछ कठिनाई लगेगी, पर कठिनाई कुछ नही है।

भावदृष्टिसे सन्मार्गकी सुगमता—बडी बडी किताबोको समझनेके लिए जैसे कुञ्जी मददगार होती है इसी प्रकार धर्मकी इन सब बातोका रस लेनेके लिए कुञ्जी होती है बस वह स्वरूपकिला ध्यानमे आ जाय कि अपने आपमे प्रत्येक पदार्थ ऐसा दृढ मजबूत है कि टससे मस कोई पदार्थ नही होता। कितनेकी निमित्त सन्निधान हो, पर किसी भी निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उपादानमे रंचमात्र भी तो नही है, क्योकि प्रत्येक वस्तुका स्वरूपकिला पूर्ण मजबूत है। जब स्वरूपदृष्टि कर रहे हैं तो आपको ये सब बाते समीचीनरूपसे विदित होती चली जायेगी। आत्माकी भावप्रगतिके लिए निमित्त होनेपर भी निमित्तपर दृष्टि न रखनेका बडा महत्त्व है। यह भी एक बात ध्यानमे रखिये—ध्यान करने वाले पुरुषको ध्यानकी सिद्धिमे सहनन दृढ होना एक निमित्त है। बज्रवृषभनाराच सहनन बिना उत्तम ध्यान नही बन पाता। इसमे कोई सदेहकी बात नही है। लिखा है, है भी ऐसा। लेकिन ऐसा ध्यान करने वाला पुरुष अपने बज्रवृषभनाराचसहननको देखे तो क्या ध्यान करेगा ? तो निर्णयकी जगह निर्णय है, साधनाकी जगह साधना है। जहा निर्णय मे साधना घुसी, साधनामे निर्णय घुसा, बस वही विवाद खडा हो जाता है। जितने भी अपूर्व कार्य हैं, जो परिणमन पहिले न थे अब हो रहे है तो यह तो मानना ही होगा कि इनकी उपपत्तिमे कोई निमित्त होता है। इसे इकार नही किया जा सकता, अन्यथा वे पहिलेसे क्यो न थे ? यह प्रश्न खडा हो जाता है। यदि उत्तरमे और बाते ली जाये कि

स्वजनताके अनुकूल रह जाता हो। प्राय स्थिति ऐसी ही है, फिर वे ही खुश होने वाले लोग कहने लगते है कि इससे तो अच्छा था कि बच्चा होता ही नही। अरे तेरी अपूर्व बात कहाँ गई ? त तो शराब पिये है, कभी कुछ। इस मोहमदिराका पान करके यह मोही जीव अचेत हो गया। जब कभी इस जीवको सही ज्ञान जगे, इसकी मोहनिद्रा भग हो, अपने आत्माके आनन्दस्वरूपका अनुभव हो, तब समझिये कि ऐसा अपूर्व अवसर कभी न पाया था जब कि स्वानुभूति सुधारसका पान करके छका जा रहा है। वह अनुपम आनन्द कभी नष्ट न होगा। उस ही सम्यग्दर्शनके सम्बधमे वर्णन किया जायगा कि वह क्या है, किन-किन साधनोमे होता है, कैसी दृष्टि रखनी चाहिये, कैसे इस वैभवकी उपलब्धि हो ? इस सम्बधमे वर्णन चलेगा।

सम्यक्त्वाविर्भावके कारणोंको जाननेके लिये कारणोंके प्रकारोंकी यथार्थ समझ बनाने की आवश्यकता—जीवको सम्यग्दर्शन किन-किन निमित्तोके सम्पर्कमे होता है ? इसका वर्णन किया जायेगा। उसके पहिले कुछ आवश्यक बाते समझना जरूरी है। पहिली बात तो यह है कि कारणोमे दो प्रकार बताये गए है, एक उपादान कारण और दूसरा निमित्त कारण और जो निमित्त कारणकी बात है वह भी दो प्रकारकी है– एक वास्तविक निमित्त कारण और दूसरा आश्रयभूत कारण, जिसे इन दो शब्दोको रख लीजिए—निमित्तभूत कारण और आश्रयभूत कारण। लेकिन जब इन दोका भेद नही करते तब ही विवाद आ पडता है। आश्रयभूतको भी निमित्तभूतकी तरह मानकर उठने वाले विवादोको बताने लगना और फिर निमित्तभूत को भी आश्रयभूत की तरह व्यर्थ बताने लगना। इन दो कारणोका मतलब यह है कि जैसे मनुष्यने अपनी पुत्र स्त्री आदिक पर राग किया तो काम क्या किया ? राग। तो अब यह बतलाओ कि उस रागके होनेमे निमित्तभूत कारण कौन है और आश्रयभूत कारण कौन है ? निमित्तभूत कारण है कर्मका उदय, रागप्रकृतिका उदय है, उसका निमित्त पाकर राग परिणाम हुआ और आश्रयभूत कारण है स्त्री पुत्रादिक। स्त्री पुत्रादिकका आश्रय करके रागभाव उत्पन्न होता है तो निमित्त कारणोके ये दो प्रकार भलीभाँति समझ लेना चाहिए–एक निमित्तभूत और दूसरा आश्रयभूत। निमित्तभूत कारण तो कर्मका उदय है रागपरिणमनमे और आश्रयभूत कारण घर स्त्री पुत्रादिक बहुतसे होते हैं। इन दोनोमे अन्तर क्या है कि निमित्तभूत कारणका तो नैमित्तिक क्रियाके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध होता है। निमित्तके होने पर ही विभाव हो सकना, कर्मोदयके होने पर ही विभाव हो सकना, कर्मोदयके न होने पर विभाव न हो सकना, यह अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध निमित्तका

नैमित्तिकके साथ है, किन्तु आश्रयभूत कारणका अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध उस कार्यके साथ नही है। जैसे यह तो न कही कहा जा सकता कि स्त्री पुत्रके होने पर ही राग हो सकना और स्त्री पुत्रादिकके न होने पर राग न हो सकना। ऐसी आपको अनेक स्थितियाँ मिलेगी कि स्त्री पुत्रादिकके होने पर भी राग न हो और स्त्री पुत्रादिक नही है तब भी राग कर रहा हो। आश्रयभूत कारणका कार्यके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही हुआ करता है।

आश्रयभूत व निमित्तभूत कारणोंका स्वरूप व अन्तर समझे बिना ही विवादोंकी उपपत्ति—बाह्य कारणोको आश्रयभूत और निमित्तभूत यो दो भागोमे जो न बाँटेगे, उनका ही विवाद उत्पन्न हो सकेगा अथवा विवादकी समाप्ति नही कर सकेंगे। शकाये होने लगती है। यह जीव समवशरणमे अनेक बार गया और सम्यग्दर्शन नही हुआ। तो देखो निमित्त कुछ न कर सका। अरे समवशरण सम्यग्दर्शनका निमित्त है कहा ? वह तो आश्रयभूत है। निमित्त तो है दर्शनमोहका क्षय, उपशम और क्षयोपशम कुछ भी हो तो उसके होने पर सम्यक्त्व होता ही है तो आश्रयभूतके साथ कार्यका जब अन्वय व्यतिरेक नही नजर आता तो यह निर्णय बन जाता कि समस्त निमित्तोकी ऐसी ही बात है कि निमित्त होने पर भी कार्य हो अथवा न हो, यह बात आश्रयभूतके साथ है कि आश्रयभूत पदार्थ होने पर भी कार्य हो अथवा न हो। एक दृष्टान्त दिया जाता है कि कोई नगरकी एक वेश्या गुजर गयी, उसे जलानेके लिए लोग लिए जा रहे थे। उसे देखकर कोई साधुपुरुष यो सोचने लगा कि देखो—इस बेचारीने सुयोगसे कैसा अमूल्य नरभव पाकर अज्ञानतत्वके कारण व्यर्थमे खो दिया, यो उस साधुपुरुषको धर्मध्यान हुआ, कोई कामी पुरुष उसे देखकर यह सोचने लगा कि यह वेश्या तो मेरेसे बहुत परिचित थी। यदि यह कुछ दिन और जीवित रहती तो मैं इससे और मिलता, यो उस कामी पुरुषको रौद्रध्यान हुआ। वहाँ पर रहने वाले स्याल कुत्ते आदि यह सोचने लगे कि इसे ये लोग जलाये नही, यही छोड देवे तो हमारा कुछ दिनोका भोजन हो। यो उन स्याल, कुत्तादिकको दुर्ध्यान हुआ। तो कोई यहा विवाद करे कि देखो यदि वह वेश्याका मृतक शरीर निमित्त होता तो सबका एकसा भाव होता। तो निमित्तने कुछ नही किया। यह शंका उनकी व्यर्थ है, वेश्यामृतदेह उन भावोका निमित्त है कहाँ ? वह तो आश्रयभूत साधन है। निमित्त तो मुनि महाराजके संज्वलन कषायका उदय है और अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यानावरण, प्रत्याख्यानावरणका उपशम क्षयोपशम है, सो उसके अनुसार उनका परिणाम बन रहा है। उस परिणामके समय आश्रयभूत वह वेश्याका मृतक शरीर है। कामीपुरुषके भावका निमित्त क्या है ? उस प्रकारके कषायका उदय और उस उदयमे

उस प्रकारका भाव बन रहा है। उस समय आश्रयभूत है वह वेश्याका मृतक देह। तो आश्रयभूत और निमित्तभूत साधनका अन्तर सब समझ लेना चाहिए। एक बात इस प्रसग मे न भूलनी चाहिए, निमित्तनैमित्तक भावकी कितनी ही चर्चायें हो और होगी ही अन्यथा ये शब्द ही कहाँसे आये ? सम्बन्ध भी है इतने पर भी निमित्तभूत पदार्थका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, कुछ भी अश उपादानमे नही पहुचता। इस कारण यहा दृष्टि रखनेकी बात यह है कि निमित्त सन्निधान पाकर उपादान अपनेमे अपना प्रभाव उत्पन्न कर लेता है, बस यह स्थिति है जगत्मे।

आश्रयभूत, निमित्तभूत, बहिरङ्ग व अन्तरङ्गहेतुका तात्पर्य—इस प्रकरणमे सम्यक्त्वके साधनकी चर्चा चलेगी, उस प्रसगमे हमे क्या-क्या बातें समझकर रखनी है पहिलेसे, उनकी बात कर रहे है। पहिली बात तो यह ध्यानमे रखे कि आश्रयभूत साधन और निमित्तभूत साधनमे अन्तर है। निमित्त कहते किसे है ? इसके विषयमे अध्यात्मसूत्रमे कहा है कि अन्वयव्यतिरेक सम्बध वाला और अत्यन्ताभाव वाला पदार्थ निमित्त कहलाता है। जिसमे कार्य हो रहा है उस पदार्थसे निमित्तभूत कारण अत्यन्त जुदा है याने उपादानमे निमित्तका अभाव है। उपादानमे निमित्तका किसी भी प्रकारसे सद्भाव नही है, किन्तु अन्वयव्यतिरेक सम्बव हो उसे निमित्त कहते है। और आश्रयभूतका अत्यन्ताभाव भी है। उपादानमे और अन्वयव्यतिरेक सम्बध भी नही है, आश्रयभूत और निमित्तभूत साधनमे इतना अन्तर है। तो जब-जब निमित्तकी चर्चा चले तो ये दो बातें स्पष्ट रखनी चाहिये कि ये निमित्तभूत कारण है या आश्रयभूत कारण हैं। दूसरी बात यह जाने कि कारणके वर्णन मे दो बातोका प्रयोग चलता है—अन्तरङ्ग कारण और बहिरङ्ग कारण। अन्तरङ्ग कारण तो उपादानको कहते है और बहिरङ्ग कारण निमित्तको कहते है अन्त अङ्ग है, जिसमे कार्य हो रहा है उसका ही सर्वस्व है, अश है उसे अतरङ्ग कारण कहते हैं। बहिरङ्ग, बाह्यअङ्ग जिसमे कार्य हो रहा है उससे बाहर क्षेत्रमे जो कुछ भी है वह सब बहिरङ्ग कहलाता है। तो अन्तरङ्गहेतु शब्द उपादानके लिए निर्दिष्ट होता है और बहिरङ्गहेतु शब्द निमित्तके लिए निर्दिष्ट होता है। कभी-कभी यह बतानेके लिए कि है तो दोनो ही बहिरङ्ग उपादानके कार्य से भिन्न क्षेत्रमे (प्रदेशोमे) रहने वाले, लेकिन उनमे जिनका अन्वयव्यतिरेक सम्बव हुआ है वह है अन्तरङ्गहेतु और जिनका अन्वयव्यतिरेकसम्बध नही है वह है बहिरङ्गहेतु। यो मुकाबलेतन आश्रयभूतको बहिरङ्गहेतु व निमित्तभूतको अन्तरगहेतु कह दिया जाता है, सो यो उन शब्दोके अर्थ जानने चाहियें।

जीवके विभावकार्यके प्रसङ्गमें आश्रयभूत कारणकी स्थिति—एक मोटी बात और समझिये—जीव और अजीव, इन दो पदार्थोंके सम्बन्धमे जब जीवके कार्यके लिए कारण बताया जाय तो वहा ये दो भेद आया करते है—आश्रयभूत कारण और निमित्तभूत कारण। किन्तु अजीव और अजीवके कार्योंमे परस्पर जब कारणकी बात आयेगी तो दूसरा निमित्त कारण ही होता है, आश्रयभूत कारण नही हुआ करते। जैसे जीवने क्रोध किया तो क्रोध किए जानेमें निमित्त कारण तो है क्रोध प्रकृतिका उदय और आश्रयभूत कारण है वह बाह्य पदार्थ जिसको उपयोगमे रखकर वह क्रोध कर रहा है। जिस पर क्रोध आया वह पदार्थ आश्रयभूत कहलाता है। यहा यह बात कही जा सकती है कि उस पदार्थका आश्रय न करता तो क्रोध यो न बनता अथवा आश्रयभूत कारणके न मिलने पर कभी-कभी प्रकृतिका उदय न रहकर सक्रान्त होकर दूसरे रूपमे फल देने लगता। इतनी तक स्थितियाँ भी आ जाया करती है। तो आश्रयभूत कारण इतना दुर्बल कारण है। पर अजीव पदार्थोंके प्रसगमे किसी भी अजीवकी कुछ क्रियामे दूसरा अजीव कारण पडा तो वह निमित्त कारण ही कहलायेगा, आश्रयभूत न कहलायेगा। उपयोगवान पदार्थके लिए ही आश्रयभूत कारण हुआ करता है। यह उपयोग लगाये किसी पदार्थ पर तो लो आश्रयभूत बन गया। न उपयोग लगाया तो आश्रयभूत बन गया। न उपयोग लगाया तो आश्रयभूत न बन सका, पर अजीवमे यह बात नही है। घडीमे चाबी भर दी तो वह चलती रहती है। हाँ कोई पेच पुर्जा खराब हो जाय बद हो जाय तो बात और है। सो वहाँ सर्वत्र सब ईमानदारीसे काम चलता रहता है। जैसी योग्यता है वैसी योग्यतासे वैसा निमित्त सन्निधान पाकर परिणाम रहा है, वहाँ आश्रयभूत वाली बात नही है। आश्रयभूत कारण वाली बात जीवके विभावकार्यमे ही हुआ करती है। जीवके शुद्ध परिणमनमे भी आश्रयभूत कारणका भेद नही होता। जैसे धर्मादिक द्रव्यो मे कोई आश्रयभूत कारण नही कहलाता यो ही जीवका जो शुद्ध परिणमन है इसमे भी आश्रयभून कारण नही होता। केवल निमित्त कारण होता हैऔर वह है कालद्रव्य।

सम्यक्त्वाविर्भूतिके कारणका निर्देश—कुछ कारणोंकी विधियाँ जानकर अब चले सम्यक्त्वके साधनकी खोजमे। सम्यक्त्वके कारण क्या है, इस सम्बन्धमे श्री कुन्दकुन्दाचार्य देवकी एक प्रसिद्ध गाथा है—सम्मत्तस्स णिमित्त जिणसुत्त तस्स जाणया पुरिसा। अन्तरहेऊ भणिया दसणमोहस्स खयपहुदी॥ इस गाथामे 'खयपहुदी' यह प्रथमान्त शब्द है। जब यह समझेंगे तब इसका अर्थ होगा कि सम्यक्त्वका निमित्त जिनसूत्र और जिनसूत्रके ज्ञायक पुरुष है और अन्तरग हेतु दर्शन मोहनीयके क्षय, क्षयोपशम आदिक है। यदि खयपहुदीको पञ्चम

अर्थमे लिया जाय तो इस गाथाका अर्थ बनेगा—सम्यक्त्वके निमित्त जिनसूत्र हैं और उसके ज्ञायक पुरुष अतरग हेतु है, क्योकि उनके दर्शनमोहनीयका क्षय आदिक होनेसे इन दोनो अर्थोकी विवेचनामे अभी प्रथम अर्थकी विवेचनापर चलें। सम्यग्दर्शनका निमित्त जिनसूत्र है (जरा ध्यानमे लाना) निमित्त कारणकी बात जहाँ कही जाय वहाँ यह विवेक करना कि आश्रयभूत कारण है यह या निमित्तभूत कारण है ? जैसे किसी पुरुषको सम्यग्दर्शन हो रहा हो, उसके लिए ये जिन सूत्र, आगम वचन निमित्त हो रहे हैं, तो ये आश्रयभूत निमित्त कहलायेंगे या निमित्तभूत ? ये आश्रयभूत निमित्त कहलाते हैं, क्योकि जिनसूत्रका सम्यक्त्व की आविर्भूतिके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही है। जिनसूत्र उपदेश सबको हो रहा हो, पर वहाँ सबको सम्यग्दर्शन नही होता। जैसे समवशरणका सम्यक्त्वकी आविर्भूतिके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध नही है सो वह आश्रयभूत है। और भी कारण है—जैसे वेदनाका अनुभव, जातिस्मरण, ऋद्धिदर्शन आदिक कारण है वे भी आश्रयभूत कारण हैं। ऐसा होने पर सम्यक्त्व हो अथवा न भी हो, तो ये सम्यक्त्वके बाह्य निमित्त हैं अर्थात् आश्रयभूत कारण हैं और अन्तरग हेतु कौन है ? प्रथमान्तके अर्थकी बात चल रही है और उस जिन-सूत्रके जानकार पुरुष ज्ञायक पुरुष ये भी बाह्य निमित्त है अर्थात् जो उपदेष्टा पुरुष है, ये उपदेष्टा जिन-जिनको सम्यक्त्व उत्पन्न हो रहा है उससे अलग है, भिन्न है, अत्यन्ताभाव वाले है। अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध यहाँ भी नही है। जिनसूत्रके ज्ञाता, जानकार उपदेश कर रहे हो तो क्या वहा सभी सुनने वाले लोग सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते हैं ? नही, पर यह भी आश्रयभूत कारण है, बाह्य कारण है और अन्तरग कारण क्या है ? दर्शनमोहनीयका क्षय, उपशम, क्षयोपशम आदिक। यहाँ अन्तरग कारणका अर्थ उपादान कारण नही किन्तु निमित्तकारण है और ऐसा निमित्तकारण जो एकक्षेत्रावगाहमे चल रहा हो। इसीलिए इसे अन्त कहा गया है कि आत्मा जहाँ जिन प्रदेशोमे रह रहा है उन प्रदेशोमे ही ये कारण पडे हुए हैं दर्शनमोहके क्षय, उपशम, क्षयोपशम। क्षयादि अवस्थाओंसे युक्त कर्म ये अन्तरग कारण कहे गए हैं जिनका अर्थ यह होगा कि जीवके सम्यक्त्वके उत्पन्न होनेमे उपदेश, आगम, उपदेष्टा ये सब बाह्य साधन हैं। और निमित्त कारण तो दर्शन मोहका उपशम, क्षय क्षयोपशम आदिक है। यह वर्णन है केवल निमित्तका। इसमे बाह्य साधन भी बताया है और अन्त साधन भी बताया गया है।

प्रकृत गाथामें निमित्तकारण व उपादान कारणका संकेत—जब इस गाथामे प्रयुक्त खयपहुदी शब्दका पचमान्त अर्थ करेंगे तब अर्थ होगा यह जिसमे उपादान कारण और

निमित्त कारण दो का विवरण आयगा। सम्यग्दर्शनके निमित्त कारण जिनसूत्र है। है ये आश्रयभूत कारण और जिनसूत्रके ज्ञायक पुरुष अर्थात् जिनको सम्यग्दर्शन होता है, जो मुमुक्षाको लिए हुए हैं, जिनको मुक्तिकी इच्छा हुई है ऐसे जिनसूत्रके ज्ञायक पुरुष वे अन्तरंग कारण अर्थात् उपादान कारण हैं, याने जो जायेगे, समझेंगे सूत्रके भावको ऐसे पुरुष ही तो सम्यक्त्व उत्पन्न करते है। तो क्यो हैं वे उपादान कारण कि दर्शन मोहनीयका उपशम, क्षय, क्षयोपशम इनके ही तो होता है, इस कारणसे ये उपादान कारण कहलाते है। यहाँ अन्तरहेऊ अर्थ उपादान कारण बना और प्रथमान्त अर्थमे अन्तरगहेतुका अर्थ वास्तविक निमित्त कारण है जिसका कि अन्वयव्यतिरेक सम्बंध है और साथ ही उस ही एक क्षेत्रमे पडा हुआ है वह अंतरग हेतु कहलाता है।

प्रकृत भागवत गाथासे उपलभ्य प्रेरणा—हमे इस गाथासे प्रेरणा क्या मिलती है कि हम किस दिशामें प्रगति करे, तो उससे यह प्रेरणा मिली कि देखिये— ये सूत्र उपदेश, तत्त्वज्ञान, उपदेष्टाओका संग, सत्संग ये सब सम्यक्त्वकी आविर्भूतिके साधन है। इनकी उपेक्षा न करे, इनमें रहना योग्य है और जो अन्तरहेतु है वे तो हमारे बशकी बात नही है। दर्शनमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम हाथ पैरके द्वारा साध्य बात नही है। उसका उपाय तो तत्त्वज्ञान है, विचार है। तत्त्वज्ञान बनाये, उसके प्रतापसे क्षय क्षयोपशम आदिक की व्यवस्था बनने लगेगी। तो इतना पौरुष होना चाहिए तत्त्वज्ञानके लिए। हम महत्त्व दे जीवनमे तो अन्तर्ज्ञानका महत्त्व दे। मुझे अपने आपके बारेमे दृष्टि रहे, स्वयके स्वरूपकी समझ बने, मैं अपने आपको दृष्टिमे लूँ, अपनी खबर रखूँ और अधिक नही तो कमसे कम इतना तो जानता रहू कि मैं सर्वत्र अकेला हू। इस रूपमें ही परिचय अधिक बने। सुख दुःख आदिक समस्त परिणमनोमे मैं अकेला ही रहता हूँ। सब कुछ मुझ अकेलेको ही करना होता है। मेरे सब काम मेरे द्वारा मेरेसे मेरेमे मेरे लिए ही हुआ करते है। मेरा किसी दूसरेसे कुछ भी सम्बंध नही है। ऐसे अकेलेपनकी बात ध्यानमें रहे तो वहाँ भी बहुतसा मार्ग मिल सकता है और शान्ति प्राप्त हो सकती है। यह एक बहुत बडी भूल है, बहुत बडी विडम्बना है कि जो यह चित्तमे लिए रहते हैं कि मैं अकेला कहाँ हू, मैं तो सपत्नीक हू, मैं तो पुत्रो वाला हू, मेरी तो इतनी जबरदस्त पार्टी है, मैं तो बहुत पुष्ट हू, शरणसहित हू, मेरेमे अकेलापन कहाँ ? इस प्रकारकी वृत्ति जो चित्तमे रहती है, यह एक इतनी बड़ी विपत्ति है कि इसमे किसी समय बहुत बडा धोखा खाया जा सकता है। सो भैया! और अधिक नही तो अपने आपके बारेमे अकेलेपनकी बात किसी न किसी रूपसे बनाये तो रहे। प्रत्येक

जीव, प्रत्येक पदार्थ अकेला है, अद्वैत है, प्रत्येक सत् अपने आपमे अद्वैत है। उसमे दूसरेका प्रवेश नही है। इस तरहसे अपने आपका तो कुछ ध्यान बनायें। जो कुछ होगा वह मेरे अकेलेसे होगा, अकेलेमे होगा, मेरा साथी कोई दूसरा नही है, इस तरह अपने अकेलेपनकी बात लाना शुरू करे तो यही कहलायेगा प्रारम्भमे समस्त तत्त्वज्ञान इस मर्मको उपयुक्त करने का। यहाँसे प्रारम्भ कीजिए। अपने आपको सर्वस्थितियोमे अकेला मान लीजिए।

वस्तुका स्वरूप—अपने आपका सहज केवल विशुद्ध स्वरूपका परिचय पा लेना सम्यक्त्व कहलाता है। आत्मस्वरूपका सहजस्वभाव क्या है? यह समझनेके लिए पदार्थमात्र के स्वरूपकी जानकारी पहिले कर लेनी चाहिए। पदार्थ अपने सत्त्वमात्र है। सभी पदार्थों की यही स्थिति है। प्रत्येक पदार्थ स्वत सिद्ध है। किसी भी पदार्थका सत्त्व किसी अन्यकी कृपासे नही होता है। पदार्थ स्वय सत् है अतएव स्वय ही, उत्पादव्ययध्रौव्य स्वरूप है। पदार्थमे उत्पादव्यय होना भी किसी अन्यकी कृपासे नही है। यह पदार्थमे स्वरूप ही पडा हुआ है कि वह निरन्तर उत्पादव्यय करता रहे। उत्पादव्यय भी उधारकी चीज नही। तव पदाथकी क्या स्थिति हुई? पदार्थ प्रतिसमय नवीन अवस्थामे आता है, पुरानी अवस्थामे विलीन होता है और ऐसा होता ही रहता है, अनन्तकाल तक होता है और ऐसा होता ही रहता है, अनन्तकाल तक होता ही रहेगा। यह है पदार्थकी निजकी दुनिया। अपने आपका भी यही स्वरूप है। मैं हू और उत्पादव्ययध्रौव्य प्रकृति वाला हू, प्रति समय मुझमे उत्पाद-व्यय होता रहता है और यह उत्पादव्यय अनन्तकाल तक होता रहेगा क्योकि पदार्थ स्वत-सिद्ध है, स्वत सत् है, और सभी पदार्थ अपने सहायपर हैं किसी दूसरेके सहायपर नही।

परिणमनका निर्णय और अपने उद्देश्यका निर्णय— यह एक निर्णयकी बात है कि पदार्थमे जब जो विभाव होता है वह विभाव होता है पदार्थोमे पदार्थसे पदार्थकी परिणति द्वारा, किन्तु होता है वह किसी बाह्यनिमित्तके सन्निधानमे, अन्य प्रकार यो हो नही सकता था, लेकिन पदार्थ इस बातपर तुला नही है कि मैं ऐसा ही बनू। उसका सहज रूप है उत्पादव्यय करना, किन्तु विभावपरिणतिमे योग्यतानुसार व सहज निमित्त सन्निधान जैसा हो, उस रूप परिणमता है। ये सब निर्णय करनेके बाद जब अपने आपके कल्याणके साधनो का प्रश्न आता है कि हमको अपनी साधनाके लिए क्या करना चाहिए? वहाँ केवल एक ही उत्तर है, एक ही आन्दोलन है कि अपने सहज स्वभावकी दृष्टि करे। यह जीव अनादिकाल से रागादिकसे दूषित है, इसमे बडे विकल्पोंके सस्कार पडे है। ऐसा कुटेब हटना बडा कठिन हो रहा है। कुछ तत्त्वज्ञान भी पा लिया, समझ लिया। इतनेपर भी जैसा इनका सस्कार

है उसका कुछ न कुछ रूप उखड आता है। ऐसी स्थितिमे हमे अपना व्यवहार किस प्रकार का बनाना चाहिए कि जिसमे ऐसी पात्रता रहे कि हम स्वभावदृष्टि कर सकनेके लायक बने रहे। बस इसीको कहेगे व्यवहारधर्म। व्यवहारधर्म उद्देश्य नही होता, व्यवहारधर्म परिस्थिति मे करनेकी चीज होती है। उद्देश्य है सहज स्वभावका अनुभव करना।

निमित्तकी दृष्टि न करके उद्दिष्ट तत्त्वकी दृष्टिकी साधनामें आवश्यकता—सहजस्वभावका अनुभव कैसे बने? यह अनुभूति ज्ञानसाध्य है, और साथ ही किस ज्ञान द्वारा साध्य है, इसका विश्लेषण किया जाय तो उसमे यह बात आ ही जायगी कि चारित्र बिना यह बात बन न सकेगी। हम अपने आपके मनको सयत न रखे, इधर उधरके विकल्प बनाये रहे तो हम उस दृष्टिको कैसे कर सकेगे? उसके लिए कितना अन्त सयम चाहिए, कषायोपर कितनी विजय चाहिए, यह वही पुरुष जान सकता है जो स्वभावके अनुभवके लिए तुल चुका है। इस साधनाके पथमे केवल एक ही प्रोगाम है। बस स्वभावदर्शन करे, उपयोगमे अपने अन्त तत्त्वको बिठलावे, बस यह एक दृष्टि रहती है। यद्यपि इस दृष्टिको हम कर रहे है मनुष्यभवमे। कही कीडा मकौडा होते तो इस दृष्टिके करनेके पात्र थे क्या? न थे। तब कह देगे कि निमित्त है मनुष्यभव आज हमारी स्वभावानुभूतिके लिए। परतु मैं मनुष्य हू और यह मनुष्यभव स्वानुभवका कारण है। हम तो कल्याण कर सकते है तो यो दृष्टिको बैठाल दें तो साधनाकी बात बन सकेगी क्या? साधनाके पथमे केवल एक निज सहज अतस्तत्त्वकी दृष्टि चाहिए। उसके लिए ये सब बाते चाहिएँ।

बिल्कुल असंयत चित्तमें स्वभावदर्शनकी पात्रताकी कठिनाई—अब जरा एक मोटी-सी ही बात समझ लीजिये—जो अनेक बार (बीसो बार) खाने पीने वाले लोग है, जो भक्ष्य अभक्ष्यका कुछ भी विचार नही करते, अब आप सोचिये कि उनकी बुद्धि कितनी जगह फैल गई, कहाँ रम गई? तो वहाँ ऐसे स्वभावदर्शनकी पात्रता होगी क्या? तभी तो बताया है कि अपनी-अपनी परिस्थितिके अनुकूल कुछ सयमपनेसे रहे। आप आदत बना लो—एक बार, दो बार, चार बार आहार लेना, इतनी-इतनी चीजे ही खाना है, अन्य चीजोका बिकल्प नही करना है। जहाँ इतना ही साहस नही हो पा रहा कि जो अभक्ष्य पदार्थ है, साक्षात् माँस अडा आदि तो प्रकट अभक्ष्य कहे ही है। मदिरा आदिके व्यसनमे रहने वाले जीवोको धर्मसाधनकी दृष्टि बनेगी कहाँसे? गोभीका फूल तो एक माँस का ही रूप है। माँससे कम चीज नही है, जहाँ कितने ही कीडे भरे हुए है, कोई गीला रुमाल उस गोभीके फूलके ऊपर रख दिया जाय तो उसपर कीडे चढ आते है। हमने ऐसा

कराके देखा भी है। तो क्या घरमे गोभीका फूल रखनेके काबिल है ? चौकेमे अगर गोभी का फूल आ गया तो समझ लो वह चौका अपवित्र हो गया, मरघट बन गया। तो जो लोग गोभीके फूलका भक्षण करते है उनमे धर्मकी आशा ही क्या रखी जा सकती है ? अगर कोई कहे कि भैया गोभीका फूल छोड दो तो छोडनेका चित्त नही चाहिता। अब आप सोचिये कि गोभीका फूल खाने वाले, उसके त्यागकी हिम्मत न करने वाले लोग कितना धर्मसे पराङ्मुख हैं ? ऐसी अनेक बाते है, जो हैं तो छोटी-छोटी बातें, लेकिन उनका फंसाव वहुत बडा है। तो हमे अपना व्यवहार ठीक रखना है और इस दुर्लभ मानवजीवनको सफल करना है, इस नरजीवनमे कोई अपूर्वलाभ लूटना है ऐसी बात चित्तमे अवश्य आनी चाहिए, बढे चलो धर्मसाधनाके पथपर, उसमे कितनी ही बाधाये आयें, पर अपनेमे इतनी मजबूती रखें, इतना साहस रखें कि धर्मपथसे विचलित न हो। तो एक इस दृष्टिसे जो चलता है उसे सम्यक्त्व-लाभ होता है, उसकी यहाँ कथा चल रही है। अभी तो अंत साधनाकी बात बतायी, अब जरा बाह्यसाधनाकी बात कह रहे है।

सम्यक्त्वलाभके लिये जिनसूत्रका उपकार—देखिये सम्यक्त्वका लाभ होता है तो वहाँ कैसे क्या-क्या निमित्त होते है ? प्रधान निमित्त है जिनसूत्र। जिनसूत्रका अर्थ अक्षर नही, कागज नही, और केवल एक ऊपरी अर्थ नही किन्तु भाव हैं जिनसूत्र। उसका मर्मज्ञान समझ मे आये ऐसा बोध हो। यह इसका खास कारण है। जिनसूत्रसे कितना प्रेम था श्रीमद्राज-चन्द्रजीको ? उनकी एक घटना बताती है कि जब उनको किसीने समयसारका एक ग्रन्थ भेंट किया, तो उसके एक दो श्लोक बाचकर वे इतना गद्गद हो गए कि मानो बहुत बडी विभूति पा ली हो। उन श्लोकोको पढकर उन्हे एक अनुपम ज्ञानप्रकाश जगा। जब उस ग्रन्थदातार पर दृष्टि गई तो दूकानपर रखे हुए बहुतसे रत्न जवाहरात मुट्ठीमे भरकर उसे दे डाले ? अब वहा क्या हिसाब लगाया जाय कि कितना धन दे डाला ? अगर कोई उस लागतका हिसाब लगाये तो कहते हैं कि अरे वाह रे वाह, हे विकल्प करने वाले पुरुष ! तू करता रह विकल्प, पर तू अपने अंत मर्मकी बात पानेका अभी पात्र नही है, जिनसूत्रका आदर सम्मान भक्ति कितनी होनी चाहिए, इस बातको दूसरा क्या जाने ? जिनका होनहार योग्य है, जो इस पथमे लगते है उनको ही महिमा विदित होती है कि इस जिनसूत्रका हमपर कितना बडा उपकार है। भले हीं पढ जाते हैं विनतियोमे कि "जो नहि होते प्रकाशन हारी, तो किह भाति पदारथ पाति, कहा लहते रहते अविचारी" अरे यदि यह जिनागम न होता, वस्तुस्व-रूपको बताने वाला यह शास्त्र न होता और इनका सग व इनका बोध न होता तो हम

हम आपको काम बहुत पडा है करनेके लिए। शरीरसे हम सदाके लिए विदा हो जायें। मैं केवल मैं ही रह जाऊँ, काम यह करना है। जैसे कोई बडा व्यापार करनेको कोई सोचता है तो वह सोच लेता है कि चाहे बीसो वर्ष बाद इसका लाभ दीखे, पर हमे तो इसे करके रहना है, ऐसे ही सोच लो कि हमे तो एक आत्मकल्याणका कार्य करना है, चाहे सफलता पानेमे कई भव लग जाये। किसी भी भाति मैं शरीरसे सदाके लिए बिदा हो जाऊँ।

शरीरसे प्रविमुक्त होनेके उद्देश्यमें विचार—यह नाक, आँख, कान आदिककी सूरत अगर ऐसी मिल गई जिसकी कि फोटो खिंचवाते तो उसमे तेरा धरा क्या है ? जिस शरीर को देखकर तू इतराता है, जिसे तू अपना समझता है, जिसके पीछे अनेक प्रकारकी परेशानियाँ सहता है, उस शरीरके अन्दर है क्या चीज ? खून, मास, मज्जा, मल, मूत्र आदिक अपवित्र वस्तुवे ही तो इसके अन्दर भरी हुई है। अरे इतना अपवित्र देह, यही तेरा सर्वस्व है क्या ? अरे तू इन बातोको छोड, अपने आपमे स्वभावत अत प्रकाशमान जो शुद्ध चैतन्यस्वरूप है उसको निरख। जिसका पहिचाननहारा यहाँ दूसरा कोई नही है। तू तो खुदमे खुदको पहिचानता हुआ खुद अपने आपमे आराम पा। बाहरसे तुझे कुछ न मिलेगा। ऐसे शरीरसे सदाके लिए हम अलग रहे, अलग हो जाये, ऐसी स्थिति पाना सरल भी है और कठिन भी है। कठिन तो दिख ही रहा। पर इस कठिन बातको पानेके लिए बडे-बडे त्याग और बलिदान चाहिये। यदि आज उपसर्ग है, शरीर रोगी है, उपद्रवी है, तो वहाँ पर भी भेदविज्ञानकी ज्योति जगायी जाय। अपनी उस धुनको मत छोडो, धीरता मत खोओ। कैसी भी परिस्थितिया आये उनमे दिल मत लुभावो। अमुक आदमी तो धनिक बन गया, हम कुछ भी नही है। हमारे पास तो ब त कम धन है। अरे यह क्या हिसाब लगाते ? अगर वह कुछ धनिक हो गया तो उससे उसके आत्माको लाभ क्या ? जो भी उसके पास धन है वह तो दूसरोके भोगनेके लिए है। कोई किसी भाँति भोगे, कुछ भी करे। मान लो आपके पास धन कम है तो उससे आपके आत्मामे कुछ कमी हो गयी क्या ? आत्मा तो अपने आपमे परिपूर्ण है। वह अधूरा नही है।

आत्माकी शाश्वत परिपूर्णता-आत्माके अधूरेपनकी बात तो दूर रही, जिस समय जो पर्याय होती है वह पर्याय उस एक समयमे पूरी है, अधूरी नही है। लोग तो कल्पनामे कहा करते है कि यह काम अधूरा पडा है, पर अधूरा कुछ होता ही नही दुनियामे। तुमने सोच लिया कि ५ खण्डका मकान बनाना है, अभी इतना ही काम हो पाया है, केवल तीन

ही खण्ड बन पाये है, अभी तो यह अधूरा काम है, पर काम कोई अधूरा नही होता। उस मकानके बननेमे जो ईंट, पत्थर, लोहा आदि पडे है वे सब अपने आपमे पूरे है। वहाँ अधूरा कुछ नही है, हाँ आपकी कल्पनामे अधूरा है। ससारमे जीवोके रागपरिणति होती है और यह उपयोग इतना निर्बल है कि अन्तर्मुहूर्तमे उसका रस ले पाता है। जब अन्तर्मुहूर्त राग प्रवाह चलता है तब हम उसका रस लेते है तो एक समयमे जो रागपरिणति होती है क्या वह अधूरी है ? वह तो परिपूर्ण है। परिणति तो अपने प्रत्येक समयमे पूरी है, अधूरी हो नही सकती। यहा क्या विचार करते ? मैं अपने आपमे परिपूर्ण हू, अखण्ड हू, एक चित्स्वरूप मात्र हू, उस पर दृष्टि दे और इस लौकिक परिचयको भट्टीमे झोके, जिसके कारण अनेक विकल्प उत्पन्न होते है।

लौकिक परिचयका मिथ्यापन—भैया ! परिचय ही यहाँ क्या है ? परिचय है कहाँ ? कौन जानता है मुझे ? लोग जिसे जानते है, जिसे कहते है वह तो एक पुद्गल है। अथवा इसको भी नही जानते। लोग तो अपने आपमे परिणमिन होने वाले ज्ञानपरिणमनको जानते है निश्चयसे। जानने तकका भी सम्बन्ध परपदार्थसे नही है, वे परपदार्थको जानते नही। किन्तु सभी जीव अपने आपके प्रदेशमे रहकर अपने आपके ज्ञानगुणमे जो परिणमन होता है उस परिणमनके रूपमे ज्ञेयाकारके ढगसे जानन किया करते है। तब परखा ना कि जाना किसको ? और सम्बध इतने बनाये जा रहे है विचित्र-विचित्र तो इसपर हसने वाला कौन है ? जहा मोही-मोही ही भरे पडे हो और मोहकी गल्ती की जा रही हो तो उस गल्ती पर हास्य करने वाला कौन होगा ? यहाँ हसी तो आती होगी उनपर जो कुछ मोहसे अलग होना चाहते है और एक मोह व्यवहारसे कुछ परे बन रहे हैं। मजाक तो उनकी चलेगी इस मोही जगतमे, लेकिन यह मजाक मिथ्या है, क्योकि मोहियोकी बात है। सब परिपूर्ण है, मैं भी परिपूर्ण हू। अपने आपको कभी यह न सोचें कि मैं इस समय असहाय हू, अशरण हू, कोई मेरा शरण नही। मैं सत् हू और सत्के नाते स्वय स्वसहाय हू, मैं कभी नष्ट हो नही सकता। यदि मैं नष्ट हो जाऊँ तब तो बडी ही अच्छी बात है। यदि मैं ही न रहा तो फिर दुःख भोगने की बात ही कहासे होगी ? पर होता कहा है ऐसा ?

आत्मनिर्णय द्वारा कल्याणपथमें प्रगति करनेकी प्रेरणा—भैया ! अपने आपका निर्णय करना है कि मैं क्या हू ? मैं हू सबसे अपरिचित केवल चित्स्वभावमात्र, प्रतिभासमात्र एक अखण्ड पदार्थ। जो स्वय उत्पादव्ययध्रौव्यस्वरूप है, जिसकी दुनिया बस वही-वही है, जिससे बाहर कुछ नही है। उसमे जो कुछ है वह कभी अलग हो नही सकता। उसमे जो

कुछ नही है वह कभी आ नही सकता। ऐसे अपने स्वत सिद्ध स्वसहाय चैतन्यस्वरूपमे अपने को निरखना है और ऐसा निरखनेकी प्रकृति बनाना है। यही दृष्टि रखे। यही करना है साधनाके पथमे। यहा दुनियामे किसी भी प्रकार हमारा कोई मददगार नही है। उलाहना देना व्यर्थ है, सब अपने-अपने सत्त्वके भर है। तो सत्त्वके अनुरूप अपना काम कर रहे हैं। यहाँ कोई खुदगर्ज नही है। हम ऐसा मनमे मत सोचें कि सारे जीव खुदगर्ज है। यहाँ कोई खुदगर्ज नही और वस्तुत हम आप सभी खुदगर्ज हैं। सभी पदार्थ अपने सत्त्वके लिए परिणाम रहे है, न परिणमे तो सत्त्व न रहेगा। यही तत्त्व है, ऐसा जानकर परसे ज्यो-ज्यो उपेक्षा जगेगी त्यो-त्यो अपने आपकी ओर उपयोग चलेगा और फल यह होगा कि उस सहज स्वभावकी अनुभूति होगी। इस ही उपायसे जीवका कल्याण होता है।

सम्यक्त्वके निमित्त—सम्यग्दर्शनके आश्रयभूत साधन और निमित्तभूत साधनके सम्बंधमे कुछ विचार किए जा रहे है। आश्रयभूत साधन तो जिनसूत्र है। यो साधन अनेक होते हैं, पर उन बाह्य साधनोमे जिनसूत्र प्रमुख साधन है, यहाँ जिनसूत्रका अर्थ है कि जिन पुरुषोने रागद्वेषपर विजय प्राप्त किया है और उसके फलमे पूर्णज्ञान प्राप्त किया हैं ऐसे वीतराग सर्वज्ञदेवकी दिव्यध्वनि की परम्परासे जो कुछ रचना है, आगम है वह जिनसूत्र कहलाता है। जिनसूत्रकी मुख्य पहिचान क्या है कि जहाँ स्याद्वादकी तो मुद्रा लगी हो और वीतरागताके मार्गपर चलनेकी जिसमे प्रेरणा बसी हो, ऐसा यह जिनसूत्र सम्यक्त्वाविर्भूति का आश्रयभूत साधन है। सम्यक्त्वका निमित्तभूत कारण क्या है? दर्शन मोहनीयकर्मका उपशम क्षय क्षयोपशम। इस सम्बंधमे इतना और जानना है कि दर्शनमोहका क्षय क्षयोशम बताया तो यहाँ एक मुख्य प्रणालीसे बताया, पर होता है सात प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशम। अनन्तानुबधी क्रोध, मान, माया, लोभ और मिथ्यात्व, सम्यक्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति—ये ७ प्रकृतियाँ सम्यक्त्वकी घातक हैं। अनन्तानुबंधीकी ४ प्रकृतियाँ है सो वे चारित्रकी भी घातक है और सम्यक्त्वकी भी घातक है; अतएव चारित्रमोहनीयके भेदमे कहा है, पर अनन्तानुबधीके रहते हुए मिथ्यात्व हट ही नही सकता, अत इन प्रकृतियोका उपशम, क्षय, क्षयोपशमका होना यह सम्यग्दर्शनका निमित्त कारण है।

आत्मभाव और कर्म दोनों परस्पर निमित्तत्वका अवसर—निमित्त कारणकी बात दोनो ओरसे है। कर्मोमे कोई अवस्था बनी उसमे निमित्त कारण जीवका भाव है, और जीवके भाव की कोई अपूर्व अवस्था आये उसका कारण किसी अवस्थासे युक्त कर्म है। पर पर दोनोका निमित्तनैमित्तिक भाव है, केवल कर्मकी ओरसे ही न समझना कि जीवके भाव बननेमे कर्म

निमित्त हैं, कर्मकी दशा भी कुछसे कुछ बननेमे जीवका भाव निमित्त है। निमित्तनैमित्तिकमे होता क्या है कि निमित्त कोई परिणति उपादानमे नही देता, पर उसका सन्निधान रहता है और उपादानमे ऐसी योग्यता होती है कि योग्य निमित्तसन्निधान पाकर वह अपनेमे अपने परिणमनसे अपना प्रभाव बना लेता है। प्रभाव कहनेकी रूढि निमित्तके साथ पड गई है पर प्रभाव नाम है किसका ? प्रकर्षरूपसे होनेका नाम है प्रभाव। अब जहाँ जो बात हो रही है वह तो प्रभाव है और उसका ही प्रभाव है, पर यह प्रभाव जिस निमित्त सन्निधानको पाकर हुआ है वह उसका प्रभाव है, यो व्यवहारसे कहा जाता है। जैसे दर्पणमे हाथकी छाया पडी, असलमे वह हाथकी छाया नही है, पर जल्दी-जल्दी इन्ही शब्दोमे कह दिया जाता है ताकि उसका जल्दी बोध हो जाय। हाथके सन्निधानका निमित्त पाया और दर्पण स्वय छायारूप परिणम गया। अब छायारूप परिणमन हुआ उसका नाम है प्रभाव। छायारूप परिणमन हुआ वह किसका है ? दर्पणमे हुआ, दर्पणका है, पर यह भी प्रकट स्पष्ट है कि हाथका निमित्तपाकर यह हुआ है। न होता उस प्रकारका निमित्त सन्निधान तो उस प्रकारका परिणमन वहा नही होता। यद्यपि एक दृष्टिसे देखा तो निमित्त दिखता ही नही। पदार्थ है और वह तीनो कालमे रहने वाला है। पर अवस्था बिना वह पदार्थ रह सकेगा क्या ? तो पदार्थमे तीन कालकी अवस्थाये पदार्थमे पदार्थकी योग्यतासे परिणमित होते रहते हैं। बस यो ही निरखते जाइये। एक बात दिखेगी, एक दृष्टिमे यह बात आती है, पर निर्णय की दिशामे जब चलते है तो सर्वतोमुखीसे निर्णय किया जा सकेगा। तो एक दृष्टिमे यह भी बात आयी कि जितने भी विभाव हुए अथवा अपूर्व काम हुए वे किसी योग्य निमित्त सन्निधानको पाकर हुए है, अन्यथा न हो सकते है अन्यथा न हो सकते थे। ऐसा परस्परमे जीवके भावमे और कर्मकी दशामे निमित्तनैमित्तक सम्बध है। तो जीव तत्त्वज्ञान करे, चिन्तन करे, कुछ मदकषाय होने से इससे आगे बढे तो उसकी ये बातें ही सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंमे कुछ थोडा बहुत अदल-बदल कर सकनेकी पात्रता आये, इसमे कारण बनता है और जिस समय उपशम क्षय क्षयोपशम होता है वह कारण बनता है सम्यक्त्वके आविर्भाव का। जिस जीवने अब तक कभी भी सम्यक्त्व नहीं पाया, प्रथम ही बार उसके सम्यक्त्व जगता है तो उसके आविर्भावमे इन ७ प्रकृतियोका उपशम निमित्त होता है।

सम्यक्त्वाविर्भावमें करणलब्धिकी प्रयोजकता—अनादिमिथ्यादृष्टि जीवके सम्क्यत्व हो तो उपशम सम्यक्त्व हो पाता है और उपशम सम्यक्त्वमे भी प्रथमोपशम सम्यक्त्व। प्रथमोपशम सम्यक्त्वका यह अर्थ नही कि जीवको सबसे पहिले जो उपशम सम्यक्त्व जगा

उसका नाम है प्रथमोपशम सम्यक्त्व। उसका अर्थ यह है कि मिथ्यात्वके बाद जो उपशम सम्यक्त्व हुआ उसका नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व है। किसी जीवको प्रथमोपशम सम्यक्त्व हो गया था। फिर पल्यत्य सागरो परिमाण समय व्यतीत हो गया मिथ्यात्वमे। अब फिर जो उपशम सम्यक्त्व होगा उसका भी नाम प्रथमोपशम सम्यक्त्व होगा। द्वितीयोपशमसम्यक्त्व क्या है ? उसका यह अर्थ नही है कि दूसरी बार उपशम सम्यक्त्व हो सो द्वितीयोपशम सम्यक्त्व। क्षयोपशमसम्यक्त्वके बाद जो सम्यक्त्व हो सो द्वितीयोपशमसम्यक्त्व है। प्रथमोपशम सम्यक्त्व व द्वितीयोपशम सम्यक्त्वका लक्षण है कि मिथ्यात्व अवस्थाके बाद जो उपशम सम्यक्त्व होता है उसका नाम है प्रथमोपशम सम्यक्त्व और क्षायोपशमिक सम्यक्त्वके बाद जो उपशमसम्यक्त्व हो उसका नाम है द्वितीयोपशमसम्यक्त्व। जीवको क्षयोपशमलब्धि विशुद्धिलब्धि प्राप्त होने के बाद देशनालब्धि प्राप्त हुई याने उपदेशका अवधारण करनेका सामर्थ्य जगा, इसके बाद होती है प्रायोग्यलब्धि, जिससे जीवकी अनेक कर्मप्रकृतियाँ हीन स्थितिकी होती है। हीन स्थितिके बध होने लगते है और अनेक प्रकृतियोके बध रुक जाते हैं। इतने विशेष काम अभव्य जीव तकके हो जाया करते है। पर करणलब्धि अभव्य के प्राप्त नही होती। करणलब्धिमे लब्धि तीन प्रकारकी है—अध करण, अपूर्वकरण और अनिवृत्तिकरण। गुणस्थानोके नामोमे आठवें व नवमे गुण स्था के नाम आये है अपूर्वकरण व अनिवृत्तिकरण। यहा अध करण है सातिशय अप्रमत्तविरत नामके सातवे गुणस्थानमे। सो ये करण है चारित्रको प्राप्त करनेके लिए। करण लब्धि केवल ८वे ९वे गुणस्थानकी बात हो सो नही, किन्तु ये तीन प्रकारके परिणाम होते है, सम्यक्त्व हो तब होते है, देशसंयम हो तब होते है। इतना अन्तर है कि देशसयम होनेके लिए दो प्रकार होगे अध करण और अपूर्वकरण, अनिवृत्तिकरण नही होता। थोडा इसका स्वरूप बताये तो यह भी कारण मालूम होता जायेगा कि देशसयमके, महाव्रतके, उत्पन्न होने मे ३ करण क्यो नही हुआ करते, अध.करण और अपूर्वकरण—ये दो ही क्यो होते है ?

तीन करणोंका संक्षिप्त निर्देश—अनन्तानुबंधीके विसयोजनमे, दर्शनमोहनीयके क्षयमे अथवा उपशममे ३ करण हुआ करते है। यह बात लक्षणके जाननेसे विदित हो जायेगी। अध करण परिणाम ऐसा परिणाम कहलाता है कि जिसकी साधनाके समयमे ऊपरके होने वाले साधकके परिणाम नीचे के होने वाले साधकके साथ मिल सकते है। कल्पना करो—एक पुरुषको अध.करणमे चढे हुए ६ समय हो गए है और एक पुरुषको अध करणमे आये हुए ३ समय हुए है—कहो ऐसा हो सकता है कि अध.करणके तीन समय वालेका परिणाम

उस छठे समयके बराबर हो जाय । तो ऐसा जहां उच्च समयके परिणामकी समानता नीचे भी हो सकती हो, उसे कहते है अध करण परिणाम । किसी एक कामकी तैयारीके लिए जब कोई चलता है तो काममे जहा समता आती है, पूर्ण तैयारी होती है उसके बीच ३ स्थितियां हो जाती हैं । जैसे जब कभी बच्चे लोगो को (पाठशालाके बालकोंमें) दौड लगाने का व्यायाम कराया जाता है तो १, २, ३ बोलते है । जब १ कहा तो सभी बालक एक समान तैयार न मिलेगे, कोई बालक पीछे होगा कोई आगे । जब २ कहा गया तब भी सब बालक समान तैयार न मिलेंगे, लेकिन जब ३ कहा गया तो सभी बालक एक समान तैयारी मे मिलेंगे । और भी देखिये–सिपाहियोको जब उनका कमाण्डर बुलाता है तो उसकी पहिली की तैयारीमे विषमता रहती है । कोई सिपाही बैठा है, कोई खडा है । दूसरी तैयारीमें कुछ समता हो जाती है, और तीसरी तैयारीमे सभी सिपाही ठीक लेफ्ट राइट सहित एक समान एक ढगसे हो जाते है । तो यो ही समझ लीजिए कि एक कोई काम करना है, उपशम है तो उससे पहिले ये ३ प्रकारकी तैयारिया की जाती है । अध करणमें समयभेदसे विषमता है, अपूर्वकरणमे एक समयके साधकोमे विषमता है और अनिवृत्तिकरणमे एक समयके साधको की पूर्ण समता है । यहा पूर्ण साधना आ जाया करती है । तो बताया था कि जब देशविरत होता है तो वहा इसको अनिवृत्तिकरण नही होता । अनिवृत्तिकरण होनेमे जो बात बनती है वह सब एक समान होगी, पर देशसयमकी बात एक समान कहा होती ? हा, दर्शनमोहका उपशम हो, अनन्तानुबंधीका विसयोजन हो, चारित्रमोहका क्षय हो, चारित्रमोहका उपशम हो ऐसे कार्य ये सब एक समान होते है । वहां ३ करण होते है । तो जीवको जब प्रथम बार सम्यक्त्व लाभ होता है तो उसके ७ प्रकृतियोका उपशम होता है, प्रथमोपशमसम्यक्त्व तब हुआ करता है ।

सम्यक्त्वाविर्भूतिके प्रसङ्गमें प्रकृतियोंको विसंयोजन व उपशम–अनन्तानुबंधीकी चार प्रकृतियोको सबसे पहिले विसंयोजन होगा, फिर उपशम होगा, फिर दर्शन मोहका उपशम होगा । इसका मतलब क्या ? उपशमका जब समय आयेगा । उस समयमे उस स्थितिका उदय आ सकने योग्य स्थिति वाला अनन्तानुबंधी रहेगा ही नहीं । इसका मैदान साफ रहेगा इसके लिए कल्पना करो—जैसे कोई वकील है और वह धर्मका बडा अनुरागी है, उसकी पेशी प्रत्येक माहमे प्राय प्रतिदिन लगती है । अब आषाढके दिनोंमे उसने सोचा कि भादोकी दशलाक्षणीमे हमे किसीकी पेशीमें नही जाना है; हमे तो धर्म लिन करना है । तो वह वकील क्या करेगा कि दशलाक्षणीके दिनोंमें पडने वाली पेशीको आगे या पीछे करवानेका आषाढसे

ही उद्यम करेगा। जब उसका यह पुरुषार्थ चलेगा तब भादो लगनेसे पहिले उसी समयसे दशलक्षरणपर्व साफ हो जायगा कि दशलाक्षरणीके दिनोमे कोई पेशी नही है। यह हो गया उसका विसंयोजन कि उन दिनोमे तो पेशीकी कोई तारीख ही नही है। जाना कहाँसे पडेगा ? तो उपशम सम्यक्त्वके कालमे उस स्थितिकी कषाय ही नही है। कषाय होगी ही कहांसे ? इसके पुरुषार्थसे होता यह है कि जैसे मानो कि किसी विवक्षित एक दो सेकेण्डके लिए उपशम सम्यक्त्व हो ा है तो उन एक दो सेकेण्डोका जब समय आयगा उससे प ्ले यह स्थिति बन जायगी कि कुछ कषाये पहिले कुछ कषाये बादकी स्थितियोमें शामिल हो जायेगी। उस समयकी कोई कषाय ि थति अनन्तानुबधीकी न रहेगी। विसयोजनके लिए तीन करण हुए। इसके बाद फिर उपशममे तीन करण हुए। यो करणलब्धियोके बलसे यह जीव सम्क्यत्व लाभ करता है। करणलब्धि मायने परिणामोकी प्राप्ति। ऐसें परिणाम पाना।

वर्तमानकी संभालपर सारी संभालकी निर्भरता—अब हम इन बातोके कुछ बाहर पडें हुए हैं, बाहरकी बाते है, ऐसा सोचकर बाहर निरखंगे तो हमे अन्त कुछ लाभ न होगा। है क्या वह सब ? कुछ भी हो। आपको मिलेगी आपके पौरुषसे सव चीजे स्वय। किसी मनुष्यको गिनती भी नही आती और कमाई कर ा अच्छा जानता है, तो मत आवें गिनती, सब कुछ प्राप्त तो हो ही रहा है, इसी तरह इन बातोकी जानकारी भी अधिक न हो, फिर भी यदि अपना पुरुषार्थ अन्त भावोको संभालनेका चलता है तो समझो कि आप बहुत बडा लाभ हासिल कर रहे है। कहा भी है कि एकै साधे सब सधे—अर्थात् एक अपने आपके परिणामोको सभाल लिया तो समझो कि सब कुछ सध गया। क्या होगा हमारे भविष्यमे, वह स्वय हो जायगा, पर सभाल करना है अपने आपको अपने वर्तमान परिणामो की। अपने वर्तमान परिणामोको यदि न संभाले सके तो फिर क्या सभाल सकेगे ? सभाल तो सारी यही है। अपने समस्त भविष्यके निर्माणकी बात तो वर्तमान सभालपर आधारित है। जैसे कुछ लोग सोचा करते है कि मैं इतना धन कमा लूँ, इतनी सम्पत्ति जोड लू, बादमे हम सब झगडे छोडकर सिर्फ धर्मध्यानमे लगेगे तो उनका यह कहना गलत है। ऐसा सो ने वाले लोग अपने वर्तमान समयके परिणामोको संभाल रहे है क्या ? वे सिर्फ बात बना रहे है। जब उनकी वैसी स्थिति बन जाती है तो होता क्या है ? कि वे और भी फँस जाते हैं। उससे निकल नही पाते। अब क्या हो गया ? अरे यो हो गया कि विचार तो उन्होने रखा था, पर अपने वर्तमान परिणामोकी संभालका पौरुष नही किया था, इसलिए भविष्यकी वह

बात न आ सकी। एक पुरुष रोज अपनी वर्तमान सभाल करे, ज्ञानार्जनमे, स्वाध्यायमे, सत्सगमे अधिकाधिक रहे। वह भविष्यकी बात कुछ नही विचारता। वह तो सोचता है कि हमारा यह रोजका काम हो। जो रोज बात बीते, उसमेसे समय निकालने, उसमेसे अपना उपयोग करना, विभाग करना, यह तो रोजका हमारा काम है। चाहे गरीब हो तो उसमे हमारा विभाग रहेगा। जैसी स्थिति आये उसके अनुसार विभाग चलेगा तो समझो कि वर्तमान समयके परिणामोको वह सभाल रहा है। उससे ही उसे ऐसा भविष्य प्राप्त हो जायेगा जो कि उसे अभीष्ट है। तो सब कुछ अपने वर्तमान परिणामो पर आधारित है। कोई पुरुष गुस्सा कर रहा है तो वह यदि सोचे कि मैं अभी गुस्सा-गुस्साका ही सारा काम कर लूं, पीछे सब सभाल लेंगे तो उसका यह विचार नही है। यदि वह वर्तमान गुस्साको सभाल ले अर्थात् वहा क्षोभ न करे, विवेक जगाये, शान्ति रखे, दूसरोके प्रति आदरभाव रखे तो उसको भविष्यकी अच्छी बात जल्दी मिल जायगी। तो आवश्यकता है अपने वर्तमान परिणामोको सभाले रहनेकी।

अपनेको एकाकी निरखनेमें वर्तमान परिणाम संभालकी संभवता—वर्तमान संभाल की बात तब बनेगी जब अपने आपको अकेला मान लें। सब कुछ मेरा इस अकेले पर ही आधारित है। ससारमे मैं अकेला हू। मोक्ष पाऊगा तो अकेला, ससारमे रुलूंगा तो अकेला, सर्व स्थितियोमे मैं अकेला हू, यहाँके इन बाह्य झमेलोमे भी मैं अकेला हू। अन्त झमेलेमे भी अकेला हू। यही नोकर्म है, शरीर कर्म भी यही है और यही मैं जीव पडा हू, पर सबकी परिणति उन-उन पदार्थोंमे अकेले-अकेलेमे हो रही है। जो निमित्तनैमित्तिक भाव चल रहे है, वहा भी हो क्या रहा है ? जो परिणाम रहा है वह अकेला ही उस रूप परिणाम रहा है। दो मिलकर वह एक परिणमन नही बना, अथवा अधिकरणसे भिन्न पदार्थमे परिणमन नही बना। सर्वत्र प्रत्येक पदार्थ स्वय ही एक स्वसहाय अपने आपमे उत्पादव्ययध्रौव्यसे बने हुए रह रहे है। सत्की व्यवस्था ही यह है कि अपनेमे उत्पाद व्यय करते रहे। क्रियात्मक वस्तुकी प्रकृति जिसको न समझकर लोगोने तीन देवताओकी कल्पना की, इस ख्यालसे कि यह ससार सिद्ध हो, बने, चले, रहे, इसका निर्णय तीन देवता मान करके किया है। कोई सृष्टि करने वाला है, कोई सहार करने वाला है, कोई रक्षा करने वाला है। मगर पदार्थ यदि है तो वह स्वय सुरक्षित है, स्वय सृष्टि सहार और ध्रुवताको लिए हुए है। है, इसीमे ही उसका सुरक्षितपना है। कोई दूसरा सभाले सो बात नही। तो यो आत्मतत्त्वका भी निरीक्षण करना, अपने आपको अकेला समझना और इतना अकेला समझना कि शरीर,

कर्म, विभाव आदिक समस्त परपदार्थोंसे निराला यह मैं अंत एक चैतन्यस्वभावमात्र हू। जो बीत रहा है उसे भीतरकी हिम्मत बनाकर ऊपरसे निकाल दे। इतना पौरुष हो सकता है तो उस जीवका श्रेयोमार्ग बिल्कुल निकट है।

सम्यक्त्वका आश्रयभूत व निमित्तभूत साधन—सम्यक्त्वकी साधनामे बताया जा रहा है कि सम्यक्त्वके आश्रयभूत साधन तो जिनसूत्र और जिनसूत्रके ज्ञायक पुरुष है और निमित्त कारण दर्शनमोहनीयका उपशम क्षय, क्षयोपशम आदिक है। देखिये बात एक यहा यह भी समझना कि सुननेवालेकें चित्तमें जब तक उपदेष्टाके प्रति य हे भाव नही आ पाता कि यह वास्तविक ज्ञानी पुरुष है और यह वचन यथार्थ है तब तक वह तो सम्यक्त्वका साधन नही बन पाता और यह बात अनुभवगम्य ही है। श्रोता तो यह सोचता रहे कि ये तो सब केवल बाते कह रहे हैं, ज्ञान कुछ नही है, चित्तमे कुछ नही, सिवाय ऊपरी बाते कह रहे है, यदि इस तरहका विकल्प श्रोताके चित्तमे हो तो वह वचन क्या सम्यक्त्वका साधन बन सलेगा ? वह ग्रहण ही कैसे कर सकेगा ? इस कारण श्रोताकी श्रद्धामे ज्ञानीपने को प्राप्त उपदेष्टा सम्यक्त्वका निमित्त हो पाता है।

सम्यक्त्वके आविर्भावके साधनोंमें उपदेशकी प्रधानता—यह पुरुष कैसा है ? यह परख वचनोके जरिये हो जाता है। दूसरेका भाव क्या है ? सम्यक्त्व है अथवा नही है। कर्मोका क्षयोपशम है या नही है। इन बातोको कौन परखेगा? वचनों द्वारा ही आशय समझा जाता है और वैसे वचनकी रफ्तारसे भी उन वचनोकी खास पद्धतिसे भी भीतरी भाव परखा जाता है। जो वचन हितप्रेरक है, कल्याणसे सम्बधित है, वह वचन सहायक है श्रेयका और ऐसी परख भव्य जीवको ही हो जाती है। तब प्राय यह बात रही कि जो पुरुष स्वय ज्ञानी है, सम्यग्दृष्टि है उसके वचनोमे ओज होता है और स्पष्टता रहती है, जिसके कारण वह वचन सम्यक्त्वकी आविर्भूतिमे सहायक है। लेकिन यहाँ उस आत्माको प्रधान न करना, क्योकि इसमे प्रधान है वचन, उपदेश, क्योकि श्रोताने जो ग्रहण किया वह वचन और उपदेश ग्रहण किया कर्ण द्वारा। हां ऐसा सम्बन्ध है कि ऐसे वचन कोई ज्ञानी अनुभवी पुरुषके हो सकता है। फिर भी जहा ११ अंग ९ पूर्वोका ज्ञान हो जाता है, तो उस ९ पूर्वसे पहिले आत्मप्रवाद, ज्ञानप्रवाद आदिक पूर्ण आ जाते हैं, उनका सम्पूर्णतया ज्ञान होता है और कितने ही तपस्वी साधु अपने कल्याणभावमे उस मार्गमे बिहार करते है, जान जानकर उनका केवल एक वीत-राग मार्गमे ही गमन है, इतना सब कुछ होने पर भी किसीके कोई सूक्ष्म मिथ्यात्व रहता है उसकी पकड भी कोई क्या बताये ? वह भी न पहिचान पाये, ऐसा सूक्ष्म मिथ्यात्व अंश

रहने पर भी वे इतने ऊचे ज्ञाता पुरुष होते है अध्यात्मवादके, ज्ञानप्रवादके कि वहा एकदेश की बात नही है और कल्याणभाव भी उनका है तो उनका उपदेश भी ऐसा प्रेरक होता है और वे वचन भी सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके बाह्य साधन हो सकते हैं, तो यह बात एक एकान्त आग्रहके निरोधके लिए कह रहे है। बात तो प्राय यह समझनी चाहिये कि अनुभवी पुरुष के वचन उस प्रकारके प्रेरक होते हैं।

सम्यक्त्वाविर्भावमे किसी महान आत्माके नैकट्यका नियम व अनियम—उपशम सम्यक्त्व, क्षायोपशमिक सम्यक्त्व और क्षायिक सम्यक्त्व इनके प्रसङ्गमे जब सम्यक्त्वकी चर्चा आयी छक्खंडागममे, धवल ग्रन्थमे और पूछा गया कि क्षायिक सम्यक्त्व किसके सन्निधानमे होता है तो आचार्य महाराजने स्वय उत्तर दिया कि क्षायिक सम्यक्त्व केवली और श्रुतकेवली के निकट होता है। अपवादरूपमे यह भी जानना चाहिये कि कोई समर्थ स्वय यदि श्रुत-केवली है और है क्षायोपशमिक सम्यग्दृष्टि तो उसको निकटकी भी आवश्यकता नही है। वह स्वय क्षायिक सम्यक्त्व कर सकता है। और जब पूछा गया कि उपशम सम्यक्त्व किसके निकटमे होता है तो सूत्रमे ही उत्तर दिया है कि इस विषयमे कोई नियम नही, सर्वत्र उप-शम सम्यक्त्व संभव है। सो यद्यपि उपशमसम्यक्त्व व क्षयोपशमसम्यक्त्व सर्वत्र सभव है, फिर भी इतना निर्णय श्रोताके ज्ञानमे होता ही होगा कि यह ज्ञानी पुरुष है, ये वस्तुस्वरूप के अनुकूल वचन है और अपने आपके श्रेयके लिए जिस प्रकार सुघटित होता है उस प्रकार सघटित करें तो वे वचन बाह्यसाधन है सम्यक्त्व उपत्तिके। क्षायिक सम्यक्त्व होता है क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि के। मिथ्यात्वके अनन्तर क्षायिक सम्यक्त्व नही होता, उपशम सम्य-क्त्वके बाद भी क्षायिक सम्यक्त्व नही होता, किन्तु क्षयोपशम सम्यग्दृष्टि जीवके क्षायिक सम्यक्त्व होता है, तो वहा भी उसके ज्ञानमे वह बात है कि यह केवली है, यह श्रुतकेवली है, वहां सदेह नही होता और ये प्रभु है ऐसा भाव चित्तमे आनेसे विचार प्रभाव और बढ जाते हैं। तो ये विचार प्रभाव उसके क्षायिक सम्यक्त्वके साधक बनते है।

जिनसूत्रकी सम्यक्त्वसाधनता—यहा तक यह बताया गया कि हमारे सम्यक्त्वके साधन है ये जिनसूत्र। वस्तुका जो स्वतत्रस्वरूप है, निरपेक्षस्वरूप है, जिसके परिचयसे मोह दूर होता है वह परिचय, वह ज्ञान हमारे श्रेयका साधन है। यह है आत्माका भोजन जिसके बिना गुजारा न चलेगा। लेकिन शरीरके भोजनपर तो व्यर्थ ही फिदा हो रहे हैं लोग। कई बार खानेको मिले, बढिया खानेको मिले। अरे शरीरके भोजन तो कितने ही किये गए उससे अब तक कोई लाभ न हुआ। स्वादिष्ट भोजन किया तो क्या लाभ पाया ? और बल्कि

उससे शरीरकी परम्परा ही बढी । शरीरमे राग है, पर्यायबुद्धि है, जिस बलपर रसस्वादन मे आसक्त हो रहे है तो उसका फल शरीरका मिलना ही है और सारे दुखोका मूल है शरीरका सम्बध । जब कभी मानसिक दुख भी हो रहा है तो उसका भी कारण शरीरका सम्बंध है । मानसिक दुखमे क्या होता है ? यहाँ लोग यह सोचा करते कि हमारी इज्जत कुछ न रही, हमारा अपमान हो गया, हमको कोई पूछता नही, अथवा किसी भी प्रकार की बात चित्तमे आती है तो तभी तो आती है जब यह मान रखा है कि यह शरीर ही मैं हू, और इस मुझको लोगोने यो कह डाला । तो यो शरीरमे जब उसने सम्बध माना, पर्याय-बुद्धि की, तभी तो उसे सम्मान अपमान आदिकके क्लेश बने । जितने भी दुख है हम आप को उन सबका कारण शरीरका सम्बध है । और शरीर है दुखका कारण । और शरीरसे ही नेह लगाया तो इसका अर्थ है दुखका बढावा देना । वह पुरुष पवित्र है जिसके अनु-भवमे बात जगी है कि यह मैं आत्मा देहसे निराला केवल चैतन्यप्रकाशमात्र हू ।

निजानुभूति जगनेकी शक्यता—भैया ! मैं चैतन्यप्रकाशमात्र हू—यह अनुभव जग सकता है उसकी ओर उपयोग करें, उसमे लगे, सोचे अपने आपको । दुख बढता है तो अपने आपको ही तो कुछ सोचा गया तभी तो बढता है । सुख मान लिया तो अपने आपको कुछ सोचा है तभी तो सुख हुआ । तो आनन्द भी जगेगा, ज्ञान भी जगेगा अपने आपको कुछ सोचेगे तब । विधियाँ सबकी अलग-अलग है । परमें मैं हू छोड दीजिए सब कुछ दृष्टि से । यहाँ तक कि इस देह तकका भी मान छोडें । अपने भीतर उपयोग लगाकर निरखने चलेगे तो अमूर्त सूक्ष्म केवल एक ज्ञान प्रतिभासमात्र कुछ उपयोगमे आयगा और तब पहि-चान बनेगी कि यह मैं तो स्वय सत्ता वाला हू । बाकी तो यह शरीर कारागृह है, बधन है, मैं तो इससे निराला हू । निरालेपनकी मोटी बात यह है कि मरण होनेपर सभी लोग सम-झते है, कहते है कि यह मर गया और जो जीव था वह निकल गया । अरे जो था निकल गया, इतना ही क्यो, वह शरीरमे रहकर भी शरीरसे निकला हुआ याने अलग है, निजस्व-रूपमे है, बन्धनमे बधा है, पर स्वरूपदृष्टि करे तो वह पृथक् है । यहाँ तक जिसकी गति हुई है वह पुरुष पवित्र है । वह अब सबका है, क्यो सबका है कि सब उसके है । अब उसे यह पर्दा नही रहा कि ये जीव तो मेरे है, ये पराये है । नीतिमे कहते है—वसुधैव कुटुम्ब-कम् । तो प्रयोगमे ज्ञानी पुरुषके ही यह बात सम्भव है, क्योकि उसने सबका स्वरूप सत्य यथार्थ स्वतत्र समझा, जिससे यह पर्दा टूट गया कि ये मेरे है, ये पराये हैं ।

मोहियोंकी "मेरे हैं" की बातका संक्षिप्त चित्रण—अब जरा मेरे हैं की भी बात देख लीजिए। जीवन भर कमाया, बच्चे हुए, बडे हुए, लडने लगे, न्यारे किया, दसो प्रकार के झंझट हुए, बीच-बीचमे अनेक प्रकारकी आपत्तिया सही, सारी बाते बेटोके अनुकूल कर डालें, यह बात सम्भव भी नही, तब उनमे दोष देने लगे और कभी तो बेटे आदि बडी घृणाकी दृष्टिसे देखने लगते हैं। बूढे हो गए, अब विवेक आया, क्या किया इसने जिन्दगी भर ? कुछ फायदा मिला हो तो बताओ। कदाचित् कोई बेटा अपने पिता की जिन्दगीभर सेवा करे तो आत्माके अस्तित्व भरके लिए ठेका तो नही ले सकता। आगे तो वह मरेगा और अब भी ठेका नही लिए हुए है। उसके ही पुण्यका उदय है कि ऐसे समागम मिले जो थोडे दिनके लिए सुख सुविधायें मिल गईं। कोई किसीका यहा शरण नही, रक्षक नही। ज्ञानी पुरुषने आत्माका सत्यस्वरूप समझा, पदार्थोका यथार्थस्वरूप जाना, आत्माका भाव उसे हुआ, पवित्रता उसमे जगी उसके लिये अब सब पर है, पराये है या सब जीवमात्र उसके हैं।

वीतरागताका अद्भुत आकर्षण—नगरमे कोई बडा सेठ हो या राजा हो, या कोई ऊंचा मिनिस्टर हो तो उसके पास कितने लोग आयेंगे और यदि कोई परमात्मा हुआ हो और उसका विहार हो रहा हो, समवशरण हो, उपदेश हो तो उसके पास कितने पुरुष आयेंगे और कैसे जीव आयेंगे ? यहाँ मिनिस्टरोके पास तो स्वार्थीजन आयेंगे, जिनको कि धन वैभव आदिककी चाह है। जो कि मायाचारी हैं, जो खुदगर्जी लिए है, ऐसे कई लोग आयेंगे ? और वीतराग सर्वज्ञदेवका सत्सग प्राप्त हो तो वहा मनुष्य भी आयेंगे, देव भी आयेंगे, तिर्यञ्च भी आयेंगे। भला बतलावो इतना आकर्षण किस बातका हुआ ? चीज तो कुछ नही दी। भला मिनिस्टर लोगोके पास तो परमिट वगैरहकी चीजें मिल सकती हैं पर वीतराग सर्वज्ञदेवसे क्या मिले ? वहाँ तो सत्यताकी चीज है, वहाँ तो वीतरागता है। रागद्वेष नही रहे, उस पर सबका आकर्षण है। यही देख लो—कोई लडका भला है, किसी झगडा झंझटमे नही पडता तो पडौसके लोग उसके व्यवहारसे बहुत आकर्षित होते हैं, जहा कि कारणवश ही कुछ सरलता है तो आकर्षण लोगोका होता है वीतरागता पर। यहाँ जिसने कुछ चाहा उसको कुछ नही मिलता, और जिसने कुछ न चाहा उसको सब कुछ मिलता है। एक सच्चाईसे इस बात पर कोई आ तो जाय। कुछ न चाहे अतरगमे, श्रद्धा मे ऐसा पुरुष नही हो सकता जिसे यह पूर्णतया भान हो चुका है कि प्रत्येक पदार्थ अपने चतुष्टयसे है, स्वतत्र है, किसीका किसीमे द्रव्यगुण पर्यायका असर कुछ भी नही जाता। एकका

दूसरेसे लेनदेन नही है। यहा जो कुछ भी हो रहा है विभावपरिणमन, उसकी भी यही व्यवस्था है कि योग्य उपादान जो जिस विभावके योग्य है वह अनुकूल निमित्त पाकर स्वयं उपादान अपनी परिणतिसे अपना प्रभाव प्रकट कर लेता है। यो वस्तुस्वातंत्र्यका जिसे भान है वह जीव धन्य है, पवित्र है, ससारसागरसे यथाशीघ्र पार हो जाने वाला है।

मोहकी महती व विचित्र भूल—सम्यक्त्व ही एक सर्व कुछ श्रेय है, मिथ्यात्व ही सारी विडम्बना है। भूल और भूलमे सच्चाई माननेकी भूल—इन दो भूलोमे सबमे वडी भूल कौन ? भूल सबसे बडी भूल नही, किन्तु भूलमे सचाई माननेकी बात वडी भूल कहलाती है। मोह और रागमे यही अन्तर है। राग भी भूल है पर मोह है भूलको सच मानना, सो यह है वडी भूल। कुमार्गको सच मान लेने पर उसकी निवृत्ति होना कठिन है और जो कुमार्ग पर चल रहा है, सच नही मान रहा है, मान रहा है, थोडा ध्यानमे आया, कुमार्ग है, दसो जगह सोचेगा तो निवृत्ति हो जायेगी। तो मोह है रागका राग, क्योकि वहा रागपर्यायको अपना सर्वस्व माना है, उसमे राग बन रहा है, अँधेर है, कुछ पता नही। और ज्ञानी पुरुषके राग बनता है, उसे समझ है, जानता है, यह राग है, यह हितरूप नही है, इससे वह हटना चाहता है, और यथाशक्ति इससे हटने का पुरुषार्थ करता है। लोकमे जो भी समागम मिला है यह अपने लिए कोई ग्राह्य नही है, लगावके योग्य नही है। कहाँ लगाव करना ?

स्वप्नभानवत् लोकसमागमकी मिथ्यारूपता—लोकसमागमकी प्रथम तो बात यह है कि यह सब स्वप्न है मोहका। स्वप्नमे स्वप्नकी देखी हुई बात क्या गलत लगती है ? सोते हुएमे स्वप्न आ गया कि नदीमे तैर रहे, डूब रहे, मगर निकल आया, यह बात क्या झूठ मालूम होती है ? उसे सच लगती है, तभी तो वह दुखी होता है। स्वप्नमे दृश्य आया कि मैं राजा बन गया हू, सभी लोग मुझे नमस्कार कर रहे है, बहुत-कुछ भेट चढ़ा रहे है, मेरे पास बहुत बडा वैभव है आदि ? ये सब बाते बिल्कुल सत्य विदित होती हैं। तो जैसे स्वप्नमे देखी हुई बात सत्य मालूम होती है इसी प्रकार मोहमे जो कुछ मान किया जा रहा है वह भी सत्य प्रतीत होता है। यह धन वैभव मेरा है, स्त्री पुत्रादिक मेरे है आदि बाते इस मोहके कारण ही तो मालूम हो रही है, लेकिन स्वप्नकी वात जैसे तभी झूठ मालूम होती है तव, जब कि नीद खुल जाय, ऐसे ही मोहकी ये सभी बातें झूठ मालूम होती हैं जब कि मो निद्राका भङ्ग हो जाय। मोहनिद्राके भंग होनेपर यह मालूम होगा, ओह ! यह सब जो मालूम हो रहा था, वह सब झूठ था। लोग प्रतिक्रमणमे यह पढते है

कि मिथ्यामे दुष्कृत, अर्थात् मेरे पाप मिथ्या हो तो ठीक है, बहुत बढिया बात है। इतना कहने भरसे ही यदि दुष्कृत मिथ्या हो गए तब तो अच्छी ही बात है, लेकिन ऐसा होता कहाँ है ? जब ज्ञानबल प्राप्त हो, उस ज्ञानबलको अपने उपयोगमे ले तब कही वे दुष्कृत मिथ्या हो सकते है। तो कोई बात मिथ्या तब लगे जब उसके सामने कोई सच बात आये। बिना सच बातके सामने आये कोई बात मिथ्या नही प्रतीत हो सकती है। जब यह बात ज्ञानमे आये कि मै तो सबसे निराला शुद्ध चैतन्यमात्र हू तो फिर वे मोहनीदमे देखी हुई बाते मिथ्या प्रतीत होने लगती हैं। तो आवश्यक है कि हम अपने आत्मस्वरूपको सही समझे, जिससे हमारी पवित्रता बने और हम ससारसंकटोसे दूर हो।

देशनालब्धिमें उपादानयोग्यता व मुख्य बाह्य साधनका समावेश—देशनालब्धिका लक्षण आगममे बताया है कि छहो द्रव्य और ९ पदार्थोके उपदेशका नाम देशना है और उस देशनासे परिणत याने उपदेशक आचाय आचार्य आदिककी उपलब्धिको और जो उपदेशमे आया है उसके ग्रहण, विचार, चिन्तन व अवधारण करनेकी शक्तिके समागम को देशनालब्धि कहते है। देशनालब्धिमे कितनी ही बातें आयी हुई हैं। एक तो यह कि उपदेष्टा आचार्य आदिककी प्राप्ति होना, दूसरी यह कि अभीष्ट अर्थका ग्रहण, धारण, चिंतन आदिक की शक्ति आ जाना, उसका नाम देशनालब्धि है। देशनालब्धिमे मुख्यता यथार्थ वचन और उपदेश पाने वालेकी योग्यता पर ध्यान देना है। यदि उपदेश पाने वालेके योग्यता नही है तो देशना काम नही कर सकती, इसीलिए देशना बाह्य साधन है। जिनसूत्र बाह्य साधन है। अन्य अन्य भी जितने कारण बताये गए हैं वेदनाका अनुभव, जातिस्मरण, ऋद्धिदर्शन आदिक, वे सब बाह्य साधन है और बाह्यसाधनका या आश्रयभूत साधनका चिह्न यह है कि यह जीव उपयोगमे उसे लेता है तो वे निमित्त हो पाते है, उपयोगमे न आने पर निमित्त नही हो पाते। यह आश्रयभूतकी बात है। जैसे क्रोध राग आदिक कषायें उत्पन्न होनेके लिए ये बाह्यपदार्थ आश्रयभूत है, क्योकि यह क्रोध करने वाला बाह्य पदार्थोको उपयोगमे लेता है तो वे कारण होते है, पर निमित्त के सम्बन्धमे यह बात नही कि उसे उपयोगमे लें तब कारण हो। कर्मका किसे पता ? और जो कर्मोको जानने वाले लोग भी है वे आगम मे लिखा है इसलिए जानते हैं। कोई आँखो दिखने वाले पदार्थोकी तरह ये कर्म परिचयमे तो नही आ रहे है। तो कषाय करने वाला जीव कर्मोको उपयोगमे नही लेता। किन्तु वहा निमित्तनैमित्तिक बात है कि कर्मके उदय सन्निधानमे जीव कषायरूप परिणत हो जाता है। तो ये सब आश्रयभूत साधन है। उपदेश होना, उपदेष्टाका मिलना और ग्रहण धारण करने

की शक्ति आ जाना यह उपादानसे सम्बन्ध रखता है । तो देशनालब्धिमें दोनोका समावेश है—उपादान कारण और निमित्त कारण । दोनोकी बात देशनालब्धिमे है । जो ग्रहण धारणाका अंश है वह तो उपादानसे सम्बधित है और उपदेष्टा और जिनसूत्रके उपदेशका जो समागम है वह निमित्त अथवा बाह्यसमागमसे सम्बधित है, यथार्थ उपदेशका ही महत्व है और सुनने वाले लोग यदि पक्षपातसे रहित है तो उनमे ऐसी शक्ति है कि वे यथार्थ और अयथार्थकी पहिचान कर सकते है ।

आग्रह पक्षकी सन्मार्गमें बाधकता—और अयथार्थको न समझनेका सबसे अधिक बाधक कारण है पक्ष । कोई मनमे आग्रह हो गया वही कारण बनता है कि यथार्थ और अयथार्थके स्वरूपके निर्णयके लिए हम नही चल पाते । समयसारमे जब यह चर्चा चली कि यह जीव अपने आपको अपने आग्रहसे नारकी, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव आदि बनाये हुए है, मै नारकी हू, तिर्यञ्च हू आदि इन शब्दो मे न कहे तो जो भी पर्याय है उस पर्यायके रूपसे जो अपने मे मेलकी बात लगाता है बस यह अध्यवसान तो उन्हे नारकी, मनुष्य, पशु आदिक बनाये हुए है । तो चर्चा चलते-चलते पूछा, जब प्रसग आया कि यह अपने आप को धर्मास्तिकाय बनाये है, अधर्मास्तिकाय भी बनाये है, उनमे भी पर्यायबुद्धि है । अब बतलाओ धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, अमूर्त सूक्ष्मपदार्थ, उसमे पर्यायबुद्धि कैसे ? तो उत्तर दिया गया है कि धर्मास्तिकायके सम्बधमे जो जानकारी हुई है उस विकल्पसे आग्रह बनाये हुए है कि जो मैं जानता हू यही सत्य है । तभी तो जब कभी धमचर्चाके समयमे बात ीत होती है तो वहा झगडेका रूप बन जाता है या क्रोध आ जाता है, तो वह किसका परिणाम है ? अपनी बातमे जो आग्रह है उसका परिणाम है । तो बातका आग्रह है, आशय का आग्रह है इसे भी मोह कहा है । धर्मास्तिकाय आदिक पदार्थोके सम्बन्धमे जो ज्ञान होता है, विकल्प होता है उस विकल्पमे जो लगाव बना है बस उसीको कहा है कि इसने अपनेको ध ास्ति-कायरूप बना डाला ।

स्वतत्त्वका निर्णय कर परसे परे होकर सहजस्वतत्त्वमें आनेकी उपयोगको सलाह—कितनी बातोसे परे होकर हमे अन्त स्वभावमे आना है, इसका अब अंदाज कर लीजिए । बाह्य वैभवोमे न अटके, देहमे न अटके, विचारमे न अटके और इन सबसे परे होकर अपने आप सहज जो अपने मे प्रकाश बना उस प्रकाशका अनुभव पाये तो इसे कल्याण मिलेगा । ये सब बातें पौरुषसाध्य है । हम आप इसके लिए कुछ प्रयास करे, ज्ञानार्जन का ध्यानका । जैसे कुछ जीव भोजन करते है और भोजन करने के बाद उससे अधिक समय उसके रोथने

मे लगाते है—जैसे गाय, बैल, भैस आदिक पशु। उन्होने भोजन किया और उसे रोथा तो उनका भोजन पच जाता है, यो ही हम ज्ञान करे और उसका फिर ध्यान करे तो हमारे मे वह एक मेल बन जायगा, परिचय बन जायगा, तो आवश्यकता है जानने की और उसके ध्या। की, पर ध्यान होनेके लिए यदि तैयारी करें तो उसके ऊपरका वातावरण भी बदल जायगा। जहाँ एकान्त स्थान हो जगल हो, पहाड हो, पवित्र स्थान हो, सत्संग हो वहाँ ध्यान की प्रेरणा मिलती है, तो ऐसे कार्योके लिए लालसा भी तो हो। ऐसा बनाव बनता हो तो वहाँ जैसे कहते है कि दिन दूना रात चौगुना बढावा है तो भीतरके प्रकाशमे इसी तरह बढावा हो सकता है। जिस किसी भी प्रकार हो, इतनी निर्मल बने कि अपने उपयोगमे वह उद्देश्य, वह लक्ष्य, वह स्वभाव जब चाहे आ जाय। यही एक बात करने भरको रह गई और तो जीवने सुखशान्ति के नामपर बहुत-सी बाते कर ली और करके भी यह रीता है। जैसे गृहस्थजन अन्तमे बुढापेमे अनुभव किया करते है कि सारी जिन्दगीमे क्या किया, क्योकि अब हाथ कुछ नही है ना। केवल जीर्ण शरीर रह गया और वह कल्पना वाला पदार्थ रह गया और तो कुछ इसके हाथ नही ना। तो बुढापेमे जैसे पछतावा होता है कि हमने अनेक खटपटे की, अनेक श्रम किए, पर मिला कुछ नही, रीताका ही रीता रहा, ऐसे ही समझिये कि अनादि कालसे इस जीवने अनेक समागम पाये, पर यह रीताका ही रीता रह गया। इसे अपने भीतरका प्रभाव मिलता तो भरा रहता, पर अन्त प्रभावके लाभ विना बाह्य वैभवोमे तो यह रीताका ही रीता रहा।

साधनोंका आश्रय लेने पर भी साधककी अनाश्रित अन्तर्दृष्टि—देशनालब्धिका महत्व है, पर देशनालब्धिसे भी बढकर प्रायोग्यलब्धि है। वहाँ ३४ ऐसे अवसर आया करते हैं कि ऐसी प्रकृतियोका भी बधापसरण होता है कि जिनमेसे बन्धापसृत कितनी ही प्रकृतिया चौथे ५ वें गुणस्थानमे बधने लगती है और भी आगे के गुणस्थानोमे वे प्रकृतियाँ बधने लगती है और सम्यक्त्व उत्पन्न होने से पहिले प्रायोग्य लब्धिमे वे प्रकृतियाँ नही बध रही। कितना महान् भाव है वह ? कितना कर्ममलको उतार रहा है वह ? इस ओरसे यदि देखा जाय तो सम्यक्त्व लाभके समय जितना कर्ममल हट गया है उसके आगे जो रहा सहा कर्म-मल है वह बहुत कम है। तो जीवके प्रायोग्यलब्धि तक हो जाती है, फिर भी सम्यक्त्व हो अथवा न हो। भव्यके भी प्रायोग्यलब्धि हो सकती है और अभव्यके भी प्रायोग्यलब्धि हो सकती है। अब आप समझिये कि निमित्तपर इतनी अधिक दृष्टि देना इससे क्या लाभ ? उपादानकी योग्यता बिना बात कुछ नही बन सकती। निमित्तोकी जानकारी कर लें, पर दृष्टि

न बनावे। निर्णयमे समझले कि यह निमित्त है, यह साधन है। अभी आप किसी वाक्यका अर्थ लगाने बैठे तो साधन तो है वह वाक्य, उसका अक्षर तो साधन है, निमित्त है, मगर आप जोर कहा लगा रहे सो बताओ। अपने भीतर समझमे जोर लगा रहे या उन अक्षरो की टेढ-मेढ और स्याही पर ? आप तो अपनी समझमे जोर लगा रहे। निमित्त होकर भी आप अपने भीतरमे जोर लगा रहे है। तो यो ही समझिये कि हमारे श्रेयके जितने साधन है उन साधनोमे चलना चाहिए, पर साधनमे चलते हुए दृष्टि साधन पर न होकर अन्त स्वभाव पर होनी चाहिए। निर्णय बिना साधना न बन सकेगा। और निर्णयमे यह सब आवश्यक है पर साधनाके ढगकी तैयारी होनी चाहिए। जैसे कोई सुभट युद्धकला सीखता है तो युद्धकला सीखने के समयकी बाते देखे और तब वह अपने साधनाक्षेत्रमे उतरता याने युद्ध करने को आता तब उसकी दृष्टि देखलो। ऐसी ही निर्णय और साधनाकी बात है।

विभावकार्यविधिविधानपद्धति-भैया ! जो बाह्यसाधन है वे साधन है, जो निमित्त है वे निमित्त है और जो उपादान है वह उपादान है, इतना होने पर भी प्रतिबधकका अभाव और चाहिये। होता ही कार्य इसी विधिसे है कि प्रतिबधकका अभाव हो, निमित्तका सद्भाव हो और उपादान की योग्यता हो। देख लो निमित्त सन्निधान व उपादानसे भी केवल बात नही बनी। प्रतिबधकका अभाव भी जरूरी है। जैसे अग्नि है और जल भी वही रखा है गरम होने के लिए, पर अग्निका प्रतिबधक कोई जडी-बूटी या मणि वगैरह रखी हो तो जल गर्म नही होता। दशहरा आदिकके मेलोमे देखा होगा कि तमाशा दिखाने वाले लोग अग्निसे तपाई हुई खूब तेज लाल साकलोको अपने हाथोमे पकड लेते है, सरूटते है, पर उनका हाथ नही जलता। तो बात वहा क्या है ? बात वहा यही है कि अग्निका प्रतिबधक जो जडी-बूटी है उसे वे अपने हाथोमे लगाये है। तो उपादान भी है, निमित्त भी है फिर भी काम नही हो रहा क्योकि वहा प्रतिबधक मौजूद है। तो तीन बाते बतायी, प्रतिबधकका अभाव, निमित्तका सन्निधान और उपादानकी योग्यता।

साधककी अन्तर्दृष्टि—जब आप निर्णय करके चलते है कि हमे श्रद्धान, ज्ञान, आचरणमे आना है, निर्विकल्प अनुभूति करना है उस निर्विकल्प अनुभूतिके समय आपको देखना क्या चाहिये ? केवल एक अन्त स्वभाव। पूजक यही तो कहता है—अर्हन् पुराण पुरुषोत्तम पावनानि वस्तूनि नूनमखिलान्यमेक एव। अस्मिञ्ज्वलद्विमलकेवलबोधवह्नौ, पुण्य समग्रमहमेकमना जुहोमि ॥ हे अरहत, हे पुराण, हे पुरुषोत्तम ! यहाँ पावन चीजें बहुत रखी है—थाल सजा है, द्रव्य सजे है, धोती दुपट्टा वगैरा भी साफ है, आदि, या अनेक पवित्र

चीजे यहा रखी है, मगर हे नाथ ! हमे तो केवल एक ही चीज यहा दिखती है। और कुछ तो दिखता ही नही है। जिसको जिसकी लगन होगी उसे सर्वत्र वही दिखेगा। तो वहा उस भक्तने क्या देखा ? जाज्वलयमान, प्रकाशमान केवल निर्मल ज्ञान, यही हमे (उस भक्तको) दिख रहा है। पासमे रखी हुई समस्त पवित्र चीजे नही दिख रही है। क्या ये सभी चीजे सिर्फ यहासे वहाँ तक उठाकर रखने के लिए है ? तो उस भक्तका क्या लक्ष्य है ? उसका लक्ष्य है निर्विकल्प ज्ञानकी अनुभूति करना। उस निर्विकल्प ज्ञानकी अनुभूति करने वालेको यह सूझा कि मैं ऐसे कार्यमे लगू जिससे इस अनुभूतिके बाधक कारण हटे और उसका दर्शन मिले।

इस कारण हे नाथ ! मैं तो इस निर्मल, जाज्वल्यमान केवल ज्ञानरूप अग्निमे इस समस्त पुण्यको स्वाहा करता हूँ। इसका अर्थ क्या है कि इसके लिए मै सब कुछ न्यौछावर करता हू। किसीसे भी मैं अब लगाव नही रखता, इतनी तैयारी किए हुए है वह पूजक। और मानो भगवानके पीठ पीछे बैठा हुआ कोई पूछ बैठे कि तुम तो अच्छा भगवान को फुसलाने आ गए। केवल साढे दश आनेके चावल अपने पास रखे हो और डीग इतनी मार रहे हो कि मैं अपने समस्त पुण्यको स्वाहा करता हू। तो उसका भाव उत्तर देता है कि यह तो सामने उपलक्षण है, उसके भावकोंनिरखिये, सारा पुण्य, जो भी समग्र धनादि वैमव है उस सबको मैं स्वाहा करता हू, क्योकि पूजकने भाव लगाया है उस केवल ज्ञानस्वरूपमे। वह पूजक उस समय लाखो करोडोकावैभव तो नही चाह रहा है। वह तो उस समय सूना हो रहा है, तिसपर भी कोई कहे कि वाह, ये जड वैभव जो कि प्रकट पराये हैं, बाह्यक्षेत्रमे है उनको स्वाहा करके कितनी बडी तुम डीग मार रहे हो। तो उसका भाव उत्तर देता है कि जिस पुण्यकर्मके उदयसे यह सब कुछ मुझे मिला हुआ है उस पुण्यकर्मको भी मैं स्वाहा करता हू। इतने पर भी कोई बोला कि पुण्यकर्म भी तो जड हैं, भिन्न है, उनको स्वाहा करने की क्या डीग मारते हो ? तो भाव उत्तर देता है कि हे नाथ ! जिस भावके कारण यह पुण्यकर्म बँधा है उस पुण्यभावकर्मको भी मैं स्वाहा करता हू। क्योकि इसकी दृष्टि है उस समय निर्मल केवल जाज्वलयमान ज्ञानकी ओर। उसे केवल वही रुच रहा है। उसमे विकारस्वरूप नही है। आप देखो खेल कि शुभभावोको स्वाहा कर रहा और शुभभावोमे कर रहा। तो साधन है, साधनमे चल रहा, पर दृष्टि साधनमे नही है, इतना ही तो मर्म है।

देशनासे कन्याणलाभ—अब अपने अन्त प्रकाशके मूल बाह्यसाधनका उपकार

सोचिये—देशनाका बडा महत्त्व है। यदि सन्मति भगवान्‌की परम्परासे यह आज न होता कुछ आगम, जिसके आश्रयसे हम आपका यह तत्त्वज्ञान बना, तो तत्त्वज्ञान बिना हम आपको कही कुछ प्रकाश भी मिलता क्या ? इस जगत्‌मे अकेले ही हम आप आये है, यहासे मरण करके अन्य किसी भवमे जानेके दिन भी निकट है, कैसा अच्छा हम आपको मन मिला हुआ है कि जिस मनके द्वारा हम अपना आत्मलाभ प्राप्त कर सकते है, ज्ञानलाभ प्राप्त कर सकते है और ससारके संकट सदाके लिए मेट सकते है। ऐसा श्रेष्ठ नरभव पाकर भी यदि अपने कल्याणका काम न कर सके तो समझो कि जैसे अनन्त भव व्यतीत हो गए वैसे ही यह नरभव भी व्यतीत हो गया, लाभ कुछ न उठा पाया। थोडे समयके लिए अगर गम्भीरता, धीरता, उदारता, निर्मोहता आदिक गुणोको अपना ले, विकार भावोको कुछ समयके लिए तिलाञ्जलि दे दे तो समझो कि हमने कुछ लाभ पाया। अपने आपको यहा बहुत सभालनेकी जरूरत है। यह मनुष्यभव हम आपने पाया है तो यह एक ऐसी स्थिति है कि यहासे यदि हम उठना चाहे तो सबसे अधिक उठ सकते है और यदि गिरना चाहें तो सबसे अधिक गिर सकते है। पशु पक्षी, कीडा मकौडा आदिकमे भी यह बात नही है कि वे हम आपसे अधिक गिर सके। देखिये—मनुष्योमे देशचरित्र होता है ना ? और पशुओंमे भी देशचरित्र होता है। तो मान लो मनुष्योका देशचरित्र १० डिग्रीसे लेकर हजार डिग्री तकका है याने जघन्य १० डिग्री और उत्कृष्ट एक हजार डिग्री तो पशुओका देशचरित्र होता है जघन्न १०० डिग्रीसे लेकर उत्कृष्ट तीन चार सौ डिग्री तक। तो मनुष्योसे हल्का (जघन्य) चरित्र पशुओमे नही होता। हल्कासे हल्का देशचरित्र पशुओमे होगा तो मनुष्यका जो जघन्य देशचरित्र है उससे चढा बढा होगा और मनुष्योके बराबर उत्कृष्ट भी देशचरित्र पशुओमे नही होता। (यहा मनुष्योके पतन व उत्थानके स्पीड बतानेके लिये उदाहरण बता रहे हैं), सो मनुष्य अगर अपना पतन करना चाहे तो अधिकसे अधिक (सब जीवोसे अधिक) अपना पतन कर सकते है, और अगर अपना उत्थान करना चाहे तो ये मनुष्य सब जीवो से अधिक अपना उत्थान कर सकते हैं। तो अपना यह नरभव चेननेका है। सत्संग हो, ज्ञान हो, ध्यान हो, विवेक हो, इन सब बातोसे अपने आपके जीवनको सफल करनेका एक यही मौका है।

निमित्त और उपादानका विवरण—इस प्रसंगमे यह बताया जा रहा है कि सम्यक्त्वकी उत्पत्तिके आश्रयभूत साधन तो जिनसूत्र, उपदेश, जिनवचन और उपदेष्टा पुरुष है और निमित्तभूत साधन दर्शन मोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम है और उपादान कारण वह

स्वय मुमुक्षु है। जिसने जिनसूत्रका आश्रय किया है और जो अपने आपमे उस तत्त्वका चिन्तन आदिक कर रहा है। निमित्त और उपादानके सम्बन्धमे कुछ थोडा विवेचन स्पष्ट होना चाहिये, अन्तरमे इसके लिए कुछ प्रयोग और दृष्टान्त दे रहे है। निमित्त दो प्रकारसे माने जाते है–एक आश्रयभूत और दूसरा निमित्तभूत। दोनो ही प्रकारके निमित्तोका उपादान मे अत्यन्त अभाव है। किसी निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उपादानमे नही पहुँचता, किन्तु आश्रयभूत साधनका तो इस जीवने उपयोग किया है, उपयोगमे ग्रहण किया है, इस सम्बन्धके कारण वह आश्रयभूत साधन कहलाता है और निमित्तभूत साधनका नैमित्तिक भावके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है, इस कारण वह निमित्तभूत साधन कहलाता है। उपादान रणके भी दो प्रकार हैं—एक ओघ और दूसरा समुचित, जिसे कहो—एक सामान्य र दूसरा विशेष। ओघ उपादान कारण जातिमात्रसे वस्तु कहा जाता है और समुचिन ादान कारण कहलाता है भाव वाली पर्यायमे आई हुई वस्तु अर्थात् जिस पर्यायके ाद जो पर्याय उत्पन्न हो उस पर्यायके लिए पूर्व पर्याय संयुक्त द्रव्य उपादान कारए कहलाता है, उसका नाम समुचित उपादान कारण। दृष्टान्तोमे जैसे उदाहरण लो। मे पर्वतकी जडके नीचेकी मिट्टी, बतलावो घटका उपादान कारण है या नही ? मानना होगा कि घटका उपादान कारण है, किन्तु है वह है ओघ उपादान कारण। उस मिट्टीसे घडा बना नही अभी तक और बननेका कोई ख्याल भी नही, लेकिन जो मिट्टी सजी सजाकर चाकपर रखी हुई है, सर्वसाधन सम्मुख हैं, व्यापार परिणत कुम्हार भी वहा है, ऐसी स्थितिकी वह मिट्टी जिसकी अनन्तर घडा पर्याय हो रही है वह है समुचित उपादान कारण।

कारणसमयसार—इन दृष्टियोसे कुछ अपना भी खुलासा करें। कारणसमयसार किसे कहते है ? कारणसमयसारकी व्याख्या ओघ उपादानकारणकी अपेक्षा तो अनादि अनन्त शुद्ध अहेतुक चैतन्यमात्र आत्मतत्त्व है, वह है कारणसमयसार। और समुचित उपादानकारणकी अपेक्षासे १२वें क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती जो सिद्ध हैं, आत्मा हैं वह है कारणसमयसार याने कार्यसमयसार अर्थात् परमात्मा होनेके लिए समुचित उपादानकारण कौन है ? तो वह है क्षीणमोह गुणस्थानवर्ती आत्मा। इन दो पद्धतियोसे कारणसमयसार कहा गया है। यहा इतनी बात और आवश्यक समझ लेना चाहिए कि जो ओघ उपादान-कारण है अनादि अन्नत अहेतुक चैतन्यस्वभावमात्र तत्त्व उसकी दृष्टि होने से पर्यायमे शुद्ध विकास होता है, अत आलम्बनका विषयभूत होने से भी वह कारणसमयसार है, बात यहाँ

यह समझना है अपने हितके लिए कि हमने बाह्यमे अनेक साधनोका उपयोग किया, जगह-जगह दृष्टि दी लेकिन इस अन्त प्रकाशमान इस कारणसमयसार सहजपरमात्मतत्त्वकी दृष्टि नही दी, जो अन्तरगमे प्रकाशमान है लेकिन कषायचक्रके साथ एकमेक कर दिया जाने के कारण तिरोभूत हो गया, उसपर दृष्टि नही है। अब कर्तव्य यह है कि जिस विधि से बने हर उपायसे, उपाय तो इसके अनेक नही है लेकिन यह जब अनेक विडम्बनाओमे पहुंच गया है तो अनेक विडम्बनाओसे छूटनेके उपाय भी अनेक कहलायेगे। बात तो वह एक ही है। दृष्टि दो, अपनेमे निरख कर लो, लेकिन बाह्य विडम्बनामे जो अरूढ हुए है उससे मुक्त होने के लिए जो जो भी शुभविकल्प बनेगे वे भी उपाय है। सो सर्व यत्नके साथ अन्तस्तत्त्वकी दृष्टि करो।

शुभोपयोग और शुद्धोपयोगकी उपयोगिता--शुभोपयोग और शुद्धोपयोग ये ढाल और अस्त्रकी तरह काम देते हैं। जैसे युद्धमे लडने वाले सुभटके पास केवल तलवार ही हो, ढाल न हो तो काम न बनेगा और उसके पास ढाल भी हो, पर तलवार न हो तो फिर वहा गया ही क्यो ? यो ही अशुभोपयोगके जितने विकल्प है उनसे बचाव करने के लिए शुभोपयोग ढालका काम करता है और उन द्रव्यभाव कर्मशत्रुओको नष्ट करने के लिए यह शुद्धोपयोग, शुद्धतत्त्वकी दृष्टि अस्त्रका काम करती है। तो कारणसमयसारका, सहज परमात्मतत्त्वका, सहजस्वरूपका इस भावका अभी तक अनुभव नही किया। इसी कारण यह बाह्यमे दृष्टि लगा कर यत्र तत्र भ्रमण करता है, दुखी होता है और वास्तविक शान्ति प्राप्त नही कर पाता। इसके लिए करनेका काम तो एक है–निज अतस्तत्त्वकी दृष्टि। उसमे न रह सका तो जो कार्यसमयसार है, जिसका परम विकास हुआ है ऐसे परमात्म-स्वरूपकी भक्ति अनुराग करे। व्यवहारसे बताया है पंचगुरुभक्तिका कर्तव्य और निश्चयसे बताया है निज **अंतःप्रकाशमान शुद्ध** अविकार सहज चैतन्यस्वरूपकी दृष्टि।

रागादि विभावोंके साधन—अब रागादिक विभावोकी उत्पत्तिमे किस प्रकारकी व्यवस्था है सो सुनो– यहाँ तीन बात ढूँढिये, आश्रयभूतसाधन, निमित्तभूत साधन और उपादान कारण। मनुष्योने यदि स्त्री पुत्रके सम्बन्धमे राग किया है तो उस रागकी उत्पत्तिमे बाह्य आश्रयभूत साधन तो स्त्री पुत्रादि हैं। निमित्तभूत साधन रागप्रकृतिका उदय है और उपादान कारण है वह आत्मा जो कि रागरूप परिणाम रहा है, अब इस तथ्यको कई अशोमे जानना होगा, उनमे से जब हम इस ओरसे देखते हैं कि सर्वज्ञदेवने अथवा अवधिज्ञानीने अपनी अवधिमे जो जाना सो हुआ, जाननेके कारण नही हुआ। वल्कि

जो हुआ, जो होता है, जो होगा, जो सत् है वह उनके ज्ञानमे है। है ज्ञेय, मगर जान तो चुके वे इसी समय सब कुछ। तब जो ज्ञानमे ज्ञात है सो हुआ, सो होगा, यह बात तथ्यसे बाहरकी नही है। ज्ञानका काम जानन है, जान लिया। तो उस ज्ञानकी अपेक्षासे जो होना है वह होगा। सो नियत है यह बात ठीक है और जब हम केवल एक पदार्थको ही देखते हैं, पदार्थमे परिणमन होते रहते है और वे परिणमन सब एक साथ नही होते, क्रम से होते है और जब जो होना होता है, जब जिस पर्यायमे आयेगा, आयेगा। इन दो दृष्टियो से जब निरखते है तो जो होना है वह सब नियत विदित होता है, किन्तु जब हम एक इस दृष्टिसे देखते है कि जो कुछ विभाव हुए है वे विभाव क्या आत्मामे स्वभावके कारण हुए है ? स्वभावसे ही क्या यह परिणमन चल रहा है ? वह स्वाभाविक परिणमन तो नही, विभाव है, विरुद्ध परिणमन है। तो विरुद्ध परिणमन क्या उस द्रव्यके मात्र स्वभावके कारण हुआ है ? तो वहा विदित होगा कि उपाधिका सन्निधान पाकर उस उपादानने अपनेमे रागरूप प्रभाव बनाया है। तो स्वभावमे नियत न होनेके कारण और उपाधिका सन्निधान पाकर प्रकट होनेके कारण वही चीज अनियत है। बात एक है, पर देखनेकी दो दृष्टिया है।

एक तत्त्वको दो दृष्टियोंसे देखनेपर दो प्रकारसे ज्ञात होने का उदाहरणपूर्वक प्रतिपादन--जैसे वस्तुस्वरूप विधिनिषेधात्मक है। जब हम किसी पदार्थका अस्तित्व निश्चित करते है तो पदार्थ अपने स्वरूपसे है परस्वरूपसे नही है--इन दो पद्धतियोमे निर्णीत करते हैं। इन दो बातोमे कहा क्या गया। दो बाते कही गईं, या एक वस्तु कही गई ? एक ही वस्तु कही गई जैसे घडी है। इस घडीमे अपने स्वरूपका अस्तित्त्व है और इस घडीमे समस्त परपदार्थोका अघडियोका नास्तित्व है। इन दो बातोको कहकर हमने एक पदार्थकी बात कही या अनेककी ? जो दो धर्म कहे वे एकके दो धर्म कहे या अनेकके ? परपदार्थका नास्तित्व परपदार्थमे नही है, किन्तु इस घडीमे है। घडीके स्वरूपका अस्तित्व किसी अन्यमे नही है किन्तु उस घडीमे है। तो जैसे विधिनिषेध कहकर हम एक वस्तुमे दोनो धर्मोका भान कर लेते है इसी प्रकार एक ही कार्यको हम दो दृष्टियोसे नियत और अनियत देख सकते है। एक दृष्टिसे देखनेपर यह विदित होता, एक द्रव्यको ही देखनेसे कि द्रव्यमे लेकर निर्बाध बिना रुकावटके प्रति समयमे परिणमन चलते जा रहे है। वहा और कोई बात नही देखी जा रही है। जब कोई उसे हिलाकर कहता है कि भाई बताओ ये परपदार्थ जो जुटते हैं, निमित्त हैं इनकी क्या बात ? तो उस समय उस मिश्र स्थितिमे उत्तर होता है कि

उस समय उस निमित्तका सन्निधान है लेकिन भैया बतलावो तो सही, इतना भी कहनेकी आवश्यकता क्यो पड गई ? निमित्तका नाम ही क्यो लिया जा रहा ? बात है क्या ? तो कहना होगा कि यो व्यवस्था बनी है जगतमे कि निमित्त सन्निधान पाकर उपादान अपनी योग्यतासे अपने विभावप्रभावरूप बनता रहता है। उपाधिका सन्निधान पाये विना विभाव-प्रभाव नही बनता, अत विभाव अनियत है।

सूर्य और प्रकाशित पदार्थोंके सम्बन्धमें निमित्त उपादानका विवरण--निमित्त उपादानकी बातको आप अनेक स्थितियोमे घटा लीजिए। बहुतसे उदाहरण है और जहाँ साधारणजनोके चित्तमे बहुतसे भ्रम पडे हुए है। यह दिनमे प्रकाश है, इतना उजेला है तो यह प्रकाश किसका है ? प्राय सभी लोग कहेगे कि यह प्रकाश सूर्यका है। उनसे जरा पूछो तो सही कि सूर्य कितना ? तो उत्तर मिलेगा कि जैसा जिसने समझ रखा है वहा ऊपर करीब २ हजार कोश का। तो सूर्य जो कि करीब कुछ कम दो हजार कोशका है तो उसकी चीज उस २ हजार कोशके स्वक्षेत्रमे ही होगी या परक्षेत्रमे होगी ? वस्तुस्वरूपकी यह स्थिति है कि पदार्थका सब कुछ द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उस ही के प्रदेशमे होगा, अन्यत्र न होगा। तो सूर्यका जो कुछ है वह सूर्यमे है, करीब २ हजार कोशके विस्तार वाले सूर्य-प्रदेशमे रूप हो, रग हो, प्रदेश हो, स्पर्श हो, जो कुछ हो उससे बाहर नही। यह बात सुनकर कुछ भाइयोको एकदम सन्तोष नही हो रहा होगा। लग यो ही रहा कि वाह, प्रकाश सूर्यका ही तो है, न हो सूर्य तो कैसे प्रकाश आयगा ? यद्यपि यह बात भी तथ्य की है कि न होता सूर्य तो कैसे आता सूर्यप्रकाश यहाँ ? रात्रिमे सूर्य सन्निधान नही तो होता ही तो नही यह सूर्यप्रकाश। बात तथ्यकी है पर यह सूर्यका प्रकाश नही है। बात क्या है कि सूर्य भी पुद्गल है, पृथ्वीकायिक विमान है और ये पदार्थ भी पृथ्वीकायिक है, कुछ पदार्थ वनस्पतिकायिक हैं लेकिन स्थूलरूप होने से मानो मूर्तिक है। जैसे कोई दार्शनिकोने पृथ्वी-पृथ्वी ही मानी है। काठ भी पृथ्वीकायिक माना, क्योकि उसके चार ही तत्त्व है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु। जो कुछ मिट्टी हैं वह पृथ्वी है, जल जल है, अग्नि अग्नि है, वायु वायु है। पृथ्वी हो, वनस्पति हो, कुछ भी हो, है तो पुद्गल ही। तो जैसे प्रकाशकी प्रकृति सूर्य मे है वैसे ही प्रकाशकी प्रकृति इन सब पदार्थोमे भी है। योग्यता न्यारी-न्यारी है। सूर्यमें प्रकाशकी प्रकृति स्पष्ट है, सहज है, निरपेक्ष है और इन पदार्थोमे ऐसे प्रकाशरूप आनेकी प्रकृति इस ढगमे है कि सूर्य आदिक निमित्तका सन्निधान पाकर ये पदार्थ इस तरह प्रकाश-मान हो जाते है। और देखो जहाँ यह प्रकाश पड रहा है, तेज धूप पड रही है वहाँ तो

उजेला है, पर जहां प्रकाश नही है, यहां वहां यह जो थोडा-थोडा उजेला है वह कैसे है ? यह थोडा-थोडा उजेला है सूर्यका निमित्त पाकर प्रकाशित हुए उस तेज उजेले वाली भीत का निमित्त पाकर । कभी बच्चे लोगोको खेल करते हुए देखा होगा कि ऐना सामने कर लेते है कि उस ऐनाका तेज प्रकाश घरमे अँधेरेमे पहुच जाता है । तो देखिये वहाँ जो दर्पण प्रकाशित हुआ है वह सूर्यका सन्निधान पाकर और घरमे जो तेज प्रकाश गया है वह प्रकाशित दर्पणका निमित्त सन्निधान पाकर हुआ है । सर्वत्र आप यही देखेगे कि प्रत्येक पदार्थ अपनी योग्यतासे अपने मे अपना प्रभाव उत्पन्न करता रहता है । पर विभाव प्रभावमे उपाधि निमित्त सन्निधान होता है और स्वभावप्रभावमे निमित्त सन्निधान नही, निरपेक्ष परिणमन होता है । यह सब बात एक कायव्यवस्था की कही गई है । ऐसा जानकर विरोध न करें, मध्यस्थ होकर साधनाकी दृष्टिमे यहाँ केवल एक ही तत्त्व निहारना चाहिए जाजवल्यमान केवल निर्मल ज्ञानज्योति ।

परद्रव्यके विकल्प छोड़कर अन्तस्तत्त्वके दर्शनके यत्नका अनुरोध–भैया ! व्यवहारनयका विरोध न करके मध्यस्थ होकर स्वद्रव्यकी दृष्टिसे उपजनित निश्चयनयका आलम्बन लेकर अन्तस्तत्त्वके दर्शनका यत्न कीजिये, जिसकी दृष्टि अब तक नही की, जिसके कारण अभी तक संसारमे रुलते चले आये, अनेक भव धारण करते चले आये। इसमे तत्त्व क्या मिला ? क्या मिलेगा इन राग द्वेष मोहादि के विकल्पोमे, बस यही जन्म मरणका चक्र बढेगा । और यह निश्चित नही है कि इस मनुष्यभवके बाद फिर मनुष्य बने । जगतमे देख लो, कितने जीव है । यह मनुष्यभव ऐसा है कि इस भवसे सभी भव मिल सकते है, अन्य जीवोमे तो अन्तर है । स्थावर मरकर नरकमे न जायेगे, लेकिन मनुष्य मर कर नरकमे भी जा सकते हैं । देव मरकर निगोदिया जीव न बनेगे, भवनत्रिक प्रथम कल्पवासी देव प्रत्येकवनस्पतिकायिक भी बन सकते हैं, पर निगोदकी बात कह रहे हैं । लेकिन मनुष्य मरकर निगोद भी बन जाते हैं, मनुष्यको छोडकर किसी भी गतिका जीव सीधे मोक्ष नही जा सकता । मनुष्य मोक्ष भी पा सकता है । तो देखिये मनुष्यके पतन और उत्थानके लिए कितना मैदान पडा हुआ है ? हम सभलेंगे तो अच्छे सभल जायेगे और बिगडेंगे तो बहुत बिगड जायेंगे । हमे चाहिए कि हम अपनी अन्त साधना बनाये और अपने आपको ससारके जन्ममरणके संकटसे बचा लें । जो कर्तव्य है उस पर दृष्टि दें । ज्ञानार्जन ध्यान और जिस प्रकारका ज्ञान किया है उस प्रकारका उपयोग बने, जिसके बनाने के लिए हमे सयत तो होना ही पडेगा । तो यथाशक्ति संयत बनकर हम अपने उपयोगको उस अंत स्वभावकी ओर ले जायें कि

उसका क्षणिक आभास तो हो जाय, ऐसा अन्त यत्न बनेगा तो सब सुध आ जायेगी कि वास्तविक सार क्या है, और यह सब जगत असार है।

इस लोकमे जितने भी पदार्थ है वे सब ६ जातियोमे बँटे हुए है—जीव, पुद्गल, धर्म अधर्म, आकाश और काल। जो छात्रोको पढाया जाता है कि ६ द्रव्य है तो उसका अर्थ यह नही कि द्रव्य ६ है किन्तु द्रव्यकी जातियाँ ६ है। द्रव्य तो अनन्तानन्त है। अनन्तानन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, एक धर्मद्रव्य, एक अधर्मद्रव्य, एक आकाशद्रव्य और असंख्यात कालद्रव्य। तो पदार्थ अनन्तानन्त है, पर उनमे से जो पदार्थ जिस जातिमें समाविष्ट हो सकता है उसकी एक जाति बता दी गई है। जैसे जीव जितने हैं वे सब एक जीव जातिमे आते है। जीवकी सबसे हल्की अवस्था है निगोद और सबसे ऊंची अवस्था सिद्ध भगवान् की। निगोदकी ऐसी निकृष्ट अवस्था है कि जहां एक श्वासमे १८ बार जन्ममरण करना पडता है। स्पर्शन इन्द्रियके निमित्तसे वहा निरन्तर अज्ञानदशा है। वह बडी निकृष्ट दशा है और सबसे ऊंची दशा है सिद्ध भगवान्‌की। जहा खाली आत्मा रह गया, जहा न कर्म है, न शरीर है, न कषाये है, केवल आत्मा है और उसका शुद्ध परिणमन है। ज्ञानके द्वारा तीनो लोकको स्पष्ट जान रहे है, अनन्त शक्ति है, अनन्त आनन्द है। सो निगोदसे लेकर सिद्ध पर्यन्त सभी जीव स्वरूपत एक समान है।

विविध आत्माओंसे अपनी तुलना—शास्त्रोंमे ऐसा वर्णन आता है कि भगवान्‌का आनन्द उतना है जैसे कल्पना करो कि दुनियामे जितने चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण वगैरह हो गए और जितने आगे होंगे और सभी प्रकारके देव जो जो भी सुखी माने जाते है उन सबका सुख एकत्रित करो बुद्धिमें, उससे भी अनन्तगुणा आनन्द है भगवान्‌मे तो यह तो समझानेके लिए कहा है। आनन्द तो इससे भी परे है। उस जातिका आनन्द नही है प्रभुका जो सासारिक सुखसमूहका गुणा करके बताया जा सके। भगवान्‌के तो अनन्त आनन्द है। तो यह समझिये कि जो सिद्धभगवान्‌मे वैभव है, प्रभुके ज्ञान, दर्शन, आनन्द शक्ति, परम पवित्र। क्लेशका जहा नाम नही, किसी प्रकारका राग नही। शरीर ही नही तो दु ख काहेका ? यहा जितने भी दु ख है उन दु खो पर दृष्टि दे तो भगवान्‌की महत्ता जानी जायेगी। ये सारे दु ख जहा नही है वे हैं प्रभु भगवान्, यहा तो हम आपमे अनेक दु ख, अनेक विडम्बनाये, अनेक झझट, राग, द्वेष, मोह, भूख, प्यास क्षुधा तृषा आदिक चीजे लगी हुई है, जन्म मरणके चक्रमे पडे हुए अनेक प्रकारके दु ख सह रहे है। ये समस्त शारीरिक दु ख हम आप भोग रहे है, पर ये शारीरिक दु ख भगवान्‌मे नही रहे। भगवान्‌मे

र्मक भी नही रहे, खालिस आत्मा ही आत्मा है, केवल चैतन्यप्रकाश है, जिसका काम वस जानते रहना है। उनके अनन्त आनन्द वसा हुआ है। यह है भगवान्का स्वरूप। जव यह विदित होता है तब पता पडता है ओह! हम आपकी कितनी निकृष्ट दशा है। और इस वातको अन्य जीवोकी अपेक्षा करके तौलें तो उनकी अपेक्षा हम आप कितना वढे चढे है? ज्ञान भी है, पञ्चेन्द्रिया भी है, मन भी अच्छा मिला है। विचार कर सकते हैं, वोल भी सकते है। अनेक पशुपक्षी तो ऐसे है जो वोल भी नही सकते, कुछ सोच विचार नही सकते, हम आप तो वोलचालमे क्रियाकलापोमे कितना वढे चढे हैं? तो उन पशु पक्षी आदिक अन्य जीवोकी अपेक्षा हम आप बडी उत्कृष्ट स्थितिमे हैं, मगर हम आपमे जो एक मोह करनेकी आदत पडी हुई है यह हम आपकी वरवादीका कारण वन रही है।

अपना वर्तमान अवसर और कर्तव्य—अब जरा सवकी अपेक्षा अपनी स्थिति सोचिये! कितना सुअवसर प्राप्त है, इतनी उत्कृष्ट स्थितिमे आ जानेपर भी पञ्चेन्द्रियके विषयोमे राग होने के कारण हम आप इस मनुष्यजीवनसे कुछ लाभ नही उठा पा रहे हैं। स्पर्शनइन्द्रियका कितना बुरा ऐव लगा हुआ है, स्वाद लेने, सुगधित वस्तुएँ सूंघने, सुन्दर रूप देखने व रागरागनीके शब्द सुनने आदिके अनेक ऐब हम आपमे लगे हुए हैं, यही कारण है कि हम आप इस उत्कृष्ट मनुष्यभवसे कुछ लाभ नही उठा पा रहे हैं। इस मनुष्यभव पाने की सार्थकता तो इसमे है कि ऐसा भीतरमे ज्ञान जगायें कि जिससे अपने भीतरके सहज ज्ञानस्वरूपका अनुभव हो जाय, इसके आगे और कोई वैभव नही है। अब तो जीवनमे चाहे जो आपत्तियाँ आवें, उनकी परवाह न करके एक इसी कामको करने के लिए दृढ हो जाये, तो यह बात सुगमतया बन सकती है। उसके लिए सकल्प होना चाहिए। जीव अनन्तानन्त हैं, उन सबकी अपेक्षा आपकी कितनी उत्कृष्ट स्थिति है? अब भविष्य आगे हमारा कैसा हो, वह सब हमारे भावोके अनुसार निर्भर है। जैसे आज हम आप मनुष्य हो गए तो यो ही नही हो गए। कुछ हमने शुभकार्य किए थे, अच्छे भाव किए थे, निर्मल दृष्टि बनायी थी, कुछ तपश्चरण भी किया था, बहुतसी अच्छी बातें की थी, उसका यह फल है कि आज हम आप मनुष्यभवमे आये हैं। तो अब हमे करना क्या चाहिए? वे ही अच्छी बातें करनी चाहिएँ, जो बुरी बाते हो उन्हे न करें। भीतरमे विकार पिशाच ऐसा पडा हुआ है कि जब क्रोध, मान, माया, लोभादिक का ऊधम चलता है तो उसका बडा कटुक फल मिलता है। इससे अच्छे ही काम अपने जीवनमे करते चले जावो। इसीमे जीवनकी सफलता। है नही तो एक दिन ऐसा आनेको है कि जब मरण करना होगा और

सारी पुण्यसामग्री, वैभव, यह मनुष्य जीवन ये सब व्यर्थ चले जायेंगे।

तत्त्वज्ञानका परिणाम—यहाँ उस ज्ञानके बारेमे ये सब चर्चायें चल रही हैं जो ज्ञान हमारा कल्याण करेगा हमको उस तत्त्वज्ञानमे क्यो बढना चाहिये ? यो कि अन्य बातो मे सार कुछ नही रखा है। यहाँ कुछ करते जावो, ढेर है, पौद्गलिक चीजे हैं। आपने लाखो करोडोका धन कमा लिया तो क्या है, पडा है। अब जिन-जिन जीवोके उपभोगमे आयेगा वे उस धनका उपभोग करेंगे। आपने उस धनका क्या कर लिया ? तुमने मान लिया कि ये मेरे बच्चे लोग है इनके काम आयगा यह सब धन, तो कौन किसका बच्चा ? मरने के बाद तो फिर कोई किसीका नही रह जाता। सभी जीवोका स्वरूप देखो—सब जीव स्वरूपदृष्टिसे एक समान है। यहाँ पर धनवैभवकी वृद्धिकी होड मचाना अविवेक है। यह सब विकारका ऊधम है। अपने आपकी ओर दृष्टि न गे, शान्तिका मार्ग न पाया तो यह सब ऊधम किया जा रहा है। इस ऊधमसे विराम लें, समे कुछ सार नही है। क्या कर लिया जाय कि सार है ? एक-एक बातको समझो। ५ . कमा लिया तो उसमे सार क्या ? जब तक वह धन पासमे है तब तक भी शान्ति नही, बल्कि अशान्ति ही है। आत्मा को तो अपने आपके तत्त्वज्ञानसे भी शान्ति है और दूसरा उपाय नही है। ज्ञान करे कि मै क्या हू, जब सबसे निराले, शरीरसे भी न्यारे चैतन्यस्वरूपमात्र निजआत्मतत्त्वकी दृष्टि रहेगी उस समय आपके सारे सकट समाप्त हो जायेंगे। जब यह निजअनुभव छूटेगा, बाहरमे दृष्टि देंगे, फिर सकट आ जायेंगे, लेकिन एक बार अपने आत्मतत्त्वका अनुभव होने पर फिर ये संकट सता न सकेंगे। इनमे अन्तर आ जायगा। यह बात मिलती है तत्त्व-ज्ञानसे। क्या देखना ? इन सब अनन्तानन्त पदार्थोमे प्रत्येक पदार्थ परस्पर एक दूसरे से अत्यन्त भिन्न है। किसी पदार्थका किसी अन्यपदार्थके साथ रचमात्र सम्बध नहीं है। सत्ता ही न्यारी है। सब अपने-अपनेमें उत्पादव्ययध्रौव्य रख रहे है। कोई पदार्थ रह ही नही सकता बिना परिणमनके। स्वभाव ही उसका है कि वह निरन्तर परिणमता रहे। बिना परिणमे किसी पदार्थकी सत्ता नही रह सकती। सब पदार्थ परिणमते रहते हैं। उन परि-णमनोमे जो विभावपरिणमन है, क्रोध, मान, माया, लोभादिक विभावपरिणमन है वह विकारपरिणमन अहित है। जन्ममरणकी परम्परा बढाने वाला है। यह ही मेरा खास शत्रु है। जिन कषायोको पकडे हुए है, जिन कषायोमे आकर विवेक खो देते है और वहीं सूझता है और कषाये रहती हैं, ये कषायें हमारी दुश्मन है। कषायोका अशमात्र भी न रहे। कषायोका रहना अनर्थ है, यह तो तथ्य है ही। कषाये सब दब गई हो और उसका

प्रकट अनर्थ भी नही हो रहा है तब भी भलाई की बात नही मिल पाती। वह कषाय फिर उमडती है तो फिर क्लेशका ही कारण बनती है। तो कषायका अश भी महाक्लेश करने वाला है। यह कषाय न जगे, जन्ममरणकी परम्परा मिटे, अपने आपके विशुद्ध ज्ञानस्वरूपमे निरन्तर अनुभवन चले, यह ही तो बात चाहिए।

कषायोंकी निवृत्तिका निर्णय--कषायोंसे हम दूर हट सकें, इसके लिए हमे थोड़ा यह ज्ञान चाहिए कि क्या ये कषाये हट सकती है। जिस कामको करने के लिए कोई तैयार होता है तो उसकी समझमे यह बात रहती है कि क्या यह मुझसे काम बन जायगा ? जब समझमे आता कि हाँ, यह काम बन जायगा तब उद्यम करके कामको बनाता है। मुझे कषायोसे हटना है, ये विकार मेरे शत्रु है। इन विकारोंसे मुझे दूर रहना है। तो क्या यह काम बन सकता है ? हॉ, बन सकता है। कैसे बन जायगा ? जब कषाये मुझमे हो रही हैं और पहिले से होती चली आ रही है तो ये हट कैसे जायेगी ? कुछ विवेक करनेपर वस्तु-स्वरूप जाननेपर परिणमनकी विधि समझनेपर विदित हो जायगा कि ये कषाये मेरे स्वभाव मे नही हैं। मेरे स्वभावमे नही है और परिणमन तो हो रहा है। कैसे स्वभावमे नही है ? वहाँ समाधान यह मिलेगा कि चूँकि ये उपाधिका निमित्त पाकर हुई हैं; मेरे स्वभावसे नही उठी है इस कारणसे ये परभाव है, ये मिट मिट सकती हैं। जो चीज नैमित्तिक है, औपाधिक हैं, वे चीजें मिटाई जा सकती है। कषाये मिटें कैसे, यह समझने के लिए यह निर्णय आवश्यक है कि कषाये औपाधिक है, मेरे स्वरूपसे उठी हुई नही हैं, परभाव है। यदि यहाँ यह पूछा जाय कि कषाये परभाव है, तो रहने दो, नाचने दो, ये मेरी तो नही है, ये तो कर्मोके उदयसे हुई है। तो उत्तर मिलेगा कुज सोचनेपर कि यद्यपि ये क ाये औपाधिक है, उपाधिका उदय पाकर हुई है, लेकिन परिणमन इनका मेरेमे है। क्या ऐसा भी हुआ करता है कि परिणमन तो मेरेमे हो और हो किसी अन्यके उदयका निमित्त पाकर ? हाँ, होता रहता है, दृष्टान्त ले लो दर्पणका। दर्पणके सामने हाथ किया गया और दर्पणमे हाथकी छाया आ गई। देखो वहाँ दोनो बातें है। दर्पणकी छाया मिट सकती है क्या ? हा। जानने वाले लोग समझते हैं कि हाथका निमित्त पाकर यह छाया बनी है। हाथ हट गया तो छाया हट गई। यह कारणकार्यविधानकी बात कह रहे है। तभी तो यदि उस छायासे कुछ अरुचि है तो वह उसे दूर कर लेता है। तो हाथका निमित्त पाकर दर्पणमे छाया हुई। तो छाया अगर हाथकी है तो रहने दो। दर्पणका उससे क्या बिगडा ? सो सुनिये छायाका परिणमन दर्पणमे है, दर्पणका है। हाथ तो निमित्त मात्र है। तो यह कषायभाव इस तरह

उत्पन्न हुआ है कि कर्मोंका उदय हुआ, उसका निमित्त पाकर आत्मामे कषायपरिणमन जगा। आत्मामे आत्माकी योग्यतासे आत्माकी परिणतिसे आत्मामे कषाय जगा, लेकिन वह औपाधिक है अतएव विभाव है और मेटा जा सकता है, औपाधिक चीज मेटी जा सकती है, निरुपाधि चीज नही मेटी जा सकती। तो हमको इस निमित्त प्रक्रियासे जाननेमे एक साहस निमित्त मिला। यह निमित्त मिटाया जा सकता है क्योकि औपाधिक है। ऐसा उपाय करे जिससे उपाधि दूर हो जाय, ये कर्म दूर हो जाये। फिर य ाँ औपाधिकभाव रहेगा नही।

विभावोंसे निवृत्त होनेका उपाय—अब देखिये, ऐसा उपाय क्या निकले कि जिससे उपाधि दूर हो सके ? उसका उपाय यही है कि चूँकि उपाधि परद्रव्य है। तो जब हम उपाधिके फलमे राग कर रहे है तो यह उपाधिका बन्धन बनता रहेगा। हम उपाधिके फल मे राग न रखे, लगाव न रखे और उस विभावसे विकारसे भिन्न जो मेरा स्वरूप है उसे समझे। देखिये—वस्तुको स्वतत्र-स्वतंत्र समझने की बडी महिमा है। उपाधिके, कर्ममलके, जन्ममरणके संकट दूर करनेका हम आपके लिए एक ही उपाय है, अपने परिपूर्ण स्वतत्र स्वरूपको जान ले, फिर जो भी होना चाहिए कल्याणके लिए वह होता रहेगा, हो जायेगा। अपने आपको पहिचान ले कि मैं आत्मा समस्त परपदार्थोंसे निराला केवल चैतन्यप्रकाश मात्र हू, परख लो अपने आपको, भला हो जायेगा। यह बात जानी जायेगी वस्तुस्वरूपके ज्ञानसे। प्रत्येक पदार्थ अपनेमे अपनी सत्ता लिए हुए परिपूर्ण है और अपने उत्पादव्ययसे परिणमता रहता हैं। तो क्या इस जीव पदार्थने विकार उत्पन्न करनेके लिए कर्मोदयकी अपेक्षा नही की ? हा नही की। नही की अपेक्षा, फिर भी कर्मोदयका निमित्त पाकर ये विकार हुए है। कर्मोकी हमें जानकारी तक भी स्पष्ट नही है। और हम आपको आगमके अनुसार जानकारी है, लेकिन ये (अनन्त) जीव जो ससारमे रुल रहे है इनको कर्मकी कुछ भी जानकारी नही है तो वे कर्मकी अपेक्षा क्या करें, कर्मका आश्रय क्या करें ? लेकिन वहा सहज निमित्तनैमित्तिक ऐसा सम्बन्ध है कि कर्मका उदय पाकर जीव अपने विकारसे परिणत होते रहते है।

ज्ञानी गृहस्थकी विचारधारा—अब इस सिलसिलेको बतलाते है कि जिससे इन कर्मो का बध न हो और संसारमें जन्म मरणकी परम्परा बढे। उसका उपाय है सबसे निराले विशुद्ध परिपूर्ण अपने सहज चैतन्यस्वरूपका बोध करना। मैं पूरा हू, स्वरक्षित हूं, अपने में अपनी परिणतिसे परिणमता हू। इस लोकका क्या भय ? लोग तो इस लोकका बहुत भय करते। अभी कोई ऐसा कानून बन जाय कि एक व्यक्ति ५० हजारसे अधिकारी सम्पत्ति

नही रख सकता। लो इतनी वात सुननेमे आयी भर कि चिन्ता अभीसे करने लगते हैं, लेकिन जो ज्ञानी पुरुष है वे जानते है कि यह सम्पदा मेरी कुछ नही है, चली गई तो क्या हुआ ? वह तो मेरी थी ही नही। वटवारा हो गया तो क्या हुआ ? मैं तो एक चैतन्य स्वरूपको लिए हुए उतना ही पूरा हूँ। उतनेमे ही रहने वाला हूँ। मेरा तो कुछ भी नही घटा। कोई जीव परलोकका भय करते है। सो इस लोकका भय करने वालेकी अपेक्षा वे जरा अच्छे माने जाते है। जो लोग ऐसा सोचते है कि मेरी परलोकमे दुर्गति न हो, मुझे स्वर्ग मिले, नरक न मिले, खोटी गति न मिले, अच्छी जगह हम उत्पन्न हो, इसके लिए हमे अच्छे काम करना चाहिए, बुरे कामोसे दूर रहना चाहिए। जिनका ऐसा कुछ विचार चलता है वे लोग इस लोकका भय करने वालोसे अच्छे है। लेकिन अभी तक जिसने अपने विशुद्ध अविकार स्वरूपको नही जाना और यह नही परखा कि मेरा तो परलोक है ही नही, यही मेरा स्वरूप परलोक है, मुझे तो परलोकमात्र भी न चाहिए, उसमे खोज क्या करना कि ऐसी गति न मिले, ऐसी गति मिले। अरे मेरे स्वरूपमे तो कोई गति नही है, कोई भव नही है। मैं भवरहित गतिरहित, शरीररहित, केवल चित्प्रकाशमात्र हू। वह मुझे दृष्टिमे चाहिए। यदि देव हो गए, इन्द्र हो गए, राजा हो गए और यह दृष्टि नही प्राप्त हुई हो तो भी मुझे क्या लाभ ? अरे विपाक ऐसा हो कि नरक भी हो गया हो और ऐसी दृष्टि मुझे मिल रही हो तो उस अन्त दृष्ट हुए अपने मोक्षमार्गमे जब भी लगे हुए हो, तो मुझे तो अपने सहजस्वरूपकी दृष्टि चाहिए। ऐसे विचार वाले लोगोको इह लोक और परलोकका भय नही रहता। वेदनाभयकी बात कुछ कठिन है। शरीरमे कोई रोग हो गया, बुखार, खाँसी वगैरह कोई बीमारी हो गई तो चूँकि हम आपमे शरीरका बन्धन लगा है इसलिए उस शारीरिक वेदनाको सहना हम आपको कठिन हो रहा है। अब उसे दु खपूर्वक सहते कि हा ! मैं बहुत परेशान हू, मुझे बडी पीडा है, हाय कैसे मेरी यह वेदना मिटेगी ? अरे जैसे हो सो हो, परेशानी कुछ नही है। यह वेदना भी चल रही है, यह भी स्थिति है, वह भी समझा जा रहा है, मैं तो एक चैतन्यमात्र हू। उसमे उपयोग रहता है तो इतना विकट उपद्रव भी मेरे को नही सताता। भूल तो हमारी यही है कि जो हम अपने स्वरूपमे नही टिक रहे। वहा वेदना क्या ? वहाँ रोग क्या ? वहा भय क्या ? तो जैसा ज्ञान बढेगा वैसी ही अपनी दृष्टि निर्मल होगी। वेदनाभय भी न रहेगा, फिर अन्य भय जो केवल मानसिक विकल्प हैं — मेरी रक्षाका साधन नहीं, मेरा बढिया घर नहीं, मेरे किवाड मजबूत नही, कोई मेरा सहाय नही, मैं तो बडा असहाय हू, मेरा कैसे गुजारा

होगा ? अरे सारे लोग विरुद्ध हो, खुला मैदान हो, चोर उठा ले जाये, कुछ भी न रहे, कैसी भी स्थितियाँ आये, तो ठीक है, आने तो दो, आवे, मै तो अपने स्वरूपमात्र हू। मेरे उपयोगमे मेरेको कोई बाधा नही। किन्तु इतनी हिम्मत कोई कर सकेगा क्या ? इसके लिए बडा ज्ञानबल चाहिए, सही तत्त्वज्ञान चाहिए, तब यह बात बन सकेगी। यो साधारण सहज न बनेगी।

मोहबन्धन शिथिल न करनेकी आदतमें शान्तिकी आशाकी व्यर्थता—भैया ! जो मोह बनाये हुए हैं, उस विकारको ढीला करना है। जो आदत बनाये हुए है कि हमारे पैसोका जो खर्च है वह हमारे स्त्री पुत्रोके लिए है, बाकी सब तो गैर लोग है। यहा कुछ आदत बदलनी है। अरे ऐसी आदत बनायें कि दूसरोके लिए भी अपना कुछ खर्च करके अपने इस मोहको ढीला करे। मोहमें यही तो हो रहा है। जो कुछ धन है, वह सब अपने स्त्री पुत्रादिके लिए ही खर्च करने को तैयार रहते है, बाकी लोगोको तो गैर समझते है, उनके लिए यदि कभी कुछ खर्च करना पडा तो बडा हिसाब लगाते है। अरे अपनी आदत कुछ ऐसी बनाओ कि दूसरो की पीड़ा हरने मे, दूसरोका काम सुधारनेमे, दूसरोको सुख शान्ति दिलाने में यदि कुछ खर्च करना पडता है तो खुशी-खुशीसे खर्च करने को तैयार रहें। ऐसी आदत बनाने से यह मोह ढीला हो जायगा। मोहको दूर करनेका मुख्य उपाय है ज्ञान, भेद विज्ञान। वस्तुके यथार्थ स्वरूपका ज्ञान करे तो मोह दूर होगा। मोह दूर होने पर ही हम आपको शान्तिका मार्ग मिलेगा। मोहमे शान्तिकी आशा करना व्यर्थ है। उतना व्यर्थ है कि जैसे ईंधनमे आग डाल डालकर उससे ठडककी चाह करना व्यर्थ है, ऐसे ही मोह करके शान्ति लाभकी आशा करना व्यर्थ है। भैया ! अब यह जान गए होगे कि ये जो कषायभाव उत्पन्न होते है, ये औपाधिक हैं, कर्मोपाधिका निमित्त पाकर हुए है, अत ये मिटाये जा सकते है; पर मिटानेका तरीका क्या है? कर्मो पर दृष्टि नही, निमित्त पर दृष्टि करना नही, किन्तु स्वभाव वाला जो अपना आत्मतत्त्व है, सहज चैतन्य स्वरूप है उसको दृष्टिमे लेना है। वह उपयोगमे बना रहे तो शान्तिका मार्ग, कर्म कटनेका मार्ग, कषायोको दूर करनेका मार्ग मिलेगा। इससे ज्ञानार्जनका उद्यम करे और अपने आपमे अनन्त शक्तिमान सहज चैतन्य प्रभुका भान करे।

अपनी वृत्तिके प्रयोजनका निर्णय—धर्मके प्रसगमे जो कुछ करना है वह अपने लिए, सुनना है वह अपने लिए, बोलना है वह अपने लिए। इस प्रकारकी पहिले धारणा रखकर जो कदम बढाये जाते हैं उनमे फिर सफलता प्राप्त होती है। वास्तविकता यह है

कि हम आप लोग इस समय बहुत कडी विपत्तिमे फँसे हुए हैं और आज पुण्यके उदयमे इस ठाठके समागममे मालूम नही पड रहा है, लेकिन कितनी कठिन विपदा है ? एक व्यक्ति पर नही जितने लोग यहा बैठे हैं उन सभी पर। वह क्या कठिन विपदा है ? वह विपदा है जन्म मरणकी। जन्मते हैं, मरते हैं। उसके बाद दूसरे जन्म होंगे, उनके बाद भी यह जन्म मरणकी विपत्ति बनी रहेगी। यही जन्म मरणकी वृत्ति अनादिकालसे इस जीवकी चली आ रही है और उस विपत्तिमे हम आप सब फसे हुए है, तिस पर भी गजबकी बात यह है कि जिसको जो जिन्दगी मिली है उस जीवनमे जो समागम मिला है, उस समागम को ही अपना सर्वस्व मानकर एक बहुत गहन अधकारमे पडा हुआ है। इसका दिल जब ऐसा कह उठे कि जगतके जितने जीव हैं वे सब मेरे स्वरूपके समान है, और जो घरमे रहते है वे भी वैसे ही स्वरूपवान् है, जैसे जगत्के सब जीव है, उनमे इनसे कोई खासियत नही है कि ये मेरे कुछ बन जायें। पदार्थ अपने आपमे परिपूर्ण होता है, वह अधूरा नही है। कही मैं ऐसा अधूरा नही हू कि मेरे मित्र लोग मुझे पूर्ण बना देगे या ये घरके लोग कोई अधूरे नही है कि आपको उन्हे पूर्ण करना पडे। लेकिन ऐसा कुछ मोहका अधकार है कि लोग ऐसी श्रद्धा कर बैठे हैं कि मेरा सुख, मेरा हित मेरा सब कुछ इन लोगोसे है। अरे इस जगतमे सब अनाथ हैं। यहा कोई किसीका सहाय नही, और यदि अपने आपके भीतरकी निधिका पता पड जाय तो सब अपने सहाय पर आ गए। इतना भर अन्तर है—जिसने अपने नाथको नही पहिचाना वह अनाथ है और जिसने अपने अन्त प्रकाशमान नाथकी ओर एक बार क्षणभर भी दृष्टि भी दी, बस वह नाथ है, वह स्वसहाय है, वही वास्तविक आनन्दका पात्र है।

लोकमें परसे अनाथत्वकी एक कथा—एक राजा कही जा रहा था तो उसे जगल मे एक मुनिराज जो युवावस्थाके थे, बडी प्रसन्न मुद्रामे बैठे हुए थे। उनकी सूरत देखकर ही राजाका चित्त हर गया और उन मुनिराजके पास वह राजा बैठ गया। कुछ देर राजा प्रतीक्षा करता रहा कि महाराज अपनी आँखें खोलें तो मैं कुछ बात करू। जब काफी समय प्रतीक्षा करते हो गया तो राजा हाथ जोडकर बोला—महाराज! मेरी बात सुनो। मुनिने नेत्र खोल दिए। मैं बहुत देरसे बैठा हुआ आपकी प्रतीक्षा कर रहा हू। आपको देखकर मुझे बडी दया आयी, आप यहाँ अकेले हैं, आपके तनपर वस्त्र भी नही हैं, आपके पास कोई आदमी भी नही है, खाने-पीनेका कोई साधन भी नही है, आपके आरामका कोई साधन नही है, आपकी ऐसी हालत देखकर मेरे मनमे ऐसा आया कि मैं इनका दु ख दूर करूं। सो

कृपा करके आप बताइये कि आप कौन है ? तो मुनिराज बोले । मैं अनाथी मुनि हू । तो राजा बोला--महाराज ! अब आप ये शब्द मत बोले—आजसे मैं आपका नाथ बनता हूँ, आप हमारे घर चलो, वहाँ खूब ठाठ-वाटसे रहो, आपसे हम कुछ काम भी न लेंगे । आप आनन्दसे रहना । आजसे हम आपके नाथ बन रहे है । तो वह मुनि पूछते है कि आप कौन हैं ? तो वह राजा बोला—अरे मैं अमुक राजा हू । मेरे पास बडा ठाठबाट है, बडी सेना है, २०० नगरोका मालिक हू, मैं एक बहुत बडी विभूतिका स्वामी हू । हे महाराज ! आप रच भी किसी प्रकारका सन्देह न करें । अब आप अनाथ नही रहे । मैं आपका नाथ हू । तो वह मुनिराज बोले—राजन् पहिले मैं भी आप जैसा ही था । ऐसे ही ठाठ बाट मेरे पास भी थे । तो फिर आपने सब कुछ क्यो छोड दिया ? तब फिर आप अपने को अनाथ क्यो कहते है ? राजन् ! एक बार मेरे शिरमे बडे जोरका दर्द हुआ, उस समय मेरे परिवारके सभी लोग मेरे पास थे, सभी बडी दयाभरी प्रेमयुक्त बाते भी बोलते थे, सब प्रकारकी दवायें भी करते थे, पर मेरे उस दर्दके दुःखको कोई रच भी न बाट सका, बस मेरी समझ मे आगया कि मेरा यहाँ कही कुछ नहीं है, मेरा कोई नही है, और मैं सब कुछ छोडकर यहाँ चला आया हू । और तभीसे मैंने समझ लिया था कि मैं इस लोकमे अनाथ हू अर्थात् यहाँ मेरा शरण रक्षक, हितू कोई नही है । तो भैया ! यहाँ कोई किसीका शरण नही । यहा किसका आलम्बन लें ?

जन्ममरणसे छुटकारा पाने का उपाय बनाने में ही बुद्धिमानी--हम आप इस जन्म-मरणकी बडी विपत्तिसे छुटकारा पानेकी कोई बात नही सोच रहे है, यह कितनी बडी भारी भूल है ? हम आप जिस भगवानके दर्शन करने प्रतिदिन मदिर जाते है, जिनके नामपर बडे-बडे मदिर बनवाते है, बहुत बहुत पूजापाठ करते है, बडे-बडे विधान करते है उनमे क्या खास बात है ? खास बात यही है कि वे जन्ममरणके चक्रसे सदाके लिए छूट गए, उन्होने अनन्त आनन्द प्राप्त कर लिया । अब वे अपने शुद्ध ज्ञानमे निरन्तर बर्त रहे हैं, कोई विकल्प नही है । भाई इस प्रकारकी परिस्थिति अवस्था हम आपकी भी हो सकती है । आखिर द्रव्य वही हैं, जीवद्रव्य एक स्वरूप है, वहां भेद नही है । जैसा प्रभुका स्वरूप है वैसा ही मेरा स्वरूप है, लेकिन अन्तर यही ऊपर हो गया कि वे वीतरागी है, पूर्णज्ञानी है और हम सरागी है अल्पज्ञानी है । तब यह कोशिश करनी चाहिए कि हम जिस प्रकार भी हो सके, वीतरागता प्राप्त करें । उसका उपाय है तत्त्वज्ञान । तत्त्वज्ञान यही है कि भली-भाति यह समझ लें कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे परिपूर्ण है, स्वतत्र है, किसी दूसरेकी अपेक्षा

से रहित है। देख लें कि प्रत्येक पदार्थ अपने-अपने स्वरूपमे परिपूर्ण है। मैं भी अपने आपमे परिपूर्ण हूं, तब मेरा दुनियासे क्या वास्ता? ऐसा वस्तुकी स्वतन्त्रताका भान होने मे मोह टूटता है। इस मोहको तोडे विना इस जीवको कल्याण न मिलेगा। इस प्रकारका अन्त यत्न करे तत्त्वज्ञानका कि जिससे यह मोह टूटे। यहाँ सारी महिमा मोह दूर करनेकी है। सब कुछ किया, किन्तु अपना मोह न हटा सके तो जन्ममरणकी विपत्तिसे छूटने की बात न आ सकेगी। इससे भैया, कैसा दुर्लभ यह मनुष्यजीवन पाया है, जिनवाणीका समागम पाया है, सुकुल पाया है, श्रेष्ठ मन मिला है, समय समयपर सत्सग भी मिलता रहता है। ये सब बातें हम आपने प्राप्त की हैं। अब इनका सदुपयोग कर ले तो ठीक है। और अगर इनका सदुपयोग नही करते तो बडे झंझटमे पड जायेंगे।

मनुष्यभवके अनुपम सदुपयोगका अनुरोध—एक नगर था, जिसमे राजा बननेकी यह तरकीब थी कि किसीको एक वर्षके लिए राजा चुन लिया जाता था और एक वर्ष बाद उसे राज्यपदसे उतारकर निर्जन बनमे छोड दिया जाता था, इसलिए कि अगर यह बस्तीमे रहेगा तो इसका अपमान होगा, कि देखो यह अभी तक तो राजा था और अब इस हालत मे है। तो बहुतसे लोग राजा बने और जगलमें छोडे गए। एक बार कोई विवेकी पुरुष भी राजा बना। अब उसने सोचा कि एक वर्ष तकके लिए तो मेरा सब कुछ अधिकार है, मैं जो चाहे कर सकता हू, सो उसने क्या उपाय किया कि एक जगलके बीचमे खेतीका फार्म बनवाया, उसके अन्दर मकान बनवाया, खेती करने वाले बैल व बहुतसे औजार भिजवा दिये, बहुतसे नौकर-चाकर भिजवा दिये। जब एक वर्ष बाद वह राजपदसे च्युत करके जंगल मे छोडा गया तो उसे क्या कष्ट? वह तो वहा भी खूब मजेमे रहा। तो इसी तरहसे हम आप इस ससारमे कुछ वर्षोंके लिए राजा बन गए है, ऐसा समझ ले। क्योकि समस्त जीव जतुओमे राजा है यह मनुष्य। अन्य जीवोकी अपेक्षा हम आप मनुष्योमे वहुत अधिक श्रेष्ठता है। तो बन तो गए राजा, पर अब हमारा कर्तव्य क्या है सो तो विचारो? इस ससारमे हम आप जन्म मरण करते हुए घोर दुःख पा रहे हैं। आज इस मनुष्यभवमे आये हैं। यदि कोई विवेकी पुरुष हो तो उसका कर्तव्य है कि इस पाये हुए श्रेष्ठ मनके द्वारा कोई ऐसा उपाय बना लें कि जिससे कुयोनियोंमे भ्रमण न करना पडे। भैया, यहा का तो यही नियम है कि यदि अपने आपकी संभाल न की तो नरक निगोदरूपी बीहड वनमे हम आप पटक दिए जायेंगे। फिर वहा हितका पथ न मिलेगा तो अच्छा है कि इस श्रेष्ठ मनसे अच्छे विचार करें, मैं इस समय भी इस देहसे भी निराला एक चैतन्य प्रकाशमात्र आत्मतत्त्व हू।

इस प्रकारका अपने आपके प्रति विचार चले, चिन्तन चले, बाहरी बाते सोचनेसे कुछ लाभ नही। हम सोचे अपने आपके भीतरकी बात। कितने भीतरकी बात ? भीतर ही सब कुछ एक ऐसी संमुखता और परान्मुखताकी हद है कि जरा-सी भूलमे यहाँ (अपने आपके अन्दर की बात) न सोचकर बाहरी बाते सोचने मे आयें तो वह बाहरी खिचाव बहुत अधिक बढ जाना है। वह फंसाव एक ऐसा फसाव है कि बढता ही जाता है। तो हमे अपने आपको स्वभावमे केन्द्रित करना है और अपने मे अपने उस नाथको निहारना है जो कि पूर्ण शुद्ध है। जहाँ उपयोग जायेगा तो अपने आपको एक अलौकिक दुनिया मिलेगी। उसकी प्राप्तिके लिए आवश्यक है कि हम अपने ज्ञानकी ओर बढें। वही हमारी कदम हमारे कल्याणका कारण बनेगी।

द्रव्यका स्वरूप व परिणमनविधान—द्रव्यका स्वरूप है कि वह है और परिणमता है। प्रत्येक पदार्थ 'है' तभी कहलाता है जब कि परिणामी हो। परिणामी न हो तो अस्तित्व नही हो सकता। प्रत्येक पदार्थमे परिणमन निरन्तर चलता ही रहता है। तो पदार्थमे पदार्थ की ओरसे केवल परिणमन सामान्यकी बात यह तो शाश्वत् निश्चित ही है। अब उसके साथ-साथ चूकि सामान्य विशेषरहित नही होता तो जो भी अवस्था हुई है वह एक विशिष्ट पर्याय कहलाती है। समस्त द्रव्योमे दो द्रव्य है जो विभावरूप परिणम सकते है—जीव और पुद्गल। शेषके चार द्रव्योमे विभावरूप परिणमन न कभी हुआ है, न कभी हुआ था और न कभी हो सकेगा। केवल दो जातिके पदार्थ हैं जिनमे परिणमन होता है, अब इन विभाव-परिणमनोको हम जब वैज्ञानिक दृष्टिसे देखते है, कार्यकारणकी दृष्टिमे निरखते है तो वहाँ यह विदित होगा कि योग्य उपादान अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर अपने आपमे अपने ही प्रभावसे अपनेमे विभाव प्रभाव उत्पन्न करते रहते है, ऐसे विभावपरिणतिकी निष्पत्ति की प्रकृति है। इनमे से किसी भी बातको मना करके देखे तो उत्पत्ति न बनेगी। योग्य उपादान अपने ही प्रभावसे अपनी ही शक्तिसे स्वय ही बिना निमित्त पाये सन्निधान बिना, उपाधि बिना अपने ही स्वभावसे विभावरूप परिणमता है, ऐसा स्वीकार करने मे विभाव परिणामके अन्तका अवसर नही आ सकता। चूँकि ये विभाव है, परका सन्निधान पाकर हुए हैं, इस कारण इनकी स्वरूपमे प्रतिष्ठा नही है, अतएव ये पृथक् हो सकते हैं। यदि इस पक्षको लेकर चलें कि उपादानमे योग्यताकी बात क्या ? निमित्त पडेगा तो वह जबरदस्ती परिणमा देगा, तो भला यह बतलाओ कि निमित्त स्वयं परिणममान को परिणमाता या जो खुद न परिणमे उसे परिणमाता है ? अर्थात् परिणमने वाला तो वह खुद उपादान है।

वह अपने ढगमे अपनेमे परिणमन कर रहा है। तो जो परिणमन कर सके, परिणम सके ऐसे परिणाम रहे उपादानका ही तो कोई निमित्त हो सकेगा अन्यथा कोल्हू यदि तैल पेल देनेका निमित्त है तो कोल्हूमे बालू डाल दी जाय तो उससे भी तैल निकाल दे, पर ऐसा कहाँ होता ? तो यह पक्ष भी न बन सकेगा कि निमित्त उपादानको परिणमा देता है, उसमे योग्यता आदिककी क्या आवश्यकता है ? तब स्थिति यह है कि निमित्त सन्निधान पाकर योग्य उपादान अपने मे अपने प्रभाव वाला बनता है। अब वैज्ञानिक दृष्टिसे यह बात आयी और इस दृष्टिसे पर्याय अनियत हुआ। जैसा योग्य उपादान है, जैसा निमित्त सन्निधान है उस व्यवस्थामे उस प्रकारका परिणमन हुआ।

अनियत पर्यायोंको नियतरूपसे देखनेकी दृष्टि—अभी एक-एक दृष्टिसे देखते चलें फिर सब देखकर कुछ समय बाद निष्कर्ष पायेगे। अभी विधानकी बात देखे, इसी रीति से जगतकी व्यवस्था बनी हुई है। लोग समझते है कि इस प्रकारका योग्यपदार्थ ऐसे योग्य अनुकूल निमित्त सन्निधानमे इस तरह परिणाम जाता है, तभी तो लोग रोटी बना लेते या अन्य कार्य उत्पन्न कर लेते, या किन्ही भी व्यावहारिक कार्योंमे प्रवृत्त होते है। उनको पूर्ण श्रद्धा है कि इस प्रकारके निमित्तको लेकर यह रोटी बन जाया करती है, उसमे कोई भूल नही बना रहा। इससे सिद्ध है कि कारण कार्यका जो विधान है वह यथार्थ है और उस ढगसे क्रिया निष्पत्ति होती है। उसमे तीन कारण हुआ करते हैं—उपादान कारण, निमित्त कारण और प्रतिबधकका अभाव। इस प्रकार विभावोकी उपपत्ति हुआ करती है। इस कारण कार्य विधानपूर्वक उत्पन्न होने वाले अनियत पर्यायोको चूकि भगवान सर्वज्ञदेवने अथवा विशिष्ट अवधिज्ञानियोने देख लिया। अनियत पर्याये जब-जब जिस तरह उत्पन्न होती हैं वे सब ज्ञानमे आ गईं। तो अनियत ढगसे उत्पन्न होने वाली अनियत पर्यायोको चूकि ज्ञानी पुरुषने जान लिया, अब उस जानने की ओरसे जब परखा जाता है तब वे पर्यायें नियत है, अर्थात् जब जो होना है, जब जो जाना गया है उस समयमे वह पर्याय होती है। उस दृष्टिमे चूकि ज्ञानियो द्वारा वह दृष्ट है और वह होता है यो सब नियत है। अनेक ऐसे उदाहरण मिलेंगे पुराणोमे कि बताया जो कुछ वह हुआ। नेमिनाथ स्वामीके समवशरणमे बात आयी कि १२ वर्षमे यह द्वारिका भस्म होगी, सो उपाय तो बहुत किए गए पर हुआ वैसा ही। तो नियतमे कारण कार्यविधानका लोप करके देखने से विवाद और एकान्त उलझन हो जाती है, मगर कार्यकारण विधानपूर्वक होने वाले परिणमनोका कारण-कार्य विधानपूर्वक होता है, अतएव अनियत कहलाता है। इस प्रकार होने वाले उन अनियत

परिणामोको चूंकि जान लिया तो जैसा होना था वैसा हुआ। यहाँ जैसा होना है वैसा जान लिया, यह बात तथ्यकी है, अब निष्कर्षरूपमें हम यह भी कह सकते है कि जैसा जाना है वैसा होगा। तो उस जाननकी अपेक्षा नियत है, पर केवल जाननेकी अपेक्षा नियत है इतने मात्रसे हम नियत अनियत समझ लेते है और कारण कार्य विधानकी अपेक्षा वे पर्यायें अनियत उत्पन्न होती है। यो हम अनियत समझते हैं। तो जरा वचनोका प्रभाव तो देखो—जब हम समस्त पर्यायोको नियतके ढंगसे देखते है, बात यह मिथ्या नही है, चूकि ज्ञानमे जो दृष्ट है, होगा उस समय वही, उसमे फेरफारकी बात नही है, फेरफार भी बीचमे होता है तो फेर भी हो, पर वह फेर भी नियत है। तो ज्ञानी पुरुषके द्वारा देखे गये के ढगसे वह पर्याय नियत है।

नियत व अनियत दृष्टिसे देखनेका सत्वर प्रभाव—अब जरा नियतदृष्टिसे देखनेका प्रभाव देखें कि हम उससे हित क्या पा सकते है ? नियम है जब जो होना है सो होता है ऐसा सोचकर इसकी दो धारायें बन सकती है, एक तो यह बन सकती है कि क्या विकल्प करते हो ? क्यो श्रम करते हो ? जो होना होगा सो हो जायेगा। विकल्प न करो। किसी की यह धारा बन सकती है। किन्तु प्राय होता हे क्या कि जब जो होना है वह होता हे। श्रम क्यो करे ? तो श्रमके मायने अन्त पौरुष। यहा बात गुजर पडती है। अब अनियतके ढंगसे निहारने पर क्या प्रभाव हो सकता है सो देखिये—चूँकि कारणकार्य विधानपूर्वक यह सब है। देखो अपने भाव बुरे बन गए तो इस तरहकी बात बनती है, अच्छे भाव बनेंगे तो इस तरहकी बात बनती है और ऐसा भविष्य बनाने के लिए जहा पूर्ण निराकुलता और शान्ति हो उसके लिए यह प्रयास करे कि अपने आपके सहजस्वरूपका जो कि सबसे विभक्त है, अपने आपके एकत्वमे गत है उस स्वरूपको निरखे, इसका प्रयास करने से भला होगा तो अनियतके ढंगसे निहारने वाले को यहां यह प्रेरणा मिलती है कि अपना पौरुष संभाले, प्रमाद न करे, प्रमाद करनेका फल बुरा है। ऐसे ऐसे जन्ममरण करके आगे दुखोको भोगना पडेगा तो प्रभाव भी उनका अलग-अलग है।

विभावपर्यायमें अनियतत्व व नियतत्वका अविरोध—हम कारण कार्य विधान व वैज्ञानिक दृष्टिसे देखे। जैसे कि प्रयोग करने वाले लोग चीजोको मिलाकर उनका प्रभाव देखते हैं, अमुक रसायनके मिलाने से क्या बनता है, वे सब विभाव उत्पन्न होने की ही बातें हैं। तो कारण कार्य विधानपूर्वक चूँकि होता है तो वह पर्याय नवीन उत्पन्न होती है। पहिले से कोई पर्याय नवीन उत्पन्न होती है। पहिले मे कोई पर्याय पडी हुई है या पहिले मे

स्वभावमे नियत हो, वह पर्याय हुई हो ऐसा नही, किन्तु नवीन पर्याय हुई है उस कारण-कार्य विधानमे। नियतके मायने केवल यह लीजिए कि जव जो होना है सो होता है। भगवान्ने भी देखा। विशिष्ट ज्ञानियोने भी देखा, इतने मात्रका तो निषेध नही किया जा सकता। और यदि यह अर्थ किया जाता कि पदार्थमे स्वभावसे नियत है, क्योकि अनन्त पर्यायोका वह पिण्ड है और उसमे वे पर्याये नियत पडी हुई है तो वह एक स्वभावसे एकान्ततया देखा गया है, अतएव मिथ्या बन जाता है। यद्यपि है ऐसा कि सब विदित है, किन्तु उसमे कारण कार्यका विधानका लोप करके केवल द्रव्यके स्वभावसे ही पर्याये नियत माना है, इस कारण उसमे विपरीतता आती है। केवलज्ञानीके द्वारा ज्ञान है, सो वैसा उस समय वह होगा ऐसा नियतपना मानने मे कोई विरोधकी बात नही आ सकती है, पर स्वभावमे नियत नही है। जैसे स्वभावपरिणमन स्वभावतया नियत है, अन्य परिणमन की गुंजाइश कहाँ? आत्मा परमात्मा हो गया, सिद्ध हो गया, उसमे जितने परिणमन होगे ज्ञान, दर्शन, आनन्द आदिक सब परिणमन नियत हैं। अन्य प्रकार होगा कहाँ? एक प्रकार है, सदृश हैं, वे पर्याये स्वभावकी ओरसे नियत है, किन्तु रागद्वेष मोह विषय कषाय आदिक परिणमन आत्मा मे स्वभावके रूपसे नियत नही हैं। चूँकि वे परउपाधिका सन्निधान पाकर उत्पन्न हुई हैं अत वे अनियत है। और वे हुई है कारणकार्यविधानपूर्वक।

पर्यायकी नियतता व अनियतताके अविरोधकी एक दृष्टि—अब जरा इस दृष्टिसे भी निरखें, पदार्थ वर्तमानमे परिपूर्ण है, आगे परिणमन होगा, परिणमन बिना पदार्थ न रहेगा, अतएव जितने परिणमन है उन परिणमनोका पिण्ड पदार्थ है, यह हमने एक युक्तिसे कहा है, लेकिन पदार्थ तो इस समय है, वह पूर्ण है, अब उसमे आगेकी बात कुछ नही पडी हुई है। विज्ञानसे प्रयोगसे वर्तमान निरीक्षण होता है। पदार्थ परिपूर्ण है। अब जैसा योग्य उपादान है और जैसा अनुकूल निमित्त सन्निधान है उस प्रकार वैसी बात बन गई। विभाव-पर्यायके सम्बधमे कह रहे है तो वह नवीन ही बात हुई। बताया भी गया है कि कथचित् असत्का उत्पाद है कथचित् सत्का उत्पाद, यह कथचित् असत्का उत्पाद किस तरह है? एक वैज्ञानिक दृष्टिमे कि उस कारण कार्य विधानपूर्वक वे सब निष्पन्न हुए हैं तो इसको अगर एक वाक्यमे कहा जाय तो कारण-कार्य विधानपूर्वक उत्पन्न होने वाले अनियत पर्यायो को नियतके ढंगसे देखना यह हुआ करता है, तो उस ज्ञानदृष्टिकी ओरसे नियत है, किन्तु पदार्थमें स्वभावत कोई गुण ऐसा पडा कि जो कुछ विशिष्ट क्रमको नियत कर देने वाला हो। निमित्त पाकर ये विभाव हुआ करते है, अतएव वे अनियत हैं। यो नियत और अनि-

यत होनेकी दृष्टिसे जाने और परिणमनको समझते रहे तो उसमे किसी तरहका विरोध नही आता।

स्याद्वादनीतिका मर्म—स्याद्वाद सप्रतिपक्ष धर्मको मानने पर निष्पन्न होता है। एक पदार्थमे अनेक धर्मोंको माननेका नाम अनेकान्तपद्धति नही है। उसे अनेकान्त तो कहेगे, मगर अनेकान्त पद्धति स्याद्वाद पद्धति वाला अनेकान्त तो कहेगे, मगर अनेकान्त पद्धति स्याद्वादपद्धति वाला अनेकान्त नही है। एक पदार्थमे अनेक धर्म रह रहे है। आत्मामे दर्शन है, ज्ञान है, चारित्र है, आनन्द है, शक्ति है, यो अनेक धर्म रहते है, इस कारण आत्मा अनेकान्तात्मक है। यह बात सत्य है, यह अनेकान्त पद्धतिकी बात नही है। अनेकान्त पद्धतिसे अनेकान्तात्मक वह कहलाता कि पदार्थ अपने सप्रतिपक्ष धर्मसहित बना हुआ है। यो तो अनेक दार्शनिकोने अनेक धर्म एक पदार्थमे माने है। जैसे प्रकृतमे सत्त्वगुण, रजोगुण, तमोगुण माना है तो क्या वह अनेकान्तात्मक हो गया? इसे कौन नही मानता? एक पदार्थमे कितनी ही बातें मानी जाती है, लेकिन अनेकान्त पद्धतिसे अनेकान्तात्मक उसे कहते है जो सप्रतिपक्ष धर्मसहित हो। जैसे पर्यायोको ही देखो। पर्याये नियत है तो नियतका प्रतिपक्ष है अनियत, पर्याय अनियत है। यदि प्रतिपक्ष धर्मसहित देखे तो यह अनेकान्तात्मकता बनी। आत्मा है, यहाँ उसका जाना जाता है। मान लो एक प्रदेशके ढगसे जो फैला हुआ है, जो इतने विस्तारमे है, इस ढंगसे जाना जा रहा तो यह ढग दो प्रकारमे बन जाता है। अभेददृष्टिमे हमने आत्माको एक अखण्ड जाना है, एकक्षेत्री जाना है। तो आत्मा असंख्यातप्रदेशी भी तो है। असंख्यातप्रदेशीके मायने एक एक करके १०, २०, ५० सख्या, यो बढते बढते असंख्यात। असंख्यात प्रदेश वाला आत्मा है और असख्यात प्रदेश जो माने गए है उनमे जो एक प्रदेश है वह दूसरा प्रदेश तो न कहलायेगा? अगर कहलायेगा तो वह असख्यातप्रदेशी न रहा, एकप्रदेशी हो गया। तो ये १, २, ४, आदि प्रदेश भिन्न-भिन्न हुए कि नही? अन्यथा असंख्यात नही ठहर सकते। तो इस भेददृष्टिमे आत्मा असख्यात प्रदेश वाला है। ये दो सप्रतिपक्ष दृष्ट हो गए। एक दृष्टिने देखा अभेद दृष्टिसे एकक्षेत्र? तो एक दृष्टिने देखा भेददृष्टिसे असख्यातप्रदेशी। ये दोनो बातें आत्मामे है। इस कारण आत्मा अनेकान्तात्मक है। स्याद्वाद नीति इसे कहते है। नित्य और अनित्य, पदार्थ देखा गया तो यहा स्याद्वादसे पहिचानिये, द्रव्यदृष्टिसे नित्य है पर्यायदृष्टिसे अनित्य है तो उसे स्याद्वाद नीतिसे अनेकान्तात्मक कहेगे। पदार्थको जहा भेदरूपसे देखा जाता है उसे पर्याय कहते है, अभेदको द्रव्य कहा और भेदको पर्याय कहा और इस नीतिसे जैसे पदार्थमे उत्पाद और व्यय घटित

किया जाता है ध्रौव्य भी घटित करना पर्यागदृष्टिसे कहलाता है। उत्पाद व्यय ध्रौव्य – तीन पर्याये दृष्टिमे हैं क्योकि एक पदार्थमे जो कि अवक्तव्य है, क्रियात्मक है उस अवक्तव्य पदार्थमे समझने समझाने के लिए भेद करके जित ी भी बाते कही जायेगी वे सब पर्यायदृष्टिमे कहलायेगी। यहाँ पर्यायका अर्थ परिणमन नही किन्तु भेद है। पर्याय शब्द कितने ही भावो प्रयुक्त किया जाता है। तो यहाँ भेददृष्टि पर्यायका अर्थ हो गया। भेददृष्टिमे ही तो यह परिणमन वाली बात नही किन्तु भेददृष्टि वाली वात है। यहा प्रसगमे यह कह रहे हैं कि स्याद्वाद अथवा अनेकान्त पद्धति सप्रतिपक्ष धर्ममे घटित होती है, और कहा इसे भी अनेकान्त है कि एक आत्मामे ज्ञान, दर्शन, चारित्र, आनन्द आदिक अनेक धर्मोको वताना। मगर यह अनेकान्त शासनवाली बात न रही। अनेकान्त शासनपद्धतिसे सप्रतिपक्ष धर्मको एक पदार्थमे बतानेकी बात कही गई है। ऐसा अनेकान्त तो, एक पदार्थमे अनेक धर्म होना तो सभी मानते है। जितने भी दार्शनिक है, जो भी लौकिक जन है, वे मानते हैं कि एक पदार्थमे अनेक गुण है। एक पुद्गलमे स्पर्श, रस, गध, वर्ण आदिक बहुतसे धम हैं, इसे लोग मैटर शब्दसे कहते है। ये चारो बातें पुद्गलमे है ऐसा सभी लोग मानते हैं, पर जिस नीतिसे पदार्थके स्वरूपका ब्यौरा बताया जाता है वह नीति सप्रतिपक्ष धमको सिद्ध करने मे मानी गई है।

वचनन्यासकी स्याद्वादमुद्रामुद्रितता-सर्ववचन स्याद्वादमुद्रासे मुद्रित है। इसे यो कह लीजिये कि कोई अगर जबान हिलाये तो वहा स्याद्वाद आये बिना नही रह सकता। कुछ तो वचनोंसे कहा जायेगा–जैसे किसी ने कहा कि मैं सच बोलता हू तो उसका सप्रतिपक्ष उसमे मौजूद ही है कि मैं झूठ नही बोलता। दोनो बाते एक ही बातमे गर्भित हैं। अब इनमे से किसे मना करोगे ? मैं झूठ नही बोलता हू, क्या यह बात झूठ है ? नही। मैं सच बोलता हू, क्या यह बात झूठ है ? नही। बात एक है, पर उस एकको सप्रतिपक्ष धर्मसे बताया गया है। कुछ भी आप बात बोलेंगे तो सप्रतिपक्ष जरूर होगा। तो वचनमात्र स्याद्वादसे भरा हुआ है, इसे कहते है स्याद्वादकी मुद्रा। पदार्थ, स्वरूप, वचन—ये सभी स्याद्वादकी मुद्रासे मुद्रित है। कोई भी सत्, कोई भी प्रयोग, कुछ भी व्यवहार, कोई भी बात स्याद्वादकी मुद्रासे रहित नही है। जो लोग स्याद्वादका निषेध करते हैं वे भी स्याद्वाद मुद्रासे मुद्रित है। वे अपनेको स्याद्वाद नही मानते, लेकिन स्याद्वाद मुद्रा टल नही सकती। कुछ भी कहो, पदार्थ नित्य है, यह कहा तो आखिर कुछ दृष्टि ही तो उसकी है। नित्य है और नही तो इतना तो कहना ही पडेगा कि नित्य है, अनित्य नही है, यह यद्यपि एक

दृष्टिमे ही स्याद्वादकी मुद्रा है, लेकिन देखो स्याद्वाद मुद्रा आ ही गई। इसके बिना कोई अपने पक्षका समर्थन नही कर सकता। कोई यदि यह कहे कि मेरी बात प्रामाणिक है तो इसमे यह बात गर्भित है कि मेरी बात अप्रामाणिक नही है। वचनमात्र स्याद्वाद मुद्रासे गुम्फित है, फिर उसका विस्तार बनाया तो स्याद्वाद अनेक रूपोको पाकर फैल गया।

विभाव पर्यायोंको नियत व अनियत देखनेका उपसंहार—प्रसग चल रहा है नियत और अनित्यका। जो अनियत हो वह विभाव है। जो विभाव है वह अनियत है। यो विभाव परिणमन होता है और ऐसा होते हुए पर्यायें चूँकि विशेष ज्ञानके द्वारा ज्ञात है और वे उस प्रकार क्रमपूर्वक होगी इस तरह माना तो इस दृष्टिमे सर्व नियत बात है यह सम्यक् नियतिवाद है और कारण कार्य विधान रहित अकारण ही द्रव्यमे द्रव्यके स्वभावसे क्रमसे वे विभावपर्यायें गुम्फित है। इस प्रकार अभिव्यक्ति मानना यह मिथ्या नियतिवाद है। जिसको यो कह लीजिये कि कारण कार्य विधानका लोप करके विभावपर्यायोको नियत मानना सो मिथ्या नियतिवाद है और निमित्त सन्निधान मानना, योग्य उपादान मानना और उस प्रसगमे पर्यायका उत्पाद मानना और वह सब विशिष्ट ज्ञानी द्वारा ज्ञात है सो जब जो होना है होता है यो समझना, सो सम्यक् नियतवाद है। कारण कार्यकी अपेक्षा दूर हो जाय और स्वभावतः वे पर्यायें चिपकी, इस तरहकी दृष्टिमे हितका निःसन्देह अवसर नही मिलता। कोई किसी प्रकार वहाँ अवसर ढूँढे तो वहा सावधानी और सदेह दोनो सिद्ध होते है। जहा कारण कार्य विधान पूर्वक पर्यायोका उत्पन्न होना माना है वहा सावधानीका अवसर अधिक है। दृष्टियोसे निर्णय कर लेनेमे विवाद नही है, कर्तव्य तो स्वभावदृष्टिका है। स्वभावदृष्टि हो, उसमे ही उपयोग चलता रहे तो यह बात हम आपके लिए भले की है, उद्देश्य इसीमे है और श्रेय इसीमे है।

स्याद्वादनीतिसे वस्तुधर्मनिर्णय—स्याद्वादकी नीति प्रमाण और नय दो पद्धतियां चलती है जैसे पदार्थ कथचित् नित्य है कथचित अनित्य है, यह प्रमाण पद्धतिसे स्याद्वाद नीतिका अनुसरण है। कथचित नित्य है—इसका अर्थ है पर्यायरूपसे अनित्य है, किन्तु जब केवल एक नयकी दृष्टिमे स्याद्वाद नीति दिखायेगे तो उसमे निर्णय पडा है कि पदार्थ द्रव्यरूप से नित्य है, पदार्थद्रव्यरूपसे अनित्य नही है। एक ही नयमे एक ही दृष्टिमे विधि प्रतिबोध द्वारा निर्णय करना, यह नयपद्धतिसे स्याद्वाद नीति है और पदार्थ द्रव्यरूपसे नित्य है, पर्याय रूपसे अनित्य है, यह प्रमाणपद्धतिमे स्याद्वाद नीतिमे कथन किया है। इसके अतिरिक्त स्वद्रव्य और परद्रव्यकी अपेक्षा भी स्याद्वाद चलता है। जैसे वस्तु अपने चतुष्टयसे है पर

चतुष्टयसे नही है इन तीनो ही बातोका कथन किया गया है। एक ही पदार्थका इस कारण अनेकान्त नीतिसे विधान हुआ। जीव अपने चतुष्टयसे है, परचतुष्टयसे नही है तो यह स्वचतुष्टयकी अपेक्षा सत्तारूप धर्म जीवमे बताया और परचतुष्टयकी अपेक्षासे नास्तित्व धर्म भी जीवमे ही बताया गया है। प्रमाणपद्धतिसे वर्णन होने पर भी एक ही पदार्थका वर्णन होता है। जीव द्रव्यरूपसे नित्य कहा गया है तो उस ही जीवपदार्थको पर्यायरूपसे अनित्य कहा है और एक नयदृष्टिमे भी निर्णयात्मक ध्वनि है—बोले अथवा न बोले वह तो उस दृष्टि मे निर्णीत ही है। जैसे स्यात् नित्य एव, इसमे जो एवकार दिया है वह निर्णयवाचक है और स्यात् शब्द अपेक्षा वाचक है अर्थात् द्रव्यरूपसे जीव नित्य ही है, इस ही का अर्थ अन्य प्रतिषेध है अर्थात् द्रव्यरूपसे जीव अनित्य नही है।

स्याद्वादनीतिसे विभावपर्यायके नियतत्व व अनियतत्वका निर्णय—अब नियत और अनियतके सम्बन्धमे भी दो दृष्टिया देखिये। विभावपरिणामका पर्यायवाची शब्द अनियत-भाव रखें तो अत्युक्ति नही, क्योकि विभावकी स्वभावमे प्रतिष्ठा नही, अनियत भाव भी विभाव ही हुआ करता है। तो जब परिणमन दृष्टिसे देखा तो चू कि विभावपर्याय निमित्त सन्निधान होने पर योग्य उपादानमे अपने प्रभावसे प्रभावित होकर बनती है अतएव अनियत है, किन्तु जब इसे इस दृष्टिसे देखा कि अनियत भाव भी हुआ, पर कितना भी अनियत भाव हो गया वह सब उस द्रव्यमे ही हुआ और विशिष्ट ज्ञानी द्वारा ज्ञात है, तो न हो उस प्रकार तो ज्ञानी द्वारा ज्ञात कैसे हुआ, इस दृष्टिमे नियत है तब इस विषयमे नयकी दृष्टिसे यो कहा जायेगा कि भवितव्यता व ज्ञात दृष्टिसे स्याद् नियत एव, तो उस दृष्टिमे अनियत नही है। जब परिणमनविधिकी दृष्टिसे कहा जायेगा स्यात् अनियत एव तो इस दृष्टिमे नियत नही है। जब प्रमाणपद्धतिसे देखेगे तो दोनो दृष्टियोको अगीकार किया तब वहाँ बात आयी कि स्यात् नियत एव, स्यात् अनियत एव।

ज्ञानीके निर्णयका प्रयोजन—ज्ञानी पुरुष सब तरहसे निर्णय करके समस्त ज्ञानोका फल स्वभावदर्शन मानता है। कुछ भी ज्ञान किया जाय अब उसका प्रयोजन क्या है कि हम अपने सहज परमात्मतत्त्वके दर्शनमे आये क्योकि इस जीवने अब तक सुख शान्तिके अर्थ अनेक काम कर डाले, लेकिन एक यह काम नही कर पाया—निज सहज स्वभावकी अनुभूति। उस अनुभूतिके लिए यह सब ज्ञान है। ये सब उसके लिए प्रेरणा देते हैं। जब जीवके विभाव अनियत हैं तो प्रेरणा मिलती है कि विभावकी स्वभावकी स्वभावमे प्रतिष्ठा नही और ये परभाव है, ये छूट सकते है, ये तो मेरे स्वभाव हैं नही। उनमे अटकाव न

रखेंगे और जब एक द्रव्यको ही निहारकर देख रहे है कि यह अनन्त पर्यायोका पुञ्ज है, पुञ्ज क्या है ? एक सत् पदार्थ है जो कि अनन्तकाल तक रहेगा। सत्का कभी मूल नाश नही होता, वह अनन्तकाल तक रहेगा, पर्यायशून्य न रहेगा तो अनादि अनन्त पर्याय वाला द्रव्य है और उसमे जिस विधिविधानसे जो कुछ होनेका है वह सर्वज्ञ या विशिष्ट ज्ञानी द्वारा ज्ञात है। होना है, होगा, हम अवने स्वभावदर्शन जैसे विशिष्ट कार्यमे लगे, अन्य विकल्प न करे। ज्ञानी पुरुष अपना स्वार्थ नही खोता है, निजका जो प्रयोजन है उस प्रयोजनका भङ्ग नही करता। जिस प्रकार भी हो वह स्वभावदर्शनमे पहुचेगा। हर चर्यामे निश्चयनयका वर्णन हो तब, व्यवहारनयका वर्णन हो तव, फल पायेगा वह स्वभावदर्शनके लिए प्रेरणाका और तो क्या ? जो उपचारनय है उसके मर्मसे भी अन्तस्तत्त्वकी ओर आने की प्रेरणा लेता है तो भिन्न पदार्थ जिनका कि सम्बन्ध मात्रसे कुछका कुछ कह दिया जाय, जैसे कहते है ना घी का घडा, तो कोई कहता है मेरा मकान तो घी का घडा कहा या मेरा मकान कहा, इसमे कोई समतासे अन्तर है क्या ? जैसे घडा घडेका है, मिट्टीका है, घी का नही है, पर एक उसमे घी रहता है इस कारण कहते है घी का घडा, यह उपचार है, इसी प्रकार मकान मकानमे है, मकान मेरेमे नही है। मकानमे एक बाह्य क्षेत्रकी अपेक्षा रहते है इतने मात्रसे कहना कि मेरा मकान है तो यह उपचार है। तो उपचारकी उपचारताका जब हम स्मरण करते है—यह उपचार है, है तो नही, मगर इतने सम्बन्धसे कहा गया है तो उससे भी हमे कुछ प्रेरणा मिली ना कि है तो नही। एक सम्बन्धसे कहा है और वह सम्बन्ध भी अनित्य है, झूठ है, काल्पनिक है। तो कुछ भी बात कही जाय, ज्ञानीको है अन्तस्तत्त्वकी रुचि, अतएव वह सब प्रकरणोसे सब ज्ञानोसे सब दृष्टियोंसे चल कर भी, निर्णय करके भी, चर्चा करके भी अपने स्व अर्थको नही भूलता।

शरणभूत अन्तस्तत्त्वकी ओर आने के यत्नका कर्तव्य--हमे चाहिये यह कि किसी भाँति कुछ अन्तर्यत्न हो सहज स्वभावका अनुभव हो जाय, प्रभुकी पूजा भी, दर्शन भी, ध्यान भी किसलिए है कि नाथ आपके उस सहज परमात्मतत्त्वकी स्थितिको निरखकर मैं अपने आपमे उस सहज परमात्मतत्त्वके दर्शनमे लगूं, यही तो परमात्मदर्शनका प्रयोजन है। तो हमे चाहिये यह कि परमात्मतत्त्व जो अन्त प्रकाशमान है, आज कषायसमूहके कारण तिरोभूत हो रहा है और स्वय अत प्रयत्न नही करते, इस कारण अथवा जो प्रयत्न करते हैं, आत्मज्ञ हैं उनकी उपासना नही करते इस कारण हम उस लाभसे बचित रह जाते हैं। हम हर प्रकार हर सम्भव उपायोसे अपने आपके उस सहजस्वरूपमे रमे, आये, जाने, देखें,

यहाँ बाहरमें कही कुछ सार नहीं। किसकी बधुता, किसका पक्ष, किसका विकल्प, किसकी इज्जत। क्या कहाँ है ? मेरे लिए कही कुछ नही है। बाहरमे जब दृष्टि डालते है तो ऐसा दिखता है कि बाहर तो कही कुछ शरण नही और माना बाहरमे कुछ लगाव तो यह त्रिवश हो जाता। क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? जैसे कोई हिरणका बच्चा किसी ऐसे जगलमे फस गया कि जिसके पीछे सैकडो शिकारी धनुषबाण लिए हुए मारनेको दौड रहे है। वह बेचारा हिरणका बच्चा आगे भागा तो क्या देखता है कि सामने बडी तेज नदी बह रही है और अगल-बगलके जगलोमे बडी तेजीसे आग लग गई है, अब वह हिरणका बच्चा घबडाता है, सोचता है—हाय अब मैं क्या करूँ, कहाँ जाऊँ ? ऐसे ही बाहरमे जिन्होने दृष्टि लगायी है, बाहरमे अपना कुछ शरण माना है उनको ऐसे विलापका अवसर प्रतिक्षण आता रहता है।

शरण तत्त्व और धर्मपालन—हमारा शरणतत्त्व अपने ही अन्त विराजमान है। नमस्कारमंत्रके बाद जब चत्तारिदण्डक पाठ बोलते है तो वहाँ चार मगलोका स्मरण है। चार लोकोत्तमोका स्मरण और चार शरणोंकी भावना की गई है। अरहंत सिद्ध साधु और धर्म। प्रथम अरहतका स्मरण किया है, क्योकि उनके प्रसादसे यह समस्त तत्त्वज्ञान की धारा बही है। यद्यपि सिद्ध प्रभुकी अवस्था अरहत अवस्थाके अनन्तरकी है और उस दृष्टिसे उत्कृष्ट अवस्था है कि जहाँ मल भी नही रहा, शरीरमलका सम्बन्ध नही रहा, फिर भी सिद्धका पता भी अरहतकी देशनाको परम्परासे जो आज हमें मिला है उससे ही समझा हैं। अरहत मगल हैं, सिद्ध मगल है, ये तो है दो परमात्मा, इनका सत्सङ्ग कहा है ? रोज काममें आयें, जिनके सत्सगमे रहे ऐसे मगल हैं, साधु फिर भी ये तीन बाह्य हैं, बाह्यशरण हैं, इनकी उपासना यदि हम अपने अन्त शरणकी दृष्टि सहित करेंगे तो ये बाह्यशरण हो जायेंगे अन्यथा बाह्यशरण भी नही हो सकते। तब धर्मकी भावना की गई है। उस धर्मकी शरणको प्राप्त होता हू। धर्म मगल है, लोकोत्तम है, वह धर्म क्या है ? तो बताया है केवली भगवान्के द्वारा कहा गया। क्या कहा गया ? धर्म है निरखनेकी चीज। वस्तुत धर्म करनेकी बात नही, निरखने की बात हैं। वत्थुस्वहावो धम्मो, आत्मा का स्वभाव धर्म है, आत्माका स्वभाव है चैतन्यभाव। उस चैतन्यभावको क्या कोई करता है, उसे निरखना है तो धर्म है चैतन्यभाव और धर्मपालन है चैतन्यभावका आलम्बन। धर्म नहीं किया जाता, धर्मका पालन किया जायेगा, धर्मकी दृष्टि की जायेगी, धर्मका आश्रय किया जायेगा। धर्म किए जानेकी बात नही है, क्योकि धर्म है स्वभावका नाम और अब

आगे चलते जाये--स्वभावका आलम्बन कैसे हो ? तो उसके अर्थ और और भी उपाय किए जाते है--तत्त्वज्ञान करना, प्रभु पूजा करना, ध्यान करना, चर्चा करना, पढना लिखना। उस धर्मपालनकी दृष्टिसे जो-जो भी कार्य किये जाते है वे सब हमारे व्यवहार भी व्यवहारधर्म है।

श्रावकके षट्कर्म और उनमें धर्मपालनकी नीति— देखिये—श्रावक का कर्तव्य है षट्कर्म देवपूजा, गुरूपास्ति, स्वाध्याय, सयम, तप और दान—इन ६ कार्योका सम्बध दर्शन, ज्ञान चारित्रसे हो तब तो समझिये कि हम धर्मपालन कर रहे है। देवपूजामे हमारी श्रद्धा बढती है. श्रद्धा मूलमे हो तो देवपूजा बनती है। वहा श्रद्धाका सम्बन्ध है, दर्शनका सम्बन्ध है। गुरूपास्तिमे चारित्रका सम्बन्ध है, विरक्त तत्त्वज्ञानी गुरुजनोकी उपासनाका भाव उसी के तो होता है और उपासनाकी वृत्ति वही तो कर सकेगा जिसको उस प्रकारके चारित्रकी रुचि है। अपना अत सयम भी वह चाहता है जिसके अर्थ बाह्यसंयम निभाना है। तो गुरूपास्तिमे चारित्रका सम्बन्ध है, स्वाध्यायमे ज्ञानका सम्बन्ध है। स्वाध्याय किया जाय, अगर एक चर्चा बात यह मिले, यहॉ यह लिखा, अमुकको यो उत्तर दिया जायेगा, अमुक जगह यह बताया जायेगा, बाहर-बाहर ही डोलना बना रहे तो वह स्वका अध्याय नही हुआ, जो कुछ हम अध्ययन करते हैं सबको निजपर घटित करते हुए चले, यह पद्धति है स्वाध्यायकी। प्रथमानुयोगके ग्रन्थोमे जिन महापुरुषोका चरित्र पढा उसको पढकर स्वय पर घटित करना चाहिए। हम क्या है, कैसे है ? ऐसे ऐसे महापुरुषोने यह किया है, यह हमारा कर्तव्य है। पापका फल जहाँ चरित्रमे आया हो उसे अपने आप पर घटित करे। पुण्यफल जहाँ चरित्रमे आया हो तो आखिर यही तो देखा कि बड़ा पुण्य था। श्रीराम वडे पुण्यशाली थे, उस पुण्यफलमे उन्होने पाया क्या ? पुण्यफलमे पाया तो एक दृष्टिमे देखे तो जीवन भर विडम्बना। जन्मे तब क्या, स्वयवर हुआ तब क्या, बादमे क्या, राज्याभिषेकमे क्या ? जो जीवन चरित्र है, किसी भी पुण्यवान्का जीवन पढ़ लो, पुण्यके फल उसमे देखने को मिलेगे क्या ? न भी विपदाये रही हो, वे मौजसे रहे हो तब भी आखिरी फल क्या मिला ? सब कुछ छोडा और उससे मुख मोडकर आत्मतत्त्वकी उपासना की। यही उनका महत्त्व था। पुण्यवानोकी प्रशंसा क्यों है कि पुण्यफलको त्यागकर अपने निज परमात्मतत्त्वकी उपासनामे लगे तब तो उनकी कीर्ति गायी जा रही है। और जिसने यह नही किया और पुण्यफल भोगा उनका पुराणोमे कोई महत्त्व नही दिखता है। तो हम कथानक पढे उनको भी अपने ऊपर घटित करते हुए पढें। करणानुयोगके शास्त्रोमे जहा-

जहां ऐसे सूक्ष्म तत्त्वोका वर्णन, समय-समय आवली आवलीमे क्या अन्त होता है, क्या भाव होता है, क्या कर्मदशा होती है, जब उन वर्णनोंको पढ़े, सुनें तो उसमे एक आस्था जगती है और अपने आपके उन वीतराग सतोके प्रति जिनका इतना विशुद्ध निर्मल ज्ञान है कि ऐसा निर्विरोध और सयुक्तिक, प्रामाणिक कथन किया गया है, श्रद्धा बढती है, भक्ति बढती है, चरणानुयोगके शास्त्र पढे तो प्रत्येक परिस्थितिमे हम अपने आपका अध्ययन बनायें, अपनी कमी देखें, क्रियाका उद्देश्य निरखें, उनकी ओर बढनेका कदम बढायें। द्रव्यानुयोगके शास्त्रमे दो विभाग है—दार्शनिक शास्त्र और अध्यात्म शास्त्र। द्रव्यस्वरूपका वर्णन दोनो करते हैं पर पद्धति निराली है। दार्शनिक शास्त्रके अध्ययनसे अध्यात्म शास्त्रकी समझमे स्पष्टता आती है और अध्यात्म शास्त्र समझा हो तो उस पद्धतिसे दार्शनिक शास्त्रोमे जो तत्त्वनिर्णय किया है उस तत्त्वनिर्णयसे आत्मामे एक विशिष्ट अनुभूति जगती है। इतना विशाल वर्णन दार्शनिक शास्त्रका है।

दार्शनिकोंकी दृष्टिकी खोज और उस दृष्टिसें दर्शनका समन्वय——वस्तुस्वरूप क्या है ? अन्य-अन्य दार्शनिकोंने क्या माना है ? एक बात मोटेरूपमे यह सोच ले कि जो भी विद्वान् हुए हैं उन्होने जो कुछ भी कहा है उस कथनको एकदम ही विपरीत न सोच लें, किन्तु उनके कथनको उनकी दृष्टिमे मिलाकर पहिले समझें और समझकर फिर यह जानें कि ऐसी दृष्टि बननेपर यह दर्शन उत्पन्न होता है, और इस निगाहमे यह बात ठीक है। अगर नयोकी विधियोसे उन वस्तुस्वरूपोका वर्णन करने वाले दार्शनिको की बात देखें तो सबमें औचित्य मालूम होता है। उस दृष्टिसे कौनसा वर्णन है ? मजहब और मतकी बात नही कह रहे। कुछ दार्शनिकताकी बात कह रहे हैं। जिसने यह माना है कि प्रकृति करती है और जीव फल भोगता है उस सम्बधमे अब लाये दृष्टि कि उनकी ऐसी क्या दृष्टि बनी कि जिसमे यह जंचा कि करने वाला जीव नही, करने वाली प्रकृति है और भोगने वाला जीव है तो एकदम यह बात समझमें आती है कि भोगने वाला प्रकृति है, यह बात नही कही जा सकती, क्योकि अचेतन है। अचेतनमे भोगने की बात क्या ? लेकिन करने की बात यो कही गई प्रकृतिको कि जीव स्वय अपने स्वभावरूप है। वह अपने आपमे नानारूप परिणमे, इसके लिए स्वय स्वत समर्थ नही है अर्थात् प्रकृतिका सम्बध वहा रागद्वेष आदिक भावोको उत्पन्न करता है, एक दृष्टि ही तो बनी, और बात दूर जाने दो। जो लोग यह कहते हैं कि यह सब ईश्वरकी लीला है, सारी सृष्टि ईश्वरकी है, सदामुक्तकी है, महेश्वरकी है। महेश्वर होता है आनन्दमग्न। महेश्वरको माना है सदामुक्त और और जीव जो मुक्त

हुए हैं वे सादि मुक्त है । उनको तो वह महेश कभी पटक देता है कल्पकालके वाद, ऐसी उनकी मान्यता है, तो वहाँ भी क्या दृष्टि लगी कि यह जो एक सहज परमात्मतत्त्व है यही मकान ईश है और यह सदामुक्त है, इसमे किसी प्रकारका विकार नही है, स्वरूप दृष्टिसे देखो तो वह सदामुक्त है और यह सव लीला उसकी है, इसका अर्थ है कि उसही का तो सम्बन्ध माना है कि ये सव मातें बन उठी । जो काठ पत्थर भी नजर आ रहे, ये भी तो पहिले स्थावर काय थे, वहाँ भी जीवका सम्बन्ध था, तो सबमे महेशकी लीला है और और वाते भी जो कुछ वस्तुस्वरूपका दिग्दर्शन कराने वालोने कहा है, हम अगर उनकी दृष्टिको और परखे कि आखिर क्या उनका मूड हुआ होगा जिससे ऐसा नजर आया, तो आपको वहाँ भी वात समन्वय की मिल जायेगी । सव तरहसे पदार्थ निर्णय करके करने का काम केवल एक यह है कि हम अपने सहज परमात्मतत्त्वके स्वरूपकी ओर उपयोग करे और सर्व आवियोसे मुक्त होनेका अवसर पाये ।

हेय उपादेय समझनेके लिये उपचार व्यवहार, निश्चयनय व स्वात्मानुभूतिका विश्लेपण— कौनसा आशय हेय है और कौनसा आशय उपादेय है ? इस विषयको समझनेके लिए थोडा विश्लेषण पर आये और यहाँ इस रहस्यको जाननेके लिए उसे ५ विभागोमें समझें । उपचरितोपचार, उपचार, व्यवहारनय, निश्चयनय और स्वात्मानुभूति । इस प्रसंग में चूँकि हेय उपादेय की चर्चा चल रही है तो निश्चयनयको अभेददृष्टि कहेगे और उपचार दो पदार्थोंके सम्वन्धकी दृष्टि करके एकमे दूसरेका आरोप करना कहायेगा और उपचरितोपचार एक जवरदस्तीका सम्वन्ध वनानेकी दृष्टि कहायेगी । जव हम आत्मतत्त्वका परिज्ञान करना चाहते है, अपने आत्माका कल्याण लाभ लेना चाहते है तो यह आवश्यक है कि हम अपने आत्माकी जानकारी वनाये । अव आत्मा यथार्थरूपतया सहज अपने आप स्वयं कैसा है, इस वातको जव समझनेके लिए चलेगे तो कुछ ढग कितने ही वनाये जाये, समझ वनेगी, वह समझ तव वन पायेगी जव अभेदरूप आत्मतत्त्वके ज्ञानमे आये । जिसे हम किन्ही वातो से न समझा सकेंगे, क्योकि जितने भी वचन है वे सव विशेपण रूप होते हैं । यद्यपि लोकव्यवहारमे उन्ही शब्दोमें कोई शब्द विशेष्य माना गया है, कोई विशेपण माना गया है, लेकिन वचन जो कुछ भी होगे वे सव विशेपण होंगे, विशेष्य नही होते । जैसे चौकी कहा तो लगता है कि यह तो विशेष्य है । यह कहा कि चौकी पीली है तो पीला विशेपण है और चौकी भी विशेपण है । चौकी कहते किसे हैं ? जिसमे चार कोने हो वह चौकी है । यह चौकी है, यहाँ यह शब्द कहकर जो निर्दिष्ट हुआ वह है विशेष्य, चौकी हुआ विशेपण ।

यह पदार्थ बस यह शब्दसे जो भी वाक्य हो सकता है वह अभेद रूपमे दृष्ट हो सकता है, पर उसमे कोई शब्द बोला तो विशेषण बन गया। चौकी है, मायने चार कोने वाली है। जितने भी शब्द है वे सब अपने धात्वर्थको लिए हुए है, इस कारण विशेषण ही कहलायेगा। कोईसा भी शब्द बोल ले उसमे अर्थ भरा हुआ है। चटाई—चट आई, कोना पकडा और झट आ गई। लो विशेषण हो गया। घट, जो घटित किया जाय, घडा जाय सो घट। विशेषण बन गया। प्रयोजन यह है कि हम वचनोंसे जो कुछ भी समझ सकेंगे विशेषणमे बात समझेंगे, फिर भी हम अपने ज्ञान द्वारा उन विशेषणो से ही किसी विशेष्य का परिज्ञान कर लेना चाहिए। व्यवहारनय और निश्चयनयके सम्बन्धकी इतनी बात है। निश्चयनयसे जाना अभेदरूप वस्तु और उसे समझा व्यवहारनयके उपायसे इस प्रसगमे शुद्ध निश्चयनय, अशुद्ध निश्चयनयकी चर्चा नही करना है। यहाँ हेय और उपादेयकी दृष्टिसे तका जा रहा है। तो इस निश्चयनयको हम एक रूपमे देख रहे। यदि निश्चयनयके भेद करेगे तो उसकी चर्चा एक पृथक् हो जायेगी। अभेदरूप वस्तुको परखाने वाला नय निश्चयनय है। अब कोई सोचे कि निश्चयनयमे क्या समझा, हम क्या बताये ? जब बताने चलेंगे तो व्यवहारनयका आश्रय लेना ही पडेगा। व्यवहारनयका आलम्बन लिए बिना निश्चयनय मे क्या समझा, यह नही बता सकते। जैसे आत्माके सम्बन्धमे कहना जिसमे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, जो जानता है, देखता है, रमता है, जिसमे चैतन्यभाव है, कुछ भी कहते जावो, व्यवहरण व्यवहार, भेद करनेका नाम व्यवहार है, अब इस ढगमे जो यह जाना गया क्या आत्मामे यो ज्ञान दर्शन चारित्रके भेद पडे हुए है ? निश्चयनय बताता है कि भेद नही पडे, तो क्या इस भेदके जाने बिना हम उस अभेदको जान सकेंगे ? न जान सकेंगे। तरीका ही अन्य कुछ नही है। तब आप जानियेगा कि निश्चयनय अभेदरूप विषय को ग्रहण करता है, व्यवहारनय भेदरूप विषयको ग्रहण करता है, इस प्रसगमे अभी एक वस्तुमे ही भेद करनेकी बात कही गई है।

उपचार और व्यवहारकी पद्धतिका अन्तर—अब जरा उपचार पर आयें तो वहाँ दो पदार्थोकी बात लग जाती है। जैसे प्रसिद्ध दृष्टान्त है कि घी का घड़ा कहना उपचारसे है क्यो उपचारसे है ? तो वह मिट्टीसे घी है पृथक् वस्तु और पृथक वस्तुका सम्बंध होकर यह कहा गया हैं घीका घडा तो ऐसा कहनेमे जो यह जाना जा रहा कि "घीका" तो यह उसका उपचार है। इसी बातको यदि यो समझायें कि देखो भाई, यह घडा इस घडास्वरूपमे है, इसमे घीका सम्बंध है। घीका आधेय है, इतने मात्र सम्बंधसे इसको घीका

घडा कहा जा रहा है तो यह उपचारकी बात नही हुई। व्यवहार हुआ, व्यवहरण किया गया, भेदीकरण किया गया, विश्लेषण किया गया, इसी प्रकार जहाँ यह कथन कोई करे कि कर्मने रागद्वेष किया, यह कथन उपचार है। दो पदार्थोका कर्ताकर्मरूपसे सम्बध बताया, जो कि भिन्न-भिन्न है। किन्तु यह बताया जाय कि कर्मोदयका निमित्त मात्र पाकर यह योग्य उपादान अपनेमे अपनी कलासे विभावरूप प्रभावसे प्रभावित हो गया है तो यह विशेषण हो गया, यहाँ उपचारकी बात नही है। उपचार होता है एकमे दूसरेका आरोप करना। यहा आरोप नही है किन्तु विश्लेषण है। उपचारोपचार क्या है कि जिसमे निमित्त-नैमित्तिक आदिक कोई सम्बध भी नही है और फिर भी मोहवश, कल्पनावश किसी भी कारणसे उनका सम्बध मानना यह उपचारोपचार है। जैसे मकान मेरा है, धन मेरा है, वैभव मेरा है, दुकान मेरी है, तो उपचारोपचारकी तो बात ही नही करनी है। उपचारकी जैसे कोई उस घडेको घीका घडा माने तो वह मिथ्या है। इस प्रकार यदि कोई रागादिकका है कि बात यह कर्ता कर्मको माने तो वह मिथ्या है, क्योकि एक वस्तुका दूसरी वस्तुमे द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावका प्रवेश नही है। कर्तृत्व यदि व्यवहार दृष्टिके कर्तृत्व जितना अर्थ हो वह बात अलग है किन्तु कर्मने रागद्वेष किया। यहाँ जो कर्मका कर्तृत्व माना गया रागद्वेषमे वह उपचार है, इसी प्रकार जीवने कर्म बाँधा, यो दो द्रव्योमें कर्तृकर्मत्वकी बात कहना उपचार है, मिथ्या है, पर निमित्तनैमित्तिक सम्बंधकी बात कहना यह एक विश्लेषण है, व्यवहार है भेद करके कथन हैं और जब हम इससे और ऊँचे व्यवहारपर चलते है तो वहाँ केवल एक ही वस्तुमें गुणपर्याय द्रव्यादिकका भेद करके व्यवहरणकी बात कहते है, पर निश्चयनयमे एक अभेद वस्तु प्रतीत होती है। यहाँ तक सब पक्ष रहे। निश्चयनय भी पक्ष है, व्यवहारनय भी पक्ष है, अन्य सब भी पक्ष है। जहाँ तक विकल्प हो वहाँ तक पक्ष है।

स्वात्मानुभूतिकी परम उपादेयता—अब तक अतिम चीज कहनेकी या करनेको रह गई स्वात्मानुभूति। अपने आपके सहज स्वभावकी अनुभूति, चैतन्यस्वभाव हमारे ज्ञानोपयोग मे आये ऐसी स्थिति। अब यह निर्णय करिये कि वास्तवमे क्या है? पूर्णतया जो उपादेय कहा जा सके वह है स्वात्मानुभूति। सब कुछ स्वात्मानुभूतिके लिए है। इसके बाद अब और क्या प्रयोजन रहा सो इसके आगे प्रयोजन न मालूम होगा। तब व्यवहारनयके पक्षसे और निश्चयनयके पक्षसे अतिक्रान्त होकर ज्ञानी पुरुष इस तत्त्वका वेदन करता है, स्वात्मानुभवन करता है। अब इस दिशामे स्वात्मानुभूति उपादेय है और निश्चयनयपक्ष, व्यवहारनयपक्ष,

समस्त नयपक्ष हेय है। अब चलो निश्चयनयपर, स्वात्मानुभूतिकी पात्रता बनाने वाले और निकट पहुचाने वाले इस अभेद वस्तुका परिचय कराने वाले निश्चयनयके सहारेका कितना उपकार माने जिसके अनन्तर जिसके प्रसादसे स्वात्मानुभूतिमे उपयोग सहज आ जाता है। तो हमे जानकर कोई आशय बनाना है, कुछ बात समझना है बुद्धिपूर्वक तो वहा ऐसा उपादेय क्या है कि जिसके आगे बुद्धिपूर्वक उपादेयपनेकी बात हम और किसी को न कह सके। वह है उपादेय निश्चयनय। अब इस उपादेयके सामने व्यवहारनय हेय है।

निश्चयनयके विषयपर पहुँचानेके लिये व्यवहारनयकी उपयोगिता—अब व्यवहारनय पर चले—निश्चयनयमे हमने क्या समझा? वह समझ हमे व्यवहारनयके सहारेसे मिली है। हम कथन करते है, समझते है व्यवहारनयसे तो ऐसा उपकारी जीव जो उपकार करे और खुद मरे उसकी उपकारशीलताको भी ध्यानमे रखिये—व्यवहारमे ऐसी उपचारशीलता है कि यह निश्चयनयके विषयको समझाता है और खुद मर जाता है। तो जो निश्चयनयके विषयभूत तत्त्वसे अपरिचित है, अपरम भावमे स्थित है, झझट, उलझन विकल्प आदिकमे है उनके लिए उपादेय यह व्यवहारनय रहा, निश्चयनयकी वहा खबर ही नही। कहाँ कौन आशय उपकारी है और कहा किसका आलम्बन, आश्रय इस जीवको हितकी धारामे लगा सकता है, ऐसा ही परखकर आचार्योने भिन्न-भिन्न पात्रोके लिए भिन्न भिन्न ढगसे उपदेश किया है। इसी कारण वह उपदेश सर्वप्रकारसे परिपूर्ण हो, ऐसी बात नही कही जा रही। जैसे वर्द्धमान प्रभुके पूर्वभवोमे बहुत पहिले भवोमे वह आत्मा कोई भीलकी पर्यायसे था। एक बार शिकार खेलता हुआ वह एक मुनिपर पशुसा जान कर तीर मारने लगा, तब भीलनीने कहा कि ये तो कोई महापुरुषसे दीख रहे है, तीर अलग करो और चलो इस सत के पास। भील भीलनी गये, उपदेश भी सुना। मास त्यागके सम्बन्धमे भीलने असमर्थता दिखाई, वहाँ भीलने सिर्फ कौवाके मासके त्यागकी बात कही व प्रतिज्ञा ली। भीलने प्राण जानेके अवसरमे भी उस प्रतिज्ञा को न त्यागा और उस धारामे आगे चलकर आगे बढ बढकर अनेक भवोंके बाद फिर तो उस जीवने एक परमात्मदशा प्राप्त की। तो जहाँ स्थितिया विभिन्न होती हैं, वहा हमे समझना है तो यहाँ यह निर्णय करना कि व्यवहारनय भी प्रयोजनवान है, निश्चयनय भी प्रयोजनवान है और परम प्रयोजन तो हमारी स्वात्मानुभूति है।

अन्य विविध निर्णयोंकी अभेदस्वभाव अन्तस्तत्त्वके परिचयके लिये उपयोगिता—स्वात्मानुभूतिका जो हम प्रयत्न बनायेंगे वह प्रयत्न होगा अभेद भावका परिज्ञान। अब

आप सोचिये कि निश्चयनयके आशयका कितना उपकार है ? हम जब आत्माके सम्बन्धमे निर्णय करने चलते है तो निर्णय बहुतसे है । यह आत्मा इतना लम्बा चौडा फैला हुआ-- शरीरको नाप करके बताना कि यह ५ फिटका लम्बा है तो क्या आत्मा उस समय ५ फिट लम्बा नही है ? है । और उस आकारमे हम जाननेकी कोशिश भी कर रहे है । आत्मा असंख्यातप्रदेशी है, इतना लम्बा चौडा है, यह भी तो आत्माके जाननेका उपाय है । मगर इस ज्ञानके अनन्तर स्वात्मानुभूति कहाँ मिली ? बस देखता रहा, तकता रहा । जब आत्मा की पर्यायोकी चर्चा करते है । यह आत्मा क्रोधी है, मानी है, शान्त है, विभावी है, परभावी है, जब हम आत्माकी परिणतिकी चर्चा करते है । करते जायें चर्चा । उस परिणतिकी चर्चा के अनन्तर ही स्वात्मानुभूति कहाँ मिली ? परिज्ञान अवश्य है, जानकारी जरूर की गई । अब जरा भावों पर दृष्टि दे तो भावोकी परख होगी दो प्रकारसे—भेदरूप और अभेदरूप । भेदरूप भावकी परखमे हम यह समझते है कि हममे ज्ञानगुण, दर्शनगुण, चारित्रगुण, आनन्दगुण आदिक अनेक शक्तियां है । गुणोका परिचय किया, शक्तिकी अनेकता जानी, एक एक शक्तिका स्वरूप भी समझा, पर इस भेदरूप ज्ञानकी चर्चामे आत्मानुभूति कहाँ आयी ?

अभेदस्वभावरूपमें आत्मोपासना होनेपर स्वात्मानुभूतिका नैकट्य– अब जरा अभेद रूपके प्रभावमें बात देखिये—सर्वप्रकारसे जाने हुए उस आत्माको जब हम एक अभेद स्वभावके रूपमे निरखते है, जैसे कि भोजनकी निरख भेदभावसे भी कोई करता है अभेद भावसे भी कोई करता है । जो भोजन खाया जा रहा है—इसमें इतना घी है, इतनी शक्कर है, इतना सिका है, ऐसा बना है, यो भेदभावसे भोजन की बात जानी जायेगी और एक केवल खानेका ही उद्देश्य और उसके ही आनन्द की दिशामे उस भोजनका अनुभव कर रहा है वहा उसकी चर्चा कुछ भी नही है तो वह उसे एक अभेदरूपसे रस रहा है, आनन्द ले रहा है । एक मोटे रूपसे बात कही जा रही है । तो आत्मामे ज्ञान है, दर्शन है, चारित्र है, गुण है आदिक बातोसे जो हमने परखा, जाना, ये तो सहारे हुए ना, इन इन बातोसे ले गए हम वहाँ, जो वास्तविक आत्मस्वरूप है, उसे जो समझा तो क्या समझा, क्या जाना उस दृष्टिमे बस जो जाना सो जाना । णाओ जो सो उ सो चेव । अन्य कुछ कहनेकी बात मत कहो । रसमे विरसता मत डालो । जो ज्ञात है वह तो वही है, उसे अभेद स्वरूपमे जाने । यो जब हम इस सब निर्णयके प्रसादसे क्योकि वडे-वडे तत्त्वज्ञानियोका यही आलम्बन पहिले था जिससे समझ-समझ कर बढ बढ कर चढ चढकर अभेदभावमे पहुंचे और

वह निर्विकल्प अनुभूतिमे पहुंचे । तो जब हम व्यवहारनयसे सब कुछ परख परखकर निश्चय नयमे विषयको हम बना सके, उस अभेदस्वरूपका परिज्ञान कर सकें तो बहुत कुछ इस दिशामे अन्त यत्न करके स्वय अनुभव कर लेगे कि यह उपयोग हमे स्वात्मानुभूतिमे ले जाने वाला हो जाता, पर स्वात्मानुभूतिके समय निश्चयपक्ष नही है, व्यवहारपक्षकी बात तो दूर ही रहो, यो सकलनयपक्षसे अतिक्रान्त होकर यह ज्ञानी अपने आपमे इस सहज अतस्तत्त्वका अनुभवन करता है ।

स्वात्मानुभूतिकी उपादेयताके उद्देश्यको बना लेनेकी शिक्षा—उक्त बातोसे हमे अपने आपके लिए इस उद्देश्यपर तुल जाना चाहिए कि हमारे लिए सार केवल यह सहज स्वभावकी अनुभूति है, वह प्राप्त करनी है । उस आशयसे ले तो जो भी यत्न आपके बनेगे वे सब आके यत्न अनुरूप यथार्थ ढगसे बनेगे । उद्देश्य अगर हम सही न कर सके तो हम भूले रहेगे, विकल्पमे रहेगे और यदि उद्देश्य सही बना सके तो फिर आप मदिर जाइये, जाप कीजिए, स्वाध्याय कीजिए, सत्संगमे बैठिये और नही तो किसी महापुरुषको केवल निहारते ही रहे, जो कुछ भी आपसे बन पडेगा वह सब आपकी अनुरूपताये होगी, क्योकि उद्देश्य सही बन गया है, जिसने उद्देश्य सही नही बनाया वह अनेक यत्न करके भी इष्टसिद्धि नही कर पाता, जैसे कि कोई नाव खेने वाला पुरुष केवल नाव खेनेका ही काम करे, किसी जगह पहुंचनेका जिसने कोई उद्देश्य ही नहीं बनाया है, तो वह कभी थोडा पूरबकी ओर नाव खेवेगा, कभी पश्चिमकी ओर, कभी उत्तर व कभी उत्तर व कभी दक्षिण की ओर । यो वह मझधारमे ही पडा रहेगा, किसी किनारे नही लग सकता, ठीक इसी प्रकार जिसने अपने जीवनका सही उद्देश्य नही बनाया है कि हमे केवल यही काम करना है, वह तो यत्र तत्र ही डोलता रहेगा और दुखी होता रहेगा । साधनाके पथमे बढने का यही ढंग है और व्यवहारनयकी, निश्चयनयकी उपयोगितायें किस प्रकारसे हैं, यह बात यहाँ समझ ली गई होगी । और आखिर हमारा उद्देश्य क्या है ? यह भी जान लिया होगा । तब निर्णय करें । पूर्णतया उपादेयकी बात केवल एक वह स्वात्मानुभूति है; इसके लिए हम क्या करे ? जो सब दिशाओमे प्रयत्न करते है इन प्रयत्नोसे, इन पक्षोसे अतिक्रान्त होकर हम अपने उस विशुद्ध निर्विकल्प स्वात्मानुभूतिका अनुभव करे ।

सहजपरमात्मतत्त्वके मिलनकी अलौकिक प्रसन्नता—बड़े वैभवोको त्यागकर निर्जन स्थानोमे रहने वाले योगी किस बलपर प्रसन्नतासे बने रहते हैं ? वह बल है सहज परमात्मतत्त्वकी दृष्टिका । यदि निरन्तर प्रसन्न हो सकनेकी बात उनके न हो सकती होती तो

उनका रहना बन ही न सकता था। एक मिनट भी समय कटना कठिन होता है जब कि चित्तमे प्रसन्नता नही होती। योगिजनोकी प्रसन्नता ऐसी स्वाधीन है कि जिसमे किसी प्रकार की बाधा नही आ सकती। उपसर्गके समय भी जहाँ परकृत आनन्द बाधा नही। जिसका पूर्ण निर्णय है कि यह मै स्वयं केवल अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे सत्‌रूप हू। मेरेमे किसी अन्यका प्रवेश नही। मैं स्वयंमे स्वयका ही सहज भाव रखे हुए अनादि अनन्त हू, मेरा किसीसे क्या सम्बध। किसको सोचना किसको याद करना, किसे समझाना, किसमे इज्जत चाहना ? मैं स्वय एकाकी अपने आपके स्वरूपको लिए हुए बस यही पूर्ण मैं हू। इस ओर दृष्टि है और इस दृष्टिके होने से अद्‌भुत आनन्द उत्पन्न होता है। उस आनन्दका बल है कि वे अपने आपमे अकेले मे रमते रहते है। भवके अन्त करनेका एक यही उपाय है, दो ही तो स्थितियाँ है—या तो जन्म मरण करते चले जावो या जन्ममरणसे रहित होकर केवल स्वय जैसा सहज हो वैसा रह जाओ। इन दो स्थितियोके अतिरिक्त और कोई बीचकी स्थिति नही है। बीचकी स्थिति कह सकते हो तो थोडे समयको अरहत भगवानकी स्थिति कह लो, लेकिन उन्हे मुक्त ही कहा जाता है, ससारी नही कहा जाता। भले ही ससारमे है, कुछ कर्म है, शरीर भी लगा है, अभी जीवन है, आयुका उदय है, लेकिन जहाँ घातिया कर्म नष्ट हो गए वहाँ अन्य मलोकी गिनती नही है, केवलज्ञान अनन्त आनन्द जहाँ प्रकट हो गया है वह तो प्रभु ही है, मुक्त ही है, सिद्ध ही समझिये। तो दो प्रकारकी स्थितियाँ होती है। सो भैया ! कमसे कम इतनी तो छाँट कर ले कि मेरे लिए कौनसी स्थिति हितकारी है ? ससारकी ये अनेक स्थितियाँ क्या मेरा हित कर सकेगी ? इज्जतमे बड गए, सैकडो लोग प्रशसा कर रहे अथवा अधिकार बढ गया, या धन बढ गया, परिवार अधिक है, ये सब इस मेरे आत्माको क्या लाभ पहुचाने वाले है ? मैं तो अपने सत्त्वसे अपने मे ही उत्पादव्यय करता रहता है, सम्बध ही नही दूसरे से। तो कोई अन्य मेरा हितू ही कैसे हो ? अत मुक्तिकी छाट कीजिये और एतदर्थ सदामुक्तकी शरण लीजिये।

ज्ञाता व बाह्यज्ञेयमें ज्ञानविषयक भी कर्तृकर्मत्वका अभाव—भला मेरा बाह्यसे इतना भी सम्बध नही हो पाता कि मैं बाह्य पदार्थको जानता हू तो बाह्यको जान रहा होऊँ सो भी वात नही, इतना तक भी सम्बध नही कि मैं किसी वाह्यपदार्थको जानता तक होऊँ। मैं अपने आपमे जो परिणमन है उस रूप परिणमता हू, अपनेको जानता हू। बाह्यको नही जानता। ज्ञानसे जानता हूं। ज्ञान मेरा मेरे प्रदेशमे है। यह ज्ञान क्या वाहर जा जाकर जानता है ? बाहरके पदार्थ वे अपने प्रदेशमे है, परतु स्वरूपकी महिमा विचित्र है। धन्य

। यह मैं ज्ञानशीलपदार्थ अपने आपके प्रदेशमे रहकर और अपने आपमे ज्ञानन परिन करता रहता हू। हाँ, जातन परिणमन हो रहा है उस प्रकार जैसा कि पदार्थ बाह्य है, सत् है तभी तो ६ साधारण गुणोमे प्रमेयत्व गुण बताया है कि सर्वपदार्थमे प्रमेयत्व गुण। सर्वसत् प्रमेय हो ही जायेगा। अव उसका प्रमेयत्व उसमे है, हमारा ज्ञातृत्व हममें है, कैसा सम्बन्ध ? आ गया ज्ञानमे। सन्निधानकी भी बात नही। जाननके मुकाबलेमे बाह्यमे कुछ हो, यो सन्निधानकी भी बात नही कि सामने चीज हो तो ज्ञानमे आये, सत् हो तो ज्ञानमे आये, जो भी सत् है। यह तो इस समय हम आपके आवरणकी स्थिति है, जो अभिमुख और नियमित पदार्थोंका ज्ञान हो पाता है इससे आभिनिबोधिक ज्ञान बताया गया है। यह मतिज्ञानका दूसरा नाम है। जो अभिमुख और नियमित पदार्थ का ज्ञान करे सो आभिनिबोधिक ज्ञान है। यह एक कैदकी स्थिति है। पर वस्तुत पदार्थ ज्ञानमे आता है, सत् है सो आता है, यहाँ ऐसा स्वभाव है कि वह जानता रहे, किसे जानता रहे ? जो भी हो उसे। अपने आपके प्रदेशमे रहकर ज्ञेयाकार परिणमन करता है और अपनेमे अपनेको जानता है। मैं हू, ज्ञानमात्र हू और परम अध्यात्मदृष्टिसे मैं ज्ञानमात्र हू और ज्ञानका जो परिणमन बन रहा, ज्ञेयाकार जो मेरा कार्य बन रहा, मैं हू और मेरा ज्ञान जो ज्ञानमे ज्ञेयाकार परिणमन है उसीको साक्षात् जान रहा है। यह भी मैं ज्ञानमात्ररूपसे हू, ज्ञेयाकार रूप नही हू। अन्य ज्ञेयाकारकी बात नही कर रहे, बाह्य पदार्थोंकी चर्चा नही कर रहे क्योकि मैं तो एक हैं, ज्ञेयाकार अनेक है, मैं भी हू, अनेक नही हूँ। यह दिख रहा है अभी द्रव्यरूपसे अभेद रूपसे। पर्याय, परिणमन, अनेकत्व भी साथ लगा हुआ है। उस दृष्टिसे देखनेसे वहाँका भी बोध होता है। वस्तुका पूर्ण निर्णय तो कर लीजिए, पर साधना मे अभेददृष्टि बनाइये। इस मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जब बाह्य पदार्थोंके साथ जाननेका भी साक्षात् सम्बन्ध नही है तो मानना कि ये मेरे लडके है यह मेरी स्त्री है, यह मेरा घर है यह मेरा वैभव है आदि यह सब अधकार है।

प्रकाशक व प्रकाशमानके दृष्टान्त द्वारा वस्तुस्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—समयसारमे जहाँ शिक्षा दी है कि निन्दा स्तुति आदिके ये वचन तो पौद्गलिक हैं। उनको सुनकर तू तुष्ट रुष्ट क्यो होता है ? उसकी व्याख्यामे श्री अमृतचन्द्राचार्यने कहा है कि कितना स्वतंत्र तत्त्व बताया है दृष्टान्तपूर्वक कि जैसे यहाँ दुनियामे दिखता है कि देवदत्तने यज्ञदत्तका हाथ पकड करके जबरदस्ती कर दिया कि तुम अमुक काम करो, यहाँ पर भी जबरदस्ती नही है। देवदत्तने यज्ञदत्तका हाथ पकडा हो, मरोडा हो वहा पर भी देवदत्तके आत्माका परिणमन

उसमे है, उसका निमित्त पाकर शरीरमे जो हलन-चलन है वह उसमे है, हाथ मरोड़ा तो देवदत्तका ही, मगर यज्ञदत्तका हाथ मरुडना उसका निमित्त सन्निधान पाकर हुआ है। अथवा जैसे इन्जन चलता है तो लोग कहते है कि इस ड्राइवर ने मोटर चलाया, लेकिन ड्राइवर आप कितने को मानोगे ? उसका काम तो उतनेमे ही हुआ, पर हाँ निमित्तनैमित्तिक भावका वहा लोप नही है उसकी सारी व्यवस्था बनी है, लेकिन वस्तुको देखो—प्रत्येक वस्तु अपने आपमे परिणत है। तो यह दीपक जो जलता है और जो पदार्थ प्रकाशित होते हैं तो पदार्थोंने देवदत्त यज्ञदत्तकी तरह जबरदस्तो नही की कि हम सब अंधेरेमे पडे है, हमे प्रकाशित कर दो। रातके ७-८ बजे यदि ये टेबिल कुर्सी वगैरह दीपक पर जोर देकर कुछ खडबड करते हो तो बताओ ? नही करते और दीपक भी अपनी जगह छोडकर कही किसी वस्तुको प्रकाशित करने नही जाता। जितनी यह ज्वलित दीपशिखा है वह शिखा वहाँसे चलकर क्या दूसरी वस्तुओको प्रकाशित करने आती है ? अरे उस दीपकमे उस प्रकारका प्रकाश स्वभाव है और इन घटपट आदिकमे इस प्रकारका प्रकाश स्वभाव है, उसके प्रकाश होनेके अन्य साधन है, तो इन घटपट आदिकके प्रकाश होनेमे यह दीपक साधन है। दीपक अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा है और उस समय स्वरूपसे प्रकाशित होनेकी स्थितिमे वह दीपक अपने मे अपनी बात कर रहा है, मगर ये सब पदार्थ ऐसे ही स्वभावके है कि उस ज्वलित दीपकका निमित्त पाकर ये स्वय प्रकाशमान हो जाते है। देखिये—एक इस व्याख्याको कही न भूले। जितने भी विभाव परिणमन है उनका नाम अनियत भाव है, वे सब परिणमन अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर उपादानमे अपने प्रभावसे प्रभावित हुए है, उपादानमे ऐसी कला है, ऐसी प्रकृति है।

आत्माका अपने कार्यमें स्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—उक्त उदाहरणकी तरह यह आत्मा बाह्य अर्थ शब्द, रूप, रस, गध, स्पर्शको जानता है यो कहते हैं, पर वस्तुत. ये शब्द आदिक इस आत्मा पर जबरदस्ती नही कर रहे कि हमको सुनो, देखो, सूंघो, छुओ, जानो। ये जितने द्रव्य गुण है वे तो हमारे ज्ञानमे विषयभूत होते ये भी इस आत्माको प्रेरित नही कर रहे और आत्मा भी अपने प्रदेशसे हटकर इन तत्त्वोमे आ आकर इनको जानता नही, किन्तु यह आत्मा स्वय ही जान रहा है। ये पदार्थ अभिमुख हो अथवा न हो, और स्वरूप से जब यह जान रहा है तो ये सब ज्ञेय हैं, जानने के विषयभूत हैं। तो अब यहाँ यह देखें कि दीपकका निमित्त पाकर ये पदार्थ प्रकाशित हुए है तो इतने मात्रसे कही ऐसा तो अ नही देखा कि काला टेबिल अगर प्रकाशित हो गया तो दीपकको भी काला बनना

है जो यह मैं ज्ञानशीलपदार्थ अपने आपके प्रदेशमे रहकर और अपने आपमे जानन परिणमन करता रहता हू। हाँ, जानन परिणमन हो रहा है उस प्रकार जैसा कि पदार्थ है, बाह्य है, सत् है तभी तो ६ साधारण गुणोमे प्रमेयत्व गुण बताया है कि सर्वपदार्थमे है प्रमेयत्व गुण। सर्वसत् प्रमेय हो ही जायेगा। अब उसका प्रमेयत्व उसमें है, हमारा ज्ञातृत्व हममे है, कैसा सम्बन्ध ? आ गया ज्ञानमे। सन्निधानकी भी बात नही। जाननके मुकाबलेमे बाह्यमे कुछ हो, यो सन्निधानकी भी बात नही कि सामने चीज हो तो ज्ञानमे आये, सत् हो तो ज्ञानमे आये, जो भी सत् है। यह तो इस समय हम आपके आवरणकी स्थिति है, जो अभिमुख और नियमित पदार्थोका ज्ञान हो पाता है इससे आभिनिबोधिक ज्ञान बताया गया है। यह मतिज्ञानका दूसरा नाम है। जो अभिमुख और नियमित पदार्थ का ज्ञान करे सो आभिनिबोधिक ज्ञान है। यह एक कैदकी स्थिति है। पर वस्तुत पदार्थ ज्ञानमे आता है, सत् है सो आता है, यहाँ ऐसा स्वभाव है कि वह जानता रहे, किसे जानता रहे ? जो भी हो उसे। अपने आपके प्रदेशमे रहकर ज्ञेयाकार परिणमन करता है और अपनेमे अपनेको जानता है। मैं हू, ज्ञानमात्र हू और परम अध्यात्मदृष्टिसे मैं ज्ञानमात्र हू और ज्ञानका जो परिणमन बन रहा, ज्ञेयाकार जो मेरा कार्य बन रहा, मैं हू और मेरा ज्ञान जो ज्ञानमे ज्ञेयाकार परिणमन है उसीको साक्षात् जान रहा है। यह भी मैं ज्ञानमात्ररूपसे हू, ज्ञेयाकार रूप नही हू। अन्य ज्ञेयाकारकी बात नही कर रहे, बाह्य पदार्थोकी चर्चा नही कर रहे क्योकि मैं तो एक है, ज्ञेयाकार अनेक है, मैं भी हू, अनेक नही हूँ। यह दिख रहा है अभी द्रव्यरूपसे अभेद रूपसे। पर्याय, परिणमन, अनेकत्व भी साथ लगा हुआ है। उस दृष्टिसे देखनेसे वहाँका भी बोध होता है। वस्तुका पूर्ण निर्णय तो कर लीजिए, पर साधना मे अभेददृष्टि बनाइये। इस मुझ ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वका जब बाह्य पदार्थोके साथ जाननेका भी साक्षात् सम्बन्ध नही है तो मानना कि ये मेरे लडके है यह मेरी स्त्री है, यह मेरा घर है यह मेरा वैभव है आदि यह सब अधकार है।

प्रकाशक व प्रकाशमानके दृष्टान्त द्वारा वस्तुस्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—समयसारमे जहाँ शिक्षा दी है कि निन्दा स्तुति आदिके ये वचन तो पौद्गलिक हैं। उनको सुनकर तू तुष्ट रुष्ट क्यो होता है ? उसकी व्याख्यामे श्री अमृतचन्द्राचार्यने कहा है कि कितना स्वतंत्र तत्त्व बताया है दृष्टान्तपूर्वक कि जैसे यहाँ दुनियामे दिखता है कि देवदत्तने यज्ञदत्तका हाथ पकड करके जबरदस्ती कर दिया कि तुम अमुक काम करो, यहाँ पर भी जबरदस्ती नही है। देवदत्तने यज्ञदत्तका हाथ पकडा हो, मरोडा हो वहा पर भी देवदत्तके आत्माका परिणमन

उसमे है, उसका निमित्त पाकर शरीरमे जो हलन-चलन है वह उसमे है, हाथ मरोडा तो देवदत्तका ही, मगर यज्ञदत्तका हाथ मरुडना उसका निमित्त सन्निधान पाकर हुआ है। अथवा जैसे इन्जन चलता है तो लोग कहते है कि इस ड्राइवर ने मोटर चलाया, लेकिन ड्राइवर आप कितने को मानोगे? उसका काम तो उतनेमे ही हुआ, पर हाँ निमित्तनैमित्तिक भावका वहां लोप नही है उसकी सारी व्यवस्था बनी है, लेकिन वस्तुको देखो—प्रत्येक वस्तु अपने आपमे परिणत है। तो यह दीपक जो जलता है और जो पदार्थ प्रकाशित होते हैं तो पदार्थोने देवदत्त यज्ञदत्तकी तरह जबरदस्ती नही की कि हम सब अंधेरेमे पड़े है, हमे प्रकाशित कर दो। रातके ७-८ बजे यदि ये टेबिल कुर्सी वगैरह दीपक पर जोर देकर कुछ खडबड करते हो तो बताओ? नही करते और दीपक भी अपनी जगह छोडकर कही किसी वस्तुको प्रकाशित करने नही जाता। जितनी वह ज्वलित दीपशिखा है वह शिखा वहाँसे चलकर क्या दूसरी वस्तुओको प्रकाशित करने आती है? अरे उस दीपकमे उस प्रकारका प्रकाश स्वभाव है और इन घटपट आदिकमे इस प्रकारका प्रकाश स्वभाव है, उसके प्रकाश होनेके अन्य साधन है, तो इन घटपट आदिकके प्रकाश होनेमे यह दीपक साधन है। दीपक अपने स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा है और उस समय स्वरूपसे प्रकाशित होनेकी स्थितिमे वह दीपक अपने मे अपनी बात कर रहा है, मगर ये सब पदार्थ ऐसे ही स्वभावके है कि उस ज्वलित दीपकका निमित्त पाकर ये स्वयं प्रकाशमान हो जाते है। देखिये—एक इस व्याख्याको कही न भूले। जितने भी विभाव परिणमन है उनका नाम अनियत भाव है, वे सब परिणमन अनुकूल निमित्त सन्निधान पाकर उपादानमे अपने प्रभावसे प्रभावित हुए है, उपादानमे ऐसी कला है, ऐसी प्रकृति है।

आत्माका अपने कार्यमें स्वातन्त्र्यका दिग्दर्शन—उक्त उदाहरणकी तरह यह आत्मा बाह्य अर्थ शब्द, रूप, रस, गध, स्पर्शको जानता है यो कहते है, पर वस्तुत. ये शब्द आदिक इस आत्मा पर जबरदस्ती नही कर रहे कि हमको सुनो, देखो, सूंघो, छुओ, जानो। ये जितने द्रव्य गुण है वे तो हमारे ज्ञानमे विषयभूत होते ये भी इस आत्माको प्रेरित नही कर रहे और आत्मा भी अपने प्रदेशसे हटकर इन तत्त्वोमे आ आकर इनको जानता नही, किन्तु यह आत्मा स्वयं ही जान रहा है। ये पदार्थ अभिमुख हो अथवा न-हो, और स्वरूपसे जब यह जान रहा है तो ये सब ज्ञेय हैं, जानने के विषयभूत हैं। तो अब यहाँ यह देखें कि दीपकका निमित्त पाकर ये पदार्थ प्रकाशित हुए हैं तो इतने मात्रसे कही ऐसा तो आपने नही देखा कि काला टेविल अगर प्रकाशित हो गया तो दीपकको भी काला वनना पड़े।

ऐसा तो कही होता नही। तो यहा क्यो ऐसा हो रहा है कि यदि ज्ञा.मे ये इष्ट अनिष्ट पदार्थ आये, स्त्री पुत्रादिक आये या कुछ यहा इष्ट अनिष्ट बात गुजरी, वनी तो यहा पर भी खेद और विषाद होने लगा ? वस्तुत ऐसा सम्बन्ध नही है इस चेतनाके साथ, लेकिन होता है। तो यह अज्ञान है। अज्ञानको अभ्यास नामसे प्रसिद्ध किया है कुछ दार्श.को ने देहाध्यास। और भी देखिये–अध्यास देहमे, अध्यास क्रियामे और अध्यास कर्तामे। मैं अमुक चन्द हू, अमुक लाल हू, फलाने लाल हू, यह क्या है ? अपने ज्ञायक को और पर्यायको एक-मेक कर रखा है। यह तो देहाध्यास है। मैं करता हू, चलता हू, बोलता हू यह क्या है ? यह क्या क्रियाका अध्यास नही है ?

अज्ञान मोहके विनष्ट होनेपर राग द्वेषादि विभावोंका सुगम विनाश– अपने अन्तः विशुद्ध तत्त्वको निरखे। तो जो सहज हो, परके लागलपेटसे दूर हो। लपेट तो बाह्य मल है और लाग अन्तरङ्ग मल है। इस लागलपेटसे रहित केवल अपने सत्त्वके कारण जो कुछ हो सकता है उस स्वभावको निरखिये–जानिये। अहा, इस दर्शनमे ऐसा बल है कि जैसे कहते हैं कर्मोंकी कडिया टूट पडे। जैसे बच्चे लोग एक कथानक बोला करते हैं कि स्याल स्यालिनी एक जगलमे थे। स्यालिनी के बच्चे होने थे सो स्यालसे पूछा कि किस जगह बच्चे उत्पन्न किए जायें ? तो कोई अच्छी जगह न मिलने पर स्यालने किसी सिंहकी चुलमे (गुफा मे) बच्चे उत्पन्न करनेके लिए कहा। स्यालिनी ने कहा– अगर कही सिंह आ गया तो ? तो हम उसका भी उपाय बना लेंगे ? क्या उपाय बना लोगे ? देखो– तुम बच्चोको रुला देना। हम पूछें कि ये बच्चे क्या मागते है, तो तुम बोल देना कि ये बच्चे सिहका मांस मागते है, बस अपना काम बन जायेगा। अच्छी बात ! जब सिंहकी गुफामे बच्चे पैदा हुए तो स्याल जो कि उस गुफाकी चोटी पर बैठकर बच्चोकी रक्षा कर रहा था उसने कई बार अनेक सिंहोको वहा आते हुए देखा, पर जहा ही सिंह आवे वहा स्यालिनी बच्चो को रुला देती थी, ऊपरसे स्याल पूछता था कि बच्चे क्यो रोते हैं ? तो वह स्यालिनी नीचेसे बोल उठती थी कि ये बच्चे बहुत भूखे हैं, सिहका मास मागते हैं। बस इतनी बात सुनकर सभी सिंह डरकर वहासे भाग जाते थे। सोचते थे– ओह ! मेरा भी खाने वाला यहा कोई रहता है। कुछ दिन बाद सभी सिंहोने सलाह की कि जरा वहा चलकर देखें तो सही कि अपन लोगोको भी खा जाने वाला कौन है ? सो जब वहाँ पहुचे तो समझ गए कि यह सब कर-तूत इस ऊपर बैठे हुए स्याल की है। बस इसको पकडकर मार डालना चाहिए। पर हव स्याल मिले कैसे ? सोचा कि अपन लोगोमे से एक दूसरे पर चढ चढकर उसके पास

तक पहुचे और ऊपर वाला सिंह उसे वहांसे पकड फेके। ठीक है। परन्तु नीचे कौन सिह रहे ? सो सलाह हुई कि अपनमे से जो एक लगडा शेर है, वह ऊपर तो चढ नही सकता, उसको नीचे रखना चाहिए। ठीक है। वह लगडा सिह नीचे झुक गया और उसके ऊपर बारी बारीसे एक पर एक सिंह चढता गया। जब ऊपरका सिह स्याल तक पहुचने वाला ही था तब ही स्यालिनीने बच्चोको रुला दिया, स्यालने पूछा कि ये बच्चे क्यो रोते है ? तो स्यालिनी बोली– ये बच्चे बहुत भूखे हैं, लगड़े शेरका मास मागते है। इस बातको जब लगडे शेरने सुना तो डर कर भागा। सभी शेर एक दूसरेपर भदभद करके गिर गए। तो यो ही समझिये कि ये रागद्वेषादिक विकार हम आपके अध्यवसान पर जगे हुए है, यह अध्यास नीचेसे खिसके तब फिर ये रागद्वेष, शोक चिन्ता आदिक परिणाम भदभद करके गिरेगे, इनकी रक्षा करने वाला फिर कोई न होगा। हमे यत्न करना है उस सहज अतस्तत्वमे प्रवेश करनेका। उपयोगमे वह समाया रहे।

स्वच्छता व वीतरागताका प्रभाव–धन्य है वे जीव, पूज्य है वे जीव जिनके उपयोगमे इस अन्त स्वभावका उपयोग बना रहे। अरहंत भगवानके वदन पूजनके लिए कितना जमाव हो जाता है ? स्वर्ग खाली हो रहा, देवताओ की भीड निकल रही है, मनुष्य बडे-बडे चक्री तक भी जा रहे है। अरे ये मेढक, सर्प, नेवला आदिक भी जा रहे है। ऐसी कौन सी कला है ? कैसा जादूगर आया कि पशु पक्षी भी शरण शरणके लिये भाग रहे है, सभी जीव जिनकी ओर आकर्षित हो रहे है ? अरे वे तो किसीसे बोलते भी नही, वे तो अपने स्वरूपमे ही प्रतिष्ठित है, शुद्ध हो गए है, स्वच्छ हो गए है, केवल रह गए है। अब राग द्वेष नही रहा, किसीको अपनाना, किसीको पराना, यह बात अब उनमे नही रही, सो उनकी ऐसी अलौकिक महिमा है कि बिना जादू किए ही सारा ससार उनके चरणोमे न्यौछावर हो रहा है। और यहा राग द्वेष करके कोई प्रयत्न तो करे कि सबको अपना बना ले, कर ही नही सकता कोई। होगा ही नही। तो इन जीवोमे भी ऐसी प्रकृति है कि वे वीतरागता और स्वच्छता की ओर स्वाभावत. ढलते हैं। इससे इतना तो स्पष्ट होता है। कैसा ही कोई मोही हो, मलिन हो, कैसा ही हो, जिसमे मन है वह आखिर शुद्ध ज्ञान और वैराग्य की ओर किसी न किसी ढगमे उसके ढलने की प्रकृति पडी हुई है। जैसे कहते है कि बडे वर्तनमे खिचडी बनाया हो, सारी खिचडी खाली हो गई फिर भी अगल-बगलमे उतनी खिचडी निकल ही आयगी जितनी एक आदमीका पेट भर सके। तो ऐसे ही यह विशाल आत्मा कितना ही मलिन हो, कितने ही राग द्वेष हो, कुछ भी विकार परिणतिया हो रही

हो, फिर भी यह बानगी सबमें पडी हुई है कि यदि वीतराग केवल ज्ञानी शुद्ध विशुद्ध परमात्मतत्त्वका दर्शन हो या कही कोई ऐसे अरहंत भगवान मिले, कुछ हो तो सभीका चित्त चाहेगा किसी न किसी रूपमे आकर्षण होता है। यह यह आकर्षण किसका है ? प्रभुका नही। स्वयं खुदमे बात पडी हुई है, स्वभाव पडा हुआ है, स्वयंकी बात है कि खिचते चले जाते है।

एकत्वविभक्त अन्तस्तत्त्वके उपयोगकी शरणरूपता—जानना यह है कि मेरा स्वय का किसीसे भी कोई सम्बध नाता नही है । नाता सम्बध मानकर हम स्वयं दुखी होते है, क्लिष्ट होते हैं। अपने आपके स्वरूपको जानें पहिचानें और उसे निरख करके प्रसन्न रहने का उद्देश्य बनायें। ये योगीजन ये चक्री लोग छह खण्डका वैभव छोडकर हजारो रानिया त्यागकर कैसे-कैसे विलास, वैभव साधन उनका परित्याग कर जगलमे कंकरीली जमीनमे, कटीले स्थानमे, बनचरोसे भरी हुई जगहमे या किसी भी जगह, जहाँ कोई दूसरा सहाय नही है वहाँ भी वे प्रसन्न रहा करते है। उनकी उस प्रसन्नताका कारण क्या है ? वह कारण है निज परमात्मतत्त्वका मिलन। उसकी प्राप्तिके लिए हम व्यवहार नयके उपयोग से निश्चयनयकी बात जानकर उससे भी परे होकर एक अपने शुद्ध स्वभावकी उपासनामे लगें, ऐसा यत्न हो तो हम खुद अपने लिए शरण हो जायेंगे अन्यथा यह जन्म मरण ससार जो कि अनादिकालसे चला आ रहा है, वही चलता रहेगा। यही प्रमादका फल होगा।

॥ अध्यात्मसहस्री प्रवचन पञ्चम भाग समाप्त ॥

अध्यात्मसहस्री प्रवचन षष्ठ भाग

[प्रवक्ता—अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी सहजानन्द महाराज]

अनियत भावसे हटकर नियत सहज स्वभावमें आनेका ज्ञानीका उद्यम—कौनसा भाव दृष्टिमे लेने योग्य है और कौनसा भाव दृष्टिसे हटाने योग्य है ? इसकी ध्वनि एक इस कलशमे प्राप्त होती है– चिच्छक्तिव्याप्तसर्वस्वसारो जीव इयानयम्। अतोऽतिरिक्ता सर्वेऽपि भावा पौद्गलिका अमी ।। चैतन्य शक्ति करके व्याप्त है सर्वस्वसार जिसका ऐसा यह जीव इतना ही है। सर्व विशुद्ध भावोसे जीवके स्वरूपको निरखने वाला ज्ञानी अतस्तत्वका रुचिया संत निरख रहा है कि जीव तो इतना है, यह है। जो चैतन्यशक्ति करके व्याप्त सर्वस्वसार वाला है इसका सार कितना ? बस यह चैतन्यशक्ति, चिद्रूप। इसका ही वास्तविक सहारा है, यही इसका सर्वस्व है और इससे अतिरिक्त जितने भी भाव है वे सभी पौद्गलिक हैं। यहा इस तरहकी तैयारी है कि जैसे कूडा कचराको हटाकर एक स्वच्छ भूमिमें आराम करने की कोई तैयारी कर रहा हो। जो भाव गुजरते है, बीतते हैं, जिनसे क्लेश, क्षोभ हो रहे हैं वे सब मल है, उनसे हटकर और एक स्वच्छ चैतन्यशक्तिमें आना है। उसकी तैयारीमे कहा गया है कि जीव तो एतावन्मात्र है जो चैतन्यशक्तिसे व्याप्त है और इसके अतिरिक्त सब भाव पौद्गलिक हैं। पौद्गलिक है—इसका अर्थ क्या ? पुद्गल उपादान वाला है, क्या यह अर्थ है ? किन्ही बातोमे वर्णादिक भावोमे, यह भी अर्थ है और भावोमे विभावोमे यह अर्थ है कि पुद्गलका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए भाव हैं। अनियत भावसे हटकर नियतभावमे आनेकी तैयारी है। वह तैयारी भी भावरूपसे है, निज सहजचैतन्यभाव स्वभाव है और चैतन्यशक्तिसे अतिरिक्त भाव है। राग, द्वेष, मोह, वितर्क, विचार, छुटपुट ज्ञान, नैमित्तिक ज्ञान, ये सब भाव इससे पृथक् है और ये सब पौद्गलिक कहे गए है। इसका अर्थ यह नही है कि सब पुद्गलकी परिणतिया है, किन्तु पुद्गलका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए भाव है अतएव पौद्गलिक हैं। ये स्वरूपमे नियत नही है, इसकी प्रतिष्ठा स्वयंमे नही है, अतएव ये अनियत है, पौद्गलिक है, औपाधिक हैं, यह परख परभावसे हटकर स्वभावमे पहुंचनेके लिए हुए है।

विभाव परिणामकी उपपत्तिका निर्णय—अब जिस माध्यमसे ज्ञानीने विभावसे उपेक्षित होकर स्वभावमे लगने की तैयारी की है वहाँ उसने हिले कुछ निर्णय तो किया होगा, जिसके बाद अब यह साधनामे चल रहा है। निर्णय है कि ये सर्वभाव पौद्गलिक है, स्वय के स्वभावमे स्वयंके सत्त्वमे ही मात्र सहज ही उत्पन्न नही हुए। यद्यपि यह भी निश्चित बात है कि जिस किसी भी प्रकार कारण कार्य विधानपूर्वक जो भी हुआ है, होगा, वह ज्ञानी द्वारा ज्ञात है इस कारण या मानो अबसे २४ घंटे बाद इसी समय याने विवक्षित समय प्रत्येक द्रव्यका कुछ तो होगा ना। जो कुछ होगा वह उस समय होगा, यो निश्चित हैं, लेकिन जितनी भी विभावकी बातें हैं, औपाधिक भाव है वे नियत नही है। होगे उसी समय, परतु स्वभावमे नियत नही है, उपाधिका निमित्त पाकर हुए हैं। तो यो सारा जगत् जितना भी विभावमे चल रहा है यो ही कारण कार्य विधानपूर्वक चल रहा है।

स्वभाव व परभावकी निरखसे उपलब्ध शिक्षा—अब जो हो रहा है, होना है, हम उसमे समझे क्या ? उसमे शिक्षा लेना है हमे, अनियत भावको छोड़ना है और नियत स्व सहज भाव पर अपनी दृष्टि लाना है। यह मैं जीव इतना ही मात्र हू जो चैतन्यशक्तिकर व्याप्त है। यही सार है, यही हमारा शरण है, इसका ही वास्तविक सहारा है, अन्य द्रव्य के सम्पर्कमे मेरा गुजारा नहीं चलनेका। अरे इस जगत्मे किसको कहे कि मेरा है, किस को कहे कि शरण है ? जब मेरे ही परिणमनमे आने वाले रागादिक भाव भी मेरेको शरण नही हैं, मेरी बरबादीके ही हेतु हैं और ये बेचारे विकार खुद भी अशरण है, समय बीता और इनको मिटना पड़ता है। मैं किसका सहारा ढूंढू ? यह शरीर, ऐसे ऐसे अनन्त शरीर पाये और जिन शरीरोमे मैं इतना घुलमिलकर रहा, एकक्षेत्रावगाही होकर रहा, उपयोग से भी घुल मिलकर रहा, इतना घुलामिला शरीर भी जब मेरा शरण न हुआ, मेरा साथी बनकर न रहा, यह भी धोखा दे देता है, तो अब मैं बाह्यमे अन्यत्र शरण कहाँ ढूंढू ? किसी भी परपदार्थके प्रसंगमे, किसी भी परद्रव्यके प्रसगमे मेरा गुजारा न हो सकेगा। मेरेको शरण मेरा सहारा यही एक चैतन्यस्वरूप है।

परभावसे हटकर स्वतत्त्वमें आनेका दृढ़ कदम—यहाँ भावमे स्वतत्त्वको जमाना है और अन्य भावोकी उपेक्षा करनी है। इस ही पद्धतिसे जितनी हमारी प्रगति होगी बस वही हमारा ठीक पौरुष है, सही व्यवसाय है, हम ठीक कर्तव्यपथपर जा रहे है इसके लिए बस भेदविज्ञान और अभेदज्ञान, भेदविज्ञानके नीचे रहने वाले अभेदज्ञानकी बात नही कह रहे, किन्तु भेदविज्ञानसे उठकर ऊपरके अभेदज्ञानकी बात कह रहे है। भेदविज्ञान, मैं इतना हू

यह चैतन्यशक्ति मात्र । मैं सबसे निराला हूं, सबसे न्यारा हू, उनका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उनमे ही है, मेरा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव सब कुछ मुझमें ही है । और परका आश्रय पाकर परका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए जो अपनेमे विभाव है उनसे भी मैं निराला हू, क्योकि ये मेरेमे नियत नही है, मेरे स्वभाव नही है, इनकी मुझमे प्रतिष्ठा नही है, ये औपाधिक है । सतोने निश्चयनयकी पद्धतिमे यह भी आशय अपनाया है कि निरखना है केवल अपने आपको विशुद्ध चैतन्यस्वरूप और उस चैतन्यस्वरूपके दर्शनमे यह आशय मदद करता है कि ये रागादिक भाव पौद्गलिक है, औपाधिक है अनेक स्थलोपर वर्णन किया । भाव उनका यह था कि उपाधिसे होने वाले भाव अर्थात् उपाधिका निमित्तमात्र पाकर होने वाले भाव उपाधिके साथ जुडे, मेरे साथ मत जुडा । जिसके साथ अन्वयव्यतिरेक है वह उसकी चीज है वह हमे न चाहिए, इसे मुझे नही अपनाना है । मैं तो एक आधारमात्र रहा, जैसे सिनेमाके सफेद पर्देपर चित्र आता है तो वहाँ मशीनसे, वहाँकी फोटोसे जो कुछ हो रहा है उसका निमित्त पाकर वहाँ पर्देपर चित्रण हो रहा है, वह चित्रण पर्देका नही है, पर्दा साफ है, उसके ऊपर ही वह सब चित्रण लोट रहा है । उस मशीनके बद होनेपर वह बद होता है, चलानेपर चलता है, आदिक बाते देखकर यह चित्र उसके साथ जावे, उससे सम्बधित हो यह चित्रण उस पर्दे का नही है । पर्दा तो भूमिमात्र है । यह मैं आधारमात्र हू और जो कुछ होता है यह भाव औपाधिक है । कितना उसका साहस, उसका पौरुष और उसका उद्यम है कि वह सब विभावोको फेककर उनसे विभक्त निज अतस्तत्त्वमे रमना चाह रहा है ।

सहज परमात्मतत्त्वके मिलनका माङ्गल्य--यहा कैसी दृष्टि की ? विवक्षित एक देश शुद्ध निश्चयनयकी दृष्टि । यह दृष्टि दिखाती क्या है ? जिस किसी भी प्रकार निरखो, मेरा सहजस्वरूप मेरे उपयोगमे बिराजे । यह उपयोग जब इन सब विभावोसे हटकर, इन अनियत भावोसे उपेक्षा करके जब यह नियत स्वभावमे जाता है, चलता है तो जिस किसी भी क्षण कुछ थोडा बहुत मिलापमा होता है, पर ऐसे ही सस्कारवश अशक्ति है कि उससे दिल भर मिलन नही हो पाता । मानो दृष्टिके आगे हम आये और उपयोगसा बन जाता है कि उस सहज परमात्मतत्त्वका थोडा बहुत स्पर्श-सा हो पाया उपयोग द्वारा कि उपयोग हटने लगता है । उपयोग बहुत बडी उत्सुकतासे इस सहजपरमात्मतत्त्वके मिलनके लिए चला है, कुछ दर्शन हुए है, कुछ निकटपना आया है, किन्तु कुछ बाधा-सी जब दिखती है तो उपयोग कह उठता है कि हे भगवन, हे प्रभु सहज परमात्मतत्त्व, कहाँ भागते हो ? जरा रुक जावो । मैं तुम्हारी शरणमे आया हू । तब फिर मानो वहांसे उत्तर मिलता है

कि मैं कहाँ जा रहा हूं जो रुकनेका प्रश्न आये, मैं तो अवस्थित हू, वही हू, वही हू, प्रकाश-मान हूं। तुम ही अपना कदम पीछे हटा रहे हो। क्या हट रहा ? कुछ अन्य नही, कोई दिशाका फेर नही, किन्तु उस ही बिन्दु पर रहता हुआ यह उपयोग सम्मुख भी कहलाने लगता और विमुख भी। ऐसी इसके अन्त परिणतिकी ही बात है। उपयोग बराबर चाहता है कि सहज परमात्मतत्त्वमें ही मैं बसूं। किन्तु इस धुनमे कभी हैरान होता है, कभी सोचने लगता है कि ऐसा क्या हो रहा है ? मैं भी चाह रहा हू, यह सहजपरमात्म-तत्त्व भी इसी लिए है कि खूब मिले, खूब रहे, खूब रमे, इसमे तो उसकी स्पष्ट विशदता भी आ जाती है। दोनो ओरसे मानो मनसा मिल रहा है और फिर भी मिलन नही हो पाता। यह उपयोग कह रहा, नाथ ! मैं कुछ भी प्रमाद नही करना चाहता, नही कर रहा। पर हो रही क्या बात है ? इस मिलनके प्रसगमे कुछ दो क्षण ही तो और चाहिए थे कि इस बीच गुप्त ही गुप्त ढगमे विकार बैरी ऐसी बरबादी करते हैं, बाधा डालते है, बडी हैरानीकी बात है।

सहजपरमात्मतत्त्वकी उपासनाके पौरुषका प्रभाव—यह बात सुनिश्चित है कि जो सहज परमात्मतत्त्वकी उपासना करेगा, उपासनाके लिए दृढ सकल्प होगा जिसको बाहरमे फिर कुछ भी न सुहायेगा, वह अपने इस उद्देश्यमे सफल होकर रहेगा। यह तो एक ऐसा निष्पक्ष तत्त्व है, ऐसा स्पष्ट है कि यदि कोई पुरुष सर्वप्रकारका पक्ष विकल्प त्यागकर मै ज्ञानरूप हू, ज्ञानस्वरूप हू, सो तथ्यताका जो उत्तर होगा, उसकी समस्याका जो कुछ समाधान होगा वह मूलमे मुझे ठीक ही मिलेगा, मगर हम किसी की बातको, किसीके सम-भावनको, किसीके सगको, किसी प्रसगको, इनको स्थान न देकर केवल इस ज्ञानमय अंत-स्तत्त्वसे ही समाधान चाहूगा, ऐसा दृढ सकल्प होना चाहिये। ऐसा सोचकर यदि अपने अत करणको इतना विशुद्ध रख लेते है कि किसी विकल्पकी गुञ्जाइश नही, कोई दूसरा भाव भी इसमे आये नही, किसी बातकी चिंता नही, रज नही, ख्याल नही, अन्त इसका उपयोग रहे तो स्वय ही एक ऐसे ज्ञानका प्रकाश होगा और समझ लेंगे कि मेरा सार शरण सर्वस्व आनन्द कल्याण सब कुछ यह है। मै कितना वैभववान हूँ ? मैं के मायने जीवमात्र सभी। स्वयमे कितनी निधि पडी है, क्या वैभव है, कितनी स्वच्छता है, कितनी उत्कृष्टता है जो कि हमे अन्यत्र न मिलेगी। लेकिन अपनी निधिकी अपनी विभूतिकी जब हम कोई कीमत नही रख रहे, जब हम कोई उत्कठा नही कर रहे, उसका महत्त्व नही समझ रहे तो उसका परिणाम यह है कि 'उपयोगको बाहर घुमा-घुमाकर, लगाव बाहरमे

लगा लगा कर दुःखी हो रहे है, आशा करके भिखारी बन रहे है। हम अपने ज्ञानधनको यदि न खोते तो यह स्थिति कहाँसे आती ? निरखना है अपने आपमे बसे हुए उस सहज परमात्मतत्त्वको।

निजमें सहजपरमात्मतत्त्वका दर्शन—देखिये जो बात एक बार रूढिमे आ जाती है, समझना चाहिये कि उसका कुछ न कुछ रहस्य था कभी, लेकिन आज भूल गए, पर किसी समय कोई रहस्यकी बात थी। लोग कहते है कि प्रभु घट-घटमे विराज रहे हैं, अब यह रूढिकी बात आ गयी। और यो निरखने लगे जैसे कि हम किसी व्यक्तिको देखते हैं। हमारी आदत व्यक्तित्वकी दृष्टिकी है कि हर जगह पडी हुई है, किसी बातको देखो तो उसमे व्यक्तित्व की बात बसी रहती है। कोई एक प्रभु, व्यक्ति जो कि राजासे भी बढ़कर है। राजाओसे भी बढकर, सबका राजा, सारी दुनियाका अधिपति कोई एक प्रभु है वह सबके घट-घटमे विराज रहा है, यो रूढि हो गयी, लेकिन तत्त्व क्या था ? एक कोई व्यक्ति हो, घट-घटमे विराजे तो इसमे भी बाधा है, भ्रम है, अनेक बातें हैं, लेकिन घट-घटमे स्वय अन्त प्रभु है और वह स्वयंमे शाश्वत अनादि अनन्त विराजमान है, इसको देखनेकी दिशा न मिली, सो इस रहस्य को भूल गए। दूधके कण-कणमे घी व्याप्त हो रहा है यह सुनकर कोई सोचे ऐसा घी होता है, वह घी इसके कण-कणमे है यो निरखनेसे उसका मर्म न जाना जायगा, किन्तु दूधके कण-कणमे स्वय ही जबसे दूध है तबसे उसमे घृत है। उसके समझनेकी विधि यह नहीं है कि जैसे बाहरसे घी लाये और ५ सेर दूधमे मिला दे तो जैसे वह व्याप्त हो गया घी, इस निगाहसे दूधमे सहज घी देखें तो न दिख सकेगा, न ज्ञात होगा, न बात बनेगी, किन्तु सहज ही जबसे दुग्ध है, जबसे सत्त्व है तबसे ही उसमे वह तत्त्व पडा हुआ है। अब उसके प्रकट होनेकी विधि है। उसको बिलो करके या दही बनाकर बिलोये या ऐसे ही तपाये, कई विधियोसे घी प्रकट हो जाता है, पर उन सब विधियोमे प्रतपन है याने रगड है। किसी भी विधिसे दूधसे घी कोई प्रकट करे, खोवा बनाकर करे अथवा मशीनमे सीधा दूध डालकर करे, पर रगड बिना कुछ न होगा, इसी तरह अपने चैतन्यस्वरूपमे प्रतपन हुए बिना हम उसका दर्शन नही कर सकते है, उसका प्रकाश नही पा सकते। इसके लिए हमे सर्वस्व न्यौछावर करना पडे, सर्वस्व न्यौछावरके मायने बाह्य बात, सब न्यौछावर करना पडे और यह स्वतत्त्व अगर कर लिया तो समझना चाहिए कि सस्तेमे ही प्राप्त किया। यह तन जो कि मिटने वाला है अगर इसके न्यौछावर होने से जीवको वह सहज दृष्टि प्राप्त होती है तो क्या गया ? पाया ही है इसने अपूर्व लाभ। और न्यौछावर करना क्या है ? जो परि-

गति, विभाव, विचार, विकल्प, पक्ष, आकर्षण आदिक जितने जो कुछ ये अतिरिक्त भाव है, बस इन अतिरिक्त भावोको छोडना है, इन अतिरिक्त भावोका लगाव छोडना है। जानना है कि इन सबसे निराला मैं विशुद्ध सहज चैतन्यशक्ति मात्र हू।

मुमुक्षुका अन्तः पौरुषविक्रम—कैसी वीरताके साथ कहा गया है यह कि यह मैं तो चैतन्यशक्तिकर व्याप्त है सर्वस्वसार जिसका, यह मै इतना ही हू और इसके अतिरिक्त जितने भी भाव है वे सब पौद्गलिक है। उनका नाम ही न रखे लगाव ही न रखें, ऐसी तैयारीके साथ अतस्तत्त्वका रुचिया ज्ञानी संत बाहरके कूडेको फेंककर, विभावोको हटाकर और अपने आपके उस सहजस्वरूप सर्वस्वमे प्रवेश करता है। ऐसा उपयोग जिसका बनता हैं, ये वाह्य कर्म, ये असंख्याते भवोके उपार्जित किए हुए कर्म क्षणमात्रमे खिरते है। जो बात कही गई है कि 'ज्ञानीके छिनमाहि त्रिगुप्ति तै सहज टरते।' क्षणभरमे असख्याते भवो के बाँधे हुए कर्म खिर जायें, उसका हेतु है यह विशुद्धता इस विशुद्ध आनन्दस्वरूपका अनुभव। जब किसी प्रकारकी चिकनाई, गीलाव, लगाव ही न रहा तो फिर ये कर्म रहेगे कहाँसे ? जैसे गीली धोती सूखनेको डाल दी और वह गीली धोती नीचे गिर जाय, उसमे धूल लग जाय, तो विवेकी पुरुष उस समय क्या करता है कि बिना झिटके पटके उसे धूपमे सूखनेके लिए डाल देता है, धोतीके सूख जाने पर जब उसे झिटक दिया जायेगा तो सारी धूल खिर जायेगी। क्यो खिर जायेगी कि उस धोतीमे अब गीलाई, चिकनाई, लगाव कुछ नही रहा, इसी प्रकार इन कर्मोके लिए जब आर्द्रता, स्निग्धता, लगाव न रहेगा तो फिर ये कर्म ठहरेगे कहाँ ? इसके लिए हमे यत्न क्या करना है ? बस यही एकमात्र। देखिये–काम कितना होगा और हमे करना क्या है ? करनी हमे एक बात है। और बातें बनेंगी। अनेक काम बनेंगे अनेक। वहा भी काम अनेक नही बनते, पर अनेक झझट थे, इसलिए जितने झझट थे उन झझटोसे छुटकारेके नाम भी उतने ही कहे जाते हैं। काम एक है–कैवल्यप्राप्ति। दृष्टि एक–कैवल्य दृष्टि। अब एतदर्थ, जीव पर झझट पहिलेसे ही बहुत हैं तो उनकी निवृत्तिके लिए जो यत्न होगे वे अनेक यत्न कहलायेगे, पर ज्ञानीका यत्न तो वहा एक है, प्रयोजन एक है, सिद्धि एक है, ऐसे अपने आपके सहजस्वरूपमे अपने अतस्तत्त्व को देखना, बस यही एक काम रह गया जो न किया होगा ? इसे करनेके लिए यही मात्र काम है, बाकी अन्य अन्य सब बाते तो यो ही निरखें कि ये सब बाह्य हैं, इनसे मेरा हित नही, ये मेरे शरण नही, मेरा शरण तो मेरा यह चैतन्यस्वरूप है।

अशान्तिके उपायोंमे मोहीका शान्तिलाभका स्वप्न—सभी जीवोको सुख शान्ति

प्राप्त करने की भावना रहती है। कितने भी कोई प्रयत्न कर रहे हो, उनके प्रयत्न करने का उद्देश्य शान्तिलाभ है। यद्यपि जितने प्रयत्न किये जाते हैं यहा वे सब अशान्तिके लिए हो रहे हैं, किन्तु अशान्तिका प्रयोजन रखकर प्रयत्न कोई नही करता, तो शान्ति प्राप्त कैसे हो ? इस बात पर विवेकी जन विचार करके आगे कदम रखते है और अविवेकी जन जिन मे उन्हे तात्कालिक सुख लाभ प्रतीत होता है, आगे पीछेका कुछ भी परिणाम न सोचकर उसमे लग जाया करते है। अनादिसे इस जीवपर यही बात तो बीत रही है, अपने आपमे यही उनका श्रद्धान बना हुआ है कि अमुक पदार्थके लगावसे, अमुकके स्नेहसे हमको सुख प्राप्त होगा अन्यथा धन कमानेकी, धन बढानेकी और सतान बढानेकी क्यो कोशिश की जाय ? धन बढेगा तो इससे मुझे सुख होगा, चार आदमी अच्छा कहेगे, लोगोमे इज्जत बढेगी, दुनिया सम्मान करेगी, तो उसमे मुझे सुख लाभ होगा। यो भावना बनाने पर ही तो धनकी होडमे लगे हुए है। सतान होगी तो वह मेरा नाम बढायेगी, वह मेरे कुलका दीपक बनेगी, उससे मेरे वशका प्रकाश होगी, नाम होगा; जब पाटियापर वशवृक्ष बनेगा तो जडके नीचे हमारा नाम भी लिखा रहेगा। यो सोचकर लोग परिजनोसे मोह रखते है, लेकिन आत्मन् ! विवेकपूर्वक सोच। तेरी इज्जत क्या है, तेरा धन क्या है और तेरा वंश क्या है ? तेरी इज्जत तो वह है कि तेरी दृष्टिमे तेरा वैभव अपने आपकी प्रसन्नता समायी हुई हो जिसमे किसी भी प्रकारका क्षोभ न हो, वही तेरी सबसे बड़ी इज्जत है। तेरा धन क्या है ? तू अपने ज्ञानविकासमे रहे, तीन लोककी सारी रचना तेरेमे जड जाय, इससे बढ कर और कौन वैभव है ? ये गहने बनाये, घर बनाया, लेकिन तेरा ज्ञान तो ऐसा विशुद्ध है कि जो कुछ भी सत् है लोकमे और लोक क्या, अलोक असीम आकाश द्रव्य वह भी सर्व कुछ तेरे ज्ञानमे जड जायेगा। इससे बढकर और वैभव क्या चाहिए ?

वास्तविक वैभव लाभका उपाय आकिञ्चन्यकी उपासना।—आत्माके इस वैभवकी प्राप्तिका उपाय क्या है ? आत्मानुशासनमे श्री गुणभद्राचार्यने बताया है कि तेरा मात्र तू ही है, तू अपने आपमे आस्था रखकर आरामसे ठहर जा। मैं अकिञ्चन हू, ऐसा तू सोच विचारकर टन्नाकर अपने आपमे ठहर जा, देख त्रैलोक्याधिपति बन जायेगा। देखो—बडे बड़े योगियो द्वारा गम्य यह रहस्य बताया है परमात्मतत्त्वका। मैं अकिञ्चन हू, मेरा कही कुछ नही है, यह जब ज्ञानमे आता है तो निज सहज स्वच्छ भावका प्रकाश होता है—रागादिक भाव सब अनियत भाव हैं, इनकी मेरेमे क्या प्रतिष्ठा ? मैं इनसे निराला केवल एक नियत चैतन्यस्वभाव मात्र हू। देखो अपनेमे नियत स्वभावकी ओर मुडो, परमवैभव प्राप्त करो,

यही उपाय नहीं कर पाया अब तक जिससे इस संसारमे रुल रहे हैं। इन उपायोको करने का कुछ साहस भी तो करना है, इसका प्रायोगिक रूप भी तो देना है। केवल बात बातसे ही तो काम नही बनता। जो रागद्वेष मोहादिक विकल्पके साधन हैं, जिनका आश्रय करके हम रागादिक रूप परिणमा करते है उन आश्रयोका त्याग करें, उनसे दूर रहे, यही तो त्यागका रूप है।

चरणानुयोगमें विकल्पाश्रयोंके परिहारका उपदेश—चरणानुयोगमे बाह्य चारित्रका रूप आया कहासे ? इसी आधार पर कि रागादिक विकल्पोका आश्रयभूत जो जो पदार्थ बनते है उनका परिहार करें। यद्यपि परिहार करने पर भी कुछ समय विकल्प रह सकता है लेकिन जब आश्रयभूत परवस्तुका परिहार किया गया तो रागादिककी जड सिंचेगी नही। इसका उपाय बताया गया है, मुख्य उपाय व गौण उपाय। मुख्य उपाय तो तत्त्व ज्ञान है, विचार है, दृष्टि करना है, चिंतन है, भेदविज्ञान है पर सस्कार हमारे अनादिसे जब कषायचक्रसे भरे पडे है तो ऐसी स्थितिमे अनुभव भी आपका बता रहा होगा कि उन बाह्य पदार्थोंका परित्याग करें, विकल्प न रहे। निर्विकल्पताके सम्मुख होनेके लिए बाह्य पदार्थोंका परित्याग है न कि बाह्य पदार्थोंके त्यागका विकल्प बढानेके लिए उनका त्याग है। यह सब साधना है व प्रयोग है। अपनेको अनुभव करना है आकिञ्चन, और बुद्धिपूर्वक बन रहे हो सकिंचन तो उस उपायमे प्रगति कैसे हो सकेगी ? बाह्यपदार्थोंका समागम तो इसके लिए एक ऐसा भार है, बोझ है, मल है कि उस समागममे यह मोहान्ध हो जाता है। अपनी सुध रहती है न प्रभुभक्तिकी बुध रहती है। उन समागमोंसे यह क्या लाभ पायगा ? इसका लाभ है एक इस अन्तर्दृष्टिसे। मैं अकिञ्चन हू, ये जड वैभव मेरे नही, यह देह भी मेरा नही, ये कर्म भी मेरे नही, कर्मफल मेरा नही, रागादिक विभाव मेरे नही और ये छुटपुट वितर्क विचार जो उत्पन्न होते है वे भी मेरे स्वरूप नहीं। ऐसे एक निश्चल ज्ञायकस्वरूपकी ओर लगने का जो विशुद्ध ज्ञान परिणमन है प्रति समयका उस परिणमनकी दृष्टिमे निरखी गयी शुद्ध पर्याय भी मेरा स्वरूप नही। पर मेरे स्वरूपका वह प्रकट रूपक है। मैं हू एक सहजज्ञानस्वरूप।

दृष्टिके अनुरूप अनुभव—दृष्टिकी ऐसी तीव्र गति होती है कि कितनी भी अडचनें सामने आये उनको पार करके अपने लक्ष्यमे पहुच जाती है और आनन्द मिलता है उस ही का जिसकी दृष्टि की गई है। एक बार बादशाहने बीरबलको नीचा दिखानेके लिए सभामे कहा कि देखो बीरबल आज रात्रिको हमे एक ऐसा स्वप्न आया था कि हम तुम दोनो घूमने

जा रहे थे। कुछ अंधेरा उजेलासा था, रास्तेमे दो गड्ढे मिले, एकमे भरा था गोबर और एकमे भरी घी शक्कर। सो हम तो गिर गए शक्करके गड्ढेमे और तुम गिर गए गोबरके गड्ढेमे। तो बीरबल ताड गए कि हमको लज्जित करनेके लिए महाराजने ऐसा कहा है। सो वह बात काटकर बोला—महाराज, हमने भी आज रातको ठीक ऐसा ही स्वप्न देखा कि हम तुम दोनो घूमने जा रहे थे, रास्ते दो गड्ढे मिले, सो आप तो गिर गए शक्करके गड्ढे मे और मैं गिर गया गोबर (मल) के गड्ढेमे, पर इसके अतिरिक्त हमने एक बात और देखी कि आप तो हमे चाट रहे थे और मैं आपको चाट रहा था। अब बतलाओ बीरबल पडा तो है गोबरमे (मलमें) और स्वाद ले रहा है शक्करका और बादशाह पडा तो है शक्करके गड्ढेमे, मगर स्वाद ले रहा है गोबर (मल) का। तब ऐसी स्थिति होनेकी बात सुनकर रात दिन गोबरमे ही पडे रहोगे क्या ? वह तो एक किसी क्षणकी स्थिति है। तो यो ही समझिये कि हम आप तत्त्वज्ञान करते है और जिस समय इस ज्ञानस्वभाव पर दृष्टि जगती है तो गृहस्थ होनेपर भी, अनेक प्रकारकी खटपट एव दंदफद होनेपर भी किसी क्षण उस तत्त्वज्ञानकी ओर विशेषअभिमुखता होती है तो आनन्द आता है ज्ञानसुधारसका। लेकिन इस ज्ञानसुधारसका आनन्द विशेष तब आयगा जब कि हम कुछ सयमकी ओर बढते है और बाह्यसयमकी साधनाका हमे अवसर मिलता है, हम अंत साधना मे बढते है। जो जो भी जीव मुक्त हुए, भेदविज्ञान किया और आत्माका अभेदरूप ध्यान किया और इसी उपायसे बढ-बढकर विशेष निराकुलता पाकर जिसको कि वचनोसे कहना अशक्य है, एक इस ही पद्धतिसे, सर्वसकटोसे मुक्त होकर सदाके लिए आनन्दमय हुए।

विशुद्ध दृष्टिका लाभ—एक विशुद्ध दृष्टि बनाना है, हमे अपना कल्याण करना है, बन्धनसे मुक्त होना है और विशुद्ध आनन्द प्राप्त करना है, इसके सिवाय दूसरा कोई ध्येय नही हो। इसकी प्राप्तिके लिए जो देवभक्ति शास्त्राध्ययन, गुरुसत्सग आदिक उपाय बताये है इन उपायोमे विशुद्ध दृष्टि लगाकर हमे अपनी विशुद्धि प्राप्त करनी है। केवल एक ही लक्ष्य है। यदि इस मार्गमे चलकर भी हमने अपने उपयोगको किसी भी ओर उलझाया तो यह उलझन बढती जायेगी। लौकिक लाभसे या किसी भी कारणसे तो हम अपने जीवनको सफल करनेके अवसरसे हाथ धो बैठेगे। केवल एक उद्देश्य है कल्याणलाभ, शिवमय यह स्वयं आत्मतत्त्व हमारी दृष्टिमे रहे तो शिवस्वरूप होना आसान ही तो है। कठिन कब तक है ? जब तक इसके निकट न पहुचे तब तक कठिनाई है। पहुच गए फिर कठिनाई नही है। इसका प्रारम्भ भेदविज्ञानसे शुरू होता है और भेदविज्ञानका प्रारम्भ वस्तुस्वरूपके निर्णयमे

शुरू होता है। यदि अनेक वातोमे कुछ विवाद भी हो, क्षोभ हो तो कमसे कम इतना तो परिज्ञान कर लेना चाहिए और इतनेको ही आवश्यकसा समझकर इसपर ही जोर देना चाहिए कि प्रत्येक पदार्थ अपने आपमे परिपूर्ण है और अपने ही सत्त्वसे सहित है, अन्य समस्त परद्रव्योसे असम्बद्ध है, अतएव मैं अकिञ्चन हू। आकिञ्चन्य भावना करना अमृत-पान है। आकिञ्चन्यभावनासे त्रैलोकाधिपतित्व प्राप्त होता है, जो मेरे लिए सव कुछ है। आकिञ्चन्यभावनाके फलमे सव कुछ प्राप्त होता है, सकिञ्चन वननेमे दुर्दशा भोगनी होती है। जैसे जब बूढे बुढियोंसे वात करें तो वे वताते है कि देखो मेरे पास सव कुछ है, नाती, पोते, घर द्वार, सब ठाठ वाठ सव कुछ है, हमे कोई चिंता नही है। अरे चिता है यह तो तुम वचनोसे ही वता रहे हो। सव कुछ है यह भावना रहे और कहो कि चिंता नही ये दोनो बाते एक साथ कैसे हो सकती है? आकिञ्चन्यकी भक्तिगे हमे कुछ लाभ मिलेगा। पर सकिञ्चन्यकी उपासनासे लाभ न मिलेगा। यो ही आकिञ्चन्यकी भक्तिसे अपने मे विकास होगा, सकिञ्चन्यकी बुद्धिसे हमको लाभ न होगा, जन्ममरणके सकट ही सहने होगे। प्रभु अकिञ्चन हैं, अपने स्वरूपमे है उनके पास धन नही, वैभव नही, कोई अधिकार नही, लेकिन उनकी भक्तिसे जो कुछ प्राप्त हो जाता है वह यहाँके धनिक जनोसे प्राप्त नही हो सकता है? अगर धनिक जनोके संगमे कुछ प्राप्त भी हो तो पूर्व पुण्यबलसे ही तो प्राप्त हुआ, वह पुण्यबल इसके पौरुषसे ही मिला।

दैवोपेत पौरुषसे लौकिक लाभ व दैवाघातक पौरुषसे अलौकिक लाभ—एक चर्चा और चला करती है जनोमे कि भाई पौरुषसे काम बनता है या भाग्यसे? तो अष्टसहस्रीमे इसका अनेकान्तवादसे प्रकाश डाला गया है और बताया है कि इस लोकमे जितने भी कार्य सिद्ध होते हैं वे भाग्यसहित पौरुषसे सिद्ध होते हैं। कोई कहे कि केवल भाग्यसे ही समस्त प्रयोजनोकी सिद्धि होती है, तो पहिले तो इसमे यही दोष है कि भाग्यसे सारी बातें बनती हैं तो बतायें भाग्य कहाँसे बना? सारी बातोमे भाग्य भी तो शामिल है। यदि कहो कि भाग्य भाग्यसे बनता है तब तो कभी मुक्तिका अवसर ही न मिलेगा, भाग्यसे भाग्य बनती जायेगा और यदि कहो कि भाग्य पौरुषसे बना अर्थात् जीवने विशुद्ध भाव किया, अच्छे परिणाम किये, उन भावोके निमित्तसे भाग्य बना, तो अब दैवएकान्त तो न रहा। कोई चीज (दैव) पुरुषार्थसे तो मिली और फिर वर्तमान की भी बात देखो तो जिनका दैव अनुकूल है उनका कुछ न कुछ पौरुष भी तो हुआ करता है। तो केवल भाग्यसे ही सिद्धि है यह बात नही बनती। कोई कहे कि केवल पौरुषसे ही सिद्धि है तो यदि पौरुषसे ही

सिद्धि है तो सभी लोग समान प्रयत्न करते हैं मगर लाभ उन सबको समान क्यो नहीं होता ? बल्कि लकडहारे, घसियारे आदि ये बहुत अधिक परिश्रम करते हैं फिर भी बहुत कम आय होती है। उनकी अपेक्षा जो गद्दीपर बैठे है, जो सिर्फ एक आध घटे कुछ काम देख लेते है, उनके बहुत बहुत आय होती है। तो फिर इस लोकमे सिद्धि पौरुषसे होती है यह एकान्त नही बनता। दैव अनुकूल हो तो पौरुषसे यहा लौकिक प्रयोजनकी सिद्धि होती है। तब तात्पर्य क्या निकला कि दैवसहित पौरुषसे यहा सिद्धि हुआ करती है और उसमें बुद्धिपूर्वक बातोमे तो पौरुष की प्रधानता है और अबुद्धिपूर्वक बातोमे दैवकी प्रधानता है। यह तो यहाँकी लौकिक बातोकी बात कर रहे है। वैसे देखा जाय तो जब मोक्षमार्गमे चलने वाले जीवोको पुरुषोको शुभ दैव अनुकूल हुआ, पुण्योदय हुआ, सत्सग अच्छा हुआ, कुल अच्छा हुआ, देश अच्छा मिला, समागम अच्छा मिला, मोक्षमार्गके लिये यत्न हुआ तो मोक्ष मार्गके लिये पौरुष भी चला, चलो, यह भी सही है, पर मोक्षमार्गके प्रकरणकी बात जुदा है क्योकि वहा तो मोक्ष भाग्य फूटने मे होता है, भाग्यसे नही होता। महाशकुन, महा-कल्याण, महामंगल तब प्राप्त होता है जब भाग्य फूटता है। तो जो यहाँ जरा-जरा सी बातोमें घबडा जाते हैं, हमारे भाग्य फूट गए, फलानी विपत्ति आयी, इतना नुक्सान हो गया, अरे भाग्य फूटा कहा है ? बल्कि भाग्य तेज उदयमे आ रहा है इसलिए नुक्सान हुआ है। भाग्य मायने पाप भी तो है और भाग्य मायने पुण्य भी है, जब भाग्य तेज हो गया तब नुक्सान हो रहा, इष्टवियोग हो रहे। भाग्य फूटे तो सही, जहा दैवका क्षय है वहां निर्वाणकी प्राप्ति है।

दैवफलभूत विकारमें राग न करनेका कर्तव्य—हमारा काम क्या है ? काम यह है कि दैव फल जो हमे मिल रहा है उस फलमें हम राग न रखें। एक ही बात, एक ही कदम अपना बढ़ता जाय कि जो भी स्थितियां हम पर आयें उनमे घबडाये नही, उनमें राग न करें, उनकी चाह न करें। जैसे कोई रोगी रईस है, उसके लिए आरामके अनेक साधन है। बहुत बढिया पलंग बिछा है, बहुतसे मित्रजन भी पास आते जाते रहते हैं, डाक्टर भी ठीक समयमे आता है, बहुतसे लोग दिल बहलानेके लिए आते है, सेवाके लिए एक दो नौकर भी लगे हुए हैं, सब प्रकारके आरामके साधन है, इतने पर भी उस रोगी रईसको इन आरामके साधनोंमें राग नही है। वह तो यह नहीं चाहता कि ऐसा आराम मुझे जिन्दगी भर मिले। वह तो चाहता है कि मैं जल्द अच्छा होऊँ और प्रतिदिन एक दो मील [illegible]। सो ऐसे ही जो भी स्थितियां आयें हम उनमे घबडायें नही। कठिनसे कठिन स्थि-

तियां आयें, जैसे मान लो किसी इष्टका वियोग हो गया तो उस समय ऐसा सोच लें कि अरे यह तो कुछ भी स्थिति नही। दूसरे तो दूसरे ही है। उनका सब कुछ उनके भाग्यके अनुसार होता है। सकट तो कुछ बाहरसे नहीं आया, पर उस ओर जो लगाव है उसने सब खराब बना दिया। वहा चेतें, कर्मफलमे राग न करें, जो स्थितिया आये, जो भाव आयें, जो विभाव उठें उनमें राग मत करो। महिमानमे कोई राग नही करता। राग तो होता है, पर मोह कोई नही करता। वह महिमान ही तो है। महिमा न जिसकी अपने घरमे महिमा नही, कोई महिमान है वह तो एक दो दिन रहेगा, उससे किसीको मोह नहीं होता। मोह तो करते है लोग पुत्रादिक मे। वे जानते है कि यह महिमान है। यह तो आया है अभी चला जायगा, इस घरमे न रहेगा ? तो उस महिमानसे क्या राग बढ़ाना ? उससे मुझे क्या मिलेगा ? एक मोटे दृष्टान्त की बात कह रहे है। तो यहा उपेक्षा बनाये कि जो अपने आपमे रागद्वेषादिक भाव उखड़ते है, विकल्प बिचार उठते है, यहा भी गुजर रहे हैं मुझपर, पर ये मेरे स्वरूप नही हैं। मैं तो वह तत्त्व हू जो अपनी ज्ञानमे, अपने ही रूपमें रहता हू। मैं तो एक ज्ञायक स्वरूप हू।

परभावसे उपेक्षा करके स्वभावमें आनेका महापौरुष— समस्त परभावो से उपेक्षा हो जाना; क्रियाफलसे उपेक्षा हो जाना, बस यही एक सारभूत कदम है। जो कर सकेगा वह पार हो जायगा। कुछ तो पार हो ही गया। जब वर्तमानमे क्षोभ नही रहता तो उसे कुछ तो पार समझियेगा। मैं किसी कर्मफलको नही भोगता हू। आते है आये, मैं तो चैतन्यस्वरूप हू। मैं तो अपने ही इस स्वरूपको सचेतता हू। उसमे ही मेरा उपयोग रहे तो फिर विपत्ति क्या ? कोई इस तरह अकिञ्चनभावनाके बलसे अपने आपके स्वरूपमें आये उसे विपत्ति ही क्या ? लोग भले ही माने कि इसके घर नही रहा, इसके धन नही रहा इसके लोग नही रहे, यह बडी विपत्ति मे है। अरे यह विपत्ति माने तब तो विपत्ति है। यह तो विपत्ति नही मानता और दूसरे लोग विपत्ति मानकर दुखी हो रहे। तो ऐसा गुप्त ही गुप्त भीतर ही भीतर ढलकर अपने आपके स्वरूपमे आये, इससे बढ करके पौरुष, इससे बढ करके महत्वशाली काम और कुछ भी नही हो सकता। यहा थोडेसे परिग्रहमे राग है। क्या परिग्रहु है, पुण्य प्रतापसे तो इससे करोडा गुना परिग्रह दो मिनटमे मिल जागा। मर कर देव बन गए, इन्द्र बन गए, तो देखिये कितनी बडी विभूति व इज्जत होगी। तो इसकी क्या वाञ्छा करना ? इसकी वाञ्छाका भाव ही शत्रु है। तो इन परभावोमे जिनकी मेरे स्वरूपमे प्रतिष्ठा नही है इनसे उपेक्षा करके अपने चैतन्य हितकी ओर दृष्टि करना,

(देखना) इसकी ही प्रतीक्षा करना है। ऐसी धुन बने, क्षरण भरको भी ऐसी दृष्टि जगे तो उसका यह जीवन सफल हो जायगा।

आप्तमीमांसा प्रवचन

अपने उत्पन्न हुए सुख दुःखकी पुण्यास्रवहेतुता व पापास्रवहेतुताका कारण विशुद्धि और संक्लेश भाव—पुण्यास्रवका कारण क्या है और पापास्रवका कारण क्या है? इस सम्बधमे बहुतसे शका समाधानके बाद यह निष्कर्ष निकला कि चाहे अपने मे सुख हो अथवा दुख हो, यदि वे विशुद्धिके अंगभूत है तो पुण्यास्रवके कारण है और इसी प्रकार अपनेमे अथवा दूसरेमे सुख हो अथवा दुख हो, यदि वे सक्लेशके अङ्गभूत है तो पापास्रवके कारण है। जैसे—कोई विद्वान् मुनि अपने आपमे अन्तर्दृष्टि करके सहजपरमात्मतत्त्वकी उपासनामे लगा है तो उसे अद्भुत अनुपम आनन्द प्राप्त हो रहा है, तो वह सुखकी विशुद्धि का अगभूत है। वह मदकषाय और निर्मल परिणामके बीच हो रहा है, अतएव उस समय यदि कोई कर्म बँधता है तो वह शुभ और पुण्यकर्म बनेगा। किन्तु विषयी जन नाना प्रकार के विषयसाधनोमे और विषयभोगोमे अपना मौज समझ रहे हैं तो वे भी अपनेमे सुख मान रहे है लेकिन उनका सुख सक्लेशका अगभूत है। कषाये जग रही है, तृष्णाका तीव्र उदय है, अपने आपको वशमे नही रख सकते है उस वेगमे वे जो मन, वचन, कायकी प्रवृत्ति कर रहे हैं उससे उन्हे सुख उत्पन्न हुआ, लेकिन वह सुख पापास्रवका कारणभूत है, क्योकि वह सक्लेशका अगभूत है। मुनिजन, तपस्वीजन ग्रीष्म ऋतुमे पर्वत पर विराजे हुए तपश्चरण कर रहे है आदिक अनेक अनशन वगैरा घोर तपश्चरणमे वे अपने आपको लगा रहे हैं। तो आखिर ग्रीष्मादिककी बाधा तो बाधा ही है। उससे शरीरको तो कष्ट ही है। तो वे इस समय कष्टमे है, उपसर्ग उपद्रव हुआ तो उस समय भी उनके कोई शारीरिक बाधा ता हुई ही है, लेकिन ऐसी स्थितिमे भी चूँकि विशुद्ध परिणामके फलमे वह तपश्चरण हो रहा है। उन तपश्चरणोमे मूल परिणाम विशुद्धि ही है। तो विशुद्धिका अगभूत होनेसे ऐसे तपश्चरणकी प्रक्रियामे भी वहाँ पुण्यास्रव ही हो रहा। जब अनेक जीव जो इष्टवियोग अनिष्टसयोग आदिक होनेके कारण अपने आपमे बडा दुख मान रहे है, बडी कठिन पीडा अनुभव कर रहे है, ऐसा उनका वह दुख पापास्रवका कारण है, क्योकि इस दुखके अनुभवमे हेतु उनका सक्लेश परिणाम है। विह्वल हो रहे, कषाये भी जग रही है तो सक्लेशका अंगभूत होनेसे अपने आपमे किया गया दुख पापास्रवका कारण है।

परमें उत्पन्न सुख दुःखसे पुण्यास्रव व पापास्रव होनेमें कारण विशुद्धि व संक्लेशभाव—अब परचेतनमे होने वाले सुख दु ख कारणभेदसे पुण्यके और पापके कारण वन जाते हैं। आचार्य महाराज शिष्योको शिक्षा, दीक्षा, प्रायश्चित्त देते है तो यद्यपि स्थूल रूपमे प्रायश्चित्त-आदिक देना यह उनके दु खके लिए कारण है, किन्तु आचार्य महाराजके तो विशुद्ध परिणाम है, जिन परिणामोंसे उन्होने प्रायश्चित्त लिया है। तो विशुद्धिका अगभूत होने से वह परस्थ दु ख भी पुर्ण्यास्रवका कारण बना है। कोई जीव दूसरे चेतनमे दु ख उत्पन्न करता है, दु खका निमित्त बनाता है, सताता है, प्राणघात करता है तो वह सब क्रोधादिक कषायोके वश होकर कर रहा है। वहाँ करुणा और हितका रच भी भाव नही है। ऐसी स्थितिमे परस्थ दु ख पापास्रवका कारण वन रहा है। अनेक उपकारी जीव दूसरोका सुख और हित करने वाला काम करते है, वहा दूसरोको सुख उत्पन्न होता है। आचार्यजन उपदेश देते है, उनका उपदेश सुनकर शिष्योको लाभ मिलता है, सुख उत्पन्न होता है, मोक्षमार्गमे लगते हैं, तो परस्थ सुख भी विशुद्धिका अगभूत है अर्थात् आचार्यमहाराजकी कृपा है सर्व जीवोपर, जिससे उनकी ऐसी प्रवृत्ति है। उनका ग्रन्थरचनाका कार्य ऐसा करुणाप्रसाद है कि दूसरे लोग उससे लाभ लेते और सुख पाते हैं। दूसरे जीवोको जो यहा सुख उत्पन्न होता है वह विशुद्धिका अंगभूत है। इस कारण वह परस्थ सुख पुण्यास्रवका कारण है। अनेक जीव अपने आपको भी विषयोमे प्रवृत्त रख रहे हैं और दूसरोको भी विषयोमे प्रेरित कर रहे है, तो जो दूसरोको विषयोमे प्रेरित करनेकी प्रवृत्ति है उससे यद्यपि उन दूसरे जीवोने सुख माना, लेकिन वह परस्थ सुख सक्लेशका अगभूत है। उस सुखमे जो जीव निमित्त हुआ है उसने सक्लेश परिणाम किया। विषयकषायोमे अनुरक्ति है उसकी अतएव उसके तो पापास्रव ही हो रहा है।

स्वपरस्थ सुख दुःखकी पुण्यपापास्रवहेतुताके तीन स्वतन्त्र भङ्ग—उक्त प्रकार सिद्ध हुआ कि सुख और दु ख कोई पुण्यके भी कारण है और कोई पापके भी कारण है। उनमे कोई एकान्त नही किया जा सकता। अब इस ही विषयको सप्तभङ्गीके रूपमे देखा जा रहा है। जहाँ कोई दो धर्म आये तो उन दो धर्मोको एक साथ नही कहा जा सकता, अतएव अवक्तव्य भी बन जाता है। तब इन तीन स्वतत्र धर्मोके होनेसे इनके सयोगी भङ्ग मिलकर ७ भङ्ग हो जाते है। इनमे प्रथम भङ्ग हुआ कि स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका हेतु होता है विशुद्धिका अङ्ग होनेसे। तो यहाँ विशुद्धिके अगभूत होनेकी अपेक्षासे वह स्व-परस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका कारण बना। दूसरा भङ्ग वनता है कि स्वपरस्थ सुख दु ख

किसी अपेक्षासे पापास्रवका कारण होता है अर्थात् संक्लेशका अंगभूत स्वपरस्थ सुख दु.ख पापास्रवका कारण है। तीसरा भङ्ग होता है कि स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका कारण है। इन दो भङ्गोकी बात एक साथ जब विवक्षित करेंगे तो वह कहा नही जा सकता। एक साथ अर्पित दोनो धर्मोके होने पर वह अवक्तव्य है विषय। अब तीन भग हो गए—पहला परस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका कारण है। दूसरा भग स्वपरस्थ सुख दु ख पापास्रवका कारण है, तीसरा भग स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका व पापास्रव का कारण है। ये सब बाते एक साथ कही नही जा सकती अथवा एक दृष्टिमे ये दोनो अवक्तव्य है, अतएव अवक्तव्य है।

स्वपरस्थ सुख दुःखकी पुण्यपापास्रवहेतुताके चार सयोगी भंग— अब इसके बाद इसके सयोगी भग किए जाते है तो चौथा संयोगी मग हुआ कि स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रव और पापास्रवका कारणभूत है, जब कि क्रमसे इन दोनो अपेक्षाओपर दृष्टि की जाती है, अपनी विशुद्धिका अग और सक्लेशका अग—इन दोनोकी क्रमसे विवक्षा करते है। स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रव और पापास्रवका हेतुभूत है। ५वे भगमे दो का सयोगरूप भंग होता है अर्थात् स्वपरस्थ सुख दु ख पुण्यास्रवका कारण है और अवक्तव्य है, क्योकि विशुद्धि का अगभूत होनेपर और एक साथ दोनोकी विवक्षा किए जानेसे यह भग बना है। छठवाँ भग हुआ सयोगी भग कि स्वपरस्थ सुख दु ख सक्लेशका अग होनेकी अपेक्षासे पापका हेतु है और एक साथ विवक्षित होनेसे अवक्तव्य है अर्थात् स्यात् पाप हेतु अवक्तव्य है और ७ वाँ भग होता है तीन भगोका एक समूहरूप त्रिसयोगी भग। स्वपरस्थ सुख दु ख स्यात् पुण्यास्रव हेतु है, स्यात् पापास्रव हेतु है और स्यात् अवक्तव्य है, इस प्रकार पुण्यास्रव, पापास्रवके हेतुओके सम्बन्धमे सप्तभगीकी प्रक्रिया अन्य धर्मोकी भाँति लगा लेना चाहिए।

पुण्य, पाप व निर्जराकी भावोंपर निर्भरता—इस परिच्छेदमे जो कथन किया गया है उसका साराश यह लेना है कि सुख दु ख चाहे स्व हो अथवा परमे हो, वह सुख दु ख भी केवल पापके लिए ही हो, यह बात नही, अथवा केवल पुण्यके बधके लिए हो, यह भी बात नही। बल्कि ऐसी विशुद्धि यदि किसीको प्राप्त है जिसका कि कभी अन्त न आयेगा, जिसे क्षायिक भाव कहते है, ऐसी विशुद्धिको प्राप्त हुए किसी मुनिके लिए तो वह परिणाम निर्जराका कारण बन रहा है अथवा उसके लिए वह स्थिति न पुण्यके लिए है न पापके लिए है। जो निर्विकल्प समाधिमे रत है, चारित्रमोहका क्षय करने वाला है, ऐसे वीतराग साधु सतोके तो सुख दु ख पापके लिए भी नही है, वे तो सब कर्मनिर्जराके लिए है, लेकिन यदि

विशुद्धिका अंगभूत बनता है तो वे सब दुःख पुण्यके लिए होते है। यदि सक्लेशका अगभूत बनता है तो वे सब सुख दुःख पापके लिए होते हैं। तो इस सम्बन्धमे मोटे रूपसे अनेक बातें सिद्ध हुईं। सुख दुःख किसीके न पुण्यका बध कराते, न पापका, किन्तु केवल निर्जरा ही कराते है। तो किसीका सुख दुःख पुण्यास्रवके लिए ही होता है। किसीका सुख दुःख पापके लिए ही होता है। इससे बाह्य बात देखकर हम अन्तरगमे यह नियम न बना सकेंगे कि किस प्रकारके कर्मोंका बध हुआ है। यह तो सब उस जीवके अतरग भावो पर निर्भर है। यदि मद कषाय और विशुद्धि परिणामोमे लग रहा है कोई ज्ञानी तो उसका वह गुण तो पुण्यके लिए है और कभी शुद्धोपयोगमे पहुंचने पर न पुण्यके लिए है और न पापके लिए है, तब इस सम्बन्धमे जो अन्य एकान्तवादी अपना एकान्त आग्रह रख रहे है उनका एकान्त आग्रह मिथ्या है। सब कुछ बात भावो पर निर्भर है। जैसा भाव होता है वैसी कर्मरचना होती है, जैसा भाव होता है वैसी ही स्वयकी सृष्टि होती है। अत अनेकान्त ज्ञानकी सिद्धि करके वस्तुस्वरूपका सम्यक् परिचय पाकर अपने आपमे निर्मलता उत्पन्न करना चाहिए, बस यही मात्र इस मनुष्यजीवनका एक सारभूत काम है।

संक्षेपमें लोकपरिचय—इस लोकमे जो कुछ होता है वह किस तरह होता है और जब जो होना है तब ही होता है या उसमे कोई परिवर्तन भी कर सकता है, ये सब बातें सभी के चित्तमे समझने के लिए पडी है। स्पष्ट विवरण तो तब जाना जा सकता है कि जब भली प्रकार पदार्थोंके स्वरूपकी विधि ज्ञात हो, सो थोडी-सी बात पदार्थोंके सम्बन्धमें कहकर फिर इस विषयको कहेगे। जगतमे पदार्थ ६ जातिके हैं—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल। जीव अनन्तानन्त हैं, पुद्गल अनन्तानन्त है, धर्म, अधर्म, आकाश एक-एक हैं। जीव जाति अर्थात् जितने भी समझने वाले चेतने वाले, जिनके ज्ञान दर्शन शक्ति है ऐसे पदार्थ सब जीव कहलाते हैं। अब जीव जातिकी दृष्टिसे देखे तो निगोदसे लेकर नारकी, कीट, पशु पक्षी, मनुष्य, देव, सिद्धभगवान परमात्मा सब एक ही जातिके है। जीव पदार्थ है। उसमे जानने देखनेकी शक्ति है, यह बात सब जीवोमे पायी जाती है। पुद्गल कहते है इन रूपी पदार्थोंको। जिनमे रूप, रस, गध, स्पर्श है, ये सब पुद्गल है। हम आपके देखनेमे जो चीजें आया करती है वे सब पुद्गल है। जितने दिखने वाले लोग है, शरीर है अथवा काठ पत्थर हैं या जो भी ये समझमे आ रहे हैं वे सब पुद्गल है। जीव व पुद्गल ये दो पदार्थ तो हम आपको भली-भाँति समझमे आते हैं, धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य इनकी कठिन समझ है। जो जीव पुद्गलके चलनेमे मदद करे सो धर्मद्रव्य है, जो जीव पुद्गलके

ठहरनेमें मदद करे सो अधर्मद्रव्य है। आकाशद्रव्य वह है जहाँ सब चीजें रहती हैं। कालद्रव्य— जिसके परिणमनके निमित्तसे पदार्थोंमे परिणमन होता है। यो ६ प्रकारके पदार्थ जगतमे पाये जाते है। जीव तो अनन्त है। जैसे हम आपका जो यह शरीर है इस शरीरमे कितने जीव है ? आप एक जीव है, किन्तु शरीरके कीटाणु और प्रत्येक जगहमे रग रगमे बहुत पडे है, वे असख्याते है, साथ ही आपके शरीरमे भी अनन्त निगोद जीव है। इस एक शरीरमे कितने जीव आ गए, और है जगतमे कितने शरीर। तो अनन्त जीव है, उन सब जीवोंके साथ कर्म लगे है। कर्म क्या कहलाते है कि जीव जब कोई शुभ या अशुभ भाव करता है तो ये ही जो कि कार्माणवर्गणा जातिके सूक्ष्मपुद्गल है वे कर्मरूप बन जाते हैं और जीवके साथ लगे रहते हैं व जब उनके निकलने याने उदयका समय होता है उस समय जीवको सुख दुखादिक बहुतसे रागादिक विकार उत्पन्न होते है, वे कर्म कहलाते हैं। ये अणु जीवोसे अनन्तानन्तगुणे है। जो शरीर लगा हुआ है उस प्रत्येकमे भी अनन्त अनन्त अणु है। बहुतसे लोग तकदीर तकदीर तो करते है। तकदीरमे ऐसा था सो हो गया, तकदीर ठीक न थी सो न हुआ, आदि यो तकदीरका नाम बहुतसे लोग लेते है, लेकिन तकदीर क्या चीज है, कर्म क्या चीज है ? उसके सम्बंधमे जानकारी नही रख पाते। कर्म क्या है ? जीवके साथ लगे हुए जो कार्माण जातिमे विस्रसोपचयरूप पुद्गलस्कंध है वे कर्म बन जाते हैं।

प्रत्येक पदार्थमें उत्पादव्ययध्रौव्यस्वभावता—तो जीवके साथ कर्म लगे हुए है और प्रत्येक ससारीके साथ शरीर लगा हुआ है। ये सभी पदार्थ जितने हैं सबमें यह स्वभाव पडा है कि वे हमेशा उत्पन्न होते, नष्ट होते और बने रहते। जैसे यह एक अगुली है, अभी सीधी है, अब टेढी कर दिया तो देखो सीध तो मिट गई और टेढ आ गई, इतने पर भी अगुली वही की वही रही। ऐसी ही सब पदार्थोंकी बात है। पदार्थमे कोई नवीन चीज पुरानीसे नई बनी तो उसमे क्या हुआ कि उसका पुरानापन मिट गया, नयापन आ गया। फिर भी वह पदार्थ वहीका वही रहा। यह पदार्थमे स्वभाव पडा हुआ है। पदार्थ अगर है तो उसमे नियमसे ये तीनो बाते है। कोई नई चीज बनी तो पुरानापन मिटा, नयापन आया फिर भी चीज वही की वही रही। आप सब जगह दृष्टि पसार कर देखे—कोई चीज बनी पडी हुई है और जैसे-जैसे समय व्यतीत होता जाता है वैसे ही वैसे वह चीज पुरानी होती जाती है, टूटने लगती है। मान लो कोई तख्त बना और उसको बने २५ वर्ष हो गए, तो २५ वर्ष पहिले जो तख्तकी हालत थी क्या अब है ? उस समय नया था,

मजबूत था, आज वह धुन गया, कमजोर हो गया है, भली प्रकार उसपर बैठ भी नही सकते तो देखो उसकी अवस्था बदली ना, मगर मैटर तो वही है। तो पपार्थकी पुरानी अवस्था नष्ट हो, नई अवस्था बने, फिर भी वह चीज वही की वही बनी रहे, यह समस्त पदार्थोंमे पडा हुआ है। इस बातको यदि आप भली प्रकार जान लेंगे तो आपकी वहुत-सी समस्याये स्वत ही हल हो जायेंगी। एक यह समस्या भी हल हो जायगी कि इस जगतका बनाने वाला कौन है ? जगत अनादिकालसे है, यहाँ जितने भी पदार्थ हैं वे सब अपनी नवीन अवस्था बनाते हैं, पुरानी अवस्था विलीन करते है, फिर भी ज्योके त्यों बने रहते हैं। यही हालत हम आप समस्त जीवोकी हो रही है। जैसे किसीको कषायभाव जगा तो शान्ति मिटी, क्रोध उत्पन्न हुआ, फिर भी जीव वही है अथवा किसीको किसी बातका ज्ञान जगा तो नवीन ज्ञानका उत्पाद हुआ अज्ञानका विनाश हुआ, फिर भी वह जीव वही रहा। तो सभी पदार्थोंमे ये तीनो बाते पायी जाती है।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध और परिणमनस्वातन्त्र्य—अब यहाँ देखिये यह कि इन सब पदार्थोंकी बात होती किस प्रकार रहती हैं। इनमे दूसरे पदार्थ निमित्त पड जाते है। जैसे रोटी बनी तो बनी तो वह आटेमे हो, मगर आग, पानी तथा रोटी बनाने वाली महिला ये सब उसमे निमित्त पडते हैं। इस तरह वह रोटी बन गई। इसी तरह सभी बातो मे एक दूसरा कारण पड़ता जाता है, चीज बनती जाती है। यह भी बात समझमे आ रही है। कोई कुछ बात सीखता है तो उसमे जो सिखाने वाला है वह निमित्त होता है। जैसे बच्चे लोग मास्टरसे पाठ सीखते है तो उनके सिखानेमे वह मास्टर निमित्त होता है, क्योकि वह उसे अपनी बुद्धिसे सिखाता है। यो ही एक पदार्थ दूसरे पदार्थका निमित्त पाकर परिणम जाता है, फिर भी पदार्थ वहीका वही रहता है। मास्टरने अगर बच्चोको पाठ सिखाया तो मास्टरने सिखाया और बच्चोने सीखा, फिर भी वे बच्चे अपनी ज्ञानपरिणतिसे ही सीखे है, कही मास्टरकी परिणतिसे तो नही सीखे। यो एक पदार्थ दूसरे पदार्थके परिणमनमे निमित्त होता है, मगर सभी पदार्थ केवल अपने आपमें अकेले ही अपना परिणमन करते है, इस तरह इस जगतकी व्यवस्था बन रही है कि प्रत्येक पदार्थ अपनी अवस्था बनाता रहता है। उसमे भले ही दूसरा पदार्थ निमित्त पड जाय, पर निमित्तकी कोई चीज उसमे नही जाती, या निमित्त और वह परिणमने वाला उपादान मिलकर नही परिणमा करते। कभी ऐसा देखा गया है कि किसी दूसरे ग्राममे किसी रिश्तेदारके यहाँ किसी इष्ट व्यक्तिके वियोगमे फेरा करने जाते है तो उस घरके लोगोके सग मिल जुलकर-सभी लोग

रोते हैं, तो वहाँ ऐसा लगता है कि देखो इन आने वाले लोगोने घरके इन लोगोंको रुला दिया। पर आप यह बताओ कि उन्हे क्या आने वाले लोगोने रुलाया ? अरे वे तो स्वय ही रोये। वे घर वाले लोग अपने मे अपना परिणमन कर रहे, आने वाले लोग अपने मे अपना परिणमन कर रहे। एक पदार्थ दूसरे पदार्थसे मिलकर सुखी दु खी नही होता। अगर किन्ही दो जीवोमे मित्रता है और वे दोनो मिलकर सुखी हो रहे है तो वे मिलकर नही सुखी हो रहे, एक अपने सुखसे सुखी हो रहा, दूसरा अपने सुखसे। कोई भी पदार्थ किसी दूसरे पदार्थमे परिणमन नही करता, पर निमित्त हो रहे है। बस इस ही विधिसे यह सब जगतका परिणमन चल रहा है।

नियत और अनियतका दृष्टि—अब यहाँ यह जानना है कि ये सब परिणमन निश्चित हैं या अनिश्चित ? जो होना है वह वही होता है या उसमे फेरफार होता है। तो थोडी देरको आप यह जाने कि जब कार्यकारण विधानपूर्वक विकारी कार्य है तो इतनी बात निश्चित है कि नई-नई बात होना उस पदार्थमे स्वभावसे पडी हुई नही है, किन्तु निमित्त पाकर उस प्रकार हुई है लेकिन ऐसे-ऐसे ज्ञानी पुरुष है जो तीन लोक तीन कालकी बात जान जाते है, और कुछ ऐसे भी अवधिज्ञानी पुरुष है कि थोडी दूरकी बात जानते हैं, थोडे समय की आगे पीछेकी जानते हैं लेकिन यथार्थ जानते है। तो उनको जो बात दिख गई, वर्ष बाद यह होगा तो जब होगा तब देखा ना। तो एक इस दृष्टिसे निश्चित हो गया कि जो होना था सो ही हुआ। अन्य बात नही हुआ करती है, लेकिन उसका जो उत्पाद है, निष्पत्ति है वह कार्यकारणविधानपूर्वक ही हुई है। तो दोनो बाते समझनी है कि पदार्थमे जो परिणमन होता है वह कारणकार्यविधानसहित होता है लेकिन जब जो होना होता है वह होता है। उस समय वह है। ज्ञानी पुरुष जान जाता है। हम आपको इसका पता नही पडता है कि हम आपका कल क्या होगा ? तो ये कार्य ज्ञानीको हो जानेसे नियत है और निमित्त पाकर होनेसे अनियत है। अनियत तो यो है कि पदार्थमे कोई ऐसा गुण नही है जो इस बातका नियम कराये कि इस अवस्थाके बाद यह ही अवस्था होगी। हाँ, पहिले जो अभी कहा था कि पदार्थमे ऐसा स्वभाव पडा है कि वह निरन्तर परिणमता रहे तो इसका अर्थ परिणमनमात्रसे है। परिणमन होता रहेगा। पर्यायोको क्रमभावी बताया है, उसका अर्थ है कि गुणोकी तरह पर्याये एक साथ नही होती, उनकी निष्पत्ति क्रमसे होती है। इस तरह देखो तो वे अनियत पर्यायें है मगर ज्ञानी द्वारा ज्ञात है अथवा जब जो होना है सो होता है, उस दृष्टिसे देखा जाय तो सब पर्याये निश्चित है। जब जो होना है सो होता है, इसो

आधारपर कहा गया है कि "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे। अनहोनी नहिं होसी कबहू, काहे होत अधीरा रे।।"

प्रत्येक परिस्थितियोंमें धीर रहनेका सन्देश—एक वात और अपने हितके लिए समझें कि जगत्मे जो कुछ होता है वह सब भले के लिए है। हम किसी भी वातमे बहुत कुछ लगावकी दृष्टि ही न रखें, क्योंकि हमे इस जगतसे कुछ मतलब नही, हमे यहाँ कुछ प्रोग्राम नही गडाना है। कोई हठ न करे कि हमे तो ऐसा ही करना है। हमे इस जगतकी स्थितियोको देख कर हर्ष विषाद नही करना है। लोग कभी ऐसा कह बैठते है,कभी किसी विपत्तिमे फसकर, जैसे घरमे लडाई हो गई, कोई बच्चा रूठ गया तो पिता कह देता है कि चलो अच्छा हुआ, हमारा यह लडका हमसे अलग हो गया तो इसकी हमे फिक्र तो न रहेगी तो उस पिताका यह कहना गुस्सेमे आकर कहना है, शान्तिपूर्वक उसने नही कहा। हाँ, यदि ज्ञानमे यह वात आ जाय कि यहा प्रत्येक वस्तुका स्वरूप न्यारा न्यारा है, यहाँ मेरा कोई नही है, हम यहाँ किसी परपदार्थके परिणमनको देखकर क्यो क्षोभ करें, ठीक है। यहा जो होता है होने दो, उसे जानते देखते रहो, ऐसी बात जब ज्ञानमे आवे तब यदि वह कहे कि, चलो अच्छा हुआ, मुझे उस रूठ जाने वाले, अलग हो जाने वाले लडके की फिक्र मिटी तो उसका यह कथन शान्तिपूर्वक है। यहाँ होने वाले दु खोसे हम अधीर न होवें, उस समय ऐसा साहस जगाये कि उन्हे समतापूर्वक सहन करे। उन कष्टोके आने पर ऐसा विचार करे कि ये कष्ट मेरे ही पूर्वकृत पापकर्मके उदयसे आये हैं। सो इसी भवमे उन पापकर्मोका उदय आ गया तो अच्छा ही हुआ। इस मनुष्यपर्याय के बजाय किसी अन्य पर्यायमे उन पाप-कर्मोका उदय सामने आता तब तो वहाँ कुछ होश ही न हो पाता और वहाँ सक्लेश करके हम अपना बिगाड कर बैठने, चलो इस मनुष्यपर्यायमे ही वह पूर्वकृत पापकम उदयमे आकर खिर गया तो वह भली ही बात हुई। इस प्रकारके धीरतापूर्वक आने वाले कष्टोको सहन करे। और अगर पुण्योदयसे सुख साधन खूब मिले हुए है तो उनको पाकर हर्ष न माने। क्योकि आज पुण्योदयसे मिले हुए हैं पर वे सदा मेरे साथ रहनेके नही हैं। ये तो मिट जायेंगे। इनके ज्ञाता द्रष्टा रहनेमे ही हमारा भला है। क्या जगतमे ऐसे मनुष्य देखे नही जाते कि जो कभी करोडपति थे वे कुछ समय बाद गरीब हो गए, अपना पेट पालनेके लिए भी तरसते रहे और क्या ऐसे लोग नही देखे जाते जो कि कभी फकीर थे, पासमे कुछ भी न था, फिर भी कुछ दिनों वाद वे अमीर बन गए ? तो देखे जाते है ऐसे लोग।

भिन्न लाभवैभवमे लगाव व कर्तृत्वभाव न करनेका सन्देश—यह वैभव तो माया

रूप है, उसमें अपना लगाव न रखें। उन परपदार्थोंके लगावमे अपना अहित ही है। आया है उदय और आपका ही क्या उदय है ? अगर धन कमाया है, पैसा आया है तो उसे जो जो लोग भोगेंगे उन सभीका पुण्य उसमे सहकारी हो रहा है। घरमे जितने भी जीव हैं छोटेसे लेकर बडे तक उन सबका पुण्य सहकारी हो रहा है। जो धन वैभव सब कुछ उपार्जित होता है, उसमे यह ध्यान न रखे कि मैं कमाने वाला हूँ और इतने लोगोको खिलाने वाला हू। अरे वह लक्ष्मी तो उन सभी जीवोके भाग्यसे आई है जिन-जिनके भोग मे वह लक्ष्मी लगेगी। बल्कि कमाने वालेको तो भोगनेकी फुरसत ही कहाँ ? वह तो रूखा सूखा खा कर भागता है। हाँ, भाग्य तो उन घरके लोगोका बलिष्ट है जो कि घर बैठे बडे सुखसे उसका भोग किया करते हैं। तो धन कमानेमे आप निमित्त हो रहे है, मगर जिन जिनके भोगमे व्यवहारमे वह लक्ष्मी आयेगी उन सबका पुण्य उस धनार्जनमे काम कर रहा है अथवा जैसे समझो कोई एक बडा मिल चल रहा है उसके अन्दर हजारो आदमी काम करते हैं। तो यह बतलावो कि वहाँ मालिक उन कर्मचारियोको पाल रहा या वे कर्मचारी उस मालिकको पाल रहे ? वहाँ तो यही कहना पडेगा कि मालिक उन कर्मचारियोको पाल रहा है और वे कर्मचारी उस मालिकको पाल रहे है। तो वहाँ कोई किसीको पाल नही रहा। सत्य बात वहाँ यही है कि उस मिलसे अर्जित आयका जो जो भी लोग उपभोग कर रहे हैं उन सबके पुण्यके कारण वह चीज बन रही है। इस कथनमे कही बाधा न आयेगी।

स्वकीय उपार्जित आयुके उदय व क्षय विना जीवन व मरणकी अशक्यता—कौन किसकी रक्षा करने वाला है, कौन किसको मारने वाला है ? जिसका आयुकर्म है, वह चाहे जैसी स्थितिमे चल रहा हो, सम्बधी कह उठें कि मरे तो मरे, लेकिन वह मरता नही है। जिसकी आयुका क्षय होने वाला है उसको मरणसे बचानेमे यहाँ कोई समर्थ नही है। क्या ऐसे दृष्टान्त पुराणोमे नही है ? रोज रोज हम आपके व्यावहारिक जीवनमे भी ऐसी बातें देखी जाती हैं। मा अपने लाडले पुत्रको गोदमे लिए रहती है, मगर उस जीवको वह मां ही क्या, कोई भी बचा सकनेमे समर्थ नही हो पाता है। और किसीके आयुका अगर क्षय नही है तो कितनी ही उसकी उपेक्षा कर दी जावे, पर उसे कोई मारनेमे समर्थ नही हो पाता। एक घटना है बुन्देलखण्डकी। शायद वह घटना राजा छत्रसालके समयकी है। छत्र-सालके पिता गुजर गए, उसकी माँ राज्य कर रही थी, उसी समय कुछ मुगलोने आकर उसपर चढाई कर दी। अब वह रानी तो गर्भिणी थी, बच्चा होने वाला था। पेटदर्द भी शुरू हो गया था, पर उस रानीने सोचा कि यदि युद्धस्थलमे बच्चा पैदा हो गया तो उसे

भी दुश्मन लोग मार डालेंगे, क्योंकि शत्रुको यह इच्छा रहती है कि मैं अपने बैरीके वशको मिटा दूँ। तब उस रानीने क्या किया कि संतानकी रक्षा हेतु घोडेपर बैठकर युद्धस्थलसे बाहर भागी, मुगलोने उसका पीछा किया। रास्तेमे बच्चा पैदा हो गया। जब रानीने देखा कि अब किसी भी भाँति मेरे बच्चेके प्राण न बच सकेगे तो उसने उस नवजात बच्चेको एक झाड़ीमे छिपा दिया और स्वय भाग गई। सेना उसे पा न सकी और लौट गई। वह रानी सोचती थी कि बच्चा मर गया होगा पर कई दिन बाद जब उसे देखनेके लिए वह आयी तो उसने क्या देखा कि बच्चा बहुत स्वस्थ था और हँस खेल रहा था। बात क्या हुई थी कि जहा वह बच्चा पडा था वही ठीक उसके मुखके सामने ऊपर शहदकी मक्खियोका छत्ता लगा हुआ था और थोडी थोडी देर बाद उस बच्चेके मुखपर शहदके बूंद गिर रहे थे। वह बच्चा इतना पुष्ट हो गया था जितना पुष्ट वडे-बडे राजघरानोके लोग भी बहुत-बहुत सेवायें करके नही कर सकते थे। तो वहाँ बात क्या हुई ? क्या उस रानीने जानबूझकर ऐसी जगह उसे फेका था कि यहाँ शहदका छत्ता लगा होगा ? अरे उसने तो उसे यो ही झाडीमे फेंक दिया, मगर जिसकी आयुका उदय है उसको ऐसे निमित्त मिल जाते है कि वह मरण नही कर पाता। तो यहाँ कौन किसकी रक्षा करता है, कौन किसको मार सकता है, कौन किसको सुखी तथा कौन किसको दुखी कर सकता है ? यह सब जीवोके अपने अपने कमाये हुए भावोके अनुसार होता है।

सर्वजीवोंके सुखी होनेकी भावनासे स्वयंमें सुखसंचार——भैया ! कुछ विवेक करें और इस प्रयत्नसे चले कि मेरेमे किसी भी दूसरे जीवको दुखी करनेका भाव न उत्पन्न हो। दुखी करनेके भावसे आपको मिलेगा क्या ? किसी जीवको दुखी करनेका भाव आपने बनाया तो उससे आपको लाभ मिलेगा कुछ नही, उल्टा पापका ही बंध होगा और नियमसे आपको उससे भी कई गुना दुखी होना पडेगा। यदि दूसरे जीवोको सुख मिले, ऐसा आपका परिणाम होगा तो आपके पुण्यका बंध होगा और आगामी ऐसा समागम मिलेगा कि आप आराममे रहेगे और वर्तमानमे भी देखो तो आप किसी जीवको दुखी करनेका भाव बनाते है तो उस समय आप तो दुखी हो ही जाते हैं। भीतरमे सक्लेश परिणाम किए बिना दूसरेको दुख देनेका भाव नही बनता। और यदि आप सबको सुखी होनेका परिणाम रखते है तो उसी समय आप भी बडे आनन्दमे बैठे हुए है, क्योंकि अच्छी बात विचारनेमे खुद भी बडे प्रसन्न और सुखी रहा करते हैं। तो कर्तव्य यह है कि किसी पर अन्याय न करें, किसीका दिल न दुखाये। अगर न्याय-नीतिका व्यवहार होगा तो उससे पुण्यकर्मका

बन्ध होता है और यदि अन्याय, अनीतिकी प्रवृत्ति करते है तो उससे पापकर्मका बन्ध होता है। तो किसीको दुःखी करनेका भाव न बनाये। सब जीव सुखी हों, ऐसी सब जीवोंके सुखी होनेकी भावना बनेगी तो आपको ऐसे पुण्यका बंध होगा कि आपको बडे-बडे सुख समागममे प्राप्त होगे और सर्वप्रकारके सकट टलेगे। अब आप समझिये कि जो लोग मांसभक्षण करते है, शराब पीते है, या अभक्ष्य पदार्थोंका भक्षण करते है वे दूसरे जीवोपर अन्याय कर रहे हैं या नही। बिना दूसरे जीवका प्राणघात हुए मांस तो नही मिलता। जो जीव मारा जाता है वह कितना विकल होता होगा? तो मासभक्षण करने वाले लोग कितना अन्याय कर रहे है? उनके जीवोके प्रति दयाका भाव कहाँ उत्पन्न हो रहा है? यदि कोई एक इसी बात पर दृढ रहे कि हमे तो अन्याय नही करना है, किसी जीवको सताना नही है तो उसके हिसा, झूठ, चोरी आदिकके समस्त पापकर्म स्वत ही छूट जायेंगे। तो एक इस प्रवृत्तिसे चले कि हमे अन्याय नही करना है। हम मनुष्य हुए है तो सबके सुखी होने की भावना रखकर अपना जीवन बिताये और अपना जीवन सफल करे।

ससारमे जितने भी पदार्थ है वे सब निरन्तर अपनी परिणति करते रहते है द्रव्यमे यह स्वभाव है, कब तक परिणति करते रहेगे इसका कोई अन्त नही। अनन्तकाल तक सभी पदार्थ अपनी परिणति करते रहेगे। तो चूँकि पदार्थ अनन्तकाल तक रहेगे इस कारण से अनन्तपर्यायोके समुदायको द्रव्य कहा गया है। इस कथनसे यह बात नही निश्चित होती है कि विभावपर्यायमे अमुक पर्यायके बाद यह ही पर्याय होगी। यद्यपि ज्ञानमे सुनिश्चित है और उस समय जो होना है सो ही होगा, परपदार्थमे स्वभावके ही कारण अथवा उसमे कोई ऐसा गुण न होनेसे कि अमुक पर्यायके बाद अमुक ही विकार होगा व ऐसा स्वभावमे न होनेसे ये विभावपर्याये अनियत कही जाती है और अनियत होनेका दूसरा हेतु यह है कि ये परपदार्थका निमित्त पाकर होते है, भले ही स्वकालमे होते है, अर्थात् जब जो होना है तब वह होता है ऐसा आशय रखकर मात्र यह निरखे कि पदार्थमे तो वे सब पर्याये अपने-अपने समयपर होगी ही। उस समय जो सामने अनुकूल पदार्थ है वे निमित्त पडते है, यो अन्यकी दृष्टि वहाँ होती ही नही। सो इस दृष्टिमे निमित्तकी बातको देखनेकी बात ही विरुद्ध है। जब हम द्रव्यको एक निगाहमे तक रहे है, उसमे अनन्त पर्याये होती है और वे क्रमसे हो रही है, जब एक ही द्रव्यको तक रहे हैं वहाँ निमित्तकी चर्चा करना बेतुकी बात है। अगर चर्चा करते है तो वहा ठीक कारणकार्यकी हमे चर्चा करनी चाहिये। तो चूँकि जितने भी विभावपरिणमन है वे निमित्तको पाकर ही होते है, इस कारण अनि-

यत कहलाते हैं। नियतपर्याय स्वभावपर्यायको कहते हैं, जिसके वाद यह समझ चलती है कि यह ही होगा। स्वभावत जो निश्चित है उसे नियतपर्याय कहते हैं। जैसे केवलज्ञान जब होता है उसके वाद केवलज्ञान ही केवलज्ञान होता चला जायगा, बीचमे अब दूसरी वात न आयगी ऐसी पर्यायको नियतपर्याय कहते हैं, और जो किसी निमित्तको पाकर उत्पन्न होने वाला विकार है, जो स्वभावमे नियय नही है उसे कहते हैं अनियत।

सर्वज्ञ प्रभुके ज्ञानमे अनियत पर्याय भी ज्ञात है और नियत पर्याय भी ज्ञात है। अनियत पर्यायका अर्थ यह है कि जो पदार्थमे चैतन्यके स्वभावमे निश्चित नही है किन्तु किसी परनिमित्तको पाकर उत्पन्न हुआ है, जिनकी स्वभावमे प्रतिष्ठा नही है उनको कहते है अनियत पर्याय और जो उपाधिके बिना अपने ही स्वभावमे उत्पन्न होते रहते है, जिनके वाद यह निश्चित है कि इसके वाद यह ही पर्याय हो सकेगी, अन्य पर्याय हो ही नही सकती वे सब नियत पर्यायें हैं। जैसे केवलज्ञानके बाद ज्ञानमे केवलज्ञान केवलज्ञान ही होगा, अन्य कुछ हो ही नही सकता क्योकि ज्ञानावरणका सम्पूर्ण क्षय है वहाँ उपाधिका सद्भाव नहीं है तो यह नियतपर्याय कहलाती है। जो स्वाभाविक पर्याय है वह सव नियत है। तो सर्वज्ञदेव को ज्ञानमे स्वाभाविक पर्यायें और विभावपर्यायें सभी ज्ञात हैं। जो हुआ है वह जान लिया। इस कारण निश्चितवादके कथनसे अनियतवादके कथनका विरोध नही है। अनियत अनियत है, नियत नियत है। सर्वज्ञके ज्ञानमे सब विदित है। जो पर्यायें अवधिका निमित्त पाकर होती है वे अनियत कहलाती है, जो पर्यायें उपाधिके अभावमे द्रव्यके स्वभावसे होती है वे नियत कहलाती हैं। पर्यायोके नियत होनेमे और अनियत होनेमे कारण है उपाधिका अभाव और उपाधिका सद्भाव, पर हैं सब ज्ञानियो द्वारा ज्ञात, किन्तु नियत पर्यायें नियतरूप और अनियत पर्यायें अनियत रूप ज्ञात है। जैसे कोई कहे कि भगवान ने अनन्त पर्यायें जान ली तो अनन्तपर्यायें जव जान ली तो सब ज्ञात हो गया तो इसका अर्थ क्या यह है कि इसके बाद अब कोई पर्याय न रही, तो क्या द्रव्य पर्यायरहित हो जायेगा उसके पश्चात्। जितनी अनन्त पर्यायें जानी है उसके बाद द्रव्यपर्याय रहित हो जायेगा सो तो नही होता। भगवान ने अनन्त जाना तो अनन्तरूपसे जाना कि शान्तरूपसे ? जब अनन्तरूपसे जाना है तो उनका कभी अन्त नही हो सकता।

अब जरा पदार्थोमे पर्याय होनेकी व्यवस्था देखिये—जितनी नियत पर्याये है वे उपाधिके अभावमे होती है और जो उपाधिका निमित्त पाकर होती है वे अनियत पर्यायें कहलाती है। भगवानके ज्ञानमे सब ज्ञात है तो यह भी ज्ञात है कि अनुकूल निमित्त भी

वहाँ रहता है और उसका निमित्त पाकर यह कार्य हुआ है, यह भी ज्ञात है तो विधि-विधानमे फर्क नही आया, अथवा इस ओरसे देखिये कि जो पदार्थ जिस विधिसे उत्पन्न होना है, होता है, उस होते हुए को किसी विशिष्ट ज्ञानीने जान लिया। अब यहाँ दो बातें सामने आयी। यद्यपि इन दोनो बातोका विरोध रंच भी नही है, पर एक दृष्टिमे दूसरी दृष्टि की बात लगा देनेसे विरोध आता है।

एक पदार्थकी दृष्टिमें उसकी पर्यायोंकी धाराके निरीक्षणमें दृष्टिके अनुसार लाभ व हानि—एक दृष्टिमे यह ज्ञात हुआ कि भगवानके ज्ञानमे अथवा किसी विशिष्ट ज्ञानीके ज्ञानमे जब जो पर्याय होना विदित हुई है उस समय वह पर्याय होगी, अतएव सब पर्यायें निश्चित हैं। यह दृष्टि यद्यपि असत्य नही है, लेकिन इसके एकान्तमे यह बात पड जाती है कि कोई पदार्थ कारणसे नही होता। निमित्त कुछ चीज नही है। जब जो जिस पदार्थमे होना है वह होता ही है। यह एकान्त पड़ा हुआ है और इस एकान्तके पडनेसे दो आपत्तियाँ आती हैं। एक तो यह कि जब जो होना है सो होगा ही, हम श्रम क्यो करे ? हम विकल्प क्यो करें ? शिक्षा तो यह लेनी चाहिए मगर रूप यह बन जाता है कि हम श्रम भी क्यो करें ? धर्मके लिए भी उद्यम क्यो करे ? जब धर्म होना होगा तब हो जायेगा। एक यह प्रमादकी बात आती है। दूसरी बात यह आपत्ति आती है कि जब स्वभावसे ही होता है पर्याय पदार्थ मे तो वह सदा होती रहे, क्यो उसका अभाव हो ? जब कोई परकारण ही नहीं है निमित्त रूपसे तब फिर उस पर्यायके होते रहनेका सिल्सिला सदा काल रहेगा। रागभाव कभी छूट ही नही सकता। जैसे एक दार्शनिकका मत है कि रागका कभी विनाश नही होता, मुक्त अवस्थामे वह राग उपशान्त हो जाता है और जब चिरकाल व्यतीत होता है तो उसे फिर ससारी बनना होता है। तो यो राग विकारका कभी अभाव भी न हो सकेगा। जहाँ ये दो आपत्तिया आती है वहा एक भली बात भी हो सकती है। जिसने यह जाना कि द्रव्य अनन्त पर्यायोका समूह है और द्रव्यमे एकके बाद अन्य एक एक पर्याय होती रहती है और वह पर्याय द्रव्यकी परिणतिसे होती है। द्रव्य ही उसका कारण है। यो अन्यका ख्याल यदि न करे, निमित्तकी चर्चा भी न करे वह और यो ही तकता रहे कि पर्याय द्रव्यके आश्रयमे उत्पन्न होती है, द्रव्यके आधारमे हुई है, द्रव्यसे हुई है। यो निरखे तो इस निरखने मे पर्यायका देखना तो गौण हो जायेगा और द्रव्यस्वभावका देखना मुख्य हो जायेगा। ऐसी स्थितिमे आश्रयभूतका विकल्प न रहेगा। देखिये ना, हम लोगोके जो विकार उत्पन्न हुआ करते है तो होते तो कर्मोदयका निमित्त पाकर, लेकिन कोई बाह्य पदार्थ उपयोगमे रहता है,

स्त्री पुत्रादिक कुछ भी ध्यानमें रहते हैं वे आश्रयभूत है। लेकिन जहा एक ही पदार्थ लक्षित है तो वहा द्रव्य मुख्य हो जाता है और इस दृष्टिमे फिर आश्रयभूत उपयोगमे नही रहता। तो एक मार्ग मिलता है निर्विकल्प होनेका। लेकिन निमित्तका विरोध करके तो इस दृष्टिमे भी विघ्न डाल दिया जाता है। तब इस दृष्टिका जो रस है वह प्राप्त नही हो सकता।

निमित्तकी दृष्टिसे नैमित्तिक भावके निरीक्षणमें दृष्टिके अनुसार लाभ व हानि—अब कुछ दूसरी दृष्टिकी बात देखिये—जितने भी विकार होते हैं वे कर्मोदयका निमित्त पाकर और किसी अन्य पदार्थको उपयोगमे आश्रय लेकर हुआ करते है। जैसे आपको पुत्रमे स्नेह हुआ तो इसमे निमित्त पुत्र नहीं है, किन्तु रागप्रकृतिका उदय निमित्त है, और पुत्र आश्रयभूत है। आश्रयभूत उसे कहते हैं कि जिसके साथ विकारका नियम् नही है। यदि मुनि हो गए और पुत्र सामने है तो उस मुनिको तो राग नही होता, क्यो नही होता कि रागप्रकृतिका उदय अब उसके नही है। और आश्रयभूत सामने है फिर भी राग नही होता, तो निमत्तिके साथ नियम है, पर आश्रयभूत पदार्थके साथ विकारका नियम नही हैं। तो यो रागादिक विकार औपाधिक होते हैं। जहाँ यह जाना कि ये रागादिक विकार तो औपाधिक हैं, बाहर ही बाहर लोटने वाले है, वे स्वभावाश्रित नही हैं तो यह बोध होता है कि मैं इन अनियत भावोसे निराला केवल चैतन्यस्वभावमात्र हू—इस प्रकार सन्मार्गमे यदि बढना चाहे तो ठीक है, उससे एक स्वभावदृष्टि उत्पन्न होती है। यदि निमित्तदृष्टिको इतना मुख्य कर दिया कि उसे कर्ता मानने लगे तब तो जीव पूर्णपरतन्त्र हो गया, कर्म राग करता है इसमे जीवका तो कुछ हक ही नही, वह पौरुषहीन हो गया, फिर तो शान्तिका मार्ग नही पा सकेगा।

धर्मसे आत्माकी सिद्धि—देखिये धर्मसे ही आत्माकी सिद्धि है, अन्य बाते आप कितनी ही करते जायें, उनमे तो अपना समय व्यर्थ गवाना है। धन बहुत ब[illegible] तो आपने कल्पनामे समझ लिया कि हमने बडा उद्यम किया और बहुत लाभ प्राप्त [illegible],
लेकिन लाभ कुछ नही पाया, अपना समय व्यर्थ गवाया। ध[illegible]
परमे है, आपसे साथ चिपकी हुई नही है। मरण होनेपर अ[illegible]
की बात तो दूर जाने दो, जब तक जीवन है तब तक भी [illegible]
रह सकते। विकल्प बहुत बढ जाते हैं, ख्याल कई जगहके [illegible] चैन
समयपर खाना भी नही खा सकते, लेकिन मोहके उदयमे [illegible] पडता
और दुःखी होते जाते है। जैसे लालमिर्चके खाने वाले [illegible]

सी भी करते जाते हैं, आंखोसे अश्रु भी गिरते जाते है, फिर भी कहते है कि हमे थोड़ी लालमिर्च और दे दो। जिस लालमिर्चके खानेसे दुःखी होते जाते उसीके खानेमे अपना सुख समझते है, ऐसे ही जिन बाह्य समागमोसे दुःखी होते रहते है उन्ही समागमोमे अपनेको लिप्त रखते हैं और उनसे अपना सुख समझते है। यह धर्ममार्ग तो इससे निराला है। धर्म किसी समागमसे प्राप्त नही होता। धर्मका अभ्युदय तो आत्मामे आत्मासे ही हुआ करता है, वह तो अनैमित्तिक परिणमन है, किसी निमित्तपर दृष्टि रहेगी तो वीतराग परिणतिरूप धर्म नही हो सकता। हाँ पुण्य पापके रूप भावका आश्रय व निमित्त है। इस कारण किसी भी निमित्त पर दृष्टि न रहे, अपने स्वरूप पर दृष्टि रहे तो वह महापुरुषार्थ है और वहां धर्म प्रकट होता है। धर्म है स्वभावका नाम। स्वभावकी दृष्टि होनेका नाम है धर्मका पालन करना। देवदर्शन करते समय जितनी देर प्रभुके स्वभाव पर दृष्टि है, जिसको निरखकर हमे अपने स्वभावका भान होता हो वह धर्म है और जितना हम बाह्य शुभरागमे लग रहे है वह धर्म तो नही किन्तु शुभ भाव है, धर्मका पात्र बनाये रखने वाला भाव है। उसे धर्म भी न कहेगे और अधर्म भी न कहेंगे, वह तो धर्मकी पात्रता बनाये रखने वाला भाव है।

निर्णय और साधनाकी स्थिति—भैया! निर्णय और साधना दो बाते हुआ करती हैं। निर्णयमे तो सर्वतोमुखी दृष्टि करके निर्णय किया जाता है और साधनामे केवल एक अत स्वभावका ही लक्ष्य रखकर साधना हुआ करती है। तो साधनाके पथ पर जब चलते हैं तो निमित्तका लक्ष्य न करना ही भला है, किन्तु मोही जीव इसका प्रयोग शुभ भाव पर तो करता है, अशुभभाव पर नही करता। जिसने यह सुन लिया कि निमित्तकी दृष्टि रखनेसे धर्म नही होता तो वह यो सोच बैठता है कि देवशास्त्र गुरु इनका भी लक्ष्य न करें, इनका भी आश्रय न करे, दर्शन आदिक भी न करें, नियम, व्रत, तपश्चरण, आदिक भी न करें, पर इस ओर दृष्टि नही देते कि हमारे पापकर्ममे जो निमित्त पडते है उन निमित्तोपर दृष्टि न दें। और यह सकल्प कर रखा है कि हमे निमित्त दृष्टि नही करना है तो जब शुभनिमित्तो पर दृष्टि करनेके लिए अपनेको मना करते हो तो अशुभनिमित्तो पर भी दृष्टि करने के लिए मना कर दो। बाह्य समस्त दृष्टियाँ छोडकर एक जो निज अंतस्तत्त्व है उसका आलम्बन लीजिए, पर ऐसा नही कर पाते। यहां यह उपदेश किया गया है कि भाई पहिले अशुभ भावोंका परित्याग करे, वहा होगा शुभ भाव है और फिर शुभभावोका परित्याग स्वयं ही स्वावलम्बनमे हो ही जायेगा और वहा शुद्धोपयोग रहे, यह है स्वावलम्बनमे बढनेका मार्ग।

स्त्री पुत्रादिक कुछ भी ध्यानमें रहते हैं वे आश्रयभूत है। लेकिन जहां एक ही पदार्थ लक्षित है तो वहां द्रव्य मुख्य हो जाता है और इस दृष्टिमे फिर आश्रयभूत उपयोगमे नही रहता। तो एक मार्ग मिलता है निर्विकल्प होनेका। लेकिन निमित्तका विरोध करके तो इस दृष्टिमे भी विघ्न डाल दिया जाता है। तब इस दृष्टिका जो रस है वह प्राप्त नही हो सकता।

निमित्तकी दृष्टिसे नैमित्तिक भावके निरीक्षणमें दृष्टिके अनुसार लाभ व हानि—अब कुछ दूसरी दृष्टिकी बात देखिये—जितने भी विकार होने हैं वे कर्मोदयका निमित्त पाकर और किसी अन्य पदार्थको उपयोगमे आश्रय लेकर हुआ करते है। जैसे आपको पुत्रमे स्नेह हुआ तो इसमे निमित्त पुत्र नही है, किन्तु रागप्रकृतिका उदय निमित्त है, और पुत्र आश्रयभूत है। आश्रयभूत उसे कहते है कि जिसके साथ विकारका नियम् नही है। यदि मुनि हो गए और पुत्र सामने है तो उस मुनिको तो राग नही होता, क्यो नही होता कि रागप्रकृतिका उदय अब उसके नही है। और आश्रयभूत सामने है फिर भी राग नही होता, तो निमत्तिके साथ नियम है, पर आश्रयभूत पदार्थके साथ विकारका नियम नही है। तो यो रागादिक विकार औपाधिक होते हैं। जहाँ यह जाना कि ये रागादिक विकार तो औपाधिक हैं, बाहर ही बाहर लोटने वाले हैं, वे स्वभावाश्रित नही है तो यह बोध होता है कि मैं इन अनियत भावोंसे निराला केवल चैतन्यस्वभावमात्र हू—इस प्रकार सन्मार्गमे यदि बढना चाहे तो ठीक है, उससे एक स्वभावदृष्टि उत्पन्न होती है। यदि निमित्तदृष्टिको इतना मुख्य कर दिया कि उसे कर्ता मानने लगे तब तो जीव पूर्णपरतन्त्र हो गया, कर्म राग करता है इसमे जीवका तो कुछ हक ही नही, वह पौरुषहीन हो गया, फिर तो शान्तिका मार्ग नही पा सकेगा।

धर्मसे आत्माकी सिद्धि—देखिये धर्मसे ही आत्माकी सिद्धि है, अन्य बातें आप कितनी ही करते जायें, उनमे तो अपना समय व्यर्थ गवाना है। धन बहुत बढा लिया तो आपने कल्पनामे समझ लिया कि हमने बडा उद्यम किया और बहुत लाभ प्राप्त कर लिया, लेकिन लाभ कुछ नही पाया, अपना समय व्यर्थ गवाया। धन तो परवस्तु है, परकी चीज परमे है, आपसे साथ चिपकी हुई नही है। मरण होनेपर आपके साथ जायगा नही। मरणकी वात तो दूर जाने दो, जब तक जीवन है तब तक भी धनके कारण आप शान्त नहीं रह सकते। विकल्प बहुत बढ जाते हैं, ख्याल कई जगहके हो जाते है, चैन नही पडती है, समयपर खाना भी नही खा सकते, लेकिन मोहके उदयमे करना यही पडता है। करते है और दुखी होते जाते है। जैसे लालमिर्चके खाने वाले लोग लालमिर्च खाते जाते हैं, सी-

सी भी करते जाते हैं, आँखोंसे अश्रु भी गिरते जाते है, फिर भी कहते है कि हमें थोडी लालमिर्च और दे दो। जिस लालमिर्चके खानेसे दु खी होते जाते उसीके खानेमे अपना सुख समझते है, ऐसे ही जिन बाह्य समागमोसे दु खी होते रहते है उन्ही समागमोमे अपनेको लिप्त रखते हैं और उनसे अपना सुख समझते है। यह धर्ममार्ग तो इससे निराला है। धर्म किसी समागमसे प्राप्त नही होता। धर्मका अभ्युदय तो आत्मामे आत्मासे ही हुआ करता है, वह तो अनैमित्तिक परिणमन है, किसी निमित्तपर दृष्टि रहेगी तो वीतराग परिणतिरूप धर्म नही हो सकता। हाँ पुण्य पापके रूप भावका आश्रय व निमित्त है। इस कारण किसी भी निमित्त पर दृष्टि न रहे, अपने स्वरूप पर दृष्टि रहे तो वह महापुरुषार्थ है और वहां धर्म प्रकट होता है। धर्म है स्वभावका नाम। स्वभावकी दृष्टि होनेका नाम है धर्मका पालन करना। देवदर्शन करते समय जितनी देर प्रभुके स्वभाव पर दृष्टि है, जिसको निरखकर हमे अपने स्वभावका भान होता हो वह धर्म है और जितना हम बाह्य शुभरागमें लग रहे है वह धर्म तो नही किन्तु शुभ भाव है, धर्मका पात्र बनाये रखने वाला भाव है। उसे धर्म भी न कहेगे और अधर्म भी न कहेगे, वह तो धर्मकी पात्रता बनाये रखने वाला भाव है।

निर्णय और साधनाकी स्थिति--भैया! निर्णय और साधना दो बाते हुआ करती हैं। निर्णयमे तो सर्वतोमुखी दृष्टि करके निर्णय किया जाता है और साधनामे केवल एक अत स्वभावका ही लक्ष्य रखकर साधना हुआ करती है। तो साधनाके पथ पर जब चलते हैं तो निमित्तका लक्ष्य न करना ही भला है, किन्तु मोही जीव इसका प्रयोग शुभ भाव पर तो करता है, अशुभभाव पर नही करता। जिसने यह सुन लिया कि निमित्तकी दृष्टि रखनेसे धर्म नही होता तो वह यो सोच बैठता है कि देवशास्त्र गुरु इनका भी लक्ष्य न करें, इनका भी आश्रय न करे, दर्शन आदिक भी न करे, नियम, व्रत, तपश्चरण, आदिक भी न करे, पर इस ओर दृष्टि नही देते कि हमारे पापकर्ममे जो निमित्त पडते है उन निमित्तोपर दृष्टि न दें। और यह सकल्प कर रखा है कि हमे निमित्त दृष्टि नही करना है तो जब शुभनिमित्तो पर दृष्टि करनेके लिए अपनेको मना करते हो तो अशुभनिमित्तो पर भी दृष्टि करने के लिए मना कर दो। बाह्य समस्त दृष्टियाँ छोडकर एक जो निज अतस्तत्त्व है उसका आलम्बन लीजिए, पर ऐसा नही कर पाते। यहां यह उपदेश किया गया है कि भाई पहिले अशुभ भावोका परित्याग करे, वहां होगा शुभ भाव है और फिर शुभभावोका परित्याग स्वयं ही स्वावलम्बनमे हो ही जायेगा और वहा शुद्धोपयोग रहे, यह है स्वावलम्बनमे बढनेका मार्ग।

अब यहाँ एक स्थूल बात कही जा रही है जैसे कि प्राय लोग चर्चा किया करते हैं। बताया गया है शास्त्रोमे कि मोक्ष होता है बज्रवृषभनाराचसहननसे, अर्थात् जिस पुरुषको बज्रनाराचसहनन प्राप्त है उसे मोक्ष प्राप्त होता है। मनुष्यभवसे मोक्ष प्राप्त होता है। करणानुयोग शास्त्रोमे बताया गया है कि जिस जीवके बज्रनाराचसहनन है वह ही क्षपक श्रेणी मे चढकर मुक्ति प्राप्त करता है और जिसके पहिला, दूसरा, तीसरा सहनन है वह उपशम श्रेणीमे चढ़ता है और जिसके शेपके चौथा, पाचवा, छठवाँ सहनन होता है वह श्रेणी पर न चढेगा, यो विवरण सहित बताया गया है, उससे यह सिद्ध होता है कि मोक्षका नाम वज्रनाराचसंहनन है। तो क्या यह बात असत्य है ? ऐसा बहुतसे लोग प्रश्न रखते हैं। समाधान यह है कि कथन तो असत्य नही है। बज्रवृषभनाराचसंहननका धारी पुरुष ही मोक्ष जा सकेगा, लेकिन वहाँ सभी बाते सोचियेगा। वास्तविकता वहाँ यह है कि जो जीव अपने चैतन्यस्वभावका लक्ष्य रखकर निमित्तपर दृष्टि न रखकर केवल अपने स्वरूपमे उपयोग रखता है उसके कर्मनिर्जरा होती है। साधना तो यह है किन्तु इस साधनामे सफलता उसे प्राप्त हो पाती है, जो पुरुष बज्रनाराचसहननका धारी हो, क्योकि अनेक उपद्रव ऐसे आया करते हैं जिनसे हीनसहनन वालोका उपयोग अधीर अस्थिर हो जाता है, तो जो जीव मुक्तिपथमे प्रगति कर रहे हैं उनकी बाह्यस्थितियाँ इस प्रकारकी है, उन समयोमे ऐसे निमित्त होते है, यह बात वहा अर्थमे लेना है। यदि इस ओरसे मुख्यता लेकर कोई अर्थ करे कि बज्रवृषभनाराचसंहननसे और मनुष्यभवसे ही मोक्ष होता है तो इन बाह्यपदार्थोंकी दृष्टि बनाये रहे, इनकी ही माला-जपते रहे तो ऐसे पुरुषोंको ऐसे निमित्त भी न मिल सकेंगे। ऐसा सुन्दर निमित्त उसी जीवको प्राप्त होता है जो अपने आत्माके उपयोगमे रहते जैसे कुछ साधनमे रहता है, उसके ऐसा ही बध होता है। ऐसी ही निर्जरा होती है कि मोक्षके योग्य मनुष्यभवका जो सहनन चाहिए वह सब प्राप्त होता है। दूसरी बात यह है कि सोचिये—मोक्ष नाम किसका है ? मोक्ष नाम है कर्मोंसे छुटकारा होनेका, शरीरके बन्धनसे छुटकारा मिलनेका। तो इनसे छुटकारा मिलनेकी बात उसके ही तो सभव है जो अभी भी यह श्रद्धा रख रहा हो कि मै आत्मा छूटा हुआ ही हू। स्वभावमे ये बाते नही है, मेरे सहजस्वरूपमे कर्म नही लगे है, शरीर नही लगा है, विकार भी नही पडे हैं, अनियतभाव इसी कारण कहलाते हैं ये कि मेरे सहजस्वभावमे रागादिक विकार पडे हुए नही है, ये सब बाहरी बाते है, उनसे निराला अपने स्वरूपको निरखने की प्रेरणा मिलती है अनियतभावके समझने मे।

प्राकरणिक हितशिक्षा--हम आपको इस प्रकरणसे शिक्षा क्या लेना है ? यह शिक्षा लेना है कि हमारा शरण सिवाय मेरे ही अन्दर विराजमान मेरा परमात्मतत्त्व है और अन्य कुछ नही है। ये बाह्य समागम, ये धन वैभव खेती, मकान, सोना, चाँदी आदिक समस्त दिखने वाली चीजे पौद्गलिक है, बाहरी बाते है, इनमे हमारा कब्जा नही है, ये यहाँ है तो है, नही है तो नही है। ये सब पुण्यसे आते हैं, पर इनमे कोई लगाव रखेगा तो वह अपने पुण्यकी जड़ काट रहा है, उसको आगे इस वैभवसे हाथ धोना पडेगा। जिसे वैभव मिला हुआ है वह अगर वैभवसे निर्मोह रहता है, उससे लगाव नही रखता, उसका ज्ञाता दृष्टा रहता है कि ये हैं। बाह्य पदार्थ, मैं तो एक चैतन्यस्वरूप हू, इसमे मेरा नाता क्या ? इससे मेरे आत्माका भला क्या होगा ? मेरी भलाई तो मेरे स्वभावकी उपासनासे है, इस तरहकी वृत्तिमे जो रहेगा उसके धनी होने पर भी पुण्यका वर्द्धन होता है और ऐसा वैभव कई गुणित प्राप्त होता है। किन्तु जिसे यह वैभव एक बार मिल गया, और उस वैभवमे वह मोही रहता है, उदारता चित्तमे नही आती तो समझिये कि अब आगेके लिए उसका चान्स खत्म हो गया। आगे उसे वैभव न प्राप्त होगा। यह वैभव प्रकट भिन्न है, इससे मुझे शान्तिकी आशा नही है, इसकी उपेक्षा करे। घर कुटुम्ब परिजनसे भी मेरा कोई भला नही है, ये प्रकट बाह्य पदार्थ है, इनसे उपेक्षा रखे। यह शरीर भी मेरा साथी नही है, इसका भी वियोग होगा, लोग इसे जला देगे, मैं इस शरीरसे भी निराला हू, इसमे क्या लगाव रखना, अपने स्वरूपपर दृष्टि दें—ये रागादिक विकार भाव भी मेरे शरण नही है, ये भी मेरी बरबादीके लिए ही है। इनसे मैं निराला हू, चैतन्यस्वभावमात्र हू। इनसे प्रीति नही रखना है। अपने स्वभावरूप ही अपनेको अनुभवना, प्रतीतिमे लेना, इन उपायोसे हम सदा मुक्त अनादिमुक्त अर्थात् सहज सिद्ध निज परमात्मतत्त्वके दर्शन कर सकेंगे और उस समय जो हमे आनन्द आयेगा उस आनन्दके अनुभवनमे, अनगिनते भवोमे बाँधे हुए कर्मोंकी निर्जरा कर लेगे। हमे फिर मुक्तिका मार्ग मिल जायेगा और वह समय आयेगा कि शरीर कर्म और इन समागमोसे सदाके लिए पृथक् हो जायेगे और केवल अपने स्वरूपके अनुभवसे प्रसन्न रहेगे। यह बात तब ही तो बनेगी जब कि हम इस समय भी यह श्रद्धा रखे कि मैं इन सब झगडोसे निराला केवल चैतन्यस्वरूपमात्र हू।

क्रमनियत पर्याय और नैमित्तिकपर्यायके मन्तव्योंकी दोनों धारणाओंका समन्वय—जगतमे जो कुछ होता है उसके सम्बन्धमे लोगोकी दो धारणाये है—एक तो यह कि जब

जो होना है वह होता है और पदार्थमे जितनी पर्यायोका क्रम है उस पर्यायके बाद नियत है कि यह अवस्था होगी। दूसरी धारणा यह है कि निश्चित कुछ नही है, जब जो समागम मिला, जैसा निमित्त मिला, जिस योग्य उपादान हुआ उस प्रकार परिणमन होता है, किन्तु इन दोनो धारणाओका समन्वय है, कार्यकारणविधानपूर्वक जैसा निमित्त सन्निधान मिला और उपादानमे जिस प्रकारकी शक्ति है उस रूप परिणमन होता है। इस कारणकार्यविधान का कभी लोप नही हो सकता और ऐसे कार्यकारणविधानपूर्वक जो कुछ होना है वह उस समय उस पद्धतिमे होता है और ज्ञानी पुरुष उन सब घटनाओको जान लेता है। ज्ञान मे ऐसी सामर्थ्य है कि जो कुछ था, जो कुछ होगा वह सब ज्ञानमे ज्ञात हो जाता है, तो जब हमे ज्ञानमे ज्ञात हुआ इस दृष्टिसे निरखते हैं तो यह कहने मे कोई संकोच न करना चाहिये कि जिस समय जब जो होना है उस समय वह होगा ही, किन्तु जो लोग ऐसा मानकर कारणकार्यविधानका अपलाप करते हैं कि फिर कारणकार्यकी विधि ही क्या है? पदार्थमे जिस समय जब जो होना है उस समय वह होगा ही, निमित्तकी क्या आवश्यकता है अथवा किसी भी पदार्थका निमित्त माना तो मान लो वह निमित्त खडा ही है। इत्यादि किसी दृष्टिमे रहकर किसी अन्य दृष्टिकी बात करना बेतुकी बात है। वस्तुत निमित्तका द्रव्य क्षेत्र, काल, भाव उपादानमे पहुंचता नही है, किन्तु उपादानमे ऐसी कला है कि वह विकार रूप परिणमेगा तो किसी परनिमित्तका सन्निधान पाकर परिणमेगा? अब इस दृष्टिसे दोनो बातें आ जाती हैं। तब जब जैसा निमित्त मिलेगा वैसा ही कार्य होगा, इसमे कोई विरोध नही आया और वही सर्वज्ञ या अवधिज्ञानी जान जाता है तब वह निश्चित हो गया अन्यथा अवधिज्ञान आदि मिथ्या हो जायेगा। तो दोनो बाते ठीक हैं समझ लेना चाहिए। जो किसी पक्षका आग्रह करते है वे दूसरे पक्षका विरोध करके अपनेको विकल्पमे बनाये रहते है और अपने को हितके मार्गमे नही लगा पाते हैं।

ज जस्स जह्मि देसे जेण विहाणेण जह्मि कालह्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्म वा अहवमरण वा ॥१॥
त तस्स तह्मि देसे तेण विहाणेण तह्मि कालह्मि।
को सक्को चालेदुं इदो वा अह जिणिदो वा ॥२॥

कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी दो गाथाओंमें क्रमनियत व नैमित्तिक दोनों मन्तव्योंके समावेश का दिग्दर्शन—अर्थात् जो बात जिस जीवके जिस देशमे, जिस समयमें जैसा जिस विधानसे जैसा होना है भगवानने जाना है। वह जन्म हो, मरण हो, सुख हो, दुःख हो, विकार हो,

शुद्धि हो, जो कुछ भी जाना गया है वह उसके उस देशमे, उस विधानसे उस कालमे वह होगा ही। उसको बदलनेके लिए इन्द्र अथवा जिनेन्द्र भी समर्थ नही है। इस गाथामे दोनो बातो पर प्रकाश डाला है, मगर जो जिस पक्षका आग्रह रखता है वह अर्थ उसी मुख्यता से लेता है। जो कार्य जहां जिस देशमे जिस कालमे होना है वह वहा उस प्रकार होगा, इस कथनको मुख्य करके कोई 'जिस विधानसे' इस वाक्याशको छोड देते हैं और गौरा कर देते है, जिस विधानसे जो होना है वह जाना गया है, इसमे कार्यकारण विधान भी है और जाने गए, ये भी आ गए, दोनो बातोका समन्वय है और परिवर्तन करनेकी बात यह है कि किसी भी पदार्थमे कोई दूसरा पदार्थ कुछ परिणति नही करता। निमित्त नैमित्तिक भावकी यह बात है कि योग्य उपादान योग्य निमित्त पाकर अपना प्रभाव बना लेता है पर कोई किसी दूसरेका कुछ भी करनेमे समर्थ नही है। जो बात जिस निमित्तके सम्पर्कमे अपनी उपादान परिणतिसे होनी है वह उस तरहसे होती ही है। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव और निमित्त—इन ५ की बात इस गाथामे बतायी गई है। इससे यह सिद्ध है कि न तो कार्यकारणका निषेध है और न यह भी बात हो सकती है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यका कर्ता बन जाय, ये दोनो बाते समझनी होगी और वस्तुका स्वातंत्र्य जानना होगा।

कार्यकारणविधानके अवगमसे उपलभ्य शिक्षा—देखो कार्यकारणविधानकी बात जाननेसे यह शिक्षा मिलती है कि मेरेमें जो रागादिक भाव होते हैं वे मेरे स्वभावमे नही होते हैं। मेरा स्वभाव तो प्रभुकी तरह एक चैतन्यस्वभाव है, उसमे विकारका काम नही है। क्योकि द्रव्य ही जीव है, ज्ञायकस्वरूप है, ज्ञानमात्र है, उसमे विकार नही पडा हुआ है स्वभावमे, किन्तु विकार आया तो है। यह परनिमित्तके सन्निधानसे आया है। मेरे स्वभाव मे विकार आया होता तो यह विकार हटाया न जा सकता था। तो निमित्तनैमित्तिक भाव माननेपर कितनी ऊची शिक्षा मिलती है। जो लोग निमित्तनैमित्तिक भावका अपलाप करते है उनको यह दृष्टि कैसे मिलेगी कि ये विकार मेरे नही है, ये अन्य भाव है, निमित्त पाकर हुए है, इनसे मेरा कोई प्रयोजन नही, ये दूर हो जाये, इनसे लगाव न लगायें। और जो लोग निमित्तको कर्ता मानते है—देखो कर्मने किया, रागने किया आदि। यो वे कायर बन जाते है। अरे कर्म करने वाले हैं, मैं क्या कर सकूंगा ? कर्म जब जैसा करायेंगे वैसा होगा, अपनी ओरसे कुछ उत्साह जगानेका मौका नही मिल पाता, इस कारण जितने नय सिद्धान्त में बताये गये हैं उन सबसे शिक्षा मिलती है। व्यवहारनयसे भी और निश्चयनयसे भी शिक्षा मिलेगी।

तत्त्वनिर्णयका अपनेपर ही प्रयोग—हमे अपने बारेमे निष्कर्ष यह समझना है कि मेरा इस लोकमे कही कुछ नही है, कोई सहारा नही, कोई शरण नही, यहाँके स्वप्नवत् संसारमे आसक्त न हो जायें। जैसे किसी मनुष्यको स्वप्न आता है और स्वप्नमे उसे वैभव मिल गया, राज्य मिल गया और वह उसमे आसक्त हो जाय तो उसकी क्या कीमत है? उसे मिलता कुछ नही, केवल ख्याल ही उसने बनाया, इसी प्रकार यह मोहनीदका स्वप्न है, वह नीद है १०-५ मिनट की और यह नीद है १०-२०-५० वर्षकी। जितना जीवन है वह सब मोहकी नीदमे ही तो व्यतीत होता है। यहाँ लोग निरखते है कि यह मेरा पुत्र है, यह मेरी स्त्री है, यह मेरा वैभव है आदि। अरे तेरा तो यहाँ देह तक भी नही है, स्त्री पुत्रादिककी बात करना तो दूर रहो, इस देहसे जब यह जीव अलग हो जायगा, जिसे कि लोग मरण कहते है तो वे ही घरके लोग इसे घरमे न रहने देगे, झट उसे घरसे बाहर करवाकर फुंकवा देगे। घरके लोग केवल दिखावाके लिए कहते है कि भैया! आप लोग इसे यहाँसे न ले जावो, पर कदाचित् पंच लोग कह बैठें कि भैया इसे यही पडा रहने दो, इसे फूंकने न ले चलो, तो फिर वे ही घरके लोग हाथ जोडकर कहने लगेंगे कि भैया इसे जल्दी यहासे ले जावो। तो जब यह शरीर भी अपना नही है तो औरकी बात क्या? मेरेमे ये जो रागादिक विकार होते है ये भी मेरे नही है, ये क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें जो मेरेमे उत्पन्न हो रही हैं ये भी मेरी नही हैं, ये कषायें होती है और मिट जाती है। मैं चाहू कि मेरा यह क्रोध जो जग गया है वह वैसा ही बना रहे सो बात हो ही नही सकती। तो जब ये विकार भी मेरे बनकर नही रहते तो और की बात ही क्या? पर यह मोही जीव लगाव रखता है। है तो परपदार्थ, परन्तु यह कहता है कि मेरा है। जैसे एक कहावत है कि मान न मान मैं तेरा महिमान। जैसे घरमे कोई महिमान आया तो यद्यपि उसे घरके लोग नही अपना रहे, पर यह कहता है कि मान न मान, मैं तेरा महिमान। तो इसी तरह घर द्वार कुटुम्ब परिजन मित्रजन आदिक ये कोई भी मेरे नही है। इन सबकी स्वतन्त्र-स्वतन्त्र सत्ता है। मैं इनका नही बन सकता, पर यह मोही मानव कहता है कि मान न मान, मैं तेरा महिमान। तुम मेरे नही बनते तो न बनो, पर मैं तो तेरा हू। इस तरह मोहकी नीद मे यह जीव स्वय विकल्प मचा रहा है, है कुछ नही अपना दुनियामे।

अपना परमें कर्तृत्व—यहाँ यह जानना चाहिए कि कितने ही निमित्त साधन मिल जाये पर जितने द्रव्य है उतने ही उनके स्वयके परिणमन है। किसी दूसरे पदार्थकी आधीनता नही है। यहा ही देख लो—हम बोल रहे हैं, आप सभी लोग सुन रहे हैं, तो आप

सभी लोग अपने ज्ञानसे अपने आपमें कुछ समझ रहे है, जिसमे जैसी योग्यता है वह वैसा समझ रहा है। हम किसीकी परिणति नहीं कर सकते, और हम अपनेमे अपने समझने व समझानेकी परिणति बनानेमें स्वतंत्र हैं, तिसपर भी इतना विलक्षण निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि परस्पर एक दूसरेका निमित्त पाकर हममें व आपमे ऐसा हो रहा है। सो निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध होनेपर भी ऐसा नही है कि कोई एक व्यक्ति किसी दूसरेसे मिलकर अपने मे परिणति करता हो। हमारा जो भी यत्न हो रहा है वह हमारे अकेलेमे ही हो रहा है और आप सबका यत्न आप सबमे अकेले अकेलेमें हो रहा है। यद्यपि इस जगह ऐसा निमित्तनैमित्तिक सम्बंध है कि हमारी बातोको सुनकर आप लोग अपनेमे ज्ञान बना रहे है और आप सबके उपस्थित होनेसे हम इस तरहसे बोल पा रहे है, फिर भी हम आप लोगों मे कुछ नही कर सकते और आप लोग मेरेमे कुछ नही कर सकते। इस तरह जगतमे निमित्तनैमित्तिक सम्बंध होनेपर भी प्रत्येक पदार्थ अपनी परिणतिसे अपना काम करता है। यह सब लोकव्यवस्था जानकर हमारा कर्तव्य यह होगा कि हम समस्त परवस्तुओके प्रति उपेक्षाका भाव रखें, किसी परपदार्थके कर्ता न बने कि मैने इसे किया, मैं इसे कर सकता हूँ। आप यदि धनार्जन कर रहे है तो यह बात ध्यानमे रखें कि इसे मैं नही कमा रहा हू, जिन जिनके उपयोगमे यह लक्ष्मी आयगी उन सबके भाग्यके निमित्तसे यह कमाई बन रही है, कोई यह मत समझे कि मैं इतने लोगोंका पालन पोषण करता हूँ। अरे यह तो सबकी अपने-अपने भाग्यकी बात है। परिवारमे जो सबसे छोटा ३-४ सालका बच्चा है, जिसकी आप बडी-बडी सेवाये करते है और उसे खुश देखना चाहते है, तो बताइये आपका भाग्य बडा है या उस बच्चेका ? अरे भाग्य तो उस बच्चेका बडा है। आप सब तो उस बच्चेके नौकर बने फिर रहे है। पर आप कल्पनासे मान लेते है कि मैं इस बच्चेका पालन पोषण कर रहा हू। अरे कोई किसीका कुछ करने वाला नही है, हम केवल अपने भावभर बनाते है और उन भावोके अनुसार ही हम अपनी सृष्टि किया करते हैं। यहाँ कोई मेरा शरण नही, कोई मेरा रक्षक नही, यह बात चित्तमे निर्णीत रखो।

धर्मपालनके मानवजीवन—भैया ! यह यत्न कीजिए, यह भाव बनाइये कि मेरी जो यह जिन्दगी है सो धर्मपालनके लिए है, मैं मनुष्य हुआ हू तो किसलिए हुआ हू ? धर्म-पालनके लिए। यह काम अन्य किसी भवमें नही किया जा सकता। धन वैभवकी बात तो यह है कि इससे लाखों गुना वैभव अनेक भवोमे प्राप्त किया, परन्तु उससे फायदा क्या मिला ? तो धन वैभवके पीछे अनेक प्रकारकी चिन्ताये करके इस मनुष्यजीवनको व्यर्थमे

बितानेसे फायदा क्या ? यहाँकी यह लौकिक इज्जत भी व्यर्थकी चीज है। मैं इतने लोगोंमे अपना नाम कमा लूँ, इनमे अपनी इज्जत कमा लूँ। अरे यहाँकी मायामयी इज्जतमे क्या धरा है ? यहाँके कुछ मोही जीवोंमे कुछ मोही जीवोंने कुछ स्वार्थमे आकर प्रशंसा कर दी तो उससे इस जीवको लाभ क्या मिल जायगा ? अरे यहाँकी इज्जतमे दम क्या ? वास्तविक इज्जत तो यह है कि मैं अपने आपको निर्मल बनाकर प्रसन्न रहूं। अपने आपमें विराजमान परमात्माके दर्शन करके आनन्द प्राप्त कर लूँ, अपनी वास्तविक इज्जत तो ऐसा कार्य कर जानेमे है। यहां धन वैभव आदिक बाह्यपदार्थोंमे अपना लगाव न रखे, यह मैं संसारमे सबसे निराला अकेला ही जन्ममरण करता हुआ आज इस मनुष्यपर्यायमे आया हूं। यहाँका प्राप्त समागम भी मिट जायगा। यहाके प्राप्त समागमोमे क्या लगाव रखना ? ऐसे विरक्त भावोंसे ससारमे विरक्त होकर, शरीरसे विरक्त होकर, भोगोंसे विरक्त होकर अपने आपकी जिन्दगी बितायें।

धर्मकी विशेषतासे ही मानव जीवनकी उपयोगिता—गृहस्थोका दुकान, व्यापार आदिके कार्य करना गृहस्थीके नाते कर्तव्य है, लेकिन मैं इतना धन कमा लूं, यह उनके हाथ पैरके श्रम पर आधारित नही है, जिन जिनके भोगमे वह धन आयेगा उन सबके भाग्यसे वह धन प्राप्त होता है। ऐसी सही जानकारी होनेसे चित्तमे शान्ति रहेगी। अगर अज्ञान अंधकार है तब तो फिर वहाँ अशान्ति रहेगी। तो हम आप कुछ विवेक करें और अपना यह दुर्लभ मानवजीवन सफल करे। अपना जो करनेका काम है उसमे हिम्मतके साथ बढें। बहुत-बहुत कार्य किए, पर एक अपूर्व कार्य यह करके देखें कि धर्ममे रुचि बढायें, ज्ञानार्जनमे प्रीति बढायें, सत्संगमे अपने तन मनको लगायें, एक नई दिशामे बढें। इस मोह जालमे रह रहकर अपना जीवन बिता देनेमे कोई सार न मिलेगा। सार कही बाहर रखा है क्या ? वह तो अपने अन्दर है। बाहरमे जो चाहता है उसे कुछ नही मिलता। अपने अपने अन्त वैभवमे ही प्रसन्न रहनेमे बडी विभूतियाँ प्राप्त होती हैं। बाह्य समागमोंमे लगाव न हो, अपने स्वभावके प्रति प्रीति जगे, इसमे ही एक सारभूत कदम होगा, और बाकी तो सब जैसा पशु पक्षी कर सकते है वैसा ही मनुष्योने भी किया तो यह मनुष्यभव पानेसे लाभ क्या मिला ? आहार, निद्रा, भय, मैथुन, मोह आदिके कार्य पशु पक्षी भी किया करते है और मनुष्य भी किया करते है। इन कार्योंमे ही रत रहनेमे तो मनुष्यजीवन पानेका लाभ न उठाया जा सकेगा। एक धर्म ही ऐसा तत्त्व है कि जिससे यह भेद खुलता है कि यह मनुष्य है, पशु नही है। और धर्म ही अगर न रहे तो फिर क्या अन्तर बतानेको रहेगा कि

यह मनुष्य है या पशु ? केवल इतना ही कह सकेंगे कि इन पशुओंके तो सीग और पूंछ हैं, इन मनुष्योंके ये नही है। इतना ही भेद रहा, पर प्रकृतिमे क्या भेद रहा ? तो धर्म ही एक ऐसी विशेषता है जिससे यह कहा जा सकेगा कि यह मनुष्य है, पशु नही है।

धर्ममें रुचि करने करानेसे परिवारका हितमय वातावरण एवं शान्ति लाभ-भैया ! धर्ममे रुचि बढानेका उत्साह रखें, घरके सभी लोगोको धर्मात्मा बनाये। इस मोह ममतामें कुछ भी सार नही रखा है। इस मोहको ढीला करे। परिजनको समझायें—कभी हमारा तुम्हारा वियोग तो होगा ही। हमारा आपका मरण तो एक दिन होगा ही। इस बातको अभीसे अच्छी तरह चित्तमे उतार लें तो फिर मरण समयमे उतना अधिक खेद न होगा, क्योंकि तब यह प्रकाश रहेगा हम तो पहिलेसे ही यह जान रहे थे कि एक दिन मरण अवश्य होगा। तो परिवारके अन्दर रहकर समस्त परिजनोमे ऐसा धार्मिक वातावरण पैदा करो जिससे कि सभीको धर्म करनेकी प्रेरणा मिले। कुटुम्बमे रहनेका सच्चा फल यही है कि एक दूसरेको धर्मानुरागके लिए प्रेरित करें। एक दूसरेको धर्ममे बढाये। इस तरहकी दृष्टि और यत्न करें तो वास्तविक परिजनता है अन्यथा तो दुश्मनी है। कोई घरमे अच्छा बालक पैदा हुआ और दो चार माह बाद ही गुजर गया तो लोग कहते है कि वह तो पूर्वभवका दुश्मन था सो अपनी दुश्मनी अदा करनेके लिए उत्पन्न हुआ था। मर गया तब कहते हैं कि दुश्मन था और जब जिन्दा है, जिसकी वजहसे प्रेम, मोह उत्पन्न होता है तो क्या वह दुश्मन नहीं है ? अरे यदि किसी जीवके द्वारा दूसरेकी बरबादी हो रही है, विकार बढ रहे हैं तो वह दुश्मन ही तो है। इसी तरह हम यदि किसीको मोहमे फसा रहे है, विकारमे बढा रहे है, हमारी चेष्टाकी वजहसे दूसरे मोहांध बन रहे हैं, तो क्या हम उस जीवके दुश्मन नही बन रहे है ? वस्तुत तो कोई किसीका न दुश्मन है और न कोई किसीका मित्र है।

हमारे हितू—हमारा मित्र, मगल, लोकोत्तम, शरणभूत तो बस ये चार ही तत्त्व हैं, जिनको हम आप देवदर्शनके समय बोलते है। अरहंत मगलं, सिद्ध मंगल, साहू मंगलं, केवली परिणत्तो धम्मो मंगल, अर्थात् अरहत, सिद्ध, साधु और धर्म—ये चार ही लोकमे उत्तम हैं। या तो प्रभु या गुरु या खुदके स्वभावका आलम्बन—ये तीन बातें यहां वतायी गई है। अरहत और सिद्ध—ये दोनो ही प्रभु कहलाते हैं। जो प्रभु हो गए किन्तु अभी शरीर लगा हुआ है उनको कहते है अरहंत। और जब शरीर भी नही रहता तो उन प्रभुका नाम है सिद्ध। तो अरहंत और सिद्ध दोनो ही प्रभु है। अरहतको कहते है सकलपरमात्मा याने साधु थे और शुक्लध्यान बना, भगवान बन गए। पर अभी शरीर है और वह शरीर

हो जाता है अतिशयवान परमौदारिक। मगर शरीर तो शरीर ही है, शरीर सहित परमात्माका नाम है अरहत और जब शरीर नही रहता, केवल आत्मा ही आत्मा रह गया उसका नाम है सिद्ध। तो ये दोनो प्रभु है। प्रभुकी शरण और गुरुकी शरण और अपने आपके धर्मकी शरण, ये तीन ही तो बातें हैं। निश्चयसे तो धर्म शरण है और व्यवहार से प्रभु और गुरु शरण है। सत्सग प्रभु और गुरुकी भक्ति और अपने आपके धर्मकी दृष्टि, धर्मपालन, इस तरहसे मुख्यतया जीवन चले तो यह पाया हुआ मनुष्य जीवन सफल हो जायेगा। यदि हम विषयोमे, मौजमे, परिग्रहोमे, लगावमे ही चलते रहे तो जिन्दगी तो पर्वतसे गिरने वाली नदीकी तरह वेगसे बढ रही है, गुजर जायेगी जिन्दगी। मरणके बाद कीडा मकौडा स्थावर कुछ भी बन गए, तो फिर क्या वश चलेगा? इस कारण इस मनुष्य जीवनके एक एक क्षणका सदुपयोग करे, ज्ञानार्जन करे, सत्य श्रद्धा बनाये और अपने आप मे ही रमकर प्रसन्न होनेकी प्रकृति बनाये।

निमित्त सन्निधानमें विकार होनेपर भी निमित्तका विकारके प्रति अकर्तृत्व—लोक मे जितने भी विकार, विभाव परिणमन होते हैं उनके सम्बन्धमे यह व्यवस्था है कि निमित्त बिना ये विकार नही होते, फिर भी निमित्त विकारका कर्ता नही है। जैसे अनेक घटनाये देखी जाती हैं निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी। घडेको कुम्हारने बनाया यो रूढिमे कहते हैं तो वहाँ क्या व्यवस्था है कि कुम्हारके व्यापार बिना घड़ा बनता नही है, इतने पर भी कुम्हार की अंगुली, कुम्हारका कुछ भी अश घडे मे नही गया, अतएव कुम्हार घड़ेका कर्ता नही है। घडेका करने वाला जो परिणमन करे वह कर्ता कहलाता है। यही बात रागादिक भावोंके सम्बन्धमे जानना। रागद्वेष कषाय ये कर्मोदय बिना नहीं हो सकते, फिर भी कर्मोदय रागादिक भावोका कर्ता नहीं है। स्थिति यह है कि कर्मोंके उदयका निमित्तमात्र पाकर यह योग्य जीव जो रागादिक रूप परिणम सकता है उस प्रकारका मलिन हो वह रागादिक रूप परिणम जाता है, यह बात बताई जा रही है निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी। आश्रयभूत पदार्थ का कार्यके प्रति नियामकता नही है। बाहरी कारण दो प्रकारके होते हैं— एक निमित्तभूत और दूसरा आश्रयभूत। जैसे पुरुषने पुत्रपर राग किया तो रागके होनेमे निमित्त-भूत कारण है कर्मका उदय और आश्रय है पुत्र। यदि वही पिता मुनि हो जाय, परिग्रह का त्याग कर दे, उसके सामने वह पुत्र भक्ति करे तिस पर भी मुनिके राग नहीं होता। आश्रयभूत तो वही है, अब राग क्यो नहीं होता? तो उसका कारण यह है कि आश्रयभूत के साथ कार्य होनेका नियम नही है। निमित्तभूत कारणका तो नैमित्तिक कार्यके प्रति

अन्वयव्यतिरेक है, कर्मोदय होने पर ही राग होगा। कर्मोदय न हो तो राग न होगा।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध और परिणमनस्वातन्त्र्य—कोई एकान्तके आग्रही ऐसा कहकर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धका लोप करना चाहते है कि जब पदार्थमे जो कार्य होना है उस समय वह कार्य होता ही है। वहाँ जो सामने हो उसे निमित्त कह देते है अथवा यह पूछा जाय कि निमित्त न हो तो कार्य न होगा, क्या यह बात नही है ? तो कहते है कि ऐसा होता ही नही है। निमित्त भी होता ही है, कार्य होता ही है, तो वहाँ यह बात न कही जा सकेगी कि निमित्त न हो तो कार्य न होगा, कार्य होता ही है और निमित्त वहां हाजिर होगा। ऐसा कहकर अन्वयव्यतिरेक नही मिटाया जा सकता, क्योकि अन्वयव्यतिरेक सम्बन्धकी बात प्रकृतपक्षमे नही लगायी जाती, किन्तु विश्वकी समस्त घटनाओमे लगायी जा सकेगी, याने क्या कही ऐसा देखा गया ना कि कर्मोदय न हो तो राग भाव नही होते। सिद्ध भगवान या अनेक गुणस्थानोमे यह देखा जाता है कि कर्मोदय न हो तो रागादिक नही होते। अन्वयव्यतिरेक सम्बन्धकी बात बाहर लगायी जाती है, उदाहरणमे लिया जाता है और उन उदाहरणोसे अन्वयव्यतिरेक जान करके प्रकृत पक्षमे निर्णय किया जाता है, ऐसी दर्शन शास्त्रकी पद्धति है। ज्ञान ५ प्रकारके बताये गए है—मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मन पर्ययज्ञान और केवलज्ञान। मतिज्ञानके भेदमति, स्मृति, प्रत्यभिज्ञान, तर्क, अनुमान ये बताये गए हैं। इसमे जो तर्क नामका प्रमाण है उसका यह कार्य है कि अन्वयव्यतिरेककी व्याप्तिका ज्ञान कर। तो निर्णय यह रखना कि कर्मोदयका और रागादिक भावोके साथ अन्वयव्यतिरेक सम्बन्ध है। इतना सब कुछ जानकर भी परतंत्रता समझनेकी भूल न करना। प्रत्येक पदार्थ अपने आपकी परिणतिसे स्वतंत्रतया परिणमता है अर्थात् निमित्तके सन्निधानमे जो तदनुरूप रागरूप परिणमता है—जीव, सो वहा भी यह जीव ही परिणमा है, अपनी ही परिणतिसे परिणमा है और उसने कोई अपेक्षा भी नही की है, किन्तु सम्बध ही ऐसा है कि यदि अमुक रागप्रकृतिका उदय निमित्त हो तो जीव रागरूप परिणमन जाता है, निमित्तनैमित्तिक भाव और पदार्थके परिणमनकी स्वतंत्रता दोनो का सही ढगमे परिज्ञान होना चाहिए।

निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धके व परिणमनस्वातंत्र्यके अवगमसे आत्मजागरणका दिग्दर्शन—अब निमित्तनैमित्तिक भाव व परिणमन स्वातन्त्र्यके अवगममे शिक्षाकी बात देखो—जब हम यह जान रहे हैं रागभाव कर्मोदयका निमित्त पाकर हुआ है तब इतनी यह शिक्षा बैठती है कि इस रागकी हमारे स्वरूपमे प्रतिष्ठा नही है। उस रागसे परे केवल

चैतन्य चैतन्यमात्र हू । केवल अपने स्वरूपमात्र हू । अत रागादिक भावोमे लगाव न करना, जीव विवश हो जाते हैं, अपने कषायभावमे लगाव रखनेके कारण उन्हे सन्मार्ग नही सूझता और उस समय जो कषायका आर्डर है उसके अनुसार ही चलना पडता है, किन्तु जिन्हे इस मर्मका भान है कि कोई भी पर या परभाव मेरे स्वरूप नही है, वे क्षुब्ध व विवश नही होते । कैसा भान सो सुनिये, कषाय विकार हैं और ये विकार मुझमे आये है मुझे बरवाद करनेके लिए । जैसे छेवले आदिकके पेडमे लाख लगती है तो उस पेडको बरवाद करनेके लिए लगती है । यद्यपि वह लाख उस पेडसे ही निकलती है, फिर भी वह उस पेडको सुखा देती है । यो ही मेरे आत्मामेसे प्रकट हुए ये रागादिक विकार मेरेको ही बरवाद कर देते है । तो राग विकार है, परभाव है, औपाधिक है, उसका मेरेसे सम्बध नही अर्थात् स्वरूप नही । इसमे मैं तन्मय नही हू, ऐसा ज्ञान जगता है औपाधिक भावकी वात समझनेमे । अब परिणमनकी स्वतत्रता समझनेमे हमको क्या प्रेरणा मिलती है, सो भी सुनो । मैं ही स्वयं केवल अपनी परिणतिसे रागरूप परिणमता हू, कर्मकी परिणतिसे नही परिणमता हू । यदि मैं कर्मकी परिणतिसे रागरूप बनता होता तो इस रागको मिटानेका कोई उपाय न रहता, क्योकि मेरे रागका बनाने वाला तो कर्म हो गया, अब कर्म तो बनेगा ही, उसमे मेरा पुरुषार्थ क्या चलेगा ? तो कर्म रागरूप परिणति नही करता । मैं ही स्वय स्वतत्ररूपसे अपनेमे रागरूपपरिणमन करता हू । इतनी बात अवश्य है कि वहाँ राग उदयका सन्निधान पाकर रागपरिणमन करता हू फिर भी परिणमन स्वतन्त्रतासे हैं । प्रकृतमे यह कहा जा रहा है निमित्त विना विकार होता नही और निमित्त विकारका कर्ता नही । यदि निमित्त बिना विकारका होना माना जाने लगे तब तो विकार स्वभाव बन जायगा । फिर उस विकारको दूर करनेका मौका न मिलेगा, क्योकि स्वभाव बन गया । स्वभावकी चीज दूर नही की जा सकती । इसी प्रकार यदि यह मान लिया जाने लगे कि निमित्त कारण होता है तो अब कर्म तो रागका करता बन गया तो वह राग करेगा ही । इसमे उसका कोई निषेध न चल सकेगा । कर्म यदि राग कराता रहेगा तब तो फिर इस रागसे मुक्ति न हो सकेगी । तो देखिये निमित्तनैमित्तिक सम्बधके अवगमसे ज्ञानी स्वभावकी ओर चला और परिणमनस्वातन्त्र्यके अवगमसे भी ज्ञानी स्वभावकी ओर चला । यह है रागको दूर करने की पद्धति ।

विभावकी परेशानीकी स्वभावदृष्टिसे समाप्ति—आज सारा लोक परेशान है तो केवल रागद्वेष मोह भावसे । लोग कहते जरूर है कि मुझे इस इस बातकी परेशानी है और

वहाँ अनेक बातें दिखा देते है—मेरे पास मकान नही है इसकी परेशानी है, मेरा घर अधूरा है इसकी परेशानी है, मेरी दुकान ठीक नही चलती इसकी परेशानी है, अथवा मेरे पुत्र कहना नही मानते इसकी परेशानी है, यो लोग अनेक बातें दिखाते है, किन्तु वास्तविकता यह है कि परवस्तुमे जो मोह लगा रखा है उसकी परेशानी है। यदि एक बार भी समस्त परसे न्यारे सबसे विविक्त अपने केवल चैतन्यस्वरूपमात्रको अपना लें, मैं तो इतना ही मात्र हू, इससे बाहर मैं नही हू, न किसी बाहरी पदार्थसे मेरा सम्बन्ध है, न कुछ प्रयोजन है, मैं तो चैतन्यस्वरूप हू और सत्के नाते से अपने स्वरूपमे अपनी परिणति बनाता चला जाता हू, इससे बाहर मेरा लोकमे कोई अधिकार नही है। यो अपने स्वरूपकी बात समझ कर कोई स्वरूपमे रम जाय तो देखो सारी परेशानियाँ एक साथ समाप्त हो जाती हैं।

परेशानी मिटानेकी सहजकला—बताते है कि यमुना नदीमे कछुवोकी बहुत ही अधिकता है। मान लो जैसे कोई यमुना नदीका कछुवा कुछ विश्राम करनेके लिए अपने मुखकी चोचको पानीसे बाहर निकालकर चल रहा है। अब उस कछुवेकी चोचको चूंटनेके लिए सैकडो पक्षी उसके उपर मंडरा रहे है। वह बेचारा कछुआ दुखी होकर यत्र तत्र भागता फिरता है, चोच दिशावोमे पलटता है, पर उसे उसे बताने वाला कोई न मिला कि रे कछुवे तू व्यर्थमे क्यो दुख उठा रहा है? अरे तेरेमे तो एक ऐसी कला पडी है कि जिसका यदि उपयोग करले तो ये तेरी सारी संकटकी बातें दूर हो जावें। वह उपाय यही है कि तू जलके अन्दर ८–१० अगुल डुबकी लगा जा, फिर ये पक्षी तेरा क्या कर सकेंगे? लो इतनी कला खेल जाने भरमे उस कछुवेके ऊपर आने वाले सारे संकट समाप्त हो जाते हैं। इसी प्रकार हम आप समस्त ससारी प्राणियोके पीछे अनेक प्रकारकी सकटकी बातें लगी हुई हैं। तो ये सब संकट हम आपके पीछे क्यो लग रहे है? हम आप है तो ज्ञानसमुद्र, पर हम आप अपने उपयोगकी चोचको बाहर निकालकर अर्थात् अपने उपयोगको बाह्य पदार्थोमे लगाकर यत्र तत्र डोलते रहते हैं। हम सोचते है कि यह मेरा पुत्र, यह मेरी स्त्री, यह मेरा घर, यह मेरी इज्जत, ये मेरे मित्रजन। उनसे हम सुख शान्तिकी आशा करते रहते है। यो अपने उपयोगको इन बाह्यपदार्थोंमे लगाते हैं। परिणाम यह होता है कि हमारे ऊपर अनेक प्रकारकी विपत्तियाँ छा जाती है, अनेक लोग मुझे सताने वाले हो जाते हैं। कही परिजनोने सताया, मित्रोने सताया, सरकारने सताया, बधुवोने सताया, रिश्तेदारो ने सताया। सभी लौकिक वैभव लूटनेके लिए विकल है और अपने आपकी कल्पनाये जब हम बढाते है। मुझे पब्लिकने सताया, इतने लोगोमे मेरी निन्दा कर दी गई, अमुकने मुझे

गाली दे दी—यों अनेक प्रकारकी बातें सोच-सोचकर हम मनमें भी रात दिन दु.खी होते रहते हैं, यो अनेक प्रकारके उपद्रव हमारे ऊपर आते रहते है। जब तक इस ज्ञानसमुद्रसे अपने उपयोगकी चोचको बाहर निकाले हुए यत्र तत्र डोलते रहते हैं तब तक अनेक सकट हमारे ऊपर मडराते रहते हैं, पर हे आत्मन्! तेरेमे तो वह सहज कला है कि तू लीला मात्रमे अपने ऊपर आने वाले समस्त सकटोसे बच सकता है। तू तो व्यर्थ ही परेशान हो रहा है। तेरेमे तो वह ऐसी सहज कला है कि क्षरण भरमे ही समस्त परेशानियोको एक साथ समाप्त कर सकता है। तेरी वह कला क्या है? वह कला यही है कि तू अपने उपयोगको, अपने चितनको जो अपने स्वरूपसे बाहर करके यत्र तत्र लगा रहा है उसको तू भीतरमे ला और अपने ज्ञानसागरमे उस उपयोगको डुबा दे तो फिर तेरे ऊपर कोई भी उपद्रव न रहेगा। वे हजारो लाखो परेशानियाँ एक साथ समाप्त हो सकती हैं। तो यह सारा जगत जितना परेशान है, वह रागभावसे परेशान है, उस रागभावके मेटने पर सारी परेशानियां समाप्त हो जाती हैं।

रागभावमेटनेके उपायमें—भैया! रागभाव कैसे मिटे? उस उपायके उपयोगमें अधिकाधिक अपना समय लगाये; तन, मन, धन, वचन सब कुछ न्योछावर हो जायें, मुझे अपने स्वरूपका भान होता है तो हमने सब कुछ पाया, खोया कुछ नही। अपने-अपने स्वरूपको भूल कर अपने धर्मको त्यागकर, अपनी ईमानदारीको खोकर यदि कुछ धन वैभव भी कमा लिया तो भी सब खोया ही समझिये। पापके उदयमे तो दु.ख मिलेगा। यदि पाप का आस्रव है, पापके परिणाम हो रहे है तो अन्य विपत्तियां मिल रही हैं, अथवा आपने किसीको धोखा देकर कुछ वैभव बढा लिया तो उससे कुछ प्रयोजन न सिद्ध होगा, क्योकि पापका उदय आयेगा तब आपको अनेक गुना दु खी होना पड़ेगा। यदि पाप रुक गया, पाप का आस्रव नही हो रहा तो अन्य सम्पदाका प्रयोजन ही क्या है? मत आये वैभव। मेरा क्या नुक्सान है। मैं तो अपने पवित्र परिणाममे रह रहा हू, अपने आत्मामे अपने सहज-परमात्मतत्त्वके दर्शन कर रहा हू। मैं तो प्रसन्न हू, यह लौकिक वैभव क्या है? प्रकट पुद्गलके ढेर हैं, डले है, इससे मेरे आत्माकी शान्तिका कोई सम्बन्ध नही है। आत्मा शान्ति प्राप्त कर सकेगा तो तत्त्वज्ञानके बलसे शान्ति प्राप्त कर सकेगा। अन्य कोई भी उपाय आप कर डालें, शान्ति नही मिल सकती। जो लोग धनार्जनमे या अन्य विकल्पोमें निरन्तर चित्त दिए हुए है उनको शान्ति नही है। हालाकि धनसे अशान्ति नही होती, न धनसे शान्ति होती, धन धनमे है लेकिन हम शान्त अशान्त होते हैं अपने भावोसे। जब व्यर्थके

ख्याल बना लेते हैं तो अशान्त हो जाते है और जब अपने निर्विकल्प ज्ञायकस्वभाव अपने स्वरूपकी ओर दृष्टि करके उसका ख्याल करते हैं तो शान्त हो जाते है। यों तो चक्रवर्ती छ खण्डके राज्यका अधिपति होता है, ३२ हजार मुकुटबद्ध राजा जिसके चरणोंमें नमस्कार करते हैं, जिसकी सेनाका, जिसके वैभवका कोई पार नही है, बहुत अधिक है, इतने पर भी ज्ञानी चक्रवर्ती है तो किसी भी वैभवसे उसे अशान्ति नही है। वह अपने आप मे प्रसन्न रहता है। उसे साहस है और यदि अज्ञानी भिखारी भी है, इधर उधरसे भीख माग कर खाता है, देखनेमे तो लगता है कि उसके पास कुछ भी वैभव नही है, टूटी-फूटी झोपड़ी है लेकिन वह कितना दु खी है और कितना परेशान है, कितना परिग्रही है कि चित्तमे वह सर्व कुछ चाह रहा है और उदय ऐसा है कि उसे मिलता कुछ नही। तो धन का मिलना शान्ति अशान्तिका कारण नही। शान्तिका उपाय तो तत्त्वज्ञान है, वैराग्य भाव है।

ज्ञान और वैराग्यके अर्जन व वर्द्धनमें हितका लाभ—ज्ञान और वैराग्य ये दो हम आपकी वास्तविक निधियां हैं, इनमे फर्क न डालें। ज्ञान और वैराग्यमें रुचि बढ़ायें, अन्य सब बातें तो जो होनी हैं, जिस तरह होनी हैं वे होती ही रहती हैं। जो होता है होने दो, ज्ञाता द्रष्टा रहो, सब कुछ भलेके लिये ही हो रहा है। अगर ठीक विचार हो तो आप इस निर्णय पर रहेगे कि कोई अगर आपत्ति है तो वह भी भलेके लिए है। कोई भी स्थिति है वह भी भले के लिए है। मेरा वहा क्या बिगाड़? मैं अपने स्वरूपमात्र हू और यह ही मेरी दुनिया है। इसका कोई विघ्न कर सकने वाला नही है, मेरा विघ्न करने वाला तो मैं ही खुद हू। जब ज्ञानभावको छोडकर अज्ञानमे आ जाता हू तो अपना विगाड़ मैं ही खुद कर लेता हूँ। तो अब अपना निर्णय बदल लें। और प्रारम्भसे लेकर अब तक जिस फंसावमे रहे है उसे समझें कि यह फसाव मेरे हितके लिए नही है। उम्र बीती जा रही है, मरणके दिन निकट आ रहे है। अब उस समय आपकी ये कषायें क्या काम देंगी? जितना शान्तिका जीवन बिता सके, जितना ज्ञानचर्चामे, सयममे, सत्सगमे, साधुसंगमे समय बिता सकें वह तो आपको आगे काम देगा और यहाका धन वैभव या अन्य अन्य प्रकारकी बाते ये काम नही दे सकती—यह निर्णय बनाना है और यह निर्णय करके फिर आपका जो सतत्त्व है उसमे लगना है।

धर्ममार्गकी समस्याका स्वयंसे समाधान—एक परेशानी धर्ममार्गमे मनुष्योको यह भी आ रही है कि यदि कोई मनुष्य धर्मकी बात, रहस्यकी बात हृदयमे चाहता है, और

वह निष्पक्ष भी है, लेकिन उसे मार्ग सही नही मिल पाता, क्योंकि सभी मजहबके लोग अपने धर्मकी बातोंकी बडी तीव्र पुष्टि करते हैं। कोई ऐसा माने जैसा मेरे धर्ममे कहा गया है तो वह तो सम्यग्दृष्टि है और यदि वैसा नही मानता है तो वह मिथ्यादृष्टि है, नास्तिक है, काफिर है। तब फिर जो धर्ममार्गमे निष्पक्ष मार्गमे आना चाहता है वह सशयमे पड जाता है कि किस मार्गमे चलें, क्योकि सभी लोग अपने-अपने मजहबकी (धर्मकी) बातोकी पुष्टि कर रहे है। उस सदेहको मेटनेका उपाय है तत्त्वज्ञान। तत्त्वज्ञान करें। सब लोगोकी बातें समझकर अपने आप परीक्षा कर लेंगे कि वास्तविक मार्ग क्या है? किन्तु जिनको इतनी फुरसत नही है अथवा जिनके इतना विशेष क्षयोपशम नही है वे यदि एक उपाय काममे लावें तो वे अपनी समस्या हल कर सकते हैं। वास्तविक शान्तिका उपाय क्या है? वह क्या उपाय करें, यह जानकर कि जब बाहर सभी फुसलाने वाले है तो मुझे किसीकी बात नही मानना है और इसके साथ ही साथ यह जब हमने जान लिया है कि घरमे, रागमे मोहमे कुछ सार नही है तो किसी बातका हमे मोह और राग भी नही रखना है। मुझे किसी भी परवस्तुका राग नही रखना है और किसीकी भी शिक्षाकी बात नही मानना है। चलो दोनो बातोपर अटल रह जायें तो तब यह स्थिति बनेगी कि चित्तमे कोई भी बाह्य पदार्थ न रहेगा। क्योकि वह निर्णय करके बैठा है कि मुझे किसी भी परपदार्थमे राग नही करना है तो कोई भी परपदार्थ जब दिलमे न रहेगा तो यह दिल परपदार्थकी छाया से रहित हो गया, ऐसी स्थितिमे यह ज्ञान केवल जब ज्ञानके लिए रह गया, बाह्यपदार्थोंके रागका अवसर हीन रह गया, किसी आश्रयभूत वाह्य पदार्थको हृदयमे ही न जमाया तो इस स्थितिमे स्वय यह ज्ञानोपयोग अपने ज्ञानस्वभावको छू लेगा, उसका भान कर लेगा। ऐसी स्थिति आयेगी। वह अपने अन्तरात्मासे यह हल कर लेगा कि इस तरहकी स्थिति बनानेमे शान्ति मिलती है। भले ही वह उसके शब्दोका विवरण न कर सके, मगर पूर्णतया समझ जायेगा बडे प्रामाणिक ढंगसे कि यह स्थिति शान्तिका उपाय है और बाकी बाह्यमे अपने उपयोगको फसाना यह शान्तिका उपाय नही है।

निमित्त बिना विकारका अभवन तथा निमित्तका अकर्तृत्व इन दोनों तथ्योंका स्पष्टीकरण—निमित्तनैमित्तिक सम्बंधके विषयमे स्थूल रूपसे यह बात जानें कि विकारभाव निमित्त के सन्निधान बिना नही होते, तिसपर भी निमित्त विकारभावका कर्ता नही है। निमित्त सन्निधान बिना नही होता। इसका भाव यह है कि योग्य उपादान अनुकूल निमित्त पाकर उपादान स्वयकी परिणतिसे अपने मे अपना प्रभाव बना लेता है, पर उपादानमे अपना वहं

प्रभाव बनाने के लिए निमित्तका सनिन्ध्रान निमित्त होता है । निमित्त विकारका कर्ता नहीं है। इसका अर्थ यह है कि निमित्तभूत कर्मोदय कर्मकी अवस्था है, वह कर्ममे है, कर्मसे बाहर कर्मकी कोई चीज निकल कर आत्मामे जाती हो या कर्मकी परिणतिसे आत्मा रागी बनता हो सो यह बात नही है, किन्तु कर्मोदयका निमित्त पाकर स्वयं अपनी परिणति से रागरूप परिणमता है । तब निमित्तका तो सनिन्धान मात्र ही काम है, इसके आगे निमित्त का अन्यमे कुछ काम नही है । उसका कार्य उसमे ही होता है, इस कारण निमित्त विकार का कर्ता नही है ।

निमित्त बिना विकारके अभवनका विवरण—अब प्रश्नोत्तर करके इन बातोको समझिये—कोई कहे कि जब योग्य उपादान है और उसका परिणमन होता है, उसकी ही परिणतिसे होता है, विकारभावकी बात कह रहे है—आत्मामे राग जगा, आत्माकी परिणति से राग जगा, कर्मकी परिणति नहीं है वह राग, तब निमित्त बिना राग होता है यह मान लेनेमे क्या हानि है ? निमित्त बिना ही तो हुआ । निमित्त निमित्तमे है और यह उपादान आत्मा अपने आपमें है और उसका राग परिणमन स्वयमे होता है, तव निमित्त बिना होता है विकार, यह मान लेनेमे क्या हानि है ? समाधान यह है कि बात यद्यपि यह सत्य है कि कर्मकी परिणतिसे नहीं है वह राग । वह राग है आत्माकी परिणतिसे और उसका अंतरङ्ग करण आत्मा ही है, साधन आत्मा ही है। आत्माके परिणमनसे हुआ है लेकिन निमित्त सन्निधान बिना विकार हुआ हो अर्थात् निमित्तका सन्निधान न हो तब भी हो जाता है। हो सकता है, निमित्तके सन्निधानकी वहाँ आवश्यकता नही हो या निमित्तका सन्निधान पाये बिना उपादान ने अपना विकार प्रभाव बना लिया हो तो उसका अर्थ यह होगा कि रागभाव अनैमैत्तिक हो जायेगा । तब आत्मामे जैसे ज्ञान दर्शन आदिक भाव अनैमित्तिक है और स्वभाव है, इसी प्रकार रागादिक भी अनैमित्तिक होनेके कारण स्वभाव बन जायेंगे। जब स्वभाव बन गए विकार, तो विकारोका कभी नाश न हो सकेगा और जब विकार नष्ट न होगा तो मोक्ष भी नही बनेगा । फिर धर्मव्यवहार किसलिए हो ?

निमित्तके अकर्तृत्वका विवरण—अब इस प्रसगमे दूसरी जिज्ञासा यह की जा सकती है कि तब तो निमित्त कुछ करता है—यह मान लेना चाहिए। जब कर्मोदयका निमित्त पाकर आत्मामें रागविकार होता है तब यह मान लेना चाहिए कि निमित्तने राग किया है। इसके समाधानमे सक्षेपमे यह समझिये कि यदि यह मान लिया जाय कि निमित्तने राग परिणति की है तो इसका अर्थ यह है कि निमित्त ने अपना भी काम किया और दूसरे

पदार्थका भी काम किया और वह काम होगा समान रूपसे, अर्थात् जैसे निमित्तभूत कर्मने अपनी परिणतिसे अपने आपमे अपनी विपाक दिशा बनायी, इसी प्रकार निमित्तभूत कर्म ने आत्मामे भी अपनी परिणतिसे रागदशा बना दी, तो एक पदार्थ दो क्रियाओका कर्ता बन गया और जो ऐसा माने कोई एक पदार्थ दो पदार्थोकी क्रिया करता है तो वह मिथ्या-बुद्धि है। ऐसा माननेपर फिर दूसरे पदार्थका अभाव हो जायेगा। निमित्तने अपना भी किया काम, उपादानका भी काम किया, तो उपादान तो निष्क्रिय हो गया और जो निष्क्रिय हो वह असत् है। जिसमे खुदकी परिणति नही है, वह पदार्थ नही कहला सकता। यो दोनोका भी अभाव हो जायेगा, द्रव्यव्यवस्था फिर नष्ट हो जायेगी। इस कारण से न तो यह एकान्त करना है कि निमित्त बिना होता है, न यह एकान्त करें कि निमित्त कुछ करता है। वहा स्थिति ऐसी है कि विकार निमित्तके सन्निधान बिना नही होता, तिस पर भी निमित्त उसका कर्ता नही है।

व्यवहारसे निमित्तको कर्ता कहनेका आशय—अब कुछ ऐसी जिज्ञासा की जा सकती है कि निमित्तको कर्ता माननेकी रूढि है। कुम्भकारने घडा बनाया, जुलाहेने कपडा बनाया आदि कितने ही इस प्रकारके व्यवहार चलते है तो निमित्त कर्ता भी तो एक दृष्टिमें कुछ चीज है ? हां है, व्यवहार दृष्टिमे निमित्त कर्ताकी बात कही जाती है। परमार्थदृष्टिसे, परमार्थनयसे वस्तुके स्वरूपको वस्तुमे निरखा जाता है और उपचार और व्यवहार एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे सम्बन्ध दिखाता है और एक पदार्थके निमित्तसे हुए नैमित्तिक कार्य को निमित्तका कहा जाता है। किसीकी परिणति किसी दूसरेकी कह दी जाय, यह एक उपचारकी बात है, पर परमार्थत वस्तुके स्वरूपमे यदि निरखा जाय तो जो परिणमता है वह कर्ता होता है। जो अवस्था है वह उसका कर्म है। जो परिणति है वह क्रिया है। तो वस्तुत परमार्थदृष्टिसे कर्ता, कर्म, क्रिया ये तीन भाग नही होते। देखिये—कर्ता कर्म क्रियाकी बात भेदमे भी होती है और अभेदमे भी होती है। जैसे सांपने अपने शरीरको गोल बना लिया, (जिसे कहते हैं कुण्डली बना ली) तो सांपने क्या काम किया ? अपना ही काम किया और सांपने किसकी मददसे अपनी कुण्डली बनायी ? अपने ही साधनसे और सांपने क्रिया क्या की ? तो अपने आपकी ही क्रिया की। तो जैसे सांपने अगर अपनी कुण्डली बना ली, साप स्वय गोलमटोल बन गया तो वहा कर्ता कर्म क्रिया एक पदार्थमें आ गये और जैसे कहते है कि मैंने कलमसे इस कॉपीको लिखा तो कॉपी भी अलग, कलम भी अलग। तो यहा भेदमे कर्ता कर्मकी बात कही जाती है। जैसे कहते हैं कि कुम्हारने दश

चक्रसे घडा बनाता तो वह कुम्हारने दड चक्रसे घडा बनाया तो वह कुम्हार अलग है, दंड चक्रादिक की क्रियाये अलग है, घडा बनाना भी अलग है। तो यहा भेदमे कर्ताकर्मक्रिया का प्रयोग होता है। जहा भेदमे कर्ताकर्म बताया जाय वह है व्यवहारदृष्टि, जहा अभेद मे कर्ताकर्म बताया जाय वह है अभेददृष्टि। अमेददृष्टि वस्तुगतदृष्टि है, भेददृष्टि सम्बन्धकृत-दृष्टि है।

वस्तुतया कर्ता कर्म क्रियाकी एकवस्तुगतता—वस्तुत जो परिणमन करे वह कर्ता, जो अवस्था बनी वह कर्म और जो परिणति हुई वह क्रिया है। ये तीनोके तीनो परमार्थत भिन्न नही है। एक ही वस्तुमे घटित होते है। अब यही बात अशुद्ध परिणमनमे घटा ले तो घटित हो जायगी, और एक स्वपरिणमन शुद्ध अशुद्ध विकल्पको छोडकर वस्तुमे वस्तुत्व के नाते जो स्वयं अगुरुलघुत्वके कारण परिणमन है उसमे भी घटित हो जायगी। जैसे जीवने राग किया तो रागपरिणमनका कर्ता कौन हुआ, जो परिणमा वह। कौन परिणमा ? यह विकारी जीव। और उस विकारीजीवके उस समयकी अवस्था है राग परिणाम, वह हुआ कर्म और उसमे जो परिणति हुई, एक रज्ययानरूपसे जो परिणमन चला वह क्रिया है। तो यहाँ भी परद्रव्यके साथ कर्ताकर्मक्रियाका सम्बध नही रहा। वस्तुत्वदृष्टिसे देखा जा रहा है। व्यवहारदृष्टि तो दो द्रव्योको निरखकर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध आदिकको चित्तमें रख कर कथन करती है, और निश्चयदृष्टि अन्य बातकी अपेक्षा न रखकर केवल एक पदार्थमे जो है उसका ही कुछ हो रहा वर्णन करती है। जब यह जीव शुद्ध परिणमता है, केवलज्ञानरूप बन गया, केवलज्ञानी बना हुआ है, केवलज्ञानपरिणमन चल रहा है तो केवलज्ञानपरिणमन का कर्ता कौन है ? वही परमात्मद्रव्य जो केवलज्ञानरूप परिणम रहा है और कर्म क्या है ? यहाँ पर विभावो रूप परिणाम, केवलज्ञानरूप भाव, वह उसका परिणमन है। यो आत्माका वह क्षायिकज्ञानके साथ कर्ताकर्मक्रिया सम्बध नही है, किन्तु स्वभावपरिणमनके साथ कर्ता-कर्मक्रियाका सम्बध है।

शिक्षाग्रहणका उद्देश्य रहनेपर विवादकी समाप्ति—व्यर्थ ही लोग कुछ अपने जीवनका उद्देश्यश्चर्चा बनाये रखते है, अरे उस चर्चासे हमे कुछ अपनेमे शिक्षा लेना है। यदि यह बात चित्तमे आ जाय तो एक बच्चेकी बातसे भी शिक्षा मिल सकती है, किसीके भी कथनसे हमे शिक्षा मिल सकती है। जो एकदम विपरीत बात हो उसकी बात तो अलग है, मगर बच्चेके बोलनेमे भी हमे बहुतसे हितमार्गमे चलनेकी प्रेरणा मिल सकती है। तो जो लोग ऐसा मानते है कि निमित्त पाकर रागादिक विकार होते है तो इससे भी हम शिक्षा

ग्रहण करे कि ये विकार निमित्त पाकर हुए है, ये मेरे स्वरूप नही है। और जो यह कहते है कि स्वकालमे राग होता है तो वहाँ देखा गया एक ही पदार्थको। वह पदार्थ है, प्रतिसमय परिणमता है, तो अपने कालमे अपनी अवस्थारूप परिणम गया। एकको ही देखा, ऐसे एकको ही देखनेमे जब आश्रयभूत पदार्थपर उपयोग नही रहा तो यह राग सूख जायगा। फिर आगे राग न रहेगा। तो इस बातपर दृढ रहे कि हम एक पदार्थको निरखकर बात कर रहे है। एक पदार्थको निरखनेकी दृष्टि बनाये है और निमित्तकी चर्चा उठाये कि निमित्त है अथवा नही, सो है रूपसे भी चर्चा करना गलत है और नही रूपसे भी चर्चा करना गलत है। कब ? जबकि तत्त्वको एक अभेद दृष्टिमे निरखा जा रहा है। तो वस्तुत जो परिणमा सो कर्ता, जो परिणाम हुआ सो कर्म, जो परिणति हुई वह क्रिया कहलाती है।

सहज स्वपरिणमनकी दृष्टिके कर्ताकर्मक्रियाका कथन—अब जरा सहजस्वपरिणमनकी दृष्टिसे निरखिये—प्रत्येक द्रव्य अपने भवनरूप परिणमता है याने क्या बनता है ? जो उसमे है सो होता है। देखिये करनेकी बात तो कही भी नही है, होनेकी बात सब जगह है। करनेकी बात तो एक भावको समझनेके लिए बनाई हुई बात है। होनेकी बात सब जगह है। जहाँ निमित्त पाकर विकार हुआ वहाँ यह कहना कि निमित्त पाकर इस आत्मामे रागपरिणमन हुआ। करनेकी बात क्या आयी ? बात जैसी है वैसी कही जा रही है। अमुकका निमित्त मिला और यहा रागपरिणमन हुआ। जैसे यो कह देते कि चौकीने मुझे बैठाल दिया। बैठाल देनेकी बात कहते तो है, मगर करनेकी बात कहाँ है ? उस चौकीका आश्रय करके अपनेमे अपनी परिणतिसे मेरे बैठनेकी बात बन गई। तो हर जगह आप यही बात देखेंगे कि होने-होने का तो आप सब कुछ वर्णन कर जायेंगे, पर करनेकी बात कहकर सब वर्णन हो सकेगा। तो हुआ क्या कि जीवमे जो कुछ स्व है उसका भवन बन रहा है बस उसका वह कर्ता है, और जो स्वभाव है, स्वका हुआ है वह कर्म है, जो स्वके भवनरूप क्रिया है वह कर्म है। अब आत्मापर घटा लो। सभी पदार्थोंमे शुद्ध अगुरुलघुगुणका परिणमन चलता है। वस्तुमे वस्तुत्वके नातेसे प्रति समय षड्गुण हानि वृद्धि होती है। अगुरुलघुगुणका परिणमन निरन्तर होता है और वही एक माध्यम है कि जिसके साथ मिलकर विभाव और स्वभाव परिणमन व्यक्त हो जाया करते है। तो कहते है अगुरुलघुगुणकी वृद्धि हानिमे जो कुछ होता है उस परिणतिरूप वह क्रिया है। अब देखिये—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्यकी भी तो चर्चा आती है। ये भी पदार्थ हैं, ये भी प्रति समय परिणमते रहते है। अब जरा धर्मद्रव्यके परिणमनकी बात बताओ। धर्मद्रव्य किस किसरूपमे

परिणाम जाता है ? व्यक्तरूप आप कुछ न बता पायेगे । मगर चूंकि वह द्रव्य है, सत् है तो नियमसे प्रति समय परिणमन करता है । उसका परिणमन स्वाभाविक परिणमन है और वहाँ षड्गुण हानि वृद्धि चल रही है । तो अगुरुगुणके कारण धर्मादिक द्रव्योका परिणमन चलता है । ठीक इसी भाति सिद्ध भगवान अगुरुलघुगुणके कारण परिणमन चलता रहता है ।

शुद्ध परिणमनकी अनैमित्तिकता—कहते है कि केवलज्ञान क्षायिक भाव है, केवल ज्ञानावरणके क्षयसे उत्पन्न होता है, ठीक है, मगर केवल ज्ञानावरणका क्षय होना एक समय की बात है या अनन्तकाल तक होता रहता है । वह तो एक समयकी बात है । जिस समय केवलज्ञानावरणका क्षय हो रहा है उस समय जो केवलज्ञान हो वह तो क्षायिकभाव है, पर केवलज्ञान होनेके बाद अनन्तकाल तक केवलज्ञान केवलज्ञान होता चला जायेगा यह परिणमन बराबर चलता रहेगा तो उन परिणमनोका कारण ज्ञानावरणका क्षय नही है। अब तो धर्मादिक द्रव्योकी तरह अपने ही स्वभावसे, अपने ही स्वरूपसे, अगुरुलघु गुणके निमित्तसे शुद्ध परिणमन चल रहा है । लेकिन सामान्यतया यह कहा ही है कि केवलज्ञान क्षायिक भाव है और वहा यह अन्तर न डाला जाता कि वर्तमान समयमे हुआ केवलज्ञान क्षायिक है और अगले समयमे जो केवलज्ञान होता है वह वस्तुसे स्वाभाविक है । यह अन्तर न डालकर सामान्यरूपमे कह देते है, उसका भाव है कि उस परम्पराको भी ध्यानमे रखना है कि जब भी यह केवलज्ञान हुआ था तब केवल ज्ञानावरणके क्षयसे हुआ था । अतएव केवलज्ञान क्षायिकभाव है, ऐसा सामान्यरूपसे कहते है, लेकिन व्यक्तिगत विशेष परिणतिपर दृष्टि रखकर यदि कहा जाय तो जो क्षयका समय है उस समय हुआ केवलज्ञान क्षायिक भाव है । बादमे तो जैसे धर्म, अधर्म द्रव्य परिणमन कर रहे है उन परिणमनोको हम क्षायिक तो नही कहते । उन परिणमनोको हम किसी निमित्त उपाधिमे मिलाकर नही कह सकते । वह है और स्वभावसे है । इसी प्रकार सिद्ध भगवानमे जो अब शुद्ध परिणमन निरन्तर चल रहा है वह स्वभावसे है ।

जीवत्वकी सर्वजीवोंमें समानता—सब प्रकार तत्त्व जानकर हमको अपने आपमे यह श्रद्धा लानी चाहिए कि मैं भी जीवद्रव्य हू, वैसा ही हू जैसा कि सिद्ध भगवानका जीवद्रव्य है । एक जाति वाले द्रव्यमे जरा भी न्यूनता और अधिकता की बात नही आती । जीवद्रव्यके नातेसे हम अपनी हीनाधिकताकी तो बात क्या कहे, सिद्धमे भी और अभव्य मे भी हीनाधिकताकी बात नहीं कही जा सकती है । अगर जीवद्रव्यके नातेसे

जीवमे भव्यमें अभव्यमे यदि कोई अन्तर होता तो द्रव्य ६ न कहकर ७ कहना चाहिए— भव्यजीव, अभव्यजीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, लेकिन ऐसा तो नही है। द्रव्य ६ जातिके है—जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश और काल, तो जीव जातिमे जितने पदार्थ आये उनमे अभव्य भव्य नही छूटे। तो जिस जातिकी अपेक्षासे जीव कहा गया है उस अपेक्षासे सब समान है और इस दृष्टिसे जीवमे चेतना, चेतनशक्ति, जितनी शक्ति भव्यमे है उतनी शक्ति अभव्यमे है, उतनी ही शक्ति सिद्धमे है। अनादि अनन्त मर्व अवस्थाओमे जीवमे उस शक्तिकी अपेक्षासे जिसकी दृष्टिमे जीवद्रव्य जाति बनायी गई है सब समान है। जो यह वर्णन आता है कि अभव्य जीवमें सम्यक्त्वकी कैवल्यकी शक्ति नही है, सो यह बात नही है। अभव्यमे भी केवलज्ञानकी, केवल रहनेकी और सम्यक्त्वकी शक्ति सबमे है, पर उन शक्तियोंके व्यक्त होनेकी योग्यता नही है, इस दृष्टिसे भव्य और अभव्यमे भेद होता है। अगर शक्तिका अभाव किया जाय तो बतलाओ कि अभव्य जीव कितने ज्ञानावरणकर्मका बध करते है। ज्ञानावरणके ५ भेद हैं—मतिज्ञानावरण, श्रुतज्ञानावरण, अवधिज्ञानावरण, मन पर्यय ज्ञानावरण और केवलज्ञानावरण। करणानुयोगके शास्त्रोमे वर्णन आता है कि अभव्य जीवके भी ५ ज्ञानावरणोका बध है—केवलज्ञानावरणका अर्थ है जिसके उदयके निमित्तसे केवलज्ञान न उत्पन्न हो सके। अरे तो ऐसा केवलज्ञानावरणका बंध पुद्गलके भी कर दे चौकी, भीत आदिकके, क्योकि केवलज्ञानशक्ति अभव्यमे नही है और फिर भी केवलज्ञानावरण बध रहे तो केवल ज्ञानावरण शक्ति भीतमे भी नही, वहा भी केवलज्ञानावरण बध जाय। केवलज्ञानावरणका बध होना यह सिद्ध करता है कि अभव्यमे केवलज्ञान शक्ति है, तब वहाँ केवलज्ञानावरणका आस्रव बध है, किन्तु केवलज्ञान के व्यक्त होनेकी शक्ति अभव्यमे नही है। बात यहा यह बताई जा रही है कि जीवत्वके नातेसे आत्मा और परमात्मामे अन्तर नही है।

परमात्मभक्तिमें शुद्ध आशय—जब हम परमात्मभक्ति करते हो तो हमको मुख्यता देनी चाहिए जातिकी, स्वभावदृष्टिकी। हम स्वभावकी परख करे। यद्यपि हम भगवानके अनन्तज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त चतुष्टय पर दृष्टि देते है, वह भी हितकारी है, क्योकि वह स्वभाव परिणमन है, स्वभाव परिणमनके माध्यमसे हम स्वभावकी परख जल्दी कर लेते है। जैसे ठडे जलका स्वभाव ठडा है, यह बात हम शीघ्र ही समझ जाते है और गर्म जलका स्वभाव ठडा है यह बात हम देरमे समझ पाते है, इसी प्रकार विभावपरिणामसे परिणमते हुए जीवमे इसका स्वभाव चैतन्यमात्र है, यह हम देरमे समझ पाते हैं और शुद्ध परिणाम

रहे परमात्माको निरखकर इसका स्वभाव शुद्ध चैतन्यस्वरूप है, यह जल्दी समझमे आता है। तो यो जब हम जीवत्व जातिसे निरखे तो अपने आपमे गौरव अनुभव करें, अपने आपमे अपने वैभवका अनुभव करे, मैं ऐसा शुद्ध चैतन्यमात्र हू। अरे कहाँ तो मेरा यह स्वरूप है जहाँ विकार नही, जहाँ रोग, शोक, चिन्ता नही और अपने आपके इस स्वरूपको भूलकर हम कितना अज्ञान अधेरेमे आ गए है। किन्तु इन बाह्यपदार्थोको व्यर्थ ही अपना लिया है, कितनी चिंताओका हमने अपने पर बोझ डाला है, सब व्यर्थकी बाते हैं। यह मैं तो सबसे निराला केवल चैतन्यमात्र हू यह दृष्टि जगनी चाहिए। किन्ही भी कथनोको सुनकर अपने स्वभावकी ओर आना चाहिए। यही धर्मपालनकी पद्धति है।

ज्ञानीका प्रति परिस्थितियोंमें ज्ञातृत्व—किसी भी पदार्थके रहस्यको समझनेके दो मार्ग होते है। एक तो स्वयंमे क्या बीतती है—यह निरखना, दूसरे स्वयंमे जो विकार बना है वह किस परिस्थितिमे बना है, यह निरखना। इन स्थितियोका निरखना व्यवहारनयसे है और एक वस्तुमे उसीका कुछ निरखना निश्चयनयसे होता है। तो जब हम एक वस्तुमे ही देखते है तो उसमे जितने भी परिणमन होते है वे होगे। कुछ भी हो, जब जो होगा सो होता ही है और उस समय जिन निमित्तोकी स्थितिमे होगा वह निमित्त भी निश्चित है। अब ज्ञानी पुरुष तो उपेक्षाभाव रखकर उन सम्पर्कोमे रहता है और अज्ञानी नाना विकल्प करके क्षुब्ध होता है, कितने ही जीव गईबीती बातपर बहुत समय तक शोक ही किया करते है। यदि ऐसा किया होता तो यो हो जाता। मैं चूक गया, यो कर लिया होता तो यो होता। अरे जो बात गुजर गयी वह बात वापिस नही आ सकती। जैसे जो उम्र गुजर गयी वह उम्र वापिस नही आ सकती, इसी तरह जो बात गुजर चुकी वह वापिस नही हो सकती। इसीलिए यह सावधानी रखनी चाहिए कि हमसे कोई अनर्थकार्य न बने, कोई ऐसे अहितकारी वचन न निकले कि जिससे दूसरोका अहित हो और हमे भी बादमे क्षोभ हो और आकुलता मचे।

ऐहिक जीवनयात्रामें हित मित प्रियवचन बोलनेमें चतुराई—ऐहिक जीवनयात्रामे सबसे बडी होशियारी है वचन बोलनेकी। यदि कोई पुरुष अपने वचन पर सयम नहीं रखता और जैसा चाहे जहाँ बोल देता है उसको जीवनमे शान्तिके मौके नही मिल पाते और जो समझते है कि वचन बडे सही बोलने चाहिएँ, आगे पीछेकी बात विचारकर चलना चाहिए जिससे कभी हमे अशान्ति न आ सके तो उसका वचन व्यवहार स्वपरहितकारी होता है। जब कटुवचन निकलते हैं तो उन वचनोका नाम बाण भी रख देते है।

वचन बाणमे डाल दिया । अरे तलवारका घाव लोहबाणका घाव तो कभी मिट जायेगा, पर वचनबाणका घाव नही मिटता, जीवन भर उसका ख्याल बना रहेगा । इसीलिए किसीको अहितकारी वचन न बोल देना चाहिए । वचनोको बाणकी उपमा इसलिए दी है कि वह वचन बाणकी तरह चुभता है और जब कोई वचन बोलता है तो उसका मुख धनुष जैसा तन जाता है । मुखका आकार धनुष जैसा कुछ पहिलेसे ही है और फिर जब क्रोधमे आकर बोलता है तब जैसे तना हुआ धनुष होता है उस तरह उसका मुख बन जाता है और जब कभी उस मुखरूप धनुषसे कटु वचनरूपी बाण निकलता है तो उस दूसरेकी (जिस के प्रति वह वचन कहा गया है) हालत बडी क्षोभ भरी हो जाती है । और भी देखिये दूसरे का क्षोभ मचानेका निमित्त वह बन पाता है जो पहिले खुद क्षोभ कर लेता है । दूसरेकी प्रशसा करनेमे हृदयमे तडफन और घबडाहट नही होती, बल्कि वह सुखपूर्वक दूसरेकी प्रशसा कर लेता है । जब दूसरेकी निन्दा करना होता है या गाली देना होता है तो पहिले अपने हृदयमे तडफन मचानी पडती है । तो अपना ऐसा वचन-व्यवहार रखना चाहिए कि जिससे कभी भी आगे अशान्तिका कारण न बन सके । तो सोच करके व्यवहार वही तो करेगा जो यह कारण कार्य विधान समझता होगा कि देखो यदि हम प्रमादी रहेगे तो कर्म-बन्ध होगा । उसके उदयमें दुःखी होना पडेगा । लेकिन मेरा दुःख स्वभाव नही है । हमे चाहिये कि ये दुःखके बीज न बोये जावें, अपने शुद्ध परिणाम रखें तो हम अपने आपमे उसमे सुधार कर सकते हैं ।

अध्यात्मदृष्टिमें उपयोगी नयोंमें से परमशुद्धनिश्चयनयका प्रतिपादन—प्रसंगमें उपादान और निमित्तकी चर्चा चल रही थी और साथ ही साथ अध्यात्मका मर्म समझनेके लिए बडी सावधानीसे सुनो, संक्षेपमे कहा जायगा । देखिये, अध्यात्ममर्म जाननेके लिए ५ दृष्टियोका उपयोग करना होता है, उनमेसे कुछ दृष्टिया तो हेय तत्त्व बताकर उपेक्षा करा देती है. कुछ दृष्टियाँ अध्यात्ममे लगा देती है । वे ५ दृष्टिया हैं—(१) परमशुद्धनिश्चयनय, (२) शुद्धनिश्चयनय, (३) अशुद्धनिश्चयनय, (४) व्यवहारनय, (५) उपचारनय । अगर कोई इन नयोंका ठीक-ठीक अर्थ जान जायें तो उसे कभी भी विवाद न उत्पन्न होगा । इन ५ नयोमे उपचारनय तो मिथ्या है । जैसे कहा कि मेरा मकान, मेरी स्त्री, मेरा पुत्र इत्यादि, ये सब मिथ्या बाते हैं । तो उपचारनयकी तो धार्मिक चर्चामे प्रतिष्ठा ही नही है । बाकी चार नय सुनय हैं । इन नयोका स्वरूप समझिये परमशुद्धनिश्चयनयमे तो यह देखना है कि वस्तुका सहजस्वरूप शाश्वत एकाकार है । जैसे अपने आत्माकी बात सोचे कोई कि मेरा

आत्मा अथवा मैं निरपेक्षरूपसे अपने सत्त्वके कारण किस स्वरूप वाला हूं । तो विदित होगा कि यह आत्मा विशुद्ध चैतन्यस्वरूप वाला हूं अर्थात् इसमे विकार नही, लागलपेट नही, पर सम्पर्क नही । यह आत्मा है ना, तो है के नातेसे अपने आपमे जो कुछ मेरा स्वरूप बनता हो वह है परमशुद्धनिश्चयनयका विषय । संसारी जीव इस विषयसे अपरिचित हैं । अपने आपमें मैं शाश्वत हू, अपने स्वरूपमे इसका परिचय नही है और इसी कारण बाह्यसमागमो को, पर्यायोको, परिणतियोको आपा मान करके उनमे लगाव रखते हैं और दुःखी होते हैं । धर्मपालनकी ऊँची पद्धति यह है कि परमशुद्ध निश्चयनयका विषयभूत तत्त्व मेरे उपयोगमें रहे । मैं शाश्वत ज्ञानमात्र एकरूप अविकार तत्त्व हू । इसकी यदि उपासना बने, रुचि बने और इसका लगाव बन जाय, इस तत्त्वकी धुनमें रहे तो वही महात्मा हैं, वही संसार-सागरसे तिरने वाला है । तो परमशुद्ध निश्चयनयका विषय है वस्तुका सहजस्वरूप अखण्ड एकमात्र एकचिन्मात्र ।

अन्य दृष्टियोंका विरोध न करके एकमात्र परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें भलाई—देखिये—परमशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टि उत्तम है, मगर कोई इस दृष्टिमें एकान्त कर ले और बाकीका निषेध करे, परिणमन कोई चीज नही, इसमे पर्याय नही, इसमे भेद नहीं तो उसका वह एकान्त बन जायगा । और जैसे साख्यसिद्धान्तमें या अन्य अद्वैतवादमें बताया गया है कि आत्माका स्वरूप चिन्मात्र है और वह ऐसा चिन्मात्र कि जिसमे ज्ञान भी नही है, ज्ञानको दोष बताया जिसमे परमशुद्धनिश्चयनयकी तानातानी की और एकान्त आग्रह किया, उसने ज्ञानको दोष बताया । ज्ञान होना, जानना यह तो प्रकृति विकार है । जब व्यक्त-परिणमन कोई जीवका न रहा तो सत्त्व ही कैसे समझा जाय ? तो एकान्त आग्रहमें तत्त्व का लोप हो जाता है । पर जो प्रमाणका सही निर्णय किए हुए है और वह परमशुद्धनिश्चय-नयका आलम्बन लेकर एक विशुद्ध अखण्ड चैतन्यमात्रको दृष्टिमें ले रहा है, उसके लिए तो भला ही है ।

शुद्धनिश्चयनय व अशुद्धनिश्चयनयमें तत्त्वदर्शन—दूसरा नय बताया गया है शुद्ध-निश्चयनय । शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमें शुद्धपर्याय नजर आती है, और वहां कोई चर्चा करे और इस दृष्टिमे रहने वाला साधक समाधान दे तो वह अद्वैत ढगसे समाधान देगा । वस्तु अपने स्वभावभावका कर्ता है, वस्तु अपने स्वभावभावका भोक्ता है, आत्मा विशुद्धचैतन्य-परिणमनोका कर्ता भोक्ता है । विशुद्धज्ञानदर्शन विकास यही मेरी अलौकिक दुनिया है, यही बात मुझमें मेरे ही कारण प्रकट हुई है । यह सब शुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे समाधान

मिलता है। तीसरी दृष्टि है अशुद्धनिश्चयनय दृष्टि। इसमे बात तो देखेंगे अशुद्धपर्याय की, लेकिन देखेंगे एक ही वस्तुकी दृष्टि रखकर। वस्तुकी विभावपरिणति वस्तुके अशुद्ध उपादानसे होती है। उसमे निमित्त कुछ नही करता, निमित्तका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव उस ही मे है। यह अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिका कथन चल रहा है। निश्चयकी दृष्टि है, अत एक ही बातको एकमे निरखना है। जीवमे राग हुआ तो अब हम केवल जीव जीवको ही देखें, अन्य द्रव्यको न देखे क्योकि हमने दृष्टि बनायी है निश्चयनयकी, लेकिन वह है अशुद्धदृष्टि। तो अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे यह दिखेगा कि जीवमे जीवके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावके परिणमन से जीवमे उस प्रकारका उपयोग जमा है। इस उपयोगका करने वाला अन्य कोई दूसरा पदार्थ नही है। इस तरहसे अशुद्धनिश्चयनयकी दृष्टिमे एक ही वस्तुमे विकार उसके ही परिणमनसे उसके ही कारणसे देखता है।

व्यवहारनयका प्रयोग---चौथा नय है व्यवहारनय। व्यवहारनय यह बात बताता है कि वस्तुमे विभावपरिणमन निमित्तके बिना नही होता, निमित्त पाकर ही योग्य उपादान अपने मलिनरूप पर्यायसे परिणत हो पाता है। व्यवहार दृष्टिकी बात असत्य नही है। क्या यह बात गलत है कि जीवमे रागादिक विकार कर्मोदयका निमित्त पाकर होते हैं ? सही बात है अन्यथा हो ही नही सकते। कर्मोदय न होनेपर विकार नही होते, यह बात तो तथ्यकी है, लेकिन दो पदार्थोंकी दृष्टि रख करके इस सम्बन्धकी बात कही गई है, अतएव उसका नाम व्यवहार है। व्यवहारको मिथ्या नही कहा गया, भेदीकरण करके अन्य परिस्थितियाँ, सम्बन्ध, अनेक द्रव्यकी बात बताकर सही बातको उपस्थित करना व्यवहार है। झूठ तो उपचारनय कहलाता है, लेकिन उपचारनय भी कोई मर्म रखे हुए होता यह बात दिखेगी। जैसे मिट्टीके घडेको घी का घडा कह दिया तो घी उसमे रखा है इसलिए उसे घी का घडा कहते हैं। वस्तुत वह घी का घडा नही है। यह उपचारकी बात है, मगर निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्धकी बात बनायी गई है, दो पदार्थोंको नियमित सम्बन्धको निगाहमे रखकर तभी यह बात कही जा सकती है, अतएव एक ही पदार्थपर दृष्टि रखकर बताने वाले निश्चय नयकी निगाहमे व्यवहार मिथ्या है और जिसको यह रुचि है कि हम तो एक द्रव्यको ही निरखेंगे, क्या निरखना है दूसरे पदार्थको, जब एक पदार्थका दूसरे पदार्थमे अत्यन्ताभाव है, त्रिकालमे एक पदार्थ दूसरे पदार्थरूप नही बन सकता। द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव किसीका किसी अन्यमे नही आ सकता, तब दूसरेको निरखना क्या ? केवल एक को ही निरखना है, ऐसा निश्चयनयका सकल्प करके चढे हुए पुरुषकी दृष्टिमे व्यवहारनयकी बात है ही नही, यह

कहना चाहिए । यहा तक तो नयकी बात कही है । अब उपचारकी बात सुनियो।

कल्पनाविदित उपचारकी असमीचीनता—आजका मनुष्य जिस बातमे लगा हुआ है प्रायः वह तो बिल्कुल ही मिथ्या बात है। मेरा वैभव, मेरा मकान, मेरी इज्जत, मेरे पुत्र, मेरे मित्र, मेरी पार्टी आदि, ये सब मिथ्या बातें है। आज कल्पनामे जिन्हे अपना मित्र समझ रखा है, अभी कोई किसीके मनके विपरीत बात किसी दूसरेने कर दिया तो उसे शत्रु समझ लेते हैं । देखिये विभीषण रावणका भाई जब रावणके प्रेम सूत्रमे बधा हुआ था उस समय विभीषणने क्या कार्य किया ? इन बातोको पुराण बतलाते है । जब यह चर्चा आयी कि दशरथके पुत्र और जनककी पुत्रीके निमित्तसे रावणकी मृत्यु होगी तो विभीषणने सोचा था कि मैं दशरथ और जनक इन दोनोको मार डालूंगा। जब ये दोनो होंगे ही नही तो फिर इनके पुत्र पुत्री हमारे भाई रावणकी मृत्युके निमित्त कैसे बन सकेंगे ? इस बातको दशरथ व जनकने और उनके मत्रियोने भी सुन लिया । आखिर मंत्रियोंने एक उपाय रचा इन दोनोंकी रक्षा का । दशरथ व जनकका लाखका पुतला बनवाया । उनकी जगह पर उन पुतलोको रख दिया और दशरथ व जनकको कही छिपा दिया । और मत्रियोने यह कहलवा दिया कि महाराज इस समय अस्वस्थ है, बह अभी किसीसे मिलेंगे नही, मत्रिगण इस राज्यका कार्य करेंगे । विभीषण तो दशरथ जनककी खोजमें था ही । तो किसी तरहसे विभीषण वहाँ पहुचा, उन कमरोमे देखा तो तुरन्त ही दशरथ व जनकके (उन पुतलोके) सिरको उडा दिया और समुद्रमे बहा दिया । बडा खुश हुआ । तो देखिये विभीषणका कैसा भाव था अपने भाई रावणके प्रति, लेकिन वह समय भी गुजर गया । दशरथके पुत्र श्री राम व जनककी पुत्री सीता हुई । उनके जीवनकी घटनायें सभी लोग समझते है, पुराणोमे बाँचते है । सीता हरी गई, विभीषणको अब ज्ञान जगा; श्रीरामका परमभक्त बन गया, अपने भाई रावणसे अपना मुख मोड लिया, विभीषण श्रीरामसे जा मिला और श्रीरामका इतना बडा भक्त बना कि जिसके समान कोई दूसरा उदाहरण नही दिया जा सकता । तो जो अभी शत्रुके रूपमे दिखता है वही भाव बदलने पर अपना परम मित्र बन जाता है । तो इन बाहरी बातोमे मेरा तेरा मानना—ये तो सब उपचार की बातें है । ये सब बातें तो अपनी कषाय परिणामके अनुसार की जाती है । कोई व्यक्ति अगर मेरी कषायके अनुकूल परिणाम रहा है तो उसे हम अपना मित्र मान लेते हैं और अगर कोई मेरी कषायके प्रतिकूल परिणाम रहा है तो उसे अपना शत्रु मान लेते है । यहाँकी शत्रुता व मित्रतामे क्या दम है ? अभी कोई बालक सिनेमा देखने जा रहा हो, तो कोई दूसरा बालक

उससे हाथ मिलाकर एक दूसरेके गलेमें हाथ रखकर (एक मित्रतासी बनाकर) सिनेमा देखने चले जाते हैं, एक व्यक्तिकी कषाय दूसरे व्यक्तिकी कषायसे मिल गई तो उसे वह अपना मित्र मान लेता है और उसी मित्रकी अगर अपने मनके प्रतिकूल परिणति समझ लिया तो वहीं शत्रु मान लेता है। यहांके पाये हुए समागमोमे इष्ट अनिष्ट मान लेना, ये सब मिथ्या बातें हैं। उपचारनयकी कोई प्रतिष्ठा नहीं है।

अध्यात्मदर्शनमें नयोंकी उपयोगिता—अध्यात्मदर्शनमे जो शेष ४ नय बताये गए थे वहाँ यह निष्कर्ष निकालना चाहिए कि विकार अनुकूल निमित्त सन्निधान बिना नही होते। जो रागद्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक कषायें जगती है वे कर्मके उदय होने पर जगती हैं, फिर भी कर्म जीवमें कोई परिणति करता हो सो नही करता। कर्म तो अपनी परिणतिमे रत है, उसका निमित्त पाकर, सन्निधान पाकर यह विकार हुआ। एक मोटा दृष्टान्त लीजिए। कोई लडका किसी लडकेसे २० हाथ दूर खडा हुआ है, वह अपनी जीभ निकाल रहा है, अंगूठा दिखा रहा है, अपनी ओर और भी अनेक क्रियायें कर रहा है और उन क्रियावोको देख देखकर दूसरा बालक अपने अन्दर कुछ कल्पनायें करके चिढ रहा है और दुःखी हो रहा है। कोई एक भाई उस बालकको समझाते हैं—अरे क्यो बेकारमे चिढा कर उस लडकेको हैरान कर रहे हो ? कोई दूसरा व्यक्ति उस दूसरे चिढने वाले बालकसे कहता है—ऐ बालक, तू व्यर्थंमे क्यो चिढ़ रहा है ? अरे वह तो अपनेमे अपनी क्रियायें कर रहा है, तू उन क्रियाओंको देखकर व्यर्थ ही ख्याल बनाकर दुःखी हो रहा है। तो यो ही समझिये कि बात यद्यपि यहाँ ऐसी ही हो रही है कि कर्मोदयका निमित्त पाकर जीवमे राग विकार हो रहे हैं लेकिन जो असमझ लोग हैं वे तो कर्मोंपर ही दृष्टि रखते है। ये कर्म जब हमे सहूलियत देंगे तब हम कुछ धर्म कर सकेंगे। अभी तो कर्मोंका ऐसा उदय ही चल रहा है कि हमे मोहमे फंसना पड रहा है और जो उपादानदृष्टि वाले अथवा विवेकी जन हैं वे हर हालतमे अपनेको ही समझाते है। देखो अपना उत्साह जगायें, प्रमाद न करें, सत्सग मे रहें, अच्छे उपदेशोमे रहे, अपने भावोमें प्रगति करें, अपने आपको समझाते हैं तो यो समझना चाहिए कि निष्कर्ष यह निकला कि ये रागभाव हुए है कर्मका निमित्त पाकर, इस लिए ये मिट सकते है, लेकिन इनमे दम कुछ नही है। जब हम अपने आपको सभाल लें तो ये सब उपद्रव अपने आप मिट जायेंगे।

हमारा वर्तमान अवसर व कर्तव्य—यद्यपि यह बात है कि हममे सभाल सकनेकी योग्यता तब आती है जब हमारा उस प्रकारका साधन हो। इसीलिए तो बताया है कि

५ लब्धियोंमें सबसे पहिले क्षयोपशम लब्धि होती है, अनादि कालसे भूले हुए प्राणियोको जब सुधरनेका मौका मिलता है तो कब मिलता है जब उन कर्मोंकी चालमें ऐसा अवसर आ जाता है कि उनके इस जातिका क्षयोपशम मिल गया कि यहाँ कुछ विचारशक्ति आयी तो समझिये कि हम वहाँ विशुद्धि कर सकते हैं। यह बात सर्वजीवोकी अपेक्षा कही जा रही है। अपनी बात सोचें तो हम आपको क्षयोपशम लब्धि है। हम आप मनुष्य हैं, इतना श्रेष्ठ मन मिला है, इतना श्रेष्ठ कुल, धर्म आदिक मिला है, तो यह हम आपके कितने विशिष्ट क्षयोपघमकी बात है। अब हम यदि कर्मोंसे दबे हैं, प्रेरे हैं, ऐसा ही गान करते रहे तो हमने क्षयोपशम लब्धिसे कुछ लाभ नही उठाया। अब इस ओर जाना चाहिये। अपना उत्साह बनाये कि हम भला ही अपना कदम बढाये। तो यह समझना कि ये रागादिक भाव यद्यपि कर्मोदयका निमित्त पाकर हुए है फिर भी निमित्तका कुछ भी प्रवेश नही। हमारा तो सहज स्वरूप अखण्ड एकाकार है, परम शुद्ध निश्चयनयके विषयपर अपनेको ले जायें। मैं सबसे निराला हू, मेरा यहाँ कोई पहिचाननहार नही है. मैं ऐसा शुद्ध चैतन्य-मात्र तत्त्व हूं कि मेरा यहां कोई पहिचाननहार नही है और यदि पहिचाननहार कोई होगा तो वह स्वयं ज्ञाताद्रष्टा बन जायेगा। उसकी व्यक्तिमे परिणतिको द्रव्य माननेकी बुद्धि न होगी। यहाँ तो जितना भी ऊधम मच रहा है वह सब पर्यायदृष्टिका ऊधम है। जिसको लोग पहिचानते हैं कि यह अमुक चंद है, अमुक लाल है, वह है क्या ? वह तो हाड़ मांसमें लोथड़का पिण्ड है अथवा समझिये कि जीवसहित वह शरीर है, जिसे कि लोगोने किसी नामसे पुकारा लेकिन पुकारने वालेकी दृष्टि उस जीवके शुद्ध लक्षण पर तो नही है। वह तो ऐसे ही मेलजोलको मानता है कि यह अमुक जीव है। तो यहा जितनी भी पहिचान है, जितना भी व्यवहार है वह मायाकी मायासे पहिचान हो रही है। अर्थात् समझने वाले दूसरे भी मायारूप हैं और जिनके प्रति जो कुछ भी व्यवहार करते हैं वह एक मायारूप है, पर्याय है, नष्ट हो जाने वाली चीज है। उसमे जिसने आत्मबुद्धि की, यह मैं हूं बस समझिये कि उसने जन्ममरणकी परम्परा बनायी और जो शरीरसे, कर्मसे, विभावसे, विकारसे, कषायसे निराले अपने शुद्ध चैतन्य अखण्डस्वरूपमे ऐसी बुद्धि लगाये है उनको शान्तिका मार्ग मिलेगा। यद्यपि वर्तमान परिणमन हमारा ऐसा नही है, किन्तु दृष्टिमे ऐसी प्रबल शक्ति है कि इन पर्यायोको भी पार करके अत द्रव्यस्वभावको दृष्टिमे ले सकते हैं, बस यही दृष्टि हम आपको संसारसे पार करेगी, उसके यत्नके लिए हमे सब तरहसे ज्ञानार्जन करना चाहिए।

सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञानके लाभके पश्चात् हितार्थीके कर्तव्यपर विचार—तत्त्वनिर्णय किया जाता है आत्मस्वरूपके यथावत् समझने के लिए। आत्मस्वरूपकी समझ की जाती है आत्माके सहजस्वरूपका अनुभव करने के लिए। जब आत्माके सहजस्वरूपका अनुभव हो जाता है अर्थात् निर्विकल्प अनुभूतिका अनुभव प्राप्त होता है तो उस ही क्षण उस ही अनुभूति के साथ सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होती है। अब यहा यह चर्चा चलेगी कि सम्यक्त्वकी उत्पत्ति होनेके बाद जिसके कि साथ सम्यग्ज्ञान हो ही जाता है, परिपूर्ण नही किन्तु प्रयोजनभूत सम्यग्ज्ञान बन गया तो यो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान होनेके बाद भी तो कुछ करनेके लिए रहता होगा या सम्यक्त्व व सम्यग्ज्ञान होने से ही कल्याण हो जाता है। समाधान उसके संक्षेपमे यह है कि जो सम्यग्ज्ञान उत्पन्न होता है उसमे जो आत्माके सहजस्वरूपका परिज्ञान होता है, उसमे ही उपयोग बना रहे बस यही एक कार्य रह जाता है। आत्मा अपने उपयोगका कर्ता होता है। हर स्थितिमे इसमे उपयोग बना रहता है, इसके अतिरिक्त और करता ही क्या है ? यह बात जो परिणमे सो कर्ता इस दृष्टिसे निरखते जाइये। आत्मा क्या कर सकता है ? अनेक बातें तो स्पष्ट मालूम होती है। किसी पुरुषने क्रोध किया, दूसरे की हानि करने के लिए तो लोग स्पष्ट कहते है कि उस पुरुषने क्या किया ? हानि तो वह दूसरेकी कर नही सकता। दूसरेकी हानि होना उसके पापोदयपर निर्भर है, अथवा उसकी स्वयंकी ही परिणति है। जब कार्य करने वाले ने अपना क्रोधभाव बनाया, उसमे उपयोग उस प्रकारका बनाया, जिसमे कि क्रोधभावके साथ यह जुड गया। किसी भी कषायकी स्थितिमे उस जीवने क्या किया ? अपनेमे उपयोग बनाया सुख दु खके अनुभवमे यहा जीव क्या करे ? अपना विचार बनाता, अपना उपयोग बनाता—मेरा बहुत प्रभाव है, मेरे इतनी आय है, ऐसा सकल्प विकल्प बनाया है, बस उस उपयोगका मजा ले रहा है जो कि क्षणिक है, मिथ्या है। क्षणिक रहो, मिथ्या रहो, बात यह कही जा रही है कि यह जीव उपयोग करता है, उपयोगके सिवाय और कुछ नही करता। दु खकी स्थितिमे भी इसने उपयोग ही किया। मेरे हाथमे फोडा है, सिरमे दर्द है, बडी कठिन तकलीफ है; आखिर ऐसा उपयोग बना, उससे दु खका अनुभव करता है तो यह जीव अधीर बन जाता है। बताइये वह अपने कल्याणके लिए क्या करेगा ? आपके सहजस्वरूपकी प्रतीति करे। मैं सबसे निराला केवल शुद्ध चेतना मात्र हू और अपने आप ही अपने सत्त्वसे होता हू, वही मैं हू इसने अपने आपके स्वरूपकी दृष्टि की, प्रतीति की, जानकारी की। तो अब इससे आगे और आनन्दमे बढना है अपनी पवित्रतामे बढना है तो करनेका काम क्या रह गया ? अपने

आपमें यह ज्ञान स्थिरतासे बन जाय कि मैं तो सहज चेतनामात्र हूँ, उपयोग यहाँ ही रहे, यही करनेका काम पड़ा है।

अन्तर्विराम पानेके लिये वर्तमान परिस्थितिमें बाह्य सङ्ग छोड़नेकी आवश्यकता—यहाँ बात यह भी एक जाननी कि यह अन्तर्विराम करना समझने पर भी बन क्यो नही रहा ? बन यो नही रहा कि हम रागद्वेषके सस्कार और उसके साधन बनाये हुए है, इस कारण हमारा उपयोग आत्माकी शुद्धदृष्टिमे नही चल पाता। तब ऐसी स्थितिमे करना क्या होगा कि जो रागद्वेपके साधन है उन साधनोंमे हटना, जिससे रागद्वेष निराश्रय रहकर मिट जायें और इसको ऐसा अवसर मिले कि हम अपने शुद्ध सहजस्वरूपका अनुभव चिर समय तक बनाये रहे, इसके लिए उद्यम क्या होगा ? आज ही पूछा जाय कि हमको अगर कल्याणकी दिशामे बढना है तो हम क्या करे ? जो एक लौकिक फसावकी स्थितिमे बुद्धि पूर्वक यत्न किया जा सकता है, उसकी बात कह रहे है। अनेक पदार्थोंका संग जुडे, सामान्यतया यह बात कही जा सकती है। आपको यदि स्वानुभूतिकी दिशामे प्रगति करना है तो क्या कर्तव्य है ? अनेक पदार्थोंका सग छोड़ें। अब परिस्थितिवश यह बात लोगोमें भिन्न-भिन्न रूपसे पायी जायेगी जो बाह्यपदार्थोंका बिल्कुल सग छोड़ सकता है, उनका नाम है महाव्रती साधु। कोई इन बाह्यपदार्थोंका पूरा संग नही छोड़ पाता है। कुछ प्रमाण रखकर गृहस्थजीवनमें गुजारा करता है तो उसका नाम है अणुव्रती श्रावक। काम क्या किया दोनो ने ? अनेक बाह्यपदार्थोंका सग छोडा, किसी ने पूरा छोडा, किसीने कुछ छोड़ा, तो बुद्धिपूर्वक स्वानुभूतिकी दिशामे बढनेके लिए हम बाहरी साधन क्या बनाये ? तो एक वाक्यमे कहो कि इन बाह्यपदार्थोंका सग छोडें, इसका अर्थ है कि इनका विकल्प छोडे। अब साधक-पुरुष ज्यो ज्यो प्रगति करता है त्यो त्यो इन बाहरी साधनोको निःशेषतया छोडनेका यत्न करता है।

बाह्य सङ्गके परिहारमें मुनित्वकी व्यक्ति—देखिये मुनि बनना और मुनि होना, इन दोनोमे फर्क नजर आयेगा और मुनि बननेकी अपेक्षा मुनि होने की बात आपको श्रेष्ठतम दीखेगी। कोई पुरुष दूसरे मुनिजनोकी प्रशसा देखकर, आदर सत्कार देखकर, बडे आरामके साधन मान कर सोचता है कि मैं भी बाहरी-झझटोसे छूटूँ और ऐसा ही मुनि बनूँ। मुनि बनता है, यह हुआ उसका बनना और एक पुरुष यह जानकर कि जितना भी बाह्यपदार्थों का सग है वह रागद्वेषका आश्रय बनता है और रागद्वेषकी स्थितिमे हम अपने भीतरके सहजपरमात्मतत्त्वकी उपासना नही बना सकते। सो निःसङ्ग होना एक श्रेष्ठ कार्य है। इस

जिन्दगी की सफलता इसीमे है कि मैं अपने आपमे अन्त प्रकाशमान सहज चैतन्यस्वरूपकी उपासनामे रहा करूँ, उसमे वाधा आती है इन वाह्यसमागमोंसे तो इन्हे छोडें। छोडते-छोडते यह भी अनुभव होने लगेगा कि एक तौलिया लगोटी भी यदि हम रखते हैं तो तद्-विषयक राग रहता है. वह भी वाहरमे बाधक है, लो वह लगोटी भी छूट गई, सर्वपरिकर भी छूट गए। बादमे परिस्थिति एक यह आती है कि शरीरको आहार दिये विना शरीरका गुजारा न चलेगा। शरीरका गुजारा न चलनेपर वहुतसे धार्मिक कार्योमे बाधा भी आती है। अथवा उस समयमे मरण हो गया तो जो कर्म झडाये जाने थे, उपयोग स्थिर करके जो मोक्षमार्ग वढाया जाना था वह मिट गया। फल क्या होगा ? अधिकसे अधिक स्वर्ग मिल जायगा। वहाँ बडा असयम, वडा कर्मबध होगा। यह सब विवेक है इसलिए शरीरसे वैराग्य होनेपर भी एक धर्म और सयमकी साधनाकी दृष्टिसे आहार करना आवश्यक समझते हैं। तो जिन्होने सर्वजीवोको एक समान माना है, जिनकी सर्वजीवोंसे मित्रता हो गई है वे जब आहार करने जायेंगे, विहार करने जायेंगे तो एक किसी कोमल साधनको साथ लेकर जायेंगे कि विहारमे या कही उठने वैठनेमे किसी जीवको वाधा होती हो तो हम उस कोमल साधन से जीवोकी रक्षा कर सकें। वह सबसे अधिक कोमल साधन मिला है मयूरपिच्छिका का। यद्यपि किन्ही परिस्थितियोमे मयूरपिच्छि न मिले या गिर जाय--मयूरपिच्छि जैसी घटना उमा स्वामीको हुई, अन्य चीजोंसे भी काम चला लिया जाता है, लेकिन वह अपवादमार्गमे करनेकी चीज थी। उत्सर्ग मार्गमे तो इसी पिच्छिकाको बताया गया है। जब कोमल ही साधन रखना है तो अधिकसे अधिक कोमल साधन इस मयूरपिच्छिकासे बढकर और कुछ नही मिला। और यह भी मिला अनायास। जगलोमे मयूरपक्षी अपने पंख स्वय छोड देते हैं। बहुतने पंख यत्र तत्र पडे रहा करते है, सो १००-५० पख उठाये और पिच्छिका बना ली। यही जीवोकी रक्षाका उत्तम साधन बन गया। हाँ, यदि उस पिच्छिकाको हजार पख लेकर बहुत अच्छे ढगकी सजावटके साथ बनाया जाय तब तो वहाँ रागका दोष आता है। वह थी उन साधुजनोकी प्राकृतिक बात। जगलमे कुछ पख मिल गए और उनकी पिच्छिका बना ली गई वही जीवरक्षाका उपकरण हो गया। अगर पिच्छिकाको बहुत बढिया ढगसे सजाते हैं और उसे देख देखकर खुश होते है तो यह तो उनके लिए परिग्रह की चीज बन जायगी। ऐसा करना साधुके लिए योग्य बात नही है। हा, जीवरक्षाकी दृष्टिसे पिच्छिका एक आवश्यक साधन है, इसलिए सुगमतासे मिल जाने वाले मयूरपखोकी सीधी सादी पिच्छिका ठीक है। कमण्डल भी साधुकी शुद्धिके लिए

एक आवश्यक उपकरण है। कदाचित् कमण्डल चुरा जावे तो जंगलमे सुगमतासे मिल जाने वाले टूटे डबला या तोमडी वगैरासे शुद्धिका काम किया जा सकता है। किन्तु वह एक घटनाकी बात है। वैसे तो श्रावक कमण्डल प्रदान करते है। वह भी एक आवश्यक उपकरण है। कमण्डलको सजाकर रखना, उसे देखकर खुश होना यह भी भली बात नही, क्योकि ऐसा कमण्डल साधुके लिए परिग्रहरूप बन जायगा। तो साधुके लिए पिछी और कमण्डल ये दो आवश्यक उपकरण हुए। और एक तीसरा उपकरण है शास्त्र। ज्ञानार्जनके लिए यदि वह साधु कोई एक दो शास्त्र रखे तो वह तीसरा उपकरण कहलायेगा। इन तीन चीजोके अतिरिक्त अन्य सब बातें तो साधुके लिए परिग्रहमे शामिल हो जाती है। बस साधु ने जहा अपनेको सर्वपरिग्रहोसे दूर रखा तहाँ स्वत. ही वह निर्ग्रन्थ हो गया।

आत्मसिद्धिके उद्देश्यकी पूर्तिमें साधुजनोंकी अहिंसामहाव्रत व सत्यमहाव्रतकी साधना—एक उद्देश्यकी बात यहां कह रहे है कि जिनका उद्देश्य सत्यधर्मकी ओर है उनसे यह क्रिया धर्मपरक बना करनी है। तभी तो यहाँ न कोई राख लपेटनेका विधान है, न जटायें रखनेका विधान है, न सवारी रखने, महंत बनने, गद्दी बनाने आदिका विधान है। केश बढ गये तो साधुजन हाथोसे लोचकर फैंक देते हैं, ऐसी निःस्पृहताका विधान है, साधु तो एक सहजपरमात्मतत्त्वकी भेंटके लिए ही एक उपासक बना हुआ है। तो ये जो सब करने पड रहे है इनका ध्येय यह है कि सम्यग्दर्शनमे जो अनुभव किया, जिसका हमें सम्यग्ज्ञान हुआ उस तत्त्वका ज्ञानोपयोग बना रहे, इस धुनमे महाव्रत धारण करना, तपश्चरण करना ये सब कार्य हुआ करते हैं। तो सम्यग्ज्ञानको एकाकार स्थिर रखनेरूप कार्य मे जो प्रयत्न कर रहे है ऐसे पवित्र आत्माकी बाह्यप्रवृत्ति महाव्रतरूप होती है। किसको सताना ? सर्वथा हिंसाका त्याग हुआ, अहिसामहाव्रत बन गया। क्या बोलना, झूठ बोलनेका सर्वथा त्याग हो गया। सत्यमहाव्रत उनके हो गया। बोलनेकी बात यों है कि साधुजन असत्यसम्भाषण नही करते, यही है उनका सत्य महाव्रत, पर उन सत्यसम्भाषणोमे भी हित मित प्रिय वचन बोलेंगे, अधिक न बोलेगे। तो यहां और प्रगति होकर बनी उनकी भाषा समिति, इसपर भी वे केवल आत्मविषयक ही बात चलेगी। जब और प्रगतिमे आयेंगे तब उनका बना वह उत्तम सत्य। इसके बाद जब और प्रगति करेंगे, अपने वचनमात्रका परित्याग कर देंगे, यह होती है उनकी वचनगुप्ति। तो यो उनका सत्यमहाव्रत बना।

आत्मसिद्धिके उद्देश्यकी पूर्तिमें साधुजनोंकी अचौर्यमहाव्रतसाधना—साधुजन सहजपरमात्मतत्त्वकी उपासनाके लिये तुले हुए है। उनको अब किसी चीजकी आवश्यकता

नहीं रही, तो स्वयं ही अचौर्यमहाव्रत बनता। किसी परचीजको अपनी बना लेना ही तो चोरी कही जाती है। अनात्मतत्त्वको परपदार्थको अपना मान लेना भी तो चोरी है। वास्तविक चोरीका जिनके परित्याग है वे बाह्य चीजोकी चोरी ही क्या कर सकेंगे? चोरी वास्तविक यही है कि किसी भी परपदार्थको अपना मान लेना। चोरी भी करना क्या है? किसीकी चीजको अपनी मान ली इसीके मायने तो चोरी है। दिखता जरूर यह है कि दूसरे का धन उठाकर अपने घरमे रख लेना चोरी है बात यह हुई, मगर भीतरी बात तो देखो कि उस चोरने क्या किया? दूसरेकी चीजको अपना मान लिया कि अब मेरी हो गयी। तो परचीजको अपनी मान लेनेका नाम चोरी है। तो जो जीव जिस मकानमे रहता वह मकान परद्रव्य है कि नही? है, पर उसे कोई माने कि यह मेरा है तो बताओ उसने चोरी की कि नही। निश्चयसे बात कह रहे है, देहको मान लिया कि यह मेरा है, यह ही मैं हू तब बतलाओ उसने चोरी की कि नही? परपदार्थको अपना मान लेना, यही वास्तविक चोरी है। साधुजन इस अतरङ्ग चोरीका त्याग कर देते है। उनका विचार तो यही रहता है कि मेरा जो एक चैतन्यस्वरूपमात्र है यही अनादि अनन्त है; यही तो वास्तविक वैभव है। इसके अतिरिक्त मेरा कही कुछ नही है। इसकी पहिचान भान जिसे रहती है उसीकी महिमा है कि पवित्रता जगती रत्नत्रयकी सिद्धि बनती है। तो साधुजनोके अचौर्यमहाव्रत भी है।

आत्मसिद्धिके उद्देश्यमें साधुजनोंकी ब्रह्मचर्यमहाव्रत व परिग्रहत्यागमहाव्रतकी साधना—ब्रह्मचर्य महाव्रत भी है, क्योकि जहा परमार्थ ब्रह्मचर्य अपने आपके स्वरूपमे ठहर जाना और व्यवहार ब्रह्मचर्य किन्ही बाह्यदेहोंके प्रसंगमे लगाव न रखना—दोनो ही सिद्ध होते हैं, वे उत्तम ब्रह्मचर्यव्रतके धारी हैं, परिग्रहका त्याग उनके हो ही गया। यहाँ तक कि अपने आपमे जो भी विपाकवश विभाव उठ रहे हैं राग द्वेष, क्रोध, मान, माया, लोभादिक संज्वलन कषायें हुई हैं, इनसे बढकर कषाये नही है क्योकि प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ, पंचम गुणस्थान तक मिल सकेंगे, इसके बाद नही रहते, तो भले ही संज्वलन होता, पर है नो कुछ। जो भी विकार होता है उस विकारसे ये उपेक्षित हैं, उनको वे अपनाते नही हैं, सो वह भी परिग्रह जिनके नही है ऐसे परिग्रहमहाव्रतके वे धारी है। तो महाव्रत धारण करना और अपने आपमे एकाग्र चिन्तनके लिए नाना तपस्याओका साधन करना यह सब उनके होता है। किसलिए? सर्वविकल्परहित परिणतिकी सृष्टिके लिए। तो करनेका काम अन्तरङ्गमे क्या रहा कि सम्यग्ज्ञान द्वारा जो हमने अपने भीतर भगवानकी

परख की। बस उसी भगवानके दर्शनमे निरन्तर समय लगे, बस यही काम रह जाता है और इसकी साधनाके लिए बाह्यमें महाव्रत तपश्चरण संयम साधना करना होता है। निष्कर्ष यह है कि उस शुद्ध तत्त्वका उपयोग बनाये रहना यह काम रह जाता है आत्मसाधनाकी प्रगतिके लिए। इसका नाम है शुद्धोपयोग।

रागांशकी बंधकारणता व ज्ञान वैराग्यकी संवरहेतुता व निर्जराहेतुता—शुद्धोपयोग कहीं 'शुद्धका उपयोग' इस अर्थ वाला है, कही 'शुद्धोपयोग' इस अर्थ वाला है। ज्ञानीके निर्जरा इन सब स्थितियोमे है। कही कम कही अधिक। तब यहाँ एक जिज्ञासा यह हो सकता है कि क्या शुभोपयोग संवरनिर्जराका कारण नही है। यहा एक बात समाधानमे पहिले समझ लीजिए कि जीवकी परिणति एक समयमे एक होती है। जिस परिणतिको हम बता नही सकते कि किस रूप है? पर जब उस परिणतिका विश्लेषण हम करने चलेगे तो भेदपूर्वक बता सकेंगे कि इसकी यह परिणति हमारा राग न रहनेमे और हमारा राग बना रहने में हुई। जो ज्ञानी जीव है, सम्यग्दृष्टि जीव है उसके भी राग चलता है और जिस समय राग चल रहा है उस समय कोई एक ही तो परिणमता है। जिसको भेद करके हमने रागकी बात कही। उस ज्ञानीकी केवल एक परिणति है और वह आश्रव, बध सवर, निर्जरा चारों का कारण बन गयी। एक सम्यग्दृष्टि जीव जो कि अविरत है, देशविरत है, महाव्रती प्रमत्त-विरत है उसका ज्ञान शुद्ध है, सम्यक्त्व शुद्ध है, उद्देश्य शुद्ध है और राग भी चल रहा है, तो एक समयमे जो परिणति है वह तो जो है सो ही है। अगर उस परिणतिके सम्बन्धमें कर्मोंका आस्रव भी है, बंध भी है, संवर भी है, निर्जरा भी है तो वह प्रकृति चारोका कारण वनी, मगर विश्लेषण करके यह मानना होगा कि उस परिणतिमे जितने अश राग नही है वह संवर निर्जराका कारण है और जितनेमे राग है वह आस्रव बधका कारण है, तो शुभोपयोग प्रमत्त ज्ञानीके एक मुख्यरूपसे कहा जाता है। रागको निहारकर, प्रभुमे अनु-राग है अथवा संयम दानमें प्रवृत्ति है तो कहते हैं कि यह शुभोपयोगी ज्ञानी पुरुष है, लेकिन केवल शुभोपयोग ही हो उस परिणतिमे सो बात नही है, किन्तु जितने अशमे उसने सत्य सहज तत्त्वका निरीक्षण किया और जो उसका ज्ञान हो गया, जिसके कि अब अज्ञान नही बन सकता, ये सब बातें उस परिणतिमे है। तब उस समय जितने अंशमे राग है उतने अंशमे सवर निर्जरा न कहेंगे, पर जितने अंशमे उसका शुद्ध ज्ञान प्रकट है और और वैराग्य है उतने अंशमे तो संवर निर्जरा कही ही जायेगी। शुभोपयोग तो परिणतिका एक आंशिक रूप है। परिणाम तो कोई एक है। उसमे जितना शुभ अनुराग है उसका नाम शुभोपयोग

है और जितनेमे शुद्धकी प्रतीति है उतने अशमे वहाँ शुद्धोपयोग है। तो एक परिणतिके समय आस्रव वध सम्वर निर्जरा—ये चारो हो सकते हैं, पर भेद करेंगे तो विदित होगा कि इसमे जितना शुभोपयोग है वह तो है आस्रवबंधका कारण और जितने अशमे ज्ञानवैराग्य है वह है सम्वरनिर्जराका कारण। केवल शुभोपयोग तो असम्यग्दृष्टि जीवके भी सम्भव है, भले ही वह सम्यग्ज्ञानसहित नही है पर है तो शुभोपयोग, जिसके वलसे मिथ्यादृष्टि द्रव्य-लिङ्गी मुनि अभव्यनवग्रैवयक तकमे जन्म ले लेता है। तव वतलाओ कि उस परिणतिमें जो शुभोपयोग वाली चाल है, रागांश वाला परिणाम है, रागांश है वह सम्वरनिर्जराका कारण कैसे होगा? उसे तो मदकषाय कहा और उस मदकषायमे पुण्यका वध होगा, यह कह दीजिए। हाँ, सम्यग्दृष्टि जीवके जो शुभोपयोग है उस शुभोपयोगके साथ उस ही परिणति मे एक समयकी परिणतिमें ज्ञान प्रतीति वनी हुई है, और शुभोपयोग भी वन रहा है, व्रत प्रवृत्ति भी चल रही है तो उसमें यह विवेक करें कि जो ज्ञानविलास अंश है यह सम्वर-निर्जराका कारण है, जो रागांश है वह आस्रवबंधका कारण है।

तपश्चरणसे कर्मनिर्जरा व स्वभावोपयोगकी स्थिरता—यहां जिज्ञासु पूछता है कि तपश्चरण विना तो कर्मकी निर्जरा होती ही नही है, इस कारण तपश्चरण तो करना ही पडेगा, यह आशका इस भावको लेकर हुई है कि वाहरी क्रियाकलाप तो मोक्षके कारण होते ही है। इस सम्वन्धमे उत्तर देते है कि सुनो—तपसे कर्मनिर्जरा होती है, इसका आन्त-रिक भाव क्या है? तप नाम इच्छानिरोधका है। इच्छाके निरोधसे कर्मकी निर्जरा होती है। इच्छाके अभाव हुए विना कर्मोंकी अविपाक निर्जरा सम्भव नहीं है और इच्छाके अभाव मे ही तो ज्ञानपरिणति स्थित होती है तो दोनों ही जगह इच्छानिरोध हितकर हो जाता है। कर्मनिर्जरा भी इच्छानिरोधसे होती है और अपने ज्ञानपरिणतिकी स्थिरता भी इच्छा-निरोधसे होती है याने अतरङ्ग चारित्र लो, जिसे कहा गया है कि जो सहज ज्ञानस्वरूप है उसमे उपयोग रम जाय और ऐसी अनुभूति मिले जहाँ कि विकल्प न उत्पन्न हों उसे कहा है अतरङ्ग चारित्र, तो वह भी इच्छानिरोधसे होता है। अनेक मनुष्य ऐसी आशंका करने लगते है कि हमारा चित्त ध्यानमें जापमें नहीं लगता, इसका क्या कारण है? कारण इस का स्पष्ट है कि इच्छा बेतुकी होगी तो इच्छाके रहते हुए चित्त एक सहजस्वरूपमें पवित्रभाव में लग जाय, यह बात कठिन है। तो इच्छानिरोधसे ज्ञानपरिणतिमें स्थिरता भी होती हैं और कर्मनिर्जरा भी होती है। इस कारण यह कथन संगत है कि तपश्चरण विना कर्म-निर्जरा होती नही है।

ज्ञानी पुरुषकी बाह्य परिस्थितियें तपश्चरणका रूप—अब देखिये आन्तरिक तपश्चरण करने वाला पुरुष किसी स्थितिमे तो होगा, उसकी कोई बाहरी परिस्थिति तो होती ही है। वह बाहरी परिस्थिति क्या होगी ? क्या विषय कषायोमे लगनेकी प्रवृत्ति होगी ? नही तो कोई बाह्यतप है वह उनकी बाहरी परिस्थिति है। जैसे अनशन करना, आहारका परित्याग कर दिया। जिस जीवमे विकल्प कम होनेकी पात्रता है अथवा विकल्प न हो ऐसी योग्यता है उसके भोजन करने के विकल्पोका आधिक्य नही हो सकता अथवा ये विकल्प वहां प्रतिष्ठा नही पाते, तो ऐसे अनेक अवसर आते है तब अनशन सहज सुगम हो जाता है। इसी प्रकार बाह्यतप ऊनोदर वृत्ति परिसंख्यान आदि ये सब हो रहे है, क्योकि पात्रता उसमें इच्छानिरोधकी है। तो इच्छानिरोध तपश्चरणरूप होती है, उसके विपरीत न होगी। जैसे कोई दिनमे कई बार खाता रहे और आत्मसाधनाका भेष बनाये, दिनमें जब भी भूख प्यास लगे खाये, भक्ष्य अभक्ष्यका भी कोई विचार नही हो, क्या ऐसी वृत्तियो में रहकर इच्छानिरोधकी बात रहती है ? यो तो स्वच्छन्द लोग कहने लगते है कि जो इच्छा हो उसका सेवन करे, भोगोपभोग करे, इच्छा मिट जायेगी। पर ऐसा करते हुए अनन्तकाल व्यतीत हो गया, क्या इच्छा समाप्त हो सकी है ? तो इच्छाका अभाव जिस जीवके होता है उसकी बाह्य प्रवृत्तियां भी तपश्चरणकी होती है और ज्ञानी इन बाह्य तपस्याओको बाह्य साधन मानता है कि इन साधनोमे रहेगे तो अनेक अवसर होगे, जिनमें इच्छानिरोधका प्रताप बढेगा। ज्ञानी जीव इस विचारसे भी तपश्चरण करता है कि कभी किसी उपसर्गके आने पर मै स्वभावसे च्युत न हो जाऊं, इस दृढताके लिए अनेक प्रकारके ग्रीष्मके, वर्षाके, शीतके उपद्रव सहता है। कहा भी है अध्यात्मतत्रोमे कि जो ज्ञान आरामसे प्राप्त कर लिया है बिना कष्ट पाये, वहाँ यह संभव है कि कभी कष्ट आ जाय, उपद्रव आ जाय तो वह ज्ञान भी नष्ट हो सकता है। तो ज्ञानी पुरुष इस भावनासे भी इस तपश्चरणमे चलता है कि कोई उपसर्ग आनेपर मैं अपने ज्ञानस्वभावके उपभोगसे च्युत न हो जाऊँ, ऐसी दृढता बनानेके लिए भी तपश्चरण करता है। शरीरके सुखियापनकी प्रवृत्ति इस जीवको धर्मपालनमें बाधा देती है। इससे सात्विक रहन-सहनकी इस लोकयात्रामें महत्त्वके लिए प्रतिष्ठा मानी गई है।

ज्ञानके सदुपयोगमें ज्ञानकी सफलता—अध्यात्मयोगियोका लक्ष्य शुभोपयोग होनेपर भी अनादि अनन्त अखण्ड एक स्वरूप अंतस्तत्त्वपर रहता है। साधनामे जो एक लक्ष्य ज्ञानीने बनाया, उस लक्ष्यसे वह कभी हटता नहीं है। सर्वनयोसे वस्तुनिर्णय करनेका प्रयो-

जन केवल यही है। मानो सब कुछ पढा लिखा और उसका जो फल है वह प्राप्त नहीं किया, जिन लौकिक फलोंमें बडी ऊँची-ऊँची डिग्रियाँ पास कर लीं लेकिन अब अर्थार्जनके लिए उनका कुछ भी उपयोग यही करता। तो लोग कहते हैं कितना इसका पढना बेकार है। तो यो ही समझिये कि धार्मिक विषयोका ज्ञान बढायें, सर्वप्रकारसे जानकारी कर लें, फिर भी यदि उसका उपयोग न करें अर्थात् यदि अपने परिणाम निर्मल न बनायें, अपने शुद्ध सहजपरमात्मतत्त्वकी दृष्टि न रखे तो समझिये कि वह साराका सारा परिश्रम बेकार है। यद्यपि सम्भावना है कि जिसने ज्ञानसम्पादन किया हो तो कभी वह जागृति पा सकेगा, मगर जब जागृतिमे नही है, विपरीत ही परिणति रख रहा है तब तो यह कहना पडेगा कि ज्ञान विकार है। जैसे कोई धनी पुरुष है, वह कंजूस हो, कुछ खर्च न कर सकता हो तो ऐसे पुरुषका धन बेकार है, यह कहा जायगा। पर सम्भावना है कि गाँठमे तो धन है। किसी भी दिन भाव बदल जायगा, शुद्ध ज्ञान जगेगा तो वह धनका दान भी कर सकता है। यो ही समझिये कि ज्ञानका सकलन कर लिया तो ज्ञान तो आ गया ना। अब आज कोई तीव्रकर्मके उदयमे उसका प्रयोग नही बना पाता, लेकिन कभी अवसर आयगा तो प्रयोग किया जा सकता है, इस दृष्टिसे भला कह लीजिए मगर सफलता तो इसीमे है कि जो ज्ञान पाया है उसका सदुपयोग किया जाय।

वस्तुकी स्वतःसिद्धता और स्वतःपरिणमनशीलता—अब तक जो कुछ कथन किए गए हैं उन कथनोसे सार-सार निर्णय इस प्रकार जानना चाहिए, प्रथम तो यह निर्णय बना लें कि यह आत्मा स्वत.सिद्ध है और स्वत परिणमनशील है। वस्तुके स्वभावपर दृष्टि दीजिए, वस्तु परिणमती रहती है निरन्तर। ऐसा कोई समय बीचमे नही आता कि जब परिणमन न हो। तो ऐसा वस्तुका परिणमते रहना जो स्वभाव है तो क्या किसी वस्तुकी कृपासे मिला है? वस्तु स्वयंसिद्ध है तो स्वयं ही वह परिणमनशील है, अब वस्तुका अपनी स्वरूपसीमामे परिणमना यह उसका स्वभाव है। निरन्तर परिणमता रहेगा। उस परिणमनमात्रको देखा जाय तो यह कह सकेंगे कि प्रत्येक परिणमन निरपेक्ष होता है। परिणमन की दृष्टिसे यही बात है। जैसे कि किसी पुरुषने तबला बजाया तो उसमेसे जो ध्वनि निकली, जो शब्द निकला, वह शब्दपरिणमन निरपेक्ष है कि सापेक्ष है। यद्यपि बजाने वालेके हाथ का सयोग हुआ और ऐसी स्थितिमे ही वह निकला, मगर बजाने वाला तो तबलेपर हाथ का सयोग रखकर निवृत्त हो गया। अब इसके बादमे वादकका कुछ परिणमन नही रहा, ऐसी स्थितिमे जब वे भाषावर्गणायें, वे पौद्गलिकवर्गणायें जब शब्दरूप परिणमने लगी तो

उस परिणतिमें किसीकी अपेक्षा नही है। अपनी परिणति होनेसे अपने परिणमनमे किसी की अपेक्षा नही रहती। हाँ, उस समय निमित्त सन्निधान अवश्य होता है और निमित्त सन्निधान बिना विकारपरिणति नही बनती, मगर परिणमनकी दृष्टिसे देखा जाय तो वह किसी दूसरेका परिणमन लिए बिना स्वयं अकेलेमे परिणम रहा है और इस दृष्टिसे वह परिणमन निरपेक्ष है, पर एकान्त नही करना है। कारण यह है कि विकारपरिणमन किसी परउपाधिके सन्निधान बिना हो नही सकता। तो वस्तु स्वत सिद्ध है, स्वत.परिणमनशील है। फिर भी यदि वस्तुमे विकार हो रहा है तो समझना चाहिए कि वह विकार किसी अन्य वस्तुका निमित्त पाकर ही होता रहता है। कोई वस्तु अपने परिणमनके लिए किसीकी प्रतीक्षा नही करती। निमित्त सन्निधान होनेपर जो परिणमन होनेको है, योग्य है, कारण-कार्यविधानमे निश्चित है वह हो रहा है, पर वह अपने उस परिणमनके लिए अपेक्षा नही करता कि यदि परवस्तु उपाधिभूत न मिले तो वह अपना परिणमन रोक देगा। वस्तुमें परिणमनस्वभाव है वह परिणमन करता ही रहेगा। जैसा निमित्त मिला उसरूप कर लिया तब भी वह अपनी परिणमनशीलताके स्वभावसे परिणम ही तो रहा है। तो हर परिस्थितियोमे आत्मा या सभी द्रव्य परिणमनशील है और परिणमनशीलताके कारण परिणमन निरपेक्ष हुआ करता है। अर्थात् परिणमनेके लिए पदार्थको किसी अन्यकी अपेक्षा नही करनी पडती।

निमित्तसन्निधानमें ही विकृतिके होनेपर भी परिणममान वस्तुकी स्वतःसिद्धता व स्वतःपरिणमनशीलता—पदार्थमे अगर विशेष बातकी चर्चा की जाय कि लो यह है विकार-परिणमन इसकी चर्चा करो, तो उसका उत्तर होगा कि हाँ विकारपरिणमन है। तो उसमें जो यह विशिष्टता आयी वह नैमित्तिक है। किन्तु परिणमन नैमित्तिक नही। परिणमन तो पदार्थमे अपने स्वभावसे होता है। परिणमनमे जो वैशिष्ट्य है वह वैशिष्ट्य ही नैमित्तिक हुआ करता है। अब इस प्रसगमे इस ओर ध्यान दें कि औपाधिक नामक विशेषभाव फिर बनते किस तरह है सुनो। वस्तुका तो एक व्रत है कि अपने परिणमनस्वभावके कारण वह परिणमता ही जाय। अब यदि उपाधि समीचीन है और इस परिणमने वाले पदार्थमे उस तरहके परिणमनकी योग्यता है तो वह पदार्थ स्वयं विकाररूप परिणम लेता है। तो चूँकि वह विकार उस निमित्त सन्निधानको पाकर हुआ है सो यह विशिष्टता औपाधिकरूपको धारण करती है। यदि औपाधिकभावकी योग्यता नही है तब तो पदार्थ स्वभावरूप ही परिणमता है, पदार्थमें तो परिणमनेकी टेक पडी हुई है, स्वभाव पडा हुआ है, वह परिणमे

बिना नही रहता। जब हमने अपने आत्माको केवल अपने आत्माके रूपमें देखना है, केवल उस ही को निरखना है, उसकी ही बात करना है तो ऐसी स्थितिमें यह आत्मतत्त्व केवल अपनेमे केवल अपने रूप ही दिखेगा। इसमें दूसरेकी बात नजर न आयगी। तो अपने आत्मतत्त्वको जब देखें तो उसमें दो बातें नजर आयीं कि वह स्वत सिद्ध है और परिणमनशील है। ये दो बातें अलग-अलग नहीं है। वह एक ही चीज है। मैं और किस प्रकारका हू उसको बतानेके लिए यथार्थतया कोई वचन न थे तो भेद करके दो दृष्टियोंसे इसका कथन किया है। मैं हू और निरन्तर परिणमता रहता हू।

आत्मपरिचयका प्रश्न और उत्तर--किसीने पूछा—भाई आप कौन हैं और क्या काम करते है ? तो आत्माकी जानकारी इन दो बातोसे भली प्रकार होती है। किसी मनुष्यसे आप परिचय करते है तो दो बातें आप जानना चाहते हैं, उन दो बातोके जाने बिना आपको अन्य बात जानने की इच्छा ही नहीं होती। वे दो बातें हैं–यह कौन है और क्या काम करता है ? अब इसके बाद यदि अन्य बाते पूछी जाती है कि यह कहां रहते हैं, किसके रिश्तेदार हैं, कैसा कैसा सम्बन्ध है, अब इसकी क्या परिस्थिति है ? तो समझ लेओ मगर सारी समझ इन दो बातोकी समझके बाद चलती हैं। आप कौन है और क्या करते है ? कोई पूछे आपसे कि आप कौन है, आप क्या करते है ? तो जरा उत्तर तो दीजिए ढंगसे। उत्तर आप दे दीजिए कि मैं आत्मा हू और निरन्तर परिणमन किया करता हू। यह है आपका परिचय। आपसे पर्यायका परिचय नही पूछा जा रहा, शरीरका नही पूछ रहे, जिसमे अहं अहं प्रत्यय बन रहा है, मैं हू, मैं हू, यह बात जिसके बन रही है, हम उसकी बात पूछते है कि आप है कौन और क्या काम करते हैं ? तो उत्तर मिलता है कि मैं आत्मा हूं और निरन्तर परिणमन किया करता हू। यहाँ छुट्टी नहीं है कि मैं ६ घंटे काम करता हूं बाकी छुट्टी। या दिनभर काम करके अब रातको विश्राम लें और यहाँ कोई भाग भी नही हैं कि जैसे दो बारमें दो शिफ्टमें स्कूल लगता है। यहाँ तो निरन्तर परिणमन होता है। एक दिनमें होते २४ घंटे, एक घंटेमें होते ६० मिनट, एक मिनटमें होते ६० सेकेण्ड और एक सेकेण्डमें होती असंख्यातों आवलियां, और एक आवलीमें होते हैं असंख्याते समय। जिसको आप समझना चाहें सुगम रीतिसे तो इस तरह समझें कि जैसे अपने नेत्रो की पलक बड़ी जल्दी-जल्दी गिरावें उठावें तो उस उतने समयमें भी अनगिनते आवलियाँ और अनगिनते समय बनते हैं। उनमे से प्रति समय यह आत्मा परिणमन करता रहता हैं। तो इतना उसका तेज रोजगार है। कोई कहता है यह कुछ काम नहीं करता है, बड़ा

आलसी है, पर आलसी कोई हो कहां सकता है ? पदार्थका स्वभाव है कि वह निरन्तर परिणमन करता रहे। तो यही है उसका परिचय। तो मैं हूं और निरन्तर परिणमन करता रहता हूं।

पदार्थकी अन्तःस्वतन्त्रता—यदि किसीको अपने आपके आत्माका श्रद्धान हो जाय तो उसकी जिन्दगी प्रकाशमें होती। उसे कभी आकुलता ही नही हो सकती। मैं हू और परिणमता रहता हूं। जो मेरा स्वरूप है वही मेरा वैभव है। बस वही मैं हूं। मैं परतंत्र नहीं, मैं किसीका कुछ नहीं, किसीके आधीन नही। यह तो जगतकी व्यवस्था है। हम स्वयं अपनी इच्छासे दूसरोंमे रहते हैं, रमते हैं, परतंत्र बनते है। तो हम स्वतंत्रतासे ही परतंत्र बन रहे हैं। कहीं परतंत्रताके कारण परतंत्र महीं बन रहे। हमारी इच्छा है, हम उसमे हित मानते हैं, सुख मानते हैं, घरमें रहते हैं तो आप उसमें अपनी भलाई समझ रहे हैं, आराम मिलता है, तो आपपर बच्चोंका, औरोका, सभीका भार नहीं है क्या ? वह भार अपने ऊपर लेना ही पडेगा अन्यथा आराम गायब हो जायगा। तो आप स्वतंत्रतासे परतत्र बन रहे हैं। वहां भी आपकी आजादी है। उसे बदल दें और सत्य आजादीकी ओर आयें तो अपने आप सत्य आजादी आ सकती है। श्रीरामचरितमें बताया कि सीताने श्रीरामचन्द्र का बडा संग निभाया, जंगलोंमे फिरी, तो बतलाओ सीताने ये सब काम परतंत्रतामें किए या स्वतंत्रतासे ? अरे सीताके परिणाम, सीताके भाव, सीताकी इच्छा ऐसी थी कि वह श्रीराम के साथ रही। लोग तो समझते होगे कि ये सभी काम सीताने परतंत्रतासे किए। यो ऊपरी दृष्टिसे देखो तो अरे परतंत्रताका जीवन स्त्रीका ही नही, पुरुषोका क्या कम है ? पुरुष तो स्त्रीसे भी अधिक परतंत्र है। विचार करके देखो–अनुभव बतायेगा। स्त्री भी अगर घरमें रहेगी। परतंत्र हो रही हो तो वह भी अपनी स्वतंत्रतासे परतंत्र हो रही है। हां तो सीता की बात सुनिये, सीता रामकी कैसी सहचारिणी रही। अब देखो अग्नि परीक्षाके बाद सीता ने अपनी आजादीका रूप बदल दिया, उस समय किसी ओर न देखकर जंगलकी ओर चल दी, श्रीराम समझाते हैं, अपनी गल्तीकी माफी मांगते हैं, क्योंकि एक कुछ अपराध भी तो हो गया था। श्रीराम कहते हैं–ऐ सीते ! हमारा अपराध क्षमा करो, अब घरमें सुखसे रहो। लक्षमण भी बहुत-बहुत समझाते हैं, पर सीताने किसीकी एक न सुनी। सीता नें अपनी आजादीका मुख बदल दिया और वही सीता जब घरमे थी तो उसकी आजादीका मुख दूसरी ओरका था।

अन्तःस्वतन्त्रताके परिचय द्वारा दुर्लभ मानवजीवनको सफल करनेका अनुरोध—

जितने भी जीव हैं वे सब हैं और अपना परिणमन किया करते हैं। अन्यसे अन्त: कोई मेल नही है। यहांका मेल तो तब तकका है जब तक कषायोका मेल है। जब खुदकी कषायके विपरीत काम दूसरेके द्वारा हो जाता है तो चाहे वह घनिष्ट मित्र रहा हो, फिर भी वह शत्रु बन जाता है। और यदि कषायसे कषाय मिल गई तो वह मित्र बन जाता है। तो यहाँकी इस मित्रता व शत्रुतामे क्या दम ? अपने आपके बारेमे यह निर्णय बनायें कि मैं हू और निरन्तर परिणमता रहता हू, इसमे किसी दूसरेका दखल नही है, क्या करेगा कोई ? कर भी नही सकता कुछ। मुझमे मैं ही सम्पूर्ण अपने भाव बनाकर किस ही रूप परिणति करूं, पर दूसरा कोई मेरी इस परिणतिको कर देता हो, ऐसा नही होता। तो यह है भीतरी आजादी। इस आजादीका जिसे भान हो जाता है उसको ज्ञानप्रकाश मिलता है, उसका जीवन सार्थक हो जाता है। बात यह है कि अनादिकालसे स्थावर कीडा मकौडा आदिक भवोमे जन्म ले लेकर किसी प्रकार आज मनुष्य हुए हैं, श्रेष्ठ मन मिला है, सद्बुद्धि मिली है, समझनेकी शक्ति मिली है, इसका यदि सदुपयोग है तब तो जीवनकी सार्थकता है अन्यथा यदि इसका सदुपयोग नही किया जा सका तो जैसे अनन्त जीवन बिता दिए वैसे ही यह जीवन भी व्यतीत हो जायेगा, लाभ कुछ न मिल पायेगा। यहाँ किसी बातकी हठ करना, आग्रह करना ये सब बेकारकी बातें हैं। क्या चाहना ? लौकिक इज़्जतकी चाहमे बहुत विकल्प करने पडते हैं। धन किसलिए बढा रहे ? इसीलिए कि इज्जत रहेगी। पार्टी बना रहे। किस लिए ? इसी लिए कि इज्जत बढेगी। मायाचार करके अनेक प्रोग्राम रचे जा रहे है, किसलिए कि इज्जत बढेगी। अरे इज्जत चाहने वाले पुरुष, तू किसी की किस से क्या इज्जत चाहता है, यह तो बडा अज्ञानमोहका अधकार छाया हुआ है। देख तो यह तीन लोककी रचना कितनी महान है ? ३४३ घनराजूप्रमाण लोक है, इस लोकमे आज तू इस जगह जन्मा हुआ है और मरण करके न जाने कहा पहुचेगा ? आज १०, २०, ५० वर्षके लिए तू मनुष्य बना है। मरण करके न जाने किन योनियोमे पहुचेगा। जिन गधा सूकरोको देखकर हम आप ग्लानि करते है वैसी ही हम आपकी भी गति होगी तो फिर क्या हाल होगा ? अरे तू किन-किनकी इज्ज़तको अपने चित्तमे लादे हुए है। अपनी इज्जत सभालो, अपने स्वरूपकी दृष्टि करो, अपनेमें अपने आपका अनुभव करके सच्चे प्रसन्न बन जाओ। देख, सहज परमात्मतत्त्वकी उपासनामे तुझे सर्व वैभव प्राप्त होगा और इस अपने आपकी दृष्टिसे अलग होकर बाहरमे किसीका राग करेगा, किसीसे मोह करेगा तो यह दुर्लभ मानव-जीवन निष्फल हो जायेगा। मिलेगा कुछ नही। हो उनके पास तो वे कुछ दें और

हो भी तो वे उनके लिए है। मुझे क्या देगें ? हम भगवानकी भक्ति करते है तो वहा भी भगवान हमें क्या देते है और है सब कुछ उनके पास उनका। वे अपनेमे रमते है और करते हम भक्ति इसलिए कि उनके पास वह सब वैभव है, उसका हमे दर्शन हो जाय, वह हमारी दृष्टिमे आ जाय तो मै भी अपने आपकी सभाल सुगमतासे कर लूँगा। यही सम्बन्ध है भक्तका और प्रभुका। तो यह जाने अपने आपमे कि मैं हू और निरन्तर परिणमता हूं, अपनेमे स्वय ही स्वतन्त्र हू, यह बोध हो तो हम धर्मपालनकी दिशामे आगे बढ सकते हैं।

उपाधि व विकार्य उपादानका साहचर्य—इस प्रसंगमे एक यह जिज्ञासा हो सकती है कि जब आत्मामे औपाधिक भावकी योग्यता नही रहती तब भी क्या कर्मउपाधि सन्निधानमे रहती है ? इस जिज्ञासाका यह तात्पर्य है कि कोई जीव ऐसा विशुद्ध हो जिसमे अब रागद्वेषरूप परिणमन की योग्यता नही रही तो क्या उस जीवके समीप भी उपाधिभूत कर्म रहा करते है ? इस प्रश्नका उत्तर सक्षेपरूपमे यह है कि जहा इतनी विशुद्धि है, औपाधिक भावकी योग्यता नही रहती है वहा उपाधिभूत कर्म सन्निधानमे नही रहा करते है। भले ही कार्मारण द्रव्य सर्वत्र है, पर वह वहा बद्ध नही, उपाधिभूत नही। कारण यह है कि ऐसे ही जीवमे स्वभाव यौग्यता रहती है याने औपाधिकभाव न रहे, ऐसी पवित्रता रहती है। औपाधिक भावकी योग्यता भी न रहे ऐसी विशुद्धि वहाँ रहती है जहाँ उपाधि भी सन्निधानमें नही है। हा, कोई अवसर ऐसा होता है कि उपाधि भी है, कर्मका उदय भी है फिर भी औपाधिक भाव नही बन रहा। यह स्थिति उच्च गुणस्थानमे होती है। जैसे दशम गुणस्थानमे उदय चल रहा है, मगर उस उदयमे यह सामर्थ्य नही है कि ऐसा राग विकार बने कि मोहबध होने लगे। वहा भी यह समझना चाहिए कि उदय ही उस प्रकारके अनुभाग वाला है। इसी तरह यह भी बात जाननी चाहिए कि यह भी न हो सकेगा कि जीव मे विकाररूप परिणमने की योग्यता हो और उपाधि सन्निधानमे न हो। योग्यता ही उस जीवकी होती है जिस जीवके पर्यायमे औपाधिकपना आयेगा, ऐसा औपाधिक भाव बननेके लिए रागद्वेष कषाय होनेके लिए बद्ध उपाधिकर्म होता ही है। देखिये—जिसमे वर्तमानमे विषयविकारकी योग्यता पडी है तो यह योग्यता बनी कैसे व किसके ? सकर्मा जीवके बनी, जिसने विकार करके प्रचुर अनुभाग स्थिति बध किया था। अब वे प्रकृति उदय उदीरणामें आते है, जो यो उपाधिसे ही बद्ध है, उनके विकार भाव हुआ करते है।

निमित्तनैमित्तिक भाव माननेमें ग्राह्यशिक्षा—यहा मूल प्रयोजन यह समझना कि निमित्तनैमित्तिक भाव माननेमे हमको क्या बल मिलता है, क्या शिक्षा मिलती है और हम

किस तरह हितपथमे बढ सकते है ? यो बढ सकते है कि जब हमने यह निर्णय किया कि आत्मामे जो रागद्वेष विकार उत्पन्न होते है वे कर्मोदयका निमित्त पाकर होते है, तो झट हमको यह अत प्रकाश मिला कि विकार करना तो मेरा काम नही, स्वभाव ही नही ।मेरे स्वभावमे रागादिक भाव नही है, ये तो परभाव है, कर्मोदयका निमित्त पाकर उत्पन्न हुए परिणाम है, ये मेरे स्वरूप नही, ये बाहरी बातें है । अहा, देखो इन रागादिक भावोंके कारण हमने अनादिकालसे दु ख भोगा, सो कितनी बडी भूल की । इन भावोको हमने अपनाया, ये मेरे नही हैं, ये परभाव है । नैमित्तिक भाव है । तो निमित्तनैमित्तिक भावका यथार्थ निर्णय करनेसे अत स्वरूपमे दृष्टि दृढतासे बन जाती है और उन परभावोसे उपेक्षा हो जाती है । बात यह यहाँ बनानी है ।

निमित्तनैमित्तिकभावके अपलापके उद्यमकी निरर्थकता—कुछ लोग ऐसा कहकर कार्यकारणभावकी बात उडाना चाहते हैं, यो कहकर कि अगर हम समझेगे कि निमित्त सन्निधानमे कार्य होता है, कारणसे कार्य होता है तब तो फिर एक कामको करने के लिए कारणपर दृष्टि रखेंगे । कारण जुटाओ, तो विकल्प बढेगे, मगर वे यह बात नही समझ रहे है कि जिन कारणोको जुटानेकी बात नही समझ रहे हैं वे नियत कारण नही हैं, निमित्त नही है, वे तो आश्रयभूत है । इस अन्तरको खूब निर्णयसे आप समझ लीजिए तब कारण-कार्यविधानके सम्बन्धमे सही दिशा मिल सकेगी । जीवमे जितने विकारपरिणाम होते हैं उनके होनेमे निमित्त तो है कर्मका उदय और कर्मके अतिरिक्त जितने भी अन्य पदार्थ हैं, जो कि उस प्रसगमे आते है वे सब हैं आश्रयभूत कारण । निमित्त कारण और आश्रयभूत कारणमे अन्तर है । लोग तो आश्रयभूत कारणकी ओट करके इस निमित्तनैमित्तिक विधान को उडा देना चाहते हैं लेकिन उडानेमे फायदा क्या है ? निमित्तनैमित्तिक भाव यदि यथार्थ मान लिए जायें तो हमे स्वभावमें बढनेकी ओर प्रेरणा मिलती है, क्योकि रागादिक भावो को नैमित्तिक समझकर, परभाव जानकर उनसे उपेक्षा कर देंगे । मैं विकाररूप नही हू, मैं अविकार स्वभाव हू ।

निमित्तको कर्ता व कारयिता माननेमें दोषापत्ति—जहाँ निमित्तनैमित्तिक भाव माननेमे एक सुविधा मिली वहाँ निमित्तनैमित्तिकका एक एकान्त और सीमासे बाहरकी बात मान लेनेमे आपत्ति भी आ जाती है । यदि कोई यह हठ करे कि कर्म ही रागादिकरूप जीवको बना देता है तो लो जो लोग मानते है कि ईश्वर इस जीवको सुख दु ख देता है तो जैसे वहाँ जीव सब असहाय है, असमर्थ है, ईश्वरकी मर्जीसे सारी बात बनती है, वही

पूरा मालिक है, यो ही कर्म भी पूरा मालिक बन गया। अब हम भी असहाय हो गए, कुछ भी न रहा, क्योकि मेरेमे कोई करतूत ही नही, मेरेमे कुछ परिणमन ही नही। जैसे मोटे दृष्टान्तमे लोग समझते है कि कुम्हारने घडेको बना डाला, इसमे मिट्टीका क्या हक है ? यद्यपि सूक्ष्मदृष्टिसे वहाँ पर भी इस प्रकारका कर्तृत्व नही है कि परका परसे कर्तृत्व हो, पर उसकी चर्चा न करके एक मोटी दृष्टिसे जो निरखा जाता है उसे दृष्टान्तमे लेकर बता रहे है। तो यो ही कर्मने रागरूप परिणमा दिया। जीव स्वय परिणमा और उसमे कर्म निमित्त है यह बात तो उसमे तकी गई, किन्तु कर्मोंने जीवको परिणमा दिया अर्थात् जीव कुछ न था, परिणमने वालेको नही परिणमा दिया। तो यहाँ फिर वही विडम्बना होगी कि मुक्तिका अवसर ही न मिल सकेगा।

निमित्तनैमित्तिक भाव मानने में मुक्तिके अवसरकी व्यर्थ आशंका--इस प्रसगमे एक बात और समझे कि जिन लोगो को यह आशका है कि निमित्तनैमित्तक भाव मान लेने पर फिर मुक्तिका अवसर न मिल जायगा, क्योकि कर्मके निमित्तसे राग बना और राग बननेसे फिर नया कर्मबन्ध हुआ। फिर उसका उदय आने पर राग बना। यो मुक्तिका अवसर न मिल पायेगा। ऐसी शका करने वाले जरा इस ओर ध्यान दे कि करणानुपयोग शास्त्रमे जो बध व्यवस्था बतायी गई है वह गुणहानिके रूपसे बतायी गई है। जैसे किसी जीव ने ३० दिन पहिले कर्मबघ किया था तो उसका बँटवारा उसी समय हो गया था कि आबाधाकालके बाद पहिले समयमे इतने परमाणु इतने अनुभाग वाले उदयमे आयेगे, दूसरे ससयमे उससे कम, किन्तु अधिक अनुभाग वाले तीसरे समयमे उससे कम, व अधिक अनुभाग वाले इस तरह कम परमाणु व अधिक होते होते समझ लीजिए कि कुछ कम ३० दिन तकका बँटवारा बन गया था और किसीने फिर २६ दिन पहिले कर्मबध किया था तो उसका भी बँटवारा बन गया, इस तरहसे अब असख्याते भव पहिले तकके बाँधे हुए कर्म भी इस समय उदयमे आ रहे है और उनका वहाँ विभाग बन गया था। अब जो भी उदयमे आ रहा है, हम एक समयके बाँधे हुए कर्मकी बात न कह सकेंगे ये तो असख्याते भवोमे बाँधे हुए कर्म कुछ कुछ विभक्त रूपमे एकत्रित उदयमे है, कुछ ऐसी स्थितिमे अनेक बार समय आ सकता है कि कभी हीन अनुभाग हो, कभी विशेष अनुभाग हो तो ऐसी स्थितियो मे वहा क्षयोपशम लब्धि होती है, फिर विशुद्ध लब्धि होती है, फिर आखिर दोनो ओरसे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है। जीवके भावका निमित्त पाकर कर्मदशा बनती है व कर्मदशाका

निमित्त पाकर जीव भाव बनता है। एक ओरसे ही तो निमित्तनैमित्तिक भाव नही है, फिर उत्तरोत्तर भाव विशुद्ध बने, उसका निमित्त पाकर कर्मोमे सवरनिर्जरा वढी और मोक्ष मार्गकी धारा बन गई। तो जो करणानुयोग शास्त्रोमे कथन है उसके अध्ययन करनेके बाद यह शका नही रह सकती। निष्कर्षमे यह बात समझनी कि निमित्तनैमित्तिक भावके खण्डन के योग्य नही और एक द्रव्य दूसरे द्रव्यमे कुछ कर देता है यह समर्थनके योग्य नही। इन दोनो प्रकारके निर्णयोमे इसको सही दिशा प्राप्त होती है। देखिये जो पदार्थ हैं वे सब पदार्थ अपने आपमे परिणमनेकी शक्ति रखा करते है, तब कोई अपनी योग्यताको किसी अन्यसे उधार नही लिया करता। पदार्थमे जो योग्यता रहती है उसके सस्कार तो पूर्व पर्यायसे है, पर वह योग्यता, वह स्थिति, वह व्यक्ति किसी अन्य पदार्थसे प्राप्त हो, सो नही होती।

सुख दुःखकी ज्ञानपद्धतिपर निर्भरता—अपने आपके लिए यह निर्णय करे कि मैं इस लोकमे अकेला स्वतत्र आत्मा हूँ। मै हू और जितने क्षेत्रमे जितने निजप्रदेशमे जिस स्व मे अनुभव होता है, वेदना होती है, सुख दु खकी अनुभूति होती है मैं वह हू, इतना ही हूँ, इस एकाकी अपने आत्मस्वरूपपर जिनकी दृष्टि हो जाती है उनकी आकुलतायें, उनके बधन, उनके भार प्राय सब समाप्त हो जाते है। जैसे कहते हैं कि अब ससार ही क्या रहा? सोच लीजिए, सुख दु खका होना अपने आपके विचारपर निर्भर है, अनुभव करके यहीपर देख लीजिए। यही पर आप सब अनेक गृहस्थ हैं, आप सबमे से कोई-कोई तो बहुत ही अधिक गरीबीकी स्थितिमे है फिर भी वे दु.ख नही मानते, हर स्थितियोमे खुश रहते हैं, और बहुतसे लोगोके पास बडी सुख सुविधाये है, कोई बाधायें नही है फिर भी अपने ऊपर बहुत बडा भार समझते है। विकल्पोके बोझको लादकर दु खी होते है। तो क्या कारण है कि कोई सुखी हो रहा, कोई दु खी हो रहा, एक-सी बाह्यस्थितिया भी हो करीब-करीब तिसपर भी अन्तर आ रहा है, इसका कारण क्या है? एक भाईने सुनाया था कि किसी जगह एक हलवाई था, उसके एक ही पुत्र था और उस हलवाईकी यह आदत थी कि वह अपने ऊपर कोई भार नही मानता था। कोई विपत्ति आ जाय तो उसे वह विपत्ति नही समझता था। बडीसे बडी बाधाओमे भी खुश रहता था। एक बार उसका बच्चा बीमार हुआ, गुजर गया तो उसको समझाने वाले लोग तो आँसू बहा रहे थे, पर वह हसता था। वह जानता था कि क्या है? आया था और अपने आप चला गया, मेरा क्या गया? ऐसे भी साहसी लोग हैं और साहस क्या? यह तो एक अपने आन्तरिक परिणामोकी बात है।

मोहनिद्राको त्यागनेपर क्लेशोंका परिहार—जिस रागद्वेष मोहके कारण इतना

दु खी होना पड रहा है उस रागद्वेष मोहको त्यागे। है क्या यहाँ ? कुछ भी नही। जैसे स्वप्नमे कोई कितनी ही उलझनमे आ गया हो, पर उलझन वहा कुछ नही, केवल एक विचार भर चल रहा है, उसीसे सारी उलझने हैं। एक सेठ गर्मीके दिनोमे अपने घरमे किसी ठडे कमरेमे सो गया। कमरेमे कूलर भी लगा हुआ था, उसके अन्दर बडे आरामके साधन थे। उसे सोते हुएमे स्वप्न आया कि मुझे बडी गर्मी लग रही है; चलो समुद्रमे थोड़ा सैर कर आये, स्त्री बोली कि हम भी सैर करने चलेगे, हमे भी तो गर्मी लग रही है। पुत्र भी सैर करने जानेको तैयार हो गये। पहरेदार भी सैर करने जानेको तैयार हो गया। सो घरमे एक बडा ताला लगाकर सेठ सपरिवार समुद्रकी सैर करने चला। नावमे बैठ गया। नाव कुछ आगे बढी। (यह सब स्वप्नकी बाते कह रहे है) करीब १ मील दूर नाव समुद्रके अन्दर गई थी कि नाव एक भँवरके अन्दर पड गई, नाव डगमगाने लगी, अब नाविक बोला—ऐ सेठजी! अब तो नौका बिना डूबे नही बच सकती। सेठ डरा, बोला भैया! किसी तरह इस नौकाको किनारे लगा दो, हम तुम्हे ५ हजार रुपये देगे। नाविक बोला—अरे हमी जब न बचेगे तो आप रुपये किसे देगे ? फिर सेठने कहा—अच्छा २० हजार रुपये देगे। किसी तरह हम सबको बचाओ। नाविकने साफ जवाब दिया और बोला कि आप दयालु है, हमे इजाजत दे, हम तैरकर निकल जावेगे और अपने प्राण बचा लेगे। जब नाविक नावसे कूदकर जानेको हुआ तो उस सेठके दु खका क्या ठिकाना ? वह बेचारा सेठ बहुत अधिक दु खी हो रहा था। देखो सेठ पडा तो है आरामके कमरेमे, सब मित्रजन प्रतीक्षा कर रहे है कि सेठ जी जगे और कुछ गप्प-सप्प करे, पर देखिये उस समय सेठकी क्या हालत हो रही थी ? अब यह बताओ कि उस सेठका दु ख मेटनेमे कौन समर्थ है ? क्या वे मित्रजन, क्या वे परिजन, क्या वे आरामके साधन उस सेठके दु खको मेटनेमे समर्थ है ? अरे ये कोई समर्थ नही है। उसका दु ख तभी मिट सकता है जब कि वह जग जाय, उसकी निद्राका भग हो जाय। समझिये कि यहाँ मोहमे माना जा रहा है कि यह मेरा घर है, ये मेरे घरके लोग है, ये गैर लोग है, यह मेरा धन वैभव है आदि।

ज्ञानोपाय किये बिना क्लेशकी अशक्यता—भैया! धन तो है परिमित और चाहते है सभी लोग, वस इसीसे तो परेशानी बढ जाती है, बडे दु ख छा जाते हैं। इन दु खोको मेटने के लिए कोई समर्थ नही है। यदि कोई प्रेमी मिल जाय और कहे कि भैया! हमसे ये २५ हजार रुपये ले लो और सुखी हो जाओ तो वह सुखी न हो पायेगा, वल्कि उसका दु ख बढ जायेगा। यहा जो लोग मित्र बन रहे है वे मित्र नही है, वे तो दु.ख

बढानेके कारण भूत ही बन रहे हैं। यहाके मित्र करेंगे क्या ? विषयोके साधन बढा देंगे, उन साधनोसे होगा क्या ? दु ख बढेंगे। तो इस लोकमे इस जीवका कोई दूसरा शरण नही है। कितना ही भटकने के बाद, कितना ही दु खी होने के बाद यदि इस जीवका कोई सुन्दर समय आयेगा तो वह समय इस ही रूप होगा कि अपने आपकी ओर दृष्टि करेगा। दूसरा उपाय ही नही दु ख दूर करनेका। बाकी उपाय तो यो समझिये कि थोडे कठिन दु खके विकल्प दब गए तो समझ लिया कि हमको आराम मिल गया। जैसे जिसको १०५ डिग्री बुखार है और अब रह गया १०३ डिग्री, तो जब कोई पूछता है कि भैया ! अब तुम्हारी कैसी तबियत है ? तो वह कहता है कि अब हमारी ठीक तबियत है। अरे ठीक कहाँ है ? अभी तो ५ डिग्री बुखार है। ९८ डिग्री स्वस्थ हालतमे रहता है। तो ठीक वह इसलिए कहता है कि उसके बुखारका कुछ अश दूर हो गया है। तो ससारमे सुख क्या है ? बडा दु ख न रहे उसीको मान लिया कि सुख हो गया। किसीको कोई दु ख है तो लोग उसका दिल बहलाकर, उसके उपयोगको बदलकर उसका दु ख मेटनेकी कोशिश करते हैं, उसका भी प्रयोजन क्या है कि उस दु खमे उपयोग न रहे।

मूढोंको आपत्तिकी सर्वत्र सुलभता—जिन-जिन जीवोके मोह ममता मिथ्यात्व है, जिन्होने परद्रव्योसे अपना सम्बन्ध माना है और दूसरोसे ही मेरा हित है, मेरी वृद्धि है, मेरा पोषण है, मेरा कल्याण है, ऐसी कुबुद्धि की है तो जिसके ऐसा कुमति कुश्रुतज्ञान है, उसको तो आपत्ति ही होगी। जो मोही होगा वह सुखकी आशा व्यर्थ ही करे। कोई एक मिया बीबी थे। मियाका नाम था, बेवकूफ और बीबीका नाम था फजीहत। उनमे अक्सर करके लडाई हो जाया करती थी। परन्तु लड-भिडकर भी फिर लडाई शान्त हो जाती थी। एक दिन ऐसी लडाई हुई कि फजीहत कही भाग गई। अब वह पुरुष उस फजीहतको इधर उधर ढूँढने लगा। बहुतसे लोगोसे पूछा—भैया ! मेरी फजीहत देखी, तो जो जानते थे वे तो यही पूछते कि क्या आज ज्यादा लडाई हो गई थी, सो कही भाग गई ? एक बार वह किसी ऐसे पुरुषसे भी पूछ बैठा जो उससे अपरिचित था, सो पहिले तो वह यही न समझ सका कि इसके पूछनेका मतलब क्या है ? सो पूछ बैठा कि आपका नाम क्या है ? तो वह बोला—मेरा नाम है बेवकूफ। तो वह व्यक्ति बोला—भैया ! बेवकूफ होकर तुम कहाँ फजीहत ढूंढते फिरते हो ? बेवकूफके लिए तो जगह-जगह फजीहत है। जहा ही खोटा बोल बोल दिया वहाँ ही लात घूसे हाजिर है। तो इसी तरह यह समझ लीजिए कि जहा मोह ममता है वहा सब जगह दु ख है।

मोहविषवमनसे अन्तःस्वास्थ्यका लाभ--अब सासारिक दुख कैसे मिटे ? इसपर विचार करिये इस मोह ममताके विषका ही पहिले वमन करे तो ये दुख मिटेंगे। कोई सोचे कि हम मंदिरमे पहुंचे अथवा किसी संतसमागममे पहुंचें तो वहा दुख मिट जायेगा सो ऐसी भी बात नही। वहां भी यदि मोह रहेगा तो दुख मिलना निश्चित है। अरे इस मोह महाविषका भक्षण करके तूने अपने आपको मलिन बना दिया तो इस समय तू और तरहके इलाज न कर। इस मोह विषका वमन कर दे तो तेरा आन्तरिक दुख मिट जायेगा। अब समझ लीजिए कि हम आप कितना सुल्झे है, कितना स्वच्छ है, कितना सुखी है, कितना आनन्द है ? दुखका जहाँ कोई काम नही। किस बातका दुख मानना ? धन अधिक बढ गया तो बढ जाने दो, बिल्कुल भी धन न रहे तो और भी अच्छा है। इस धनकी तो बात क्या, यह देह भी न रहे तो बहुत ही अच्छा है, अगर कुछ धन वैभव कम हो गया तो उससे आत्माका क्या नुक्सान हो गया ? जो लोग अपने इस देहकी बहुत अधिक सजावट करते हैं वस्त्राभूषणादिसे तो उन्हे उससे कौनसी शान्ति मिल जाती है ? क्या इन बाहरी सजावटोसे कुछ भीतरमे पवित्रता जग गयी ? अरे इन बाहरी बातोसे क्या फैसला करते ? पवित्रता बनाओ, सम्यक्त्व जगाओ, सच्चा बोध होगा तो वही आपका वैभव है। यदि सत्य बोध नही है तो ये सब वैभव बेकार है, और बेकार ही नही है किन्तु आपके लिए अनर्थ करने वाले हैं। सम्यक् प्रकाशके बिना जीवन ही क्या है ? इस ओर प्रयत्न करे और अपने आपको पवित्र बनालें।

ज्ञानयोग्यताके अवसरका सदुपयोग करनेका अनुरोध—लोग सोचते है कि मोक्षका प्रारम्भिक मार्ग भी बडा कठिन है। ज्ञान भी आना बडा कठिन है, तो उनकी यह बात व्यर्थ है। अरे कितना ज्ञान हम आप सबके पास है, कितने-कितने रोजगार कर लेते हैं, कितने बडे-बडे व्यापारिक कार्य सभाल लेते है और भी बडी-बडी समस्याये सुल्झा लेते हैं, इन लौकिक बातोमे कितना दत्तचित्त हो जाते है, इतना विशिष्ट ज्ञान हम आपको है। पर एक अपने आपकी समझके लिए कुछ भी ज्ञानका परिश्रम नही करते है। ज्ञान तो हम आप सभीमे विशेष है पर एक सच्ची रुचि न होने से इस ओर उद्यम नही हो पाता, इस ओर दृष्टि नही जग पाती। जिन्दगीभर यही बात बनी रहती है कि ये सब बातें तो वडी कठिन है कुछ समझमे ही नही आती। जब १० वर्षके थे तब भी यही कहते थे, जब ६०–७० बर्षके बूढ़े हो गए तब भी वही बात कहते है। जैसे कहते हैं कि रात भर स पारेसे उठाया। अरे सारी जिन्दगी किया क्या ? उस ओर रुचि बढाये, उस ओर लगें,

अपने आपको विद्यार्थी मान लीजिए, फिर देखिये कि आपकी उन्नति होती है कि नही। जो जीवन गया वह तो गुजर ही गया, लेकिन अब तो बच्चो जैसा अपनको अनुभव करके विद्याभ्यास कीजिए।

विद्यार्थित्वके संकल्पमें विकारपरिहारकी प्राकृतिकता——जब आप अपने हाथमे कापी, किताब, कलम आदि लेकर चलेगे तो आप अपनेको विद्यार्थी अनुभव करेंगे। उस विद्यार्थी-रूप अनुभव करनेके कारण आपके कितने ही सकट स्वत ही मिट जायेगे। जब गाँधीजीने चर्खा चलाने की बात सभीको कही तो बहुतसे लोग इस बातपर हँसते थे कि कही स्वतत्रता जैसी महान् चीज चर्खा चलाने से प्राप्त हो सकती है ? जब दो तीन घटे काम करो तो कही चार आनेका सूत तैयार होता था। लेकिन बात वहा यह थी कि वह चर्खा चलाना साधन था। किस बातका कि बडे-बडे आदमी भी (डाक्टर, बैरिस्टर, जज वगैरा भी) इन गरीबोंके दु खका अनुभव करेंगे। इससे सभीका चित्त विशुद्ध होगा, उनकी बुद्धि विशेष जगेगी और उससे फिर बात बनेगी। तो साधन ही तो था। यो ही समझिये कि हमारा अध्ययन वगैरा एक ऐसा विशिष्ट साधन है कि हम ज्ञानमार्गमे बढें। चलो, परकी सेवा तो बहुत की, अब अपनी भी कुछ सेवा कर लें। शरीरको खूब भोजन कराया, अब कुछ आत्माको भी भोजन करायें। आत्माका भोजन है ज्ञान। उस ज्ञानमार्गमे बढे तब तो समझिये कि हमारे जीवन का सदुपयोग हुआ। और यदि मोह ममतामे ही बढते रहे, रागद्वेषमे ही रुलते रहे, बूढे भी हो गए, मरणहार भी हो गए, फिर भी मोह सता रहा हो। और लोग समझाते है कि बब्बा ऐसा न करना चाहिए आपको। बब्बाजी मरण समयमे अपने किसी कुटुम्बकी याद कर रहे हो और मान लो वही समय हो उसके आने का, वही समय हो उस बूढेके मरण का तो लोग कहने लगते हैं कि देखो इन बूढे बाबाके प्राण इस अमुक पर ही अटके थे। अरे इस मोहभरी जिन्दगीमे कुछ लाभ नही है। ज्ञानार्जन करके अपनेको सावधान बनाये और अपने मे विराजमान परमात्माके मनमाने दर्शन करके तृप्त रहे, यही एक सारकी बात है।

उपादान कारणका स्वरूप——उपादान कारणके स्वरूपके सम्बन्धमे बताया गया है कि पूर्वपर्यायसयुक्त द्रव्य उत्तरपर्यायका उपादान कारण होता है। केवल पर्याय जो द्रव्यसे निरपेक्ष हो, ऐसी पर्यायका सत्त्व ही नही है। कोई पर्याय ही ऐसी नही होती। निराधार हो अर्थात् अपने आपमे द्रव्यके आधार बिना हो अतएव द्रव्यको अवश्य कहना पडेगा कि यह पर्यायका कारण है, किन्तु द्रव्य तो शाश्वत है, सदाकाल रहता है, तो जब द्रव्य शाश्वत है उसे ही उपादान कारण माना जाय तो सभी पर्यायें एक साथ उत्पन्न हो जानो

चाहिएँ। अतएव मानना होगा कि जिस पर्यायसे उत्पन्न होना है उससे पूर्व पर्यायमे द्रव्य हो तब वह उपादान कारण है। यह बात कही जा रही है समुचित उपादान कारणकी बात।

पूर्वपर्यायव्ययकी उत्तरपर्यायोत्पादके लिये अकारणताकी शका और उसका समाधान--अब उपादान कारणके सम्बधमे कोई जिज्ञासु यह प्रश्न कर सकता है कि जो पर्याय नष्ट हो गयी या जिसका विनाश है वह पर्याय अन्य पर्यायका कारण कैसे बन जायगी ? पूर्व-विकार जो नष्ट हो गया है वह उत्तरपर्याय योग्यताका कारण कैसे हो सकता है ? परिणमन उसका कहना किसी दृष्टिमे युक्त है लेकिन एक समयको परिणमन देखनेकी दृष्टि है। सूक्ष्म-ऋजुसूत्रनयकी दृष्टिमे यह प्रश्न किया जा सकता है कि जो विकारपर्याय नष्ट हो गयी वह उत्तरपर्यायिका कारण कैसे होगा ? स्थूलरूपसे यो समझा जाता है कि घट फूटेगा तो कपाल बनेगी, यद्यपि ये दोनो बाते एक साथ हो रही है लेकिन दृष्टिमे ऐसा पूर्वापर समझमे आता है अथवा कारणकार्यकी बात समझमे आती कि घट फूटेगा तो खपरिया बनेगी, इसी तरहसे प्रत्येक पदार्थमे एक ऐसी स्थूलतया दृष्टि बनती है कि पूर्वपर्याय नष्ट होगी तो उत्तरपर्यायि बनेगी और इसी दृष्टिको लेकर जिज्ञासुका प्रश्न है कि जो पर्याय नष्ट हो गयी वह अन्य पर्याय का कारण कैसे होगी ? जब उसका सत्त्व ही नही है अथवा उससे और पूर्वपर्यायकी बात लेकर कही जाय तो भी यह प्रश्न होता है। पर समाधान उसका यो है कि जिस दृष्टिमे केवल एक समयकी बात निरखी जा रही है उस दृष्टिमे कारणकार्यकी चर्चा नही होती। ऋजुसूत्र-नयका विषय बताया गया है परसम्बधरहित, इसी कारण ऋजुसूत्रनय इसमे स्थापनानिक्षेप नही कहा गया क्योकि यह एक ही समयकी परिणतिको निरखता है। इस नयकी दृष्टिमे एक ही पर्याय है। वहाँ तो विशेषणविशेष्यभाव नही बन सकता। जैसे कोई कहे कि कौवा काला है तो वहाँ इस दृष्टिमे यह बेतुकी बात बन बैठेगी कि जितना कौवा है सब काला है अथवा जितने कोई काले होते है क्या वे सब कौवा कहलाते हैं ? इस तरह यह बात विना समान अधिकरणके नही बनती। इस कारण विशेषणविशेष्य भाव इस नयकी दृष्टिमे गलत है। ऋजुसूत्रनयके आशयमे आकर विशेषण विशिष्यभावकी बात कहना असत्य है। औरकी तो बात क्या ? कुछ कारणकार्यकी बात नही बोल सकते, व्यवहार नही बता सकते, इतना भी तो नही कह सकते, मानो कही रुईमे आग लग गयी और कहे कि रुई जल रही है सो यह बात ऋजुसूत्रनयमे नही कही जा सकती, क्योकि जो जल रही है वह रुई नही, वह तो अब खाक है, काला है या खाक जैसी चीज बन गई। अव उस जलने वाली रुईको ओढनेके काममें तो नही लिया जा सकता। और जो रुई है वह जल नही रही तो नयकी दृष्टि तो

इतनी पैनी है और इतनी अभेदकी बात है कि जिसके अंश नही किए जा सकते। वहाँ कारणकार्यकी चर्चा न हो सकेगी। अगर उपादान कारणकी बात समझनी है तो इस रूपसे समझे द्रव्यार्थिकनय और पर्यायार्थिकनयका समन्वय रखो तब उस आशयमे कहा जायगा कि पूर्वपर्यायसहित द्रव्य उत्तरपर्यायका कारण होता है।

उपादानमें औपाधिक योग्यता और उपाधिके साहचर्यके सम्बन्धमें विचार—अब रही औपाधिक योग्यता व उपाधिके मेलकी बात, सो परिणमने वाले पदार्थमे औपाधिक योग्यता और उपाधि—इनका ऐसा सहचर सम्बन्ध है कि जब तक जीवमे विकाररूप परिणमन की योग्यतायें है तब तक उपाधि है और जब तक वह अपने योग्य अविभाग प्रतिच्छेद सहित उपाधि है तब तक समझना चाहिए कि इस अमुक पदार्थमे औपाधिक रूपसे परिणमने की योग्यता है। जीव कर्मसहित है और इस कर्मसहित जीवमे नाना विकाररूप बनने की योग्यता है। ये भिन्न बातें बराबर चल रही है और यह जीव अपने उपयोगको अन्तर्मुहूर्तमे उपयुक्त बना पाता है, अतएव होती तो है अपने मे प्रति समयमे एक एक पर्याय, मगर अन्तर्मुहूर्त धारामे जब वे पर्यायें चलती हैं तब उनका उपयोग होता है, उसका अनुभव जगता है। तो यो समझना कि प्रत्येक पदार्थ प्रति समयमे निरन्तर अपना परिणमन करता है। मैं भी परिणमन करता हू और विकाररूप परिणमता तो हू, पर मेरेमे अपनी परिणति से परिणमने की ही प्रकृति है अतएव यह परिणमन भी निरपेक्ष है, पर होता है यह उपाधि के सन्निधानमे ही। कभी ऐसा नही होगा कि उपाधिके सन्निधान बिना विकार बन जाय, जैसे दर्पणके आगे हाथ किया तो दर्पणमे हाथका निमित्त पाकर छाया बनी। तो उस छाया परिणतिको दर्पणने केवल अपनी परिणतिसे किया, हाथकी परिणति लेकर नही किया, लेकिन हाथका सन्निधान पाये बिना वह छाया नही बन सकती। इस तरह जब हम निमित्त दृष्टिसे देखते है तो वह परिणमन सापेक्ष है और जब केवल उसमे ही देखते है तो परिणमन निरपेक्ष है। हो गया, जैसा निमित्त मिला उस अनुकूल परिणम गया।

तत्त्वनिर्णयका अपने आपपर घटन——अपने आपमे ये ही सब बातें घटित करना है कि मुझमे जितने राग द्वेष विकार जगते हैं वे मेरी करतूतसे, मेरी परिणतिसे बनते हैं, पर उनमे निमित्त है कर्म उपाधि, अतएव ये परभाव है, इनसे मैं हट सकता हू और मैं अपने स्वभावमे उपयोग बना सकता हू। प्रभु दर्शनसे या अन्य-अन्य प्रकारकी धर्म पद्धतियोसे हम यदि अपने स्वभावदर्शनकी शिक्षा पाते हैं, अपने आपमे उस सहज ज्ञान वभावकी दृष्टि जगा पाते है तब तो समझिये कि हमने वस्तुत धर्मपालन किया और यदि केवल मदकषाय हुई,

इतने मे ही सन्तुष्ट हो जाते तो लाभ तो है। मदकषाय होने से पापका बध नही हुआ, लाभ तो हुआ, लेकिन उससे मुक्तिका मार्ग मिल जाय, सो नही बन सकता। मोक्षका मार्ग तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्ररूप है सच्चा विश्वास होना, यथार्थ ज्ञान होना, अपनेमे रम जाना मोटी सी बाते है। इस जीवका दूसरे जीवके साथ कोई सम्बध नही है, बिल्कुल स्पष्ट बात है। और यह दूसरेके बारेमे जल्दी विदित हो जायगा। यह पुरुष इस पुरुषसे इतनी प्रीति करता है, सम्बध क्या है ? न्यारे-न्यारे है। दूसरे पर जब घटित करके देखते है तो बात जरा जल्दी समझमे आती है, किन्तु अपने आपपर घटित करते है तो जरा देरमे बात समझमे आती है, क्योकि अपनेमे वह राग बसा हुआ है। रागभावको जरा ढीला करके निरखे तो अपने बारेमे भी समझमे आयगा कि मेरे द्रव्यसे अन्य पदार्थका कुछ भी सम्बध नही है, बात यह सत्य है, पर ऐसा मान लो, आपको सच्चा दर्शन मिल जायगा। देहकी प्रकृति जुदी है, आत्माकी प्रकृति जुदी है। यही निरख लो, देह तो रूप, रस, गंध, स्पर्शरूप परिणमता रहता है, इसकी प्रकृति जडताकी है, यह मूर्तिमान है। इसमे सडनगलन बनता रहता है, मगर आत्मा इसमे भीतर जिसमे मैं हू, 'मैं हू' ऐसा ज्ञान चलता है, उसमे जानने समझनेकी प्रकृति पडी हुई है, उसमे गलनसडन नही है। हाँ, वह विकृत होता है, अल्प होता है, अन्यरूपसे समझते है, उसकी इस तरहकी बातें तो हो जायेंगी मगर शरीरकी प्रकृतिके माफिक जीवकी प्रकृति न आयगी। तो जब प्रकृति जुदी है तो जुदा ही है। शरीर का पदार्थ जुदा है और मैं आत्मतत्त्व जुदा हू। जुदा है ना। कितना बधान हो होवे, बंधान होने पर भी जुदा है तो ऐसा मान लो कि मैं आत्मा अपने ज्ञानदर्शनरूप हू और यह शरीर रूप, रस, गंधादिकमय है। ऐसी दो बाते बिल्कुल पृथक् स्वरूपको लिए हुए है। मान लो ऐसा, बस आपको सच्चा दर्शन मिलेगा। यदि उसे स्वीकार कर लेते है, अपने आपपर घटित करते हुए उसे मान लेते है तो यहाँ सत्यदर्शन प्राप्त होगा।

बन्धनका विवरण—बधनकी बात देखो, कहते हैं—जीवके साथ कर्मका बंधन है, बात सही है। कही यह जीव कर्मसे न्यारा बैठकर बता न सकेगा। अभी लेकिन बधन किस तरहका है ? दो रस्सियोकी एक गाठ लगाने की तरह जीवका कर्मका बधन नही है। किन्तु निमित्तनैमित्तिक भावका बंधन है। यद्यपि एकक्षेत्रावगाहरूप बधन होता है मगर एक क्षेत्रावगाह होनेसे बंधन नही कहलाता। एकक्षेत्रावगाह तो उन कार्माणवर्गणाओका भी है जो ऐसा विश्रसोपचयरूप रहते हैं कि जीव यदि इस शरीरको छोडकर जायेगा याने मरण करेगा तो अन्य भवमे जीवके साथ विश्रसोपचयकी कार्माणवर्गणायें भी जायेंगी। वे कर्मरूप नही

हैं, मगर कितना एकक्षेत्रावगाह बंधन है, पर एकक्षेत्रावगाह होने से वे हमारे सुख दु खके कारण नही बनते, किन्तु बँधे हुए कर्म सुख दु खके कारण बनते है तो एकक्षेत्रावगाह होने से बधन न कहलायगा। जो बधन प्रकृत कहा जा रहा है, किन्तु एकक्षेत्रावगाह होकर भी निमित्तनैमित्तिकता जिसमे हो गयी हो उसे बंधन कहेगे। तो असलमे वे कर्म कर्ममे ही बँधे है। जो पहिलेके कार्माणशरीर हैं, जो पहिलेके बँधे हुए कर्म है उनमे ही वे मिलकर कर्मरूप बनते हैं, सो वह बंधन हो गया, पर निमित्तनैमित्तिकता ऐसी बन गयी कि बधनमे पडा हुआ जीव भी बंध गया। जैसे मोटा दृष्टान्त लो—लोग जब गायको बाधते हैं घरमे, तो क्या करते हैं? गायके गलेको और रस्सीको पकडकर नही बाधते हैं, रस्सीके एक छोरको दूसरे चोरमे बाँध देते हैं। अब गला गलेकी जगह है, रस्सीमे रस्सी है, फिर भी यह ऐसा विकट बधन बन जाता है कि वह गाय कही जा नहीं सकती। वह बधन एक निमित्तनैमित्तिक सम्बधका है। यो ही समझिये कि कर्मके बधनमे ऐसा यह जीव पड गया है कि अब यह स्वतत्रतासे कही बैठ नही सकता।

शरीरबन्धनमें बेबशी— कर्मबन्धनकी बात तो दूर रही, शरीरका ही देखलो ऐसा दृढ बन्धन है कि जिसे अगर कहा जाय कि भैया इस शरीरको तो यही पडा रहने दो, थोडी देरके लिए आप यहाँ आकर बैठ जाइये। तो क्या ऐसा किया जा सकता है? नही किया जा सकता। तो इतना विकट व्यावहारिक बन्धन है फिर भी स्वरूपदृष्टिसे देखें तो आत्मामे आत्मा ही है, शरीरमे शरीर ही है, बधन होकर भी किसीके स्वभावमे किसी अन्य के स्वभावका बन्ध नही है। यो किसीको किसीने निमत्रण दिया कि भाई आपको हमारे यहाँ कलके दिनका भोजन करनेके लिए निमंत्रण है, परन्तु भैया मेरी अधिक सामर्थ्य नही है, कृपा करके आप अकेले ही आ जाना और अपने आप आ जाना। अब वह बेचारा दूसरे दिन अकेले ही १० बजेके करीबमे पहुच गया। निमत्रण देने वाले ने कहा—भैया मैंने तो आपसे कह दिया था कि मेरी अधिक सामर्थ्य नही है, आप अकेले ही आना, पर आप अकेले ही क्यो नही आये? तो वह बोला—अकेले ही तो आये है? अरे कहाँ अकेले आये हो? साथमे इतना बडा चोला (शरीर) तो लेकर आये हो। अब भला बतलाओ कैसे वह अकेला आवे? तो शरीर और जीवका इतना विकट सम्बन्ध है फिर भी शरीर शरीरमे है, आत्मा आत्मामे है। ये दोनो एक दूसरे द्रव्यमे कभी एकमेक नही हो पाते, यही कारण है कि आज तक जगतकी व्यवस्था बनी हुई है।

पदार्थस्वातन्त्र्यके बोधमें अन्तःप्रकाश—यदि एक द्रव्य दूसरा द्रव्यरूप हो जाता

अथवा एक द्रव्यका दूसरे द्रव्यमे सर्वत प्रवेश हो जाता तो जगत शून्य हो जाता, कुछ भी न रहता, और न कोई व्यवस्था ही रहती। यह लोक जो दिख रहा है, यही सब यह प्रमाणित कर रहा है कि प्रत्येक तत्त्व अपने आपमे परिपूर्ण स्वतत्र है, किसीकी परिणति लेकर, किसीका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव, स्वभाव लेकर कोई सत्त्वमे नही है, इस तरह पदार्थोंका जब यह स्वातत्र्य ज्ञानमे आता है तब अन्त प्रकाश मिलता है। ओह! यह मैं परिपूर्ण एतावन्मात्र हू, मेरी दुनिया इसीमें है, मेरा कार्य इसीमे है, मेरा फल इसीमे मिलता है। जो कुछ मेरा सम्बध है, पहुंच है वह सब मेरे इस ही स्वरूपमे है। जब यह भान होता है तब उसके बहुत विशुद्धि जगती है, सर्वविपत्तियां, पापपरिणाम उससे बिदा होने लगते है। पदार्थ का मूलस्वरूप जाननेके लिए यह बताया जा रहा कि श्रद्धान करो कि प्रत्येक पदार्थ, प्रत्येक जीव, प्रत्येक अणु अपने आपमे परिपूर्ण है। और प्रति समय नया-नया परिणमन करता हुआ रहता है। ऐसा जाननेमे लाभ क्या मिला? मोहकी गुंजाइश नही रहती। किसका मोह करना? वह अपना है ही क्या? उससे सम्बंध ही क्या है और मोह परिणाम करके हम अपना बिगाड तुरन्त किए जा रहे है, लाभ कुछ न मिलेगा।

समागमके संयोगवियोगमें अलाभ— यह सब कुछ परसमागम यो ही मुफ्त मिला और यो ही मुफ्त जायगा। आज हम आप सबको ये जो पुण्यसमागम मिले हुए है वे मुफ्त ही मिले है और मुफ्त ही जायेगे। पूर्वपौरुष से दैव मिला और दैवके उदयमे ये समागम मिले, लेकिन वर्तमानमे देखो तो यह भाव कर क्या रहा है? कुछ भी करने मे समर्थ नही है। तब तो यह बात हुई कि मिला तो मिला, गया सो गया, यो ही मुफ्त मिला, मुफ्त गया। यह ही सभी जगह दिख रहा है। कोई जीव किसी सेठके घर पैदा हुआ, लो यो ही मिल गया है, गुजर गया तो लो यो ही गुजर गया। उस जीवके लाभकी कौन-सी बात आयी? और लाभकी बात अगर पूछते हो तो यह आयी कि पापलाभ मिला। वह सस्कारलाभमे मिला जिसकी वजहसे अनेक कुयोनियोमे जन्ममरण करना पडा। एक कोई चोर था। एक बार वह राजाके घुडसालासे एक घोडा चुरा लाया। उसे बेचने के लिए उसने एक बाजारमे खडा कर दिया। बहुतसे ग्राहक आये, उन्होने बारी-बारीसे उस घोडेका दाम भी पूछा। सो था तो वह घोडा ३००) की कीमतका और वह उसकी कीमत तिगुनी यानें १२००) बोलता था। तो कौन इतनी कीमतमे खरीदे? एक बार कोई ऐसा ग्राहक भी आया जो कि पुराना चोर था। उसने जब १२००) कीमत सुना तो पूछा कि ऐसी इसमे क्या खास बात है जो इसकी इतनी अधिक कीमत है? सो बताया कि इसकी चाल बढिया

है ।...अच्छा जरा यह मिट्टीका हुक्का पकडना, हम इसकी चाल देखेंगे, अगर हमे इसकी चाल पसद आ गई तो हम १२००) देगे। सो वह मिट्टीका हुक्का पकडाकर आप तो घोडे पर बैठ गया और उसे उडा ले गया। लो मुफ्तका घोडा मुफ्तमे गया। बादमे वही ग्राहक जो कि पहिले आये थे लौटकर आते हैं तो पूछते हैं—भैया क्या तुम्हारा घोडा बिक गया ? .. हाँ बिक गया। कितनेमे बिका ? जितनेमे लाये थे उतनेमे बिक गया। . मुनाफा कुछ नही मिला ?. हा मुनाफेमे मिला यह चार आनेका मिट्टीका हुक्का। तो यो ही समझिये कि यहा हमे मिला क्या है ? ये जो बाह्यपदार्थ है, बाह्यसमागम हैं, पुण्यके ठाठ हैं ये ये सब मुफ्त ही मिले हुए है, मुफ्त ही छूट जायेंगे, हाँ, लाभमे मिलेगा पापका हुक्का। उस पापके हुक्केको ही लेकर हम अगले भवोमे जायेंगे। न मकान साथ जायगा, न धन वैभव साथ जायगा, न कोई इष्टजन साथ जायेंगे। तो ऐसी है यह लोककी स्थिति। हम यदि नही चेतते है तो हम तो अपना ही अकल्याण कर रहे हैं।

चंचल मनको शुभ कृत्योंमें लगाये रहनेमें लाभ—यह मन है, इसको बडा चंचल बताया गया है। चंचल मायने चलना और पुन पुन. चलना, बारबार चलायमान होना। तो यह मन बडा चचल है, चलायमान होता रहता है, इसको समझाकर रखना है। इसको किसी अच्छे कार्यमे फसाकर रखना है। किसी शुभ कार्यमे उत्तम कार्यमे अपने इस मनको लगाये रखना है, तभी अपना अच्छा निभाव हो सकता है और यदि यह मन बेकार रहता है। इस मनको किसी अच्छे कार्यमे नही लगाते है; बेकारके कार्योमे ही इस मनको लगाये रहते है, अनेक प्रकारकी व्यर्थकी मनगढत बातोमे ही इस चित्तको रमाये रहते है तब तो फिर यह मन असतुलित हो जायेगा। इस कारणसे जो हम आपको करने योग्य कर्तव्य बताये गए हैं, जो हमारे धार्मिक व्यवहार है उनमे रहिए, उनका पालन करिये—सुबह उठ कर नहा धोकर मदिर आइये, देशदर्शन कीजिए। भैया ! देवदर्शन करनेसे बडा लाभ मिलेगा। मदिरमे आनेसे पंचपरमेष्ठीका स्मरण करनेसे चित्तमे बडा परिवर्तन होता है। गुरु सेवामे रहे तो वहाँ भी परिणामोमे विशुद्धि आती है। आप अनुभव करके देखलो कि हमारे जो धार्मिक कार्य हैं, जो कर्तव्य बताये गए हैं उन कर्तव्योमे हम आपको सद्बुद्धि प्राप्त होती है। स्वाध्याय करे, सयमसे रहे, इच्छा निरोध करायें, चीजोका परित्याग करें अथवा अपने धनका दान करें, ये जो श्रावकोके ६ मुख्य कर्तव्य प्रतिदिनके बताये गए है उनमे अपना मन लगायें, इससे अपने आपकी बडी रक्षा है और इन कार्योमे दत्तचित्त रहने से अपने उस शुद्ध तत्त्वके दर्शन करनेका बड़ा अवसर मिलता है। सब कुछ करके भी उद्देश्य

अपना सही बनायें कि मुझे अपने सहज परमात्मतत्त्वके दर्शन करना है, उसीमे अपना उपयोग रखना है, उसीको अपने ज्ञानमें लेना है, यही हमारा एक मुख्य कर्तव्य है ।

जीवपरिणाम व कर्मदशाका परस्पर निमित्तनैमित्तिक भाव--ससारी प्राणियोको जो सुख दु ख रागद्वेष जीवनमरण आदिक होते है उनके होनेकी व्यवस्था इस प्रकार है कि कर्मके उदयका निमित्त पाकर व अनेक आश्रयभूत पदार्थका नोकर्म पाकर रागादिक विकार हुआ करते है । इस सम्बन्धमे कोई यदि यह जिज्ञासा करे कि विरुद्ध परिणमन हो गया, भले ही निमित्तके सन्निधानमे उपादान कारण अपने स्वभावसे परिणमता है लेकिन आखिर निमित्तके अधिकारकी बात तो हो गई कि निमित्त हो तो वहाँ जीवको परिणमना पडता है । इस सम्बन्धमे समाधान पानेके लिए पहिले तो यह समझ लेना चाहिए कि जीव परिणाम और कर्मपरिणामका परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध है । जीवके परिणामोका निमित्त पाकर पुद्गल कर्ममे बन्धन संवर निर्जरा होती रहती है और कर्मके उदय, उपशम, क्षय क्षयोपशम अवस्थाका निमित्त पाकर जीवमे विकार गुणविकास हो जाया करता है । केवल एक ओरसे ही निमित्तकी बात नही है कि कर्म जीवको रागरूप परिणमाता है, विकाररूप परिणमाता है, विकाररूप बनाता है, केवल इस ही ओरसे निमित्तनैमित्तिक बात हो सो नही । दोनो ओरसे निमित्तनैमित्तिक सम्बन्धकी बात है । जब जीवपरिणाममे शिथिलता होती है, ऐसी स्थितिमे वे कर्म परिणाम प्रबल हो जाते है, उस समय जीव विषय कषायकी ओर अधिक भगता है । जब जीवके परिणाम अखण्ड स्वभावके लक्ष्यमे होते है तो कर्मपरिणाम अपने विपाकमे शिथिल हो जाते है, उनके सवर निर्जरा विशेष होने लगती है । यदि इन सब बातोको साहित्यिक ढगसे कहा जाय तो कहना चाहिए कि यह तो जीव और कर्मका परस्पर युद्ध जैसा है, क्योकि निमित्तनैमित्तिक भाव दोनो ओरसे है ।

आश्रयभूतके परिहारकी व लक्ष्यमें बढ़नेकी प्रेरणा--यहाँ कल्याणके अर्थ इस बात पर दृष्टि देनी है कि रागादिक विकार होते तो है कर्मका निमित्तपाकर, लेकिन उन विकारो के होनेके लिए आश्रयभूत पदार्थ भी हुआ करते है । जैसे कोई प्रेम करता है तो उदय कर्म का है निमित्त, लेकिन पुत्रका, स्त्रीका, पतिका जिससे भी प्रेम हो रहा है वह आश्रयभूत भी तो है । जब यहां दो बातें ध्यानमे लेते है तो विचार बनता है कि प्रयत्नपूर्वक पुरुषार्थ यह करना है कि आश्रयभूत पदार्थका त्याग करे । यदि सर्व प्रकारसे त्याग नही बन पाता तो एक देश त्याग करे, इसी आधार पर चरणानुयोगका सदेश है । आश्रयभूत तत्त्व बहुत दिन तक सम्पर्कमे न रहेगे, तो भले ही कुछ समय उसके सस्कारसे चित्त वहाँ जाय, किन्तु

जब आशा छूट जाती है बाह्यविषयोका साधनका त्याग करनेसे तो फिर रागविकारको पनपनेका अवसर नही मिलता। दूसरी बात यह बनती है कि साधनाकी दिशामे हम आपको केवल एक लक्ष्य निर्णय करके बढना है भावमे। निमित्तकी ओर दृष्टि देकर हम साधनाके पथ पर न बढ सकेंगे। यह तो एक निर्णयकी बात कही गई है कि जितने भी विकारभाव होते है वे किसी परनिमित्तको पाकर होते हैं, परनिमित्तको लक्ष्यमे दृष्टिमे रख करके हम साधनामे आगे नही बढ सकते। इस कारण हमारा लक्ष्य विशुद्ध और दृढ होना चाहिए।

आत्माको कल्याणलाभके अवसरकी चर्चा—इस प्रसगमे एक जिज्ञासा यह भी बन सकती है कि चलो दोनो ओरसे परस्पर निमित्तनैमित्तिक सम्बध रहा आवे अर्थात् जीवपरिणामका निमित्त पाकर कर्ममे अवस्थाये बनती है और कर्मकी अवस्थाओका निमित्त पाकर जीवके भावकी अवस्थाये बनती है। भले ही उस तरह दोनो ओरका निमित्तनैमित्तिक सम्बध रहा, परन्तु बात तो प्रथम यह है कि कर्म जितना अवसर देगे उतना ही तो जीवपरिणाम निर्मल होगा, और फिर जितना कर्मोदय होगा उतना ही विभाव होगा और विभाव होनेपर कर्मबन्ध होगा, फिर उसका उदय आनेपर विभाव होगा। भला बतलाओ कि फिर जीवको मोक्षका अवसर कैसे मिल पायगा? यह एक जिज्ञासा प्राय लोगोके चित्तमे रहती है, अथवा किसीका कोई एकान्त आग्रह हो तो इस प्रकार चर्चा की प्रकृति बन जाती है। इस जिज्ञासाके समाधानमे यह समझना कि जीव क्या है और कर्मकी स्थितिया किस प्रकार से बनती है? प्रथम बात यह है कि जीव ब्रह्म है। ब्रह्म उसे कहते हैं कि जिसके बढनेका स्वभाव हो, अपने गुणविकासमे जो बढनेका, उत्कर्षका स्वभाव रखता हो उसका नाम ब्रह्म है। देखिये जीवके अनेक नाम होते हैं। जीव, आत्मा, चेतन, ज्ञानी, ज्ञाता, प्रतिभासक आदि, पर उन नामोंमे एक-एक विशेषणसे गुणकी तारीफमात्र बतायी गई। लेकिन ब्रह्म शब्द कुछ वहा और विशेषता बताता है कि इस जीवका बढनेका ही स्वभाव है। स्वभाव घटनेका नही है। जैसे कभी देखा होगा कोई स्प्रिग लगे हुए पलग कुर्सी आदिमे तो उसका विकसित होनेका ही स्वभाव है, जब दबाओ तब दबते हैं, नही तो स्वत विकसित होते हैं। लोग घरोमे इस तरहके स्प्रिंग लगाते भी हैं। तो इसी प्रकारसे समझ लो जीवके गुणके विकास होनेका स्वभाव पडा हुआ है। जब कभी कुछ भी निमित्तदृष्टिसे अवसर पायगा यह, बढेगा और बढावमे उसके बढनेका निमित्त पाकर कर्मदशा क्षीण हो जायगी। यह बात पहिले बता दी गई थी कि जब कर्मबध होता है तो बधके कालमे ही स्थिति अनुभाग प्रकृति प्रदेश सब निश्चित हो जाते है। भले ही कभी जीवपरिणामका विशेष निमित्त पाकर सक्र-

मण, अपकर्षण अथवा निर्जरण हो जाय तो भी जिस समय बधन हुआ था उस समय तो बटवारा हो ही गया था। पीछे जो हो वह भी निमित्तनैमितिक सम्बध वाली बात है। तो जब जीवमे बधे हुए कर्मोका उदय किसी क्षण इस प्रकारका आता है कि जिसे क्षयोपशमलब्धि कहेंगे तो क्षयोपशमलब्धिसे विशुद्धलब्धि बनती है, विशुद्धलब्धि होनेपर कर्मोमे क्षीणता आती है और फिर यह जीव प्रबल विशुद्ध बन जाता है।

स्वभावानुभूतिका लाभ लेनेमें ही पटुता—इस जीवको एक बार भी यदि अपने स्वभावका अनुभव हो जाय तो फिर चाहे उसे कोई कितना ही विरोधमे प्रेरित करे अथवा कितना ही तीव्रकर्म उदयमे आये फिर भी अनुभवमे आये हुए अन्तस्तत्त्वका स्मरण भी इस जीवको कभी न कभी सत्पथमें लगा देगा। बहुत बड़ा ऊँचा काम है यह कि सम्यक्त्व जग जाय और अपने आपके सहजस्वरूपकी अनुभूति प्रकट हो जाय। काम ही एक है यह मनुष्यभवमे। बाकी सब तो पागलपनकी चेष्टाये समझ लीजिए। कभी यह उन्मत्तदशा तीव्र होती है तो यह तीव्र मोहमे फंस जाता है। कभी उन्मत्तताकी मदता होती है तो कुछ चतुराईकी की बाते करता है, लेकिन उसकी ये सब उन्मत्त चेष्टाये है। चाहे मंदकषाय हो, चाहे तीव्रकषाद हो उसमे जो भी बात होगी वह सब मोहरागद्वेषकी ही तो होती है। तो काम केवल एक ही है इस मनुष्यभवकी सफलताका। कोई दूसरा काम नही है। अपने आपके आत्माके सहजस्वरूपका श्रद्धान होना, ज्ञान होना और उसी स्वभावमे रमण होना, दृष्टि है, लक्ष्य बनाया, जानने मे आ सकता है, अनुभव भी हो सकता है, पर समझ बने, उस ओर हमारी रुचि बने, ये सब बातें सम्भव है, सो भाई अपने आपपर दया करके, जरा इन बाह्य बातोकी असारताका तो परिज्ञान कर ही ले। अगर करोडपति भी हो गए तो उससे इस आत्माको मिला क्या उस करोडोके ढेरसे ? कुछ फायदा हो तो सोच लीजिए। यदि लोकमे इज्जत भी छा गई तो इस मोहीलोकसे मिलेगा क्या इस आत्माको। और-और भी संसारके जितने सुख माने जते है वे सुख भी इस जीवको प्राप्त हो गए तो इस आत्माको मिला क्या ? एक बार तो अपने आपके आत्मापर दया करके शुद्ध हृदयसे, शुद्ध ध्यानसे यह निर्णय करके कि जगतमें बाहरी बातोमें रच भी सार नहीं है। सबका लक्ष्य छोड दें; विकल्प छोड दें अपने को अकेला अनुभव करें और अपना उपयोग अवश्य अपने सहजस्वरूपमे ले जाये स्वयं ही ज्ञानप्रकाशका अनुभव होगा और समझ बन जायेगी कि बस इस तरहसे अपने आपको भीतर रख लेना, यही तो सारका काम है, बाकी बाहरमे तो सब उन्मत्तकी चेष्टा है।

मोहोन्मत्ततामें दुःखमयी चेष्टा—जैसे कोई पुरुष पागल है, किसी कुवेके निकट

वैठा है, जो सडकके पास है वहासे अनेक मुसाफिर साइकिल, रिक्शा, तागा, मोटर आदिसे गुजरते है, वह अड्डा ऐसा है कि वहां एक दो खाने पीने की चीजोकी दुकानें भी हैं, तो लोग वहाँ एक दो खाने पीनेकी चीजो की दुकाननें भी है, तो लोग वहाँ उतरते हैं और कुछ नास्ता पानी करके चले जाने है। अब वहां बैठा हुआ वह पागल पुरुष वहाँ खडे हुए मोटर, साइकिल आदिको देखकर सोच लेता है कि ये मेरे है तो उन लोगोके चले जाने पर वह रोता है—हाय मेरी मोटर चली गई, मेरी साइकल चली गई। तो इसी तरह यहाके इन पागलोकी (मोहियोकी) बात है, वे यहाके प्राप्त समागम (स्त्री, पुत्र, मित्र, धन वैभव आदिक) को अपना मान लेते है, लेकिन वे सब समागम विछुडेगे तो है ही, चाहे जब बिछुडें। तो यह मोही इन समागमोंके बिछुडने पर रोता है, दुःखी होता है, हाय मेरा अमुक चला गया मेरी अमुक चीज नष्ट हो गई। यो सोच-सोचकर वह रोता है और दुःखी होता है। अब कुछ अपने आपके स्वरूपपर दृष्टि देकर विचार लो, इस अपने आत्मस्वरूपका यहा है क्या ? कुछ भी तो नही है। मानलो कोई सेठ अपने घर मरण करके अपने ही घरके कूपमे मेढकके रूपमे पैदा हो जाय तो फिर उसका क्या रहा ? और कदाचित् घरके लोग जान जायें कि यह मेढक हमारे पतिका जीव है या पिताका जीव है तो जान लेनेके बाद भी क्या उस मेढकसे भी मोह होता है जैसा कि पहिले रहा करता था ? नही। एक कथा।कमे कहते है कि एक सेठ जी जाप देने बैठे रात्रि को। उस समय चिराग जल रहा था। वह सेठ सोच रहा था कि करीब पौन घंटा तक यह चिराग जलेगा क्योकि इसमे इतना तेल है सो यह नियम लेकर बैठा कि जब तक यह चिराग जलेगा तब तक मैं सामायिकमे बैठा रहूगा। सो वह सेठ तो सामायिकमे बैठा हुआ था, उसकी स्त्री ने जब देखा कि चिराग बुझने वाला है तो उसमें कुछ तेल और डाल दिया। यो ही कई घटे व्यतीत होते गए, जब भी वह दीपक बुझने लगे त्यो ही वह स्त्री तेल डाल देवे। सो कई घंटे तक सामायिकमे बैठे रहकर उस सेठको बडा सक्लेश हुआ और उस सक्लेश परिणाममें मरण करके वह अपने घरके कूपमे मेढक बना। जब उस सेठकी स्त्री उस कूपमे पानी भरे तो वह मेढक उस कूपसे उछल उछलकर उस स्त्रीके ऊपर आता था। सो उस स्त्रीने एक मुनि महाराजसे उस मेढकके विषयमे पूछा तो मुनिराजने वताया कि यह तो तुम्हारा पूर्वभवका पति है, वह मरकर मेढक वना है। तो देखो यद्यपि उस स्त्रीने यह समझ लिया कि यह पूर्वभवका मेरे पतिका जीव है पर उससे वह प्रेम तो नही कर सकती।

आकिञ्चन्यकी श्रद्धा विना धर्मपालनकी अपात्रता—जीवका यहाँ कल्पनामे भी

कुछ नही है। यहाँके समस्त समागम असार है। अगर यह बात चित्तमे समा जाय तो समझो कि हम धर्म कर रहे है। अगर यह बात चित्तमे नही समाती, स्त्री, पुत्र, मित्र, धन वैभव आदिक समस्त समागमोको ही सारभूत समझ रहे है, उन्हीसे अपना हित समझ रहे है तो भला बतलाओ आप कहा धर्म कर रहे है ? जहाँ परपदार्थोके प्रति इतना लगाव है ऐसे हृदयमें धर्मकी गध भी नही आ सकती। तो प्रथम शुरुआत यहाँसे करे कि जानने लग जायें सच्ची बातको कि ये बाहरी पदार्थ सारभूत नही है। जिन पर आज प्रीति है उनसे अगर मन बिगड जाय या आपके मनके प्रतिकूल कोई बात हो गई तो वे ही आपकी दृष्टिसे गिर जाते है। आज जो मित्र है वह मित्र नही, कषायकी कषायसे दोस्ती है। जब कषायसे कषाय नही मिलती तो वही मित्रता शत्रुताके रूपमें परिवर्तित हो जाती है। तो इतना तो निर्णय कर ही लें कि बाहरमे मेरा कोई कारणभूत नहीं है इतना निर्णय हो तब पवित्रसा आयेगी अपने आपके ज्ञानकी और अपनेको मोक्षमार्गमें लगानेकी।

संसारकी विपदामयता—यह संसार तो सारा विपदामय है। यहाँ कोई स्थान ऐसा नही कि संसारी रहते हुए हम सुखी हो जायें। बताते है कि देव और इन्द्र बडे सुखी है, मगर देव और इन्द्र भी अपनी देवियोके रागमें कितना मस्त रहते है कि वे भी दु खी रहते है अथवा दूसरेके ऋद्धि वैभवको जब वे निरखते है—हाय मुझे ऐसा वैभव क्यों न मिला, ये बडे है, इनकी आज्ञा चलती हैं, मेरे पास तो इतनी ही विभूति है, यों तरस-तरस कर वे दु खी होते हैं। यदि अज्ञानताके ढंगसे निरखा जाय तो नारकियोको भी और देवोको भी दु ख है। नारकियोंका दु ख जरा जल्दी मालूम होता है और देवोका दु ख स्पष्ट विदित नही होता। यदि दोनोका दु ख समझना है तो यही देख लो, करोडपतिको देखो और एक भिखारीको देखो—इन दोनोके दु खकी तुलना करो। क्या वहाँ यह कहा जा सकता कि करोड़पतिको दु ख नहीं है, भिखारीको दु ख है ? अरे यदि करोड़पतिके घर जरा दस पाँच दिन रहकर देख लो—वे कितने अधिक दु खी है। कहीं कोई मुकदमा चल रहा है, कही कोई नाराज हो रहा है, कहीं कोई धन हानि हो गई, यों उसके विह्वल होनेके अनेक प्रसंग बने रहते है। यों ही विद्या पढे लिखे लोगोकी बात है। वे भी वैसे ही दु खी हैं जैसे कि मूर्ख (अनपढ) लोग। सम्यग्ज्ञानियोकी बात और है। लौकिक विद्यावानोकी बात कह रहे। जैसा दु ख मूर्खोंको है वैसा ही दु ख विद्वानोको है। विद्वान् यों सोचता है कि कही हमारी इज्जत मे धक्का न लग जाय, कही हमारे सम्मानमें कमी न हो जाय। एक घटना है कि बनारसमे एक बूढा विद्वान् था। जो न्याय संस्कृत व्याकरणका प्रकाण्ड विद्वान् था। वह रात दिन

उस वृद्धावस्थामे भी अधिकाधिक समय अध्ययन किया करता था, कुछ न कुछ पाठ याद किया करता था। उसकी बडी प्रशसा भी चारो ओर फैल रही थी। उससे एक वार किसी ने पूछा कि पडित जी आप इतने विद्वान् है, आपकी जब जगह बडी कीर्ति फैली है, फिर भी आप रात दिन अध्ययनकार्यमे ही क्यो व्यस्त रहा करते है ? तो पडितजीने वताया कि हम इसलिए खूब अध्ययन करते रहते है कि कहीं ऐसा न हो कि शास्त्रार्थमें हम कभी किसीसे हार जाये। यदि कभी किसीसे हम शास्त्रार्थमें हम हार गए तब तो हमारा जीना दुस्वार हो जायगा। आखिर हुआ भी ऐसा ही। कोई नवयुवक शास्त्रार्थ कर बैठा, सो पडितजी तुरन्त उत्तर न दे सके। (बूढे हो जानेपर याददास्त भी कम रहती है) सो लोगोने समझ लिया कि यह हार गए। वस उस दिनसे फिर किसीने उस पडितको नहीं देखा याने वह किसी चेष्टासे मरणको प्राप्त हो गया। तो यह ससारी जीवोके दु खकी हालत वता रहे हैं। सभी दु खी है। पुत्र वालोकी हालत देख लो—जिनके अधिक पुत्र है वे भी उन लडकोके लडाई झगडेसे परेशान रहा करते है, जिनके नही हैं वे लडकोंका मुख देखनेके लिए रात दिन चिन्तित रहा करते है। किसीके अधिक लडकियाँ हो गईं तो वे रात दिन चिन्तित रहा करते है। इस दहेजके पीछे तो बहुतसे केस बडे पूरे हो जाते है। दहेज कम मिला तो जीवन भर सताते हैं व जीवन खत्म कर डालते हैं। तो यहाँ क्या है ? सारा ससार दु खमय हैं। किसी तरहसे भी इस जीवको चैन नही मिलती। ऐसा विकट यह लोक है, फिर भी अधीर होने की बात नही है। अगर कोई इतना समझ ले कि सारा ससार दु खमय है तो समझो कि उसे शान्तिका मार्ग अवश्य मिलेगा।

संसारकी दुःखरूपताके परिज्ञानसे भी दुःखोंमें राहत मिलनेका लाभ—इस दु खमय ससारमे रहकर जो कुछ इस लौकिक सुखकी चाह करते है उन्हें शान्तिका पथ नहीं मिलता। कोई एक सेठ था। वह एक बार कारागारमे डाल दिया गया। अब वहाँ उसे कैदके बन्धनमे रहना पडता था, सूखा रूखा खाना, जमीनमें सोना, चक्की पीसना, पुलिसकी मार सहना, आदि अनेक बाते करनी पड़ती थी। अब वह यही सोचा करता था कि मैं कहाँ तो इस तरह का सेठ और कहाँ इस तरहकी कष्टकी बातें सहन करनी पड रही है, यो सोच सोचकर वह बडा दु खी रहा करता था। उसको एक दिन एक दयालु कैदीने जब समझाया कि अरे सेठ जी यह कोई तुम्हारी ससुराल अथवा तुम्हारा घर नही है जो आरामसे रहो। यहाँ तो ऐसा करना ही पडता है। जब सेठको कुछ ज्ञान जगा—ओह ! यहाँ तो ऐसा करना ही पड़ता है, बस इतनी बात चित्तमे जम जानेसे उसके सारे दु ख हल्के हो गए। तो

जैसे जेलमें रहकर भी उसे जेल समझ कर रहनेसे उस सेठके दुःखोका बोझ हल्का हो गया, इसी प्रकार हम आपका कर्तव्य है कि इस संसारको दुःखमय जानकर इसमे रहे तो इस समय भी दुःखोंका बहुत कुछ भार हल्का हो जायगा। यहाँ रहकर एक अपने शुद्ध स्वरूपका अनुभव कर ले, यही एक सारभूत काम है, अन्य तो सब पागलपनकी बातें हैं।

संसारियोंकी परेशानी--संसारी प्राणी अपने रागद्वेषमोहके कारण परेशान है। इनको किन्ही बाहरी कारणोसे परेशानी नही हो रही है। घर-घरमे है, सोना चादी अपने-अपने कर्म है, किसी जीवको किसी दूसरेके कारण परेशानी नही है, किन्तु रागद्वेषमोह जैसे उत्पन्न होते है उनसे परेशानी है। लोग करते क्या है कि इन परेशानियोको मिटानेके लिए बाह्यपदार्थोका परिवर्तन करना चाहते है और जिस कारणसे दुःख उत्पन्न होता है। उसपर दृष्टि नही। सुख दुःख देने वाला कोई दूसरा पुरुष नही है। अपने आपमे जो रागद्वेषमोहका परिणाम है वह ही दुःखका कारण है। यदि हम ऐसा प्रयत्न करें कि हमारे रागद्वेषमोह भाव न जगे, और बन जाय सच्चे ढगसे प्रयत्न तो वह सफल हो जायगा। और इस उपाय के अतिरिक्त बाहरमे कुछ भी उपाय करे उससे शान्ति प्राप्त नही हो सकती। अब रागद्वेष-मोह अपने दूर हो, इसके प्रयत्नमे मुख्य उपाय क्या है ? तो मुख्य उपाय है भेदविज्ञान। जैसे यह जीव यह विश्वास करके अपनी ओर झुक जावे कि ये रागद्वेषमोहादिक तो परभाव है, औपाधिक है, छायारूप है, मेरे स्वरूप नही है, मेरे स्वभाव नही है, ये तो दुःख देनेके लिए ही उत्पन्न हुए है, अशुचि स्वभाव है, ये गंदे है, इनसे क्या लगाव करना ? मैं पवित्र ज्ञानस्वभावमात्र हू। जब इन परभावोसे भिन्न अपने आपके स्वभावपर आयगा तो इसके ये सब क्लेश दूर हो जायेंगे। प्राणी परेशानी दूर करनेका भाव तो रखते हैं पर उसका यथार्थ उपाय नही बना पाते। परेशानीका अर्थ क्या है ? यह परेशादी शब्द चाहे उर्दू भाषाका हो पर जरा हिन्दी सस्कृतमे इसका अर्थ लेना चाहे तो परेशानीका अर्थ निकलता है पर ईशान सम्बन्धित परिणति। ईशान कहते हैं मालिकको, जिसने परको अपना स्वामी माना हो, जो परके अन्दरमे अपने आपको समझ रहा हो या परका अपने को मालिक मान रहा हो, बस उसकी परिणतिका नाम है परेशानी। इससे अर्थ विदित होगा कि जितनी भी परे-शानी है वह किसी दूसरे पदार्थका अपनेको स्वामी मान रहा हो उससे है या अपना स्वामी किसी दूसरेको मान रहा हो, इससे परेशानी है। संसारके सारे संकट सदाके लिए नष्ट हो जायें ऐसा उपाय और ऐसी स्थितिसे बढकर कुछ हो भी सकता है क्या ?

खुदकी कृतिसे खुदकी परेशानी--लोकमे ये जितने उपाय किए जा रहे है और

उनसे शान्तिकी आशा की जा रही है वह है क्या ? जिन्दा मेढक तौलने की तरह है। कोई जिन्दा मेढक तौल सकता है क्या ? नही तौल सकता। कुछ मेढक तराजूपर रखे जायेंगे, कुछ रखनेको होगे कि वे उचक जायेंगे। ऐसे ही यहाकी बातोका सुधार बिगाड करके कोई शान्ति चाहता हो तो हो सकता है क्या ? जो बात बनेगी सो वह भी बन गयी अनुकूल उदय होने से, पर दो बाते बनेगी और दो बिगडेगी। कितने ही मनुष्य ऐसे पाये जाते हैं जिन्होने अबसे १०-२० वर्ष पहिले से ही सोच रखा हो कि इतना कार्य हो जाने पर फिर मुझे कोई परेशानी नही, फसाव नही, किसी प्रकारकी चिन्ता न रहेगी, फिर तो मै सिर्फ धर्मकार्योंमे ही अपना सारा समय बिताऊगा, पर उतने वर्ष गुजर जाने पर भी क्या हाल होता है कि फसाव ज्योका त्यो बना रहता है। तो इसको फसाने वाला कोई दूसरा है क्या ? एक बार राजा जनकके दरबारमे एक व्यक्ति पहुचा, यह सोचकर कि वह ज्ञानी पुरुष हैं, वह हमे कोई ज्ञानकी बात बतावेंगे। वह बेचारा व्यक्ति अपने घरमे बहुत परेशान था। सो राजा जनकसे बोला — महाराज मैं बडा दुखी हू। कुटुम्बने मुझे जकड रखा है, घर गृहस्थीके सारे झगडोने मुझे फास रखा है, मुझे वहां चैन नहीं मिलती है। उस झझट मे छूटनेका आप हमे कोई उपाय बतावे। तो राजा जनकने उत्तर तो कुछ न दिया, पर जिस पेडके नीचे बैठे हुए थे उस पेडको अपनी डोटमें बाध लिया, और बोले— हे भैया ! मैं इस समय बहुत परेशानीमे हू। मुझे इस पेडने जकड रखा है। पहिले इससे मुझे छुटाओ बादमे मैं तुम्हे उत्तर दूं। तो वह व्यक्ति बोला— हे राजन ! मैं तो आपके पास आपको ज्ञानी समझ कर आया था, पर आप तो इस समय बडी मूर्खताकी बातें कर रहे है। अरे आपने स्वय इस पेडको जकड रखा है और आप कहते हैं कि इस पेडने मुझे जकड रखा है। तो राजा जनक कहते है कि यही उत्तर तो तेरे लिए भी है। तूने स्वय अपनेको घर कुटुम्ब (गृहस्थी) के जजालमें जान बूझकर फाँस रखा है और कहता है कि घर कुटुम्बने मुझे जकड रखा है। यही तो तेरी मूर्खता है। अरे तू इस मोहको छोड, बस तू तो आनन्दमय ही है।

अन्तर्दृष्टि होनेपर संकटोंकी समाप्ति—कोई मनुष्य कितनी ही विकट परिस्थितियो में अपने को मान रहा हो, लेकिन जिस समय वह अपने आपको निराला अमूर्त ज्ञानमात्र निरख लेगा उस समय उसके सामने एक भी संकट न रहेगा। सकट है भी क्या ? बस सोचनेभरका संकट है ये सब सकट रागद्वेषमोहके हैं। हम आप सबको कार्य एक यही करना है, यदि बुद्धि पायी है तो उसका सदुपयोग यही है, कुछ ज्ञान विद्वत्ता पायी है तो उसका सदुपयोग यही है कि अपने आपके अन्दर गुप्त ही गुप्त अपने आत्माका रस लेते रहे,

अपने ज्ञानस्वभावको अपनी दृष्टिमे बनाये रहे और उस दृष्टिसे अपने आपको पुष्ट बनाये रखें, यही एक काम हम आपको करनेको बाकी है। बाकी बाहरी बातें जो भी हम आपपर गुज रती हैं तो गुजरने दे, उनसे हमारा कोई नुक्सान नही है अथवा अन्य कुछ भी परि-स्थितियाँ हम आपके सामने हो तो उनसे क्या नुक्सान ? लोकमे कदाचित् कोई निन्दा करे, अपयश फैल रहा हो तो उससे हमारा क्या नुक्सान ? किसी भी प्रकारके उपद्रव आ रहे हो, कैसी ही विपदायें हम आप पर छा रही हो तो उनके हमारा क्या नुक्सान ? यदि मैं अपने आपकी स्वरूपदृष्टिका अमृतपान कर रहा हू तो मैं अमर हू, मैं अपने आपमे प्रसन्न हू, निराकुल हू।

परेशानियोंके हटाने के अर्थ अध्यात्मतत्त्वका अवबोध—जितनी भी परेशानियाँ है वे सब रागद्वेषमोहके परिणामसे है। जब रागपरिणाम होता है तो यह विह्वल होता है। उस रागपरिणामकी बात भी सोच समझ लें तो इससे लगाव हटेगा और अपने स्वभावमे पहुंच बनेगी। इस उद्देश्यको लेकर अध्यात्मशास्त्रोमे यह सब वर्णन बताया गया है। रागपरि-णाम होता किस तरह है ? प्रकरणमे यह बात विस्तारसे समझायी गयी है। निष्कर्षमे आप यह बात समझिये कि जो रागद्वेष विकार होते है उनका निमित्त कर्मोदय है। उस कर्मके उदयके समय इस आत्मामे स्वय अपने आपमे ऐसा प्रभाव बनता है कि वह रागरूप परिणमने को होता है। सो जिस समय यह रागरूप परिणमने को होता है तब उसके ज्ञान मे कोई विषय बनता है। जिसको आश्रय करके यह रागपरिणाम उत्पन्न हुआ तो कारण यहाँ दो हुए राग परिणामके—आश्रयभूत कारण और निमित्त कारण। निमित्त कारण कर्मोदय है और आश्रयभूत कारण स्त्री पुत्रादिक हैं या उन्हे विषयभूत कारण कह लीजिए। किनके सम्बन्धमे राग जगा है ? उन्होने कुछ किया नही और वे निमित्त भी नही हैं, वे तो जो हैं सो हैं। साक्षात् समक्ष हो तो, न हो तो, उनको **विषय बनाकर हमने अपने मे राग** परिणाम किया। तो यह जीव आसक्तिके समयमे विषयभूत परद्रव्यके लक्ष्यमे झुक जाता है। जो सर्वस्व है सो यह है, सो इन दो कारणोके सम्बन्धमे यह अन्तर जानना कि विषयभूत कारणके साथ अन्वयव्यतिरेक नियम नही बैठता, और कर्मपरिणाम और जीवपरिणामका निमित्तनैमित्तिक भावका मेल बैठता है।

मोहशल्यकी निवृत्तिमें ही लाभ—पुष्पडाल और वारिषेणकी कथा सुनी होगी। वारिषेण महाराज एक बार अपने गृहस्थकालमे मित्र पुष्पडालके घर आहार करने गए। आहारके बाद पुष्पडाल उन्हे कुछ दूर तक पहुंचानेके लिए साथ गए। आखिर दोनो बचपन

के मित्र थे। तो जब गाँवसे १ मील दूर निकल गए तो पुष्पडाल कहने लगे–देखो महाराज यह वही तालाब है जहाँ हम आप स्नान करनेके लिए आया करते थे। कुछ और दूर जाने पर बोले—देखो महाराज यह वही नदी है जहा हम आप बनबिहारके लिए आया करते थे। उनके कहनेका अभिप्राय यह था कि महाराज अब यह कह देवें कि हा अब तुम बडी दूर आ गए हो यहांसे लौट जावो। पर वारिषेरग महाराजने पुष्पडालको लौटनेके लिए न कहा, बल्कि भद्रपरिणामी जानकर धर्मोपदेश दिया। आखिर ४–५ मील दूर जब जगलमे पहुच गए तो भावुकतामे आकर पुष्पडाल भी विरक्त हो गए। वह मुनि बनकर जगलमे रहने लगे। परन्तु जगलमे उन्हे याद आया– ओह अब न जाने मेरी स्त्रीका क्या हाल हो रहा होगा ? हम उससे कुछ कह कर भी नही आये। यो स्त्रीका मोह उन्हे सताने लगा। बताते है कि वह स्त्री कानी भी थी। वारिषेरग महाराजने उसके मनकी बातको समझकर पुष्पडालके मोहको गलानेका उपाय रचा। वारिषेरगने अपनी मा को खबर कर दी कि कल के दिन दोपहर बाद दो बजे हम घर आ रहे है, आप सभी रानियोको वस्त्राभूषरगसे सजा-कर रखना। मा ने सोचा कि ऐसी क्या बात हुई जो मेरे बेटे ने विरक्त होकर भी फिर घर जानेके लिए सोचा। सो माँ ने दो प्रकारके सिंहासन सजाये—एक सोनेका और एक काष्ठका। सोचा कि यदि मेरे बेटेको पुन मोह उपजा होगा, कुबुद्धि आयी होगी तो सोने के सिंहासनपर बैठ जायेगा। परन्तु हुआ क्या कि जब वारिषेरग महाराज आये तो काष्ठके सिंहा-सन पर बैठे। वहा पुष्पडालने जो वारिषेरगकी सुन्दर रानियोको देखा तो उसका मोह गल गया, सोचा ओह ! इन्होने ऐसी ऐसी सुन्दर रानियोको छोडा, पर मैं अपनी कानी स्त्रीके प्रति ममता करके व्यर्थ ही दुखी हो रहा हू। बस पुष्पडालका मोह गल गया। यही तो करना था वारिषेरग महारजको। तो हम आप सभीको दुख लगा है रागद्वेष मोह भावका। पर-पदार्थ मेरे होते है नही। पर उनके प्रति व्यर्थका राग लगा है। ये घरके स्त्री पुत्रादिक सब कुछ जच रहे हैं, पर जगतके अन्य जीवोकी भाति ये सब भी मेरेसे बिल्कुल निराले हैं। कीडा मकौडा पशु पक्षी बनस्पति आदिक जैसे ये सब हमसे निराले हैं उतने ही निराले ये घरमे बसने वाले स्त्रीपुत्रादिक है, लेकिन मोहमे ऐसा मानता कौन है और इसी मोह राग के काररग किसी भी क्षरग स्वानुभूति नही जग पाती।

सम्यग्ज्ञानोपयोगसे परेशानियोंकी निवृत्ति—लोककी इन सब परेशानियोको हटाना है तो इसका उपाय है भेदविज्ञान। भेदविज्ञानके विना ये परेशानिया दूर न हो सकेगी। ऐसा अभ्यास करे, जानें कि ये रागादिक विकार मेरे विनाशके लिए आये है। ये मेरे स्वरूप नही

है। यदि किसी पुरुषका कपट जान ले कि इसके मनमें और है, वचनसे कुछ और कहता है, मुझे इसकी बातमे नही आना चाहिए। तो वह सावधान हो जाता है, पर इस बेकारकी कपटकी बातसे सावधान नही हुआ जा रहा है। ये भले लग रहे है इस समय, इस विकार मे मेरा परिणाम तन्मय हो रहा है, मुझे यही कल्याण जंच रहा है, मगर यह है बडा कपटी। इसका स्वभाव कुछ और, व्यक्तमे यह कुछ और जंच रहा है। वह कपटी नही, वह तो बेचारा जडभाव है। यह उपयोग ही कपटरूप बन रहा है, अपने आपकी सभाल नही कर पाता, सावधानी नही कर पाता, टेढा बन रहा है, सरल नही बनता। तो करने का काम एक यही है चाहे गुप्त रहकर करे चाहे कैसे ही करे। यह कल्याण गुप्त ही होगा, प्रकट नही दिखता, और अपने ज्ञानमे आयगा। अपना कल्याण भावमे बन रहा है तो वह कोई दूसरेको दिखानेकी चीज नही है। इस तत्त्वज्ञानके जागृत किए बिना कल्याण न हो सकेगा। अनुभव करके देख लो—जिस समय आप सब पदार्थोंको उन उनके स्वरूपमे परिपूर्ण देख रहे हों, किसीका कही कुछ नही है। उस समय आपको शान्ति है, निराकुलता है, और ज्यो ही यह ऊधममें आया, परपदार्थोंके लगावमे आया, किन्ही भी बाह्यपदार्थोंको चित्तमे बसाया, बस सारे संकट सामने आ गए।

आत्माकी परम अवस्थाका दिग्दर्शन---जीवकी सबसे निकृष्ट अवस्था निगोद है और सबसे उत्कृष्ट अवस्था सिद्ध प्रभुकी है। अरहत भी उत्कृष्ट है, अरहत और सिद्ध मे केवल एक अघातिकर्मका अन्तर है, बाह्य अन्तर है। अन्त विशुद्ध सर्वज्ञता परमात्मतत्व अनन्तज्ञान, अनन्तदर्शन, अनन्तशक्ति, अनन्तआनन्द, जिससे आगे और कोई बात नही, सर्वस्त्र दोनो मे समान है। तो समझिये कि परमात्मत्व तो सबसे उत्कृष्ट अवस्था है और निगोद सबसे निकृष्ट अवस्था है। परमात्मा कहते ही उसे है जो परम आत्मा हो, उत्कृष्ट हो, आत्मा हो। तो कोई अनादिसे ही उत्कृष्ट नही होता। जो अनादिसे यथावत् है वह उत्कृष्ट क्या? वह तो जो है सो है। उत्कृष्ट तब कहलायेगा जब पहिले निकृष्ट हो, फिर उत्कृष्ट अवस्था पाई हो। तो जितने भी प्रभु है वे जीव जाति की दृष्टिसे समान हैं, किन्तु उन्होने भी पहिले निकृष्ट अवस्थामे अपना समय व्यतीत किया। उपाय बना, भेदविज्ञान बना, स्वभावावलम्बन हुआ, दृढतासे इस ओर आये कि उन्होने परमात्मस्वरूपका विकास कर लिया। तो उत्कृष्ट है यह परमात्माकी अवस्था। परम आत्मा सो परमात्मा। और परमका अर्थ क्या है? परा मा लक्ष्मी विद्यते यत्र स परम। जहाँ उत्कृष्ट लक्ष्मी हो उसे कहते है परम। लक्ष्मीके मायने क्या? लक्ष्म लक्षणं—जीवोका जो लक्षण है वह जीवकी लक्ष्मी है। जीवका लक्षण

है ज्ञान, सो ज्ञान ही लक्ष्मी है। बहुत दिनो तक तो ज्ञानयुगमे लोग ज्ञानलक्ष्मीको मानते रहे और जब उसका बोध विशेष न रहा तो कुछ समयमे कविजन जो ज्ञानलक्ष्मीका वर्णन करते थे चार वेद—प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, सव्य नुयोगके रूपमे, और कवि लोग वर्णन करते थे उस ज्ञानलक्ष्मीका कि इसका वाहन तो पवित्र आत्मा है, हसात्मा है। जैसे हस पक्षी स्वच्छ है, उसकी उपमा देकर कहते वह भव्य आत्मा है, वहाँ ज्ञानलक्ष्मी का निवास है, वहाँ रहती है ज्ञानलक्ष्मी। उस ज्ञानलक्ष्मीका स्थान क्या है; विस्तार क्या वह तो व्यापक है, सर्वत्र है। और जो विस्तृत हो उसे सर कहते है, सर प्रसरणं यस्या सा सरस्वती। तालाब व्यापक है। अनेक अलकार चलते थे, तो लोगोने जान लिया कि अब ज्ञानलक्ष्मी तो यह है, सरस्वनी, सर मायने तालाब। जहां निवास है, हस जिसकी सवारी है, चार हाथ जिसके निकले है, वह क्या है ? ज्ञानभावका रूपक है वे चार अनुयोग जिनके हाथ है भव्यरूपी हस जिसका वाहन है, और जिस ज्ञानका फैलाव है वह सर है, फैला हुआ है। लक्ष्मी नाम है ज्ञान का। जहाँ उत्कृष्ट ज्ञान विकसित हुआ हो उसे कहते है परम और परम आत्माका नाम है परमात्मा ? यही है उत्कृष्ट अवस्था।

मोक्ष और मोक्षमार्गके प्रोग्रामके लक्ष्य उपलक्ष्यकी सारभुतता—भैया! सबके चित्तमे कुछ न कुछ प्रोग्राम बना हुआ है कि मुझे यह करना है, मुझे यह करना है। अरे ये सब व्यर्थके अनर्थके, विपत्तियोके झझट स्वप्नवत् कार्योंका ही प्रोग्राम लक्ष्य मान रखा है पर वे सब असार है। अपना एक प्रोग्राम यह बनावे कि मुझे तो परमात्मा होना है। मुझे ऐसा धनिक, ऐसा सदस्य, ऐसा मिनिस्टर आदि बनना है, इस प्रकारके जो प्रोग्राम बनाये जा रहे हैं इनमें तत्त्व नही है। धर्मदृष्टिसे देखो—आज इस देशमे इस जगह है तो यहाँकी ममता रखे है, दूसरे देशोके खिलाफ रहते हैं मगर कदाचित् मरण करके उन्ही देशो मे पैदा हो गए तब फिर इस देशके खिलाफ हो गए कि नही ? तो यहाँ सार क्या निकला ? यहाँ किसी भी परका विश्वास नही है। मेरा तो प्रोग्राम मुक्तिका है। मोक्षका प्रोग्राम बनाइये। मोक्ष मायने केवल हो जाना, अर्थात् जो मैं केवल अपने आपमे सहज हूँ बस वही हो जाना यही कहलाता है मोक्ष। बस प्रोग्राम हो तो केवल होनेका बनाइये। केवल होनेका प्रोग्राम तब ही बन सकेगा जब इस समय अपने आपको केवल लख लिया जाय। मैं सबसे निराला केवल हू, सहजज्ञान हूँ, ये रागादिक भाव जो कि दुःख देनेके लिए ही प्रकट हुए हैं, मुझे संसारमे रुलानेके लिए ही प्रकट हुए हैं; जिनकी प्रकृति केवल क्लेश की ही है, जो स्वयं दुःखस्वरूप है, उनमें कुछ लगाव न होगा। मैं अपने आपके स्वरूपमे

रहूगा, ऐसा भीतर सकल्प तो बने, भाव तो बने ऐसा। यह बात तब ही बनेगी जब हम ठीक-ठीक निर्णय रखेगे कि ये रागादिक भाव, औपाधिक है, विभाव है, मेरे स्वरूप नही है।

बाह्यपदार्थसे लाग लगाव हटाकर स्वभावोपयोग करनेमे कल्याण—कोई पुरुष जब तक किसी लाग-लगावमे नही है तब तक उसकी अवस्था दिखेगी आनन्दरूप और अवस्था बढनेके कारण या किसी भी निमित्त पर हमने यदि कुछ लाग-लगाव कर लिया तो उस दिनसे हमें बेचैनी बन जायगी। यही सर्वत्र देख लो। एक सेठका पडौसी बढई था। जो कि दो तीन रुपये रोज कमाता था और उनसे खा पीकर खुश रहा करता था। प्रतिदिन अच्छा भोजन करता था। और सेठकी क्या हालत थी कि प्रतिदिन साधारण भोजन करता था। तो एक दिन सेठानी बोली कि देखो—अपना पडौसी बढई तो बडा गरीब होनेपर भी खूब अच्छा-अच्छा खाता-पीता और खुश रहता है और आप इतना धनिक होकर भी साधारण खान-पान रखते है, इसका क्या कारण हैं ? तो सेठ बोला कि तुम नही जानती हो सेठानी, अभी यह ९९ के चक्करमे नहीं पड़ा है। जब ९९ के चक्करमे पड़ जायगा तो इसकी भी यही हालत होगी। सो सेठने एक दिन शामको उस बढईके घर ९९ रु० की थैली फैंक दी। बढईने जब आंगनमे रुपयोकी थैली पायी तो बड़ा खुश हुआ। जब गिनने लगा तो वे कुल ९९ रु० निकले। सोचा कि इनमे यदि एक रुपया कम न होता तो मैं शतपति कहलाता। उसने दूसरे दिन अपनी दो रुपयेकी कमाईमे १ रु० तो थैलीमे डालकर १००) पूरे कर दिये और १) का रोटी साग खाकर काम चला लिया। जब १००) उसके पास हो गए तो सोचा कि १००) तो अमुकके पास भी है पर वह सुखी नही है। हजार रुपये होने चाहिएँ। आखिर हजार रुपये जोडने के चक्करमे पड गया। सूखा-सूखा खान-पान घर मे रखा। अब सेठ अपनी सेठानीसे कहता है, देख लो अब बढईकी हालत। मैं कहता था ना कि अभी यह ९९ के चक्करमे नही पडा। तो जो व्यक्ति अपने जीवनको विवेकके साथ बिताना चाहते हो उनका कर्तव्य है कि वे अपने हितके पंथमे चले। जो अहितकी बातें हैं उनसे दूर रहें; इससे उनके जीवनकी सफलता है। और अहित विषयकषायोमे लगकर अगर जिन्दगी गुजर गई तो इससे जन्ममरणकी परम्परा ही चलती रहेगी। आज हम आप मनुष्यभवमे है तो क्या हुआ ? अगर यहांसे मरकर पशु पक्षी बन गए तो फिर वहा क्या करना होगा ? इससे इस मानवजीवनका सदुपयोग कर लेना चाहिए और ज्ञानकी उपासना मे अपना समय लगाना चाहिए। जब कभी भी किसी भी परिस्थितिमे घबडाकर, झुँझला-

कर या पथ न दिखने के कारण किसी भी परिस्थितिमे भीतर यह आवाज निकले कि क्या करना चाहिये ? अब तो इसका सही एकमात्र प्रधान उत्तर यही है कि एक ज्ञानमात्रका आलम्बन लेना चाहिये।

आनन्दलाभके यत्नका विचार—आत्माका हित आनन्द है। प्रत्येक प्राणी चाहता तो आनन्द ही है, पर यह मोही प्राणी आनन्दका सही उपाय न बना सका और न सत्य आनन्द पा सका। प्रथम तो आनन्दका स्वरूप ही वह नही जान रहा। सासारिक सुखोको ही वह आनन्द समझता है, किन्तु जैसे सांसारिक दु खोमे क्षोभ भरा हुआ है उसी प्रकार सासारिक सुखोमे भी क्षोभ बसा हुआ है। क्षोभरूप होनेके कारण दु ख भी हेय है और सुख भी हेय है। किन्तु आनन्द एक ऐसी अवस्था है कि जहां क्षोभ नही है। आनन्द कहते ही उसे है कि जिसमे वह आत्मा सर्व ओरसे समृद्धशाली बन जाय। टुनदि समृद्धौ धातुसे नन्द शब्द बना है और उसमे आ उपसर्ग लगा है जिसकी उपपत्ति है आ समन्तात् नन्दन आनन्द, सर्व ओरसे आत्मा समृद्धशाली हो ऐसी स्थितिको आनन्द कहते है। वहाँ क्षोभ नही, सर्वकल्याण है, उस आनन्दको पानेकी जिसकी इच्छा रुचि हो जाती है वह निश्चित भव्य है। वह आनन्द मिले कैसे, उसके लिए आनन्दका स्वरूप और जिसे आनन्द देना है, जो आनन्द पायेगा उसका स्वरूप ज्ञानमे होना चाहिए।

आनन्द चाहने वालेके स्वरूपका निर्णय—जो आनन्द चाहता है वह है यह मैं स्वय तो स्वयके स्वरूपका बोध होना चाहिए। पहिले तो यहाँ यह निर्णय करो कि मैं हू, अस्तित्व जानो। निर्बाध अर्थक्रियाकारी अस्तित्वको सिद्ध करने वाले साधारण गुण ६ होते है जिनसे प्रत्येक पदार्थकी सत्ता निश्चित होती है सही ढगमे—अस्तित्व, वस्तुत्व, द्रव्यत्व, अगुरुलघुत्व, प्रदेशवत्व और प्रमेयत्व। अस्तित्वके कारण तो यह निश्चित हुआ कि मैं हूँ और वस्तुत्वसे यह निर्णय हुआ कि मैं अपने स्वरूपसे हू, परस्वरूपसे नही हू। द्रव्यत्व शक्ति से यह जाना कि मैं निरन्तर परिणमता रहता हू। न परिणमू तो मेरी सत्ता ही न रहेगी। अगुरुलघुत्वमे यह समझा कि मैं अपने ही स्वरूपमे परिणमता हू, अपने ही परिणमनसे परिणमता हू, दूसरेके स्वरूपरूप नही परिणम जाता, इतना एक साधारण बोध होने पर अभी कुछ सामने कोई चीज सी नही ऐसी नजर आयी, बात बात सी रह गई तो प्रदेशवत्व गुणके बोधसे यह बोध हुआ कि मैं प्रदेशवान हू, स्वय अपने प्रदेशमे हू, और प्रमेयत्व गुणके बोधसे जाना–यह मैं प्रमेय हू, यो ६ साधारण गुणोंसे सत्का निर्णय हुआ, लेकिन किसी पदार्थमे ६ साधारणगुण ही हो तो वह पदार्थ ही नही रह सकता। असाधा-

रण गुण होन प्रत्येक पदार्थमे आवश्यक है। इन ६ साधारण गुणोसे तो सामान्य बात बतायी गई, जो असाधारणगुणके साथ ही मिलकर पनपेगी, तो मुझमे असाधारणगुण है चेतन, ज्ञानदर्शन, जानना, देखना। मेरेमे स्वरूप है जानना और देखना, स्वरूप अपना अपने आनन्दके लिए ही है।

सहजप्रभुके मिलन व विछोहकी स्थितिका प्रभाव—मेरा जो सहजस्वरूप है सत्य अर्थात् अपने आप अपनी सत्ता सत्ताके कारण स्वय स्वभावमे जो बात है वह स्वयके बिगाड के लिए नही हुआ करती, लेकिन दिख रहा है कि हम आपमें अनेक क्षोभ तो मचा करते है। तो इस क्षोभको समझना चाहिए कि यह मेरे स्वरूपकी चीज नही, मेरे स्वभावकी वस्तु नही, किन्तु होते मुझमे हैं, यह बात अवश्य है, सो ये विभाव हैं, मेरे स्वभाव नही हैं, परकर्मोदयका सन्निधान पाकर उत्पन्न हुए है, मेरे सहजस्वरूपमे नही है, अतएव ये परभाव है। मैं इनसे निराला ही स्वरूप रख रहा हू। उस ज्ञानस्वभावकी दृष्टि बने तो आत्माकी पहिचान यथार्थतया होगी। और जिस किसी भी उपायसे करना यही है कि मैं अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभवमे लूं मैं ज्ञानमात्र हू, बस जानन होता है यह परिणमन कर्तृत्व है, यह परिणमन भोक्तृत्व है। इसीका ही करना होता है इसीका ही भोगना होता है, ऐसा अपने आपमें अंत स्वरूपमात्र अनुभव जगे तो यह ही एक श्रेय है, यही कल्याणका रूप है, इस बातकी प्राप्ति कैसे हो ? तो साक्षात् बात तो यह है कि इस ज्ञानके द्वारा ही इस ज्ञानकी प्राप्ति हो सकती है। ज्ञान पाया जायगा तो ज्ञानमे ही ज्ञान द्वारा पाया जायगा, यह अन्त स्तत्त्व किसी क्रियाकलाप द्वारा नही पाया जायगा। अन्य क्रियाकलाप, बाह्यचरित्र ये सब उस स्थितिमें साधन बन गए कि जिन स्थितियोंमे विषयकषायोंके अंकुर, संस्कार वासना सता सकती है। उन स्थितियोमे यह जीव अशक्त है तो वह क्या उपाय करे ? करता तो है ही कुछ। अन्य-अन्यरूप प्रवृत्ति करने लगेगा, ऐसी स्थितियोमे ये सब हमारे बाह्यसाधन हैं। पर ज्ञानकी अनुभूति, ज्ञानकी प्राप्ति तो इस ज्ञानपरिणति द्वारा होगी। इस ज्ञानस्वरूपको जो नही समझते हैं ऐसे पुरुष नाना प्रकारकी क्रियायें भी करें तब भी वे मोक्षका मार्ग नहीं पाते। तथ्य तो समझना ही पडेगा कि मेरी अंत:परमार्थ स्थिति क्या है और आनन्द किस स्थितिमे है ?

अन्तःअंधेरा और उजेला—मैं परमार्थ क्या हूं और आनन्द किस स्थितिमें है—इन दो बातोंका बोध नही हो यदि सारा अंधेरा ही अंधेरा है, फिर तो कोई भी यत्न किए जायें उन यत्नोसे इस आनन्दमय श्रेयस्वरूप सहजपरमात्मतत्त्वकी उपलब्धि नही हो सकती।

जिन्होने अपने आपमे अन्त प्रकाशमान इस सहजज्ञानस्वरूपकी उपलब्धि की, उनका यह निर्णय हो गया है कि रमण करने योग्य यह ही स्थिति है। जगतके बाह्यसाधन, बाह्यस्थितिया ये रमण करने योग्य नही हैं। सब असार है। परिज नोका समागम मिला है तो यह भी क्या है ? अंधेरा है, इसमें लगे तो यह पूरा अधकार है। कहा तो यह एकाकी स्वतत्र अपने ही सत्त्वमे रहने वाला ऐसा निराला पदार्थ और यह अपना उपयोग ऐसा ही निराला अन्त-स्वरूपमे लखे तो इसका उद्धार था, मगर व्यर्थ ही परिजनोके लगावमे लग रहा है और ऐसे लगावमे चल रह है यह कातर प्राणी कि तन, मन, धन, वचन सर्वस्व प्राण इन्हीके लिए इसके विकल्पमे बन रहे हैं। अन्य है मेरा कौन इस लोकमें ? मेरी इज्जत इस परिवारसे है, इस वैभवसे है, मेरी पूछताछ, मेरी प्रतिष्ठा इस परिवार और वैभव से है। इस प्रकार का अज्ञान-अंधेरा छा गया है और इस अंधेरेमे वह ज्योति नही नजर आती, अन्त स्वरूप नही दृष्टिगत होता, न उसमे रमण हो पाता। जिन्होंने इस ज्ञानका ज्ञान द्वारा अनुभव किया है उनका यह निर्णय है कि इतना ही स्थितियां स्वयं है जितना कि यह ज्ञान है। ज्ञानमात्र, उसमे ही नित्य रति रखना चाहिए। यही सत्य आशीर्वाद है, कल्याण है जितना कि यह ज्ञान है। इस ज्ञानमे ज्ञानोपयोग रखकर हमे सतुष्ट रहना चाहिए। असंतोषकी जरा भी बात नही है। कोई उपद्रव ही नही, कोई कष्ट ही नही, कोई कुछ कर ही नही, सकता। मैं ही अपने ज्ञानसे चिगकर दु खी हो रहा हू। मैं अपने को ज्ञानमात्र स्वरूपमे निश्चित करूं और इसही ज्ञानमात्र स्वरूपमे अपनेको उपयुक्त रखूँ तो वहाँ एक भी उपद्रव नही है। सर्वोत्कृष्ट बात यदि कुछ है तो यह ज्ञानभाव है, यह ज्ञानस्वरूप।

प्रियतमताका निर्णय—जगतके अज्ञ प्राणी तो मानते हैं कि ये प्रिय हैं, मगर उनकी प्रियता तो बदलती रहती है, ६ महीनेके बच्चे को माँ की गोद प्यारी है, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि इस जीवको सर्वप्रिय माँ की गोद है। वह जब ४-५ वर्षका हो जाता तो उसे माँकी गोद प्यारी नही रहती, उसे तो खेल खिलौने प्रिय हो जाते हैं, कुछ और बडा होने पर खेल खिलौने भी उसे प्रिय नही रहते उसे तो पढना लिखना प्रिय हो जाता है, कुछ और बडा होने पर डिग्री प्रिय हो जाती है, पढने लिखने से मतलब नही, फिर तो जिस किसी भी प्रकार हो डिग्री मिलनी चाहिए, बादमे कुछ और बडा होनेपर डिग्री भी प्रिय नही रहती, उस स्त्री प्रिय हो जाती है, कुछ और बडा होनेपर दो चार बच्चे हो जानेपर फिर स्त्री भी प्रिय नही रहती, बच्चे प्रिय हो जाते है। फिर बच्चे भी प्रिय नहीं रहते, धन प्रिय हो जाता है। और मान लो कदाचित् घरमे आग लग गई, परिजनोको

निकाला, कोई एक बच्चा घरके अन्दर रह गया, आग तेज बढ गई, स्वय न निकाल सका तो दूसरोसे कहता है, भैया ! मेरे बच्चे को निकाल दो, हम तुम्हे १० हजार रुपये देगे। अब देखिये उसे अपने प्राण प्यारे हो गये। जो चीजें अभी तक प्रिय थी वे सब अप्रिय हो गयी। उसे एक अपनी जान प्यारी हो गई, और वही पुरुष जब विरक्त होता है, आत्मध्यान में रत होता है तो ऐसे योगीको कोई जंगली जानवर सिंहादिक क्रूर पशु भक्षण भी करे, कोई शत्रु आकर हमला करे तो उसपर भी वे ध्यान नही देते। वे तो उस घोर उपसर्गके समय अपने ज्ञानकी रक्षा करते हैं। वे योगिराज जानते हैं कि मेरा यह ज्ञान जो कि मेरे अनुभवमे आ रहा है, जो निर्विकल्प, क्षोभरहित सत्य है, कल्याणमय है, मेरा जो स्वरूप है इस ज्ञानधारासे मैं विचलित न होऊँ, बस उसे यह ज्ञान प्रिय हो गया है। अब उसे अपनी जान भी प्रिय नहीं। जान जा रही हो तो उसकी ओर वे रच भी विकल्प नही। वे जानते है कि इस समय इस ज्ञानधाराके प्रवाहसे मैं विचलित हो गया तो मेरा सारा भविष्य बिगड़ जायगा, मेरा सारा बिगाड हो जायगा। जैसे एक कहावत है कि गोदको छोडकर पेटकी आश करना। जो ज्ञानधारा चल रही है, जो महान् आनन्द प्राप्त हो रहा है उससे यदि मैं चिग गया तो फिर उसका परिणाम क्या होगा ? यह जान कोई सारभूत चीज नही है। तो आखिर अब क्या प्रिय हो गया ? अब उसे प्रिय हो गया ज्ञान। इस ज्ञानके बाद अब बताओ ऐसी कौन-सी स्थिति है जिसे देखकर यह कहा जाय कि वह चीज तो प्रिय हो गई और यह ज्ञान अप्रिय हो गया ? ऐसी कोई स्थिति नही है। तो ऐसा यह ज्ञानमात्रस्वरूप यह ही सत्य है, यह ही अनुभवनीय है, ऐसा जानकर इस ज्ञानमात्र द्वारा ही तृप्तिको प्राप्त करे। इस ही मे वह सत्य आनन्द है। जिस आनन्दका अध्यात्मवादमे लक्ष्य किया जाता है।

ज्ञानीके सत्य स्ववैभवका दृढ़तम निर्णय--ज्ञानी पुरुष जानता है कि मेरा ज्ञान ही धन है, और जो ज्ञान है वही मैं हू। जो जिसका स्वभाव है वही उसका सर्वस्व है और वही उसका स्व है, वह उस स्वका स्वामी है। अब आत्माका क्या रहा ? केवल यह मैं आत्मा। आत्मा क्या ? यही ज्ञानस्वरूप। मेरा वैभव है ज्ञानस्वरूप, मेरे सब परिजन हैं ज्ञानस्वरूप। मेरी प्रतिष्ठा है यह ज्ञानस्वरूप। सदाके लिए जन्ममरणके संकटसे छूट जाऊँ, समस्त झंझटोसे रहित हो जाऊ, ज्ञानमे ही ज्ञानका अनुभव बना रहे, इससे भी बढकर हमारी कोई प्रतिष्ठा है क्या ? यह लौकिक प्रतिष्ठा तो क्षोभसे भरी हुई है और अकल्याण का हेतुभूत है। यहाँ कहाँ क्या सार है ? इस संसारमे प्रलोभन बहुत है और इस ज्ञानके

जिन्होने अपने आपमे अन्त प्रकाशमान इस सहजज्ञानस्वरूपकी उपलब्धि की, उनका यह निर्णय हो गया है कि रमण करने योग्य यह ही स्थिति है। जगतके बाह्यसाधन, बाह्यस्थितिया ये रमण करने योग्य नही हैं। सब असार है। परिजनोका समागम मिला है तो यह भी क्या है? अंधेरा है, इसमे लगे तो यह पूरा अधकार है। कहा तो यह एकाकी स्वतत्र अपने ही सत्त्वमे रहने वाला ऐसा निराला पदार्थ और यह अपना उपयोग ऐसा ही निराला अन्त-स्वरूपमे लखे तो इसका उद्धार था, मगर व्यर्थ ही परिजनोके लगावमे लग रहा है और ऐसे लगावमे चल रह है यह कातर प्राणी कि तन, मन, धन, वचन सर्वस्व प्राण इन्हीके लिए इसके विकल्पमे बन रहे हैं। अन्य है मेरा कौन इस लोकमे? मेरी इज्जत इस परिवारसे है, इस वैभवसे है, मेरी पूछताछ, मेरी प्रतिष्ठा इस परिवार और वैभव से है। इस प्रकार का अज्ञान-अंधेरा छा गया है और इस अंधेरेमे वह ज्योति नही नजर आती, अन्त स्वरूप नही दृष्टिगत होता, न उसमे रमण हो पाता। जिन्होंने इस ज्ञानका ज्ञान द्वारा अनुभव किया है उनका यह निर्णय है कि इतना ही स्थितिया स्वय है जितना कि यह ज्ञान है। ज्ञानमात्र, उसमे ही नित्य रति रखना चाहिए। यही सत्य आशीर्वाद है, कल्याण है जितना कि यह ज्ञान है। इस ज्ञानमे ज्ञानोपयोग रखकर हमे संतुष्ट रहना चाहिए। असतोषकी जरा भी बात नही है। कोई उपद्रव ही नही, कोई कष्ट ही नही, कोई कुछ कर ही नही, सकता। मैं ही अपने ज्ञानसे चिगकर दु खी हो रहा हू। मैं अपने को ज्ञानमात्र स्वरूपमे निश्चित करूं और इसही ज्ञानमात्र स्वरूपमे अपनेको उपयुक्त रखूँ तो वहाँ एक भी उपद्रव नही है। सर्वोत्कृष्ट बात यदि कुछ है तो यह ज्ञानभाव है, यह ज्ञानस्वरूप।

प्रियतमताका निर्णय—जगतके अज्ञ प्राणी तो मानते है कि ये प्रिय है, मगर उनकी प्रियता तो बदलती रहती है, ६ महीनेके बच्चे को माँ की गोद प्यारी है, लेकिन यह नही कहा जा सकता कि इस जीवको सर्वप्रिय माँ की गोद है। वह जब ४-५ वर्षका हो जाता तो उसे माँकी गोद प्यारी नही रहती, उसे तो खेल खिलौने प्रिय हो जाते हैं, कुछ और बडा होने पर खेल खिलौने भी उसे प्रिय नही रहते उसे तो पढना लिखना प्रिय हो जाता है, कुछ और बडा होने पर डिग्री प्रिय हो जातो है, पढने लिखने से मतलब नही, फिर तो जिस किसी भी प्रकार हो डिग्री मिलनी चाहिए, बादमे कुछ और बडा होनेपर डिग्री भी प्रिय नही रहती, उस स्त्री प्रिय हो जाती है, कुछ और बडा होनेपर दो चार बच्चे हो जानेपर फिर स्त्री भी प्रिय नही रहती, बच्चे प्रिय हो जाते है। फिर बच्चे भी प्रिय नही रहते, धन प्रिय हो जाता है। और मान लो कदाचित् घरमे आग लग गई, परिजनोको

है उस जाननका ही तो बोध करना है कि वह क्या वस्तु है ? वह जानन अमूर्त है, ज्योतिमात्र है, निराकार नही आधार है, प्रदेशवान है आदिक । यह मै देहसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हू, यह निर्णय करना ही होगा अन्यथा अधेरेमे ही रहना होगा और अन्त क्रियाकी ओरसे देखो तो यह मैं अन्त वस परिणमन कर रहा हू ना, वह तो द्रव्यत्वगुणकी बात है, परिणाम रहा हू और हू ज्ञानमात्र, उसमे ककड पत्थर-जैसा कोई पिण्डरूप नही मालूम हो रहा । यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा हू तो इस मुझका अन्त परिणामन भी क्या है ? कोई ज्ञानमात्रका, जिस ढगसे हो सकता है उसी ढगमे परिणमन चलेगा । वह जानन है करतूत मेरी और वही अनुभवन सही है भोगना मेरा, ऐसा यह ज्ञानी अपने आत्माके अन्त निरख रहा है, यह धारा बने. ज्ञानकी दृष्टि निरन्तर रहे, ऐसी उसकी रुचि है । बाह्य पदार्थ अगर कही जाते है, छिदते है, भिदते है, कुछ होता है, उनका असर इस पर तो कुछ भी न होना चाहिए । क्यो हो ? जब भिन्न पदार्थ है, किसी जगह कोई मकान गिर गया तो क्या यहां भी गिर जाना चाहिये । बाह्य पदार्थोंमे कुछसे कुछ हो गया, छिद गया, भिद गया, तो क्या यहा भी उससे कुछ गडबड हो जाना चाहिए ? हो बाहरमें जो कुछ होता हो, मेरा उन परपदार्थोंमे कुछ लगाव नही, क्योंकि मैं अन्त. ज्ञानमात्र हू । यो ज्ञानस्वरूपका निर्णय करने वाला आत्मा भव्य जीव उस आनन्दका लाभ करता है । जो आनन्द वास्तविक है, स्वाधीन है, सत्य है स्वभावकी चीज है, जो परम कल्याण रूप है, उत्कृष्ट है, ऐसे आनन्द लाभके लिए आत्माके परमार्थभूत स्वरूपके ज्ञानकी आवश्यकता है, इसके ही लाभमें इन जीवनक्षणो की सफलता है ।

॥ अध्यात्मसहस्री प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त ॥

प्रकरणमे वह जानना कि ज्ञान ही सत्य है, ज्ञान ही सर्ववैभव है, उस ज्ञानकी ही जिसकी धुन लगी है ऐसे ज्ञानीके लिए भी ये सारे प्रलोभनोमे नही आते। मेरी लोकमे प्रतिष्ठा बने, ब तसे लोग मेरे जानकार बने, मानने वाले बनें, इस तरहके कोई प्रलोभन इस ज्ञानी पुरुष के नही आते। उसे तो अपना ज्ञान ही प्रिय है, ज्ञानकी धुन ही उसे प्रिय है। वह अपना परिग्रह अपने आपको जानता है। तब ये सारे परद्रव्य यह शरीर भी, ये रागादिक विकार भी ये मैं नही हू। अपने उस स्वरूपको लिया है इस ज्ञानीने जो इसका सहज है, अनादि अनन्त है। यद्यपि उस स्वरूपके आवरण अनेक हो गए है, लेकिन ऐसी तीक्ष्ण दृष्टिसे ज्ञानीने अपने उस स्वरूपको लक्ष्यमें लिया है। बीचमें आने वाले आवरणोको भी पार करके वह उस दृष्टिसे अन्दर स्वरूपपर पहुंचता है। जैसे हड्डीका फोटो लेने वाला कैमरा खून, मास, मज्जा आदिको छोड देता है, उनका फोटो न लेकर केवल हड्डीका फोटो ले लेता है इसी प्रकार ज्ञानी पुरुष अपनी ज्ञानदृष्टिके द्वारा पञ्चेन्द्रिय, कषायभाव, रागादिक विकार इन सबको पार करके, सूक्ष्मशरीर, कार्माणवर्गणाये इन सभीको पार करके, किसीसे भी न छिड करके किसीसे भी प्रतिहत न होकर अपने अन्त स्वरूपका ग्रहण कर रहा है। उसका निर्णय है कि मेरा परिग्रह तो यह मैं आत्मस्वरूप ही हू। ये कोई परद्रव्य मेरे परिग्रह नही। इन्हें मै अपने ज्ञानमे आत्मसात नही कर रहा। यदि मै किसी भी वाह्यपदार्थका आत्मसात करूं, अपना मानूं, उन्हे मैं अगीकार करूं तो समझिये कि जो जिसका होता है वह उस रूप हुआ करता है, यही वास्तविकता है। तब मैं अगर किसी जीव या अजीवका बनूं या कोई जीव अथवा अजीव मेरा बने तो इसका अर्थ है कि मैं भी अजीव हो गया। (यहा तत्त्को निरखा जा रहा है) कही मै अजीव नही हो गया, पर वास्तविकता यह है कि जो परमार्थत जिसका है वह उस समय है। तो मेरा अगर कोई यह लौकिक परिग्रह है तो मैं अजीव बन जाऊगा। मैं अजीव नही हू। अजीव का जो स्वामी है वह वही अजीव है। मेरा तो एक ज्ञायकस्वरूप है।

सहज अन्तस्तत्त्वका सुगम निर्णय—यहा भीतर अमूर्त रूप, रस, गध, स्पर्शसे रहित एक ज्ञानभावको दृष्टिमे लिया जा रहा है। यह कठिन बात यो नही कि हम जान तो रहे हैं कि जानना भी कोई तत्त्व है, जानना भी तो कोई वस्तु है। जान रहे है और उस जाननेको ही नही प्राप्त कर पाते, असत् नही, कथनमात्रकी बात नही, जाननरूप अर्थ क्रिया हम आप पर गुजर रही कि नही ? कुछ जान रहे, कुछ समझ रहे, यह बात हम पर बीत रही कि नही ? तो जो जानन हम आप पर बीत रहा है, जानन अर्थ क्रिया चल रही

है उस जाननका ही तो बोध करना है कि वह क्या वस्तु है ? वह जानन अमूर्त है, ज्योतिमात्र है, निराकार नही आधार है, प्रदेशवान है आदिक । यह मैं देहसे निराला अमूर्त ज्ञानमात्र हू, यह निर्णय करना ही होगा अन्यथा अंधेरेमे ही रहना होगा और अन्त क्रियाकी ओरसे देखो तो यह मैं अन्त बस परिणमन कर रहा हू ना, वह तो द्रव्यत्वगुणकी बात है, परिणम रहा हू और हू ज्ञानमात्र, उसमे ककड पत्थर-जैसा कोई पिण्डरूप नही मालूम हो रहा । यह मैं ज्ञानमात्र आत्मा हूं तो इस मुझका अन्त परिणमन भी क्या है ? कोई ज्ञानमात्रका, जिस ढगसे हो सकता है उसी ढगमे परिणमन चलेगा । वह जानन है करतूत मेरी और वही अनुभवन सही है भोगना मेरा, ऐसा यह ज्ञानी अपने आत्माके अन्त निरख रहा है, यह धारा बने, ज्ञानकी दृष्टि निरन्तर रहे, ऐसी उसकी रुचि है । बाह्य पदार्थ अगर कही जाते है, छिदते है, भिदते है, कुछ होता है, उनका असर इस पर तो कुछ भी न होना चाहिए । क्यो हो ? जब भिन्न पदार्थ है, किसी जगह कोई मकान गिर गया तो क्या यहां भी गिर जाना चाहिये । बाह्य पदार्थोंमें कुछसे कुछ हो गया, छिद गया, भिद गया, तो क्या यहां भी उससे कुछ गड़बड हो जाना चाहिए ? हो बाहरमे जो कुछ होता हो, मेरा उन परपदार्थोंमे कुछ लगाव नहीं, क्योंकि मै अन्तः ज्ञानमात्र हू । यों ज्ञानस्वरूपका निर्णय करने वाला आत्मा भव्य जीव उस आनन्दका लाभ करता है । जो आनन्द वास्तविक है, स्वाधीन है, सत्य है स्वभावकी चीज है, जो परम कल्याण रूप है, उत्कृष्ट है, ऐसे आनन्द लाभके लिए आत्माके परमार्थभूत स्वरूपके ज्ञानकी आवश्यकता है, इसके ही लाभमे इन जीवनक्षणो की सफलता है ।

॥ अध्यात्मसहस्री प्रवचन षष्ठ भाग समाप्त ॥

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ पूज्य श्री १०५ क्षुल्लक मनोहरजी वर्णी 'सहजानन्द' महाराज विरचितम्

सहजपरमात्मतत्त्वाष्टकम्

❀ शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ❀

यस्मिन् सुधाम्नि निरता गतभेदभावाः प्रापुः प्रयान्ति च परं सहजं सुशर्म ।
एकस्वरूपममलं परिणाममूलं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥१॥

शुद्धं चिदस्मि जपतो निजमूलमन्त्रं, ॐ मूर्तिमूर्तिरहितं स्पृशतः स्वतन्त्रम् ।
यत्र प्रयान्ति विलयं विपदो विकल्पाः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥२॥

भिन्नं समस्तपरतः परभावतश्च, पूर्णं सनातनमनन्तमखण्डमेकम् ।
निक्षेपमाननयसर्वविकल्पदूरं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥३॥

ज्योतिः परं स्वरसकर्तृ न भोक्तृ गुप्तं, ज्ञानिस्ववेद्यमकलं स्वरसाप्तसत्त्वम् ।
चिन्मात्रधाम नियतं सततप्रकाशं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥४॥

अद्वैतब्रह्मसमयेश्वरविष्णुवाच्यं, चित्पारिणामिकपरात्परजल्पमेयम् ।
यद्दृष्टिसंश्रयणजामलवृत्तितानं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥५॥
आभात्यखण्डमपि खण्डमनेकमंशं भूतार्थबोधविमुखव्यवहारदृष्ट्याम् ।
आनन्दशक्तिदृशिबोधचरित्रपिण्डं, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥६॥

शुद्धान्तरङ्गसुविलासविकासभूमिं, नित्यं निरावरणमञ्जनमुक्तमीद्धम् ।
निष्पीतविश्वनिजपर्ययशक्ति तेजः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥७॥

ध्यायन्ति योगकुशला निगदन्ति यद्धि, यद्ध्यानमुत्तमतया गदितः समाधिः ।
यद्दर्शनात्प्रभवति प्रभुमोक्षमार्गः, शुद्धं चिदस्मि सहजं परमात्मतत्त्वम् ॥८॥

सहजपरमात्मतत्त्वं स्वस्मिन्ननुभवति निर्विकल्पं यः ।
सहजानन्दसुवन्द्यं स्वभावमनुपर्ययं याति ॥